वाटिका निधि

श्रीराधेश्याम बंका

प्रसंगावली

1. पूर्वज 1
2. श्रीरामजानकी मन्दिर 5
3. श्रीहनुमानजी की कृपा 8
4. बंका वंश 10
5. जन्म 11
6. जन्मपत्री एवं फलादेश 13
7. जन्मदात्री माँ 17
8. शिशु जीवन एवं बाल्यकाल 19
9. पिताजी का वात्सल्य 20
10. बचपन का आनन्द 22
11. जन्मदात्री माँ का देहान्त 23
12. घर में दो विवाह 24
13. नन्हा देश प्रेमी 27
14. पडरौना हाई स्कूल 28
15. देशभक्ति की प्रबल भावना 30
16. पूत के पग पालने में नज़र आ जाते हैं 31
17. प्रतियोगिता में अग्रणी 32
18. काश! मेरा जन्म चार सौ साल पहले हुआ होता 34
19. मित्रमण्डली 37
20. चोरी की लत 39
21. श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार से प्रथम मिलन 42
22. एक झलक में श्रीपोद्दारजी 45
23. दो प्रबल विचारधारा 48
24. राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ 49

25. पिताजी की मार ---- 53
26. अलसीसर गमन ---- 58
27. गुलाब पर लेख ---- 63
28. आर.एस.एस. गोरखपुर ---- 65
29. कार्य तत्परता ---- 68
30. काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, बी. ए. ---- 71
31. गंगा की गोद में ---- 74
32. शौचालय की सफाई ---- 76
33. रोनाल्ड हेनरी निक्सन ---- 77
34. विवाह प्रस्ताव ---- 81
35. प्रथम हिमालय यात्रा ---- 84
36. अर्धरात्रि में लक्ष्मण झूले पर ---- 86
37. उत्तर वृन्दावन की यात्रा ---- 89
38. मँगनी टूट गयी ---- 95
39. श्याम यदि मैं जान पाता ---- 97
40. आनन्दमयी माँ से वार्तालाप ---- 102
41. भाई श्रीरामनिवास का विवाह ---- 106
42. पाञ्चजन्य पत्रिका का कार्य ---- 107
43. श्रीबदरीनाथ की यात्रा ---- 112
44. यात्रा प्रारम्भ ---- 116
45. स्वामी श्रीसत्यानन्दजी से भेंट ---- 120
46. श्रीबदरीनाथ दर्शन ---- 121
47. ब्रह्मकपाली पर पितरों का तर्पण-श्राद्ध ---- 122
48. इन्दौर आगमन ---- 124
49. गिरफ्तारी ---- 126

50. जेल जीवन ---- 128
51. जेल से रिहाई ---- 132
52. भाई रामनिवास का देहावसान ---- 136
53. बहिन कौशल्या ---- 139
54. श्रीराधाबाबा का सतसंग ---- 141
55. पिताजी का क्षोभ ---- 143
56. श्रीजयदयालजी गोयन्दका से भेंट ---- 147
57. स्वामी 108 श्रीशंकर चैतन्य भारतीजी ---- 150
58. श्रीराधाबाबा से लम्बी बातचीत ---- 156
59. प्रथम अध्यापन कार्य ---- 160
60. श्रीकृष्णानन्दजी से आकस्मिक मिलन ---- 162
61. मेरठ कॉलेज, एम.ए. ---- 165
62. प्रभु की अयाचित कृपा ---- 168
63. छात्राओं के विश्वसनीय अग्रज ---- 170
64. श्रीराधाबाबा द्वारा सम्भाल ---- 172
65. Rainy day holiday ---- 175
66. प्रोफेसर श्रीरामप्रकाश अग्रवाल ---- 176
67. कवि विद्यापति ---- 177
68. सहपाठी श्रीसुरेश सेठ ---- 179
69. प्राध्यापकों का भरोसा ---- 180
70. श्रीसुशीला देवी ---- 181
71. श्रीसुधा गुप्ता ---- 183
72. श्रीरमेश गोयल ---- 189
73. एम.ए. परीक्षा फल और एल.टी. ---- 190
74. अग्रवाल इन्टर कॉलेज सिकन्द्राबाद ---- 192

75. सरदारशहर 194
76. श्रीबंकाजी के प्रिय छात्र श्रीशिवराज 197
77. कल्याण की प्राप्ति 198
78. अनोखी पाठन कला 199
79. अपरिग्रह की प्रबल भावना 200
80. गोपनीय उपासना 201
81. शरद पूर्णिमा खीर प्रसाद 202
82. आगवन का स्वत: आभास 203
83. नारी मात्र में श्रीराधाजी की भावना 203
84. शादी न कराने का रहस्योद्घाटन 204
85. एक अग्रगणी छात्र 205
86. स्वावलम्बन व स्वाभिमान 206
87. सहृदयता 207
88. पूज्या माँ का वात्सल्य 208
89. श्रीबंकाजी की पहली राधाष्टमी 213
90. पूज्य बाबूजी के श्रीचरणों में सर्वसमर्पण 217
91. दिव्य पुष्प 220
92. बाबूजी का सरदारशहर आगमन 224
93. राधा सहचरी भाव 226
94. फटकार और दुलार 229
95. ''मरु-ज्योति'' के सम्पादक 232
96. श्रेष्ठतम शिक्षक 232
97. श्रीशिवराजजी की गुरु वन्दना 233
98. दो शब्द—'मैं मुक्त' 235
99. टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज से त्यागपत्र 237

100. वात्सल्य वैभवा पूज्या माँ 239
101. केबिन की घण्टी 244
102. पूज्य बाबूजी द्वारा प्रदत्त श्रीशालिग्राम भगवान 245
103. श्रीगायत्री मंत्र दीक्षा 251
104. दैनिक साधना 252
105. श्रीसुरेशजी का आगमन 255
106. भगवती श्रीविष्णुप्रिया जन्मोत्सव 258
107. दिल्ली में गीताप्रेस की शाखा 269
108. प्रलोभन और बचाव 270
109. जीना तेरी गली में 276
110. बाबूजी के प्रवचनों की रिकॉर्डिंग 277
111. बाबूजी के परिवार के अभिन्न अंग 280
112. प्रणाम वल्लरी 288
113. सेठ श्रीहरगुलालजी बेरीवाला 293
114. श्रीपरमेश्वर प्रसादजी अग्रवाल 294
115. पिताजी का हृदय परिवर्तन 299
116. घर का दारिद्र्य दूर करना 304
117. श्रीकृष्ण जन्मभूमि, भागवत भवन का शिलान्यास 307
118. श्रीब्रह्मचारीजी का आमरण अनशन 310
119. पिताजी का देहान्त 315
120. माँ के साथ तीर्थ यात्रा 317
121. अग्निपुराण की भूमिका 320
122. लेखों का संग्रह 322
123. ब्याह के गीत 325
124. बाबूजी की विचित्र भावमय स्थिति 334

125. श्रीबंकाजी की जिज्ञासा, बाबूजी का समाधान 339
126. बाबूजी के दो पद 340
127. बिल्ली के बच्चे की क्रीड़ा 345
128. माथा खराबी 347
129. भावसमाधि का पूर्वाभास 348
130. बाबूजी का सामीप्य 350
131. बाबूजी का लीला प्रवेश 353
132. बाबूजी पर तीन पुस्तकें 354
133. देवर्षि नारद सम्वाद पर लेख 361
134. रास पूर्णिमा के दिन बाबा की विशेष विशेष कृपा 364
135. ऐसा कब होगा 368
136. ब्रज रज वटी 372
137. ब्रज यात्रा का विचार 376
138. पण्डितजी श्रीगयाप्रसादजी से मिलन 379
139. श्रीगिरिराजजी की परिक्रमा 382
140. पूज्य पण्डितजी का सतसंग 386
141. श्रीलक्ष्मीनारायण मन्दिर के तीन महत्त्वपूर्ण प्रसंग 389
142. पण्डितजी के दिव्य उपदेशों का सार 393
143. अनुष्ठान की पूर्णता 395
144. गीतावाटिका लौटना 397
145. गीतावाटिका में गिरिराज परिक्रमा 398
146. वाटिका के पत्र पुष्प 399
147. श्रीराधाबाबा के साथ एकान्तिक वार्तालाप-1 402
148. श्रीराधाबाबा के साथ एकान्तिक वार्तालाप-2 406
149. श्रीराधाबाबा के साथ एकान्तिक वार्तालाप-3 408

150. सन्त क्या चाहा करता है 412
151. ब्रज रस के पदों का संग्रह 412
152. लिखित सामग्री को श्रृंखलाबद्ध करना 416
153. लीलावली 419
154. भोजन स्वयं बनाओ 422
155. घर का बँटवारा 425
156. पडरौना में श्रीमद्भागवत कथा 426
157. कुमारी पूजन 430
158. श्रीराधाबाबा को सर्व पुण्यार्पण 433
159. श्रीबालकृष्णदासजी महाराज 437
160. श्रीशालिग्राम भगवान का दिव्यानुभव 443
161. वृन्दावन यात्रा के मधुर क्षण 448
162. केलि कुंज 451
163. बड़े भाई भाभी से क्षमा याचना 456
164. मन्दिर के लिये प्राप्त धन की सुरक्षा 458
165. श्रीरामजानकी मन्दिर का जीर्णोद्धार 461
166. श्रीराधाबाबा का लीला प्रवेश 464
167. नेह निकुंज में मूर्ति स्थापना 468
168. साधनामय जीवन 470
169. पूज्य मामाजी को पत्र 471
170. विनोद के क्षण 473
171. माँ का देहान्त 475
172. परम पूज्य पण्डित श्रीगयाप्रसादजी की जीवनी 478
173. प्रियतम सौरभ 482
174. कुछ अन्य पुस्तकें 489

175. कुल्हे की हड्डी का टूटना-------------------------494
176. मेरी सासूजी की सद्गति-------------------------497
177. परिवार वालों पर कृपा-------------------------503
178. श्रीबंकाजी की आध्यात्मिक स्थिति-------------------------506
179. श्रीहनुमानजी के दर्शन-------------------------509
180. परलोक गमन-------------------------510
181. अन्तिम निवेदन-------------------------512
182. श्रीराजेन्द्रदासजी महाराज के भावोद्गार-------------------------515
183. श्रीबंकाजी के द्वारा लिखित पुस्तकें-------------------------517

****

भूमिका

एक और जीवनी क्यों ?

बहुत से लोगों ने मुझसे पूछा कि जहाँ समाज के सामने बड़े-बड़े सन्तों-भक्तों का जीवन चरित्र आदर्श के रूप में उपलब्ध है वहाँ एक और जीवनी की क्या आवश्यकता है? इस जीवनी के द्वारा क्या प्रतिपादित करना चाहती हो? आदि आदि। सभी प्रश्नकर्ताओं से मेरा सविनय निवेदन है कि मेरे दृष्टिकोण को समझने का प्रयास करें।

श्रीराधेश्याम बंका का जन्म अति साधारण वैश्य कुल में हुआ। भगवद्कृपा से उनको अपने जीवन में परम पूज्य रस-सिद्ध-सन्त श्रीहनुमान-प्रसादजी पोद्दार और परम पूज्य सन्त श्रीराधाबाबा का अति निकट सान्निध्य प्राप्त हुआ। इन दोनों रसिक सन्त विभूतियों को कलयुग के सर्वश्रेष्ठ सन्तों में गिना जाये तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी, यह बात सभी जानते हैं। ऐसे दिव्य सन्तों की आज्ञा का पालन करने से, उनकी बताई पद्धति द्वारा साधन-भजन करने से मानव को जिस परम दुर्लभ पद की प्राप्ति हो सकती है उसके प्रत्यक्ष उदाहरण श्रीबंकाजी हैं।

श्रीबंकाजी ने आजीवन ब्राह्मचर्य का पालन करते हुए बाबूजी-बाबा के बताये सिद्धान्तों को अपने जीवन में पूर्णत: उतारा। गीतावाटिका में रहते हुए उन्होंने जीवन पर्यन्त बाबूजी-बाबा और उनके परिकरों का उज्जवल यश अपनी लेखनी से गाया और समाज के सामने उनकी दिव्य अखण्ड कीर्ति का अपनी पुस्तकों के माध्यम से विस्तार किया।

श्रीराधेश्याम बंका के बड़े भाई श्रीहनुमानप्रसाद बंका की मैं पौत्री हूँ। इस नाते से मैं श्रीबंकाजी को 'दादाजी' कह कर पुकारती हूँ। एक दिन मैं अपने पुत्रों के साथ श्रीबंकाजी के सामने बैठी हुई थी। श्रीबंकाजी की लिखित पुस्तक परिकरमालिका प्रकाशित हो चुकी थी। मेरे बड़े पुत्र देवर्षि भुवालका ने उनसे कहा—बड़े नानाजी! आपने परिकर मालिका पुस्तक में बाबूजी-बाबा के सभी परिकरों का यश बहुत

विस्तार से लिखा है पर अपने बारे में कुछ भी नहीं लिखा है। हमलोग आपके बारे में कैसे जानेंगे? आप अपनी जीवनी भी लिख दीजिये।

देवर्षि की सरल बातों को सुनकर श्रीबंकाजी मुस्कुराये और हँसते हुए कहा—देवर्षि! मेरी जीवनी लिखने का काम तेरी माँ का है।

श्रीबंकाजी की इस वाणी को सुनकर मैं तो आश्चर्यचकित रह गयी। एक सन्त की जीवनी लिखना आसान काम है क्या? फिर मैं तो उनके बारे में इतना जानती भी नहीं थी। मेरे चेहरे के भावों को पढ़कर श्रीबंकाजी मेरी तरफ देखकर मुस्कुराये और कहा- लाली! मेरे जाने के बाद जीवनी लिखना। तुझे मैंने अपने जीवन के बहुत प्रसंग सुनाये हैं, बस उन सबको श्रृंखलाबद्ध कर देना और बाकी मेरी सारी पुस्तकों को आदि से अन्त तक पढ़ जाना। बहुत सारे जीवन प्रसंग यत्र-तत्र लिखे हुए हैं। उन सबको अगर एक स्थान पर लिख लिया जाय तो जीवनी तैयार हो जायेगी।

श्रीबंकाजी की आज्ञा को मैंने स्वीकार किया। इसमे एक लाभ मुझे अवश्य हुआ कि उस दिन के बाद से मैं जब भी, जो भी उनसे पूछती, वे अपने बारे में बताते अन्यथा पहले तो श्रीबंकाजी अपने आत्म-संगोपन स्वाभाव के कारण स्वयं के बारे में कुछ भी नहीं बताते थे। वे जो भी कहते वह मैं अपने कमरे में आकर तुरन्त लिख लिया करती थी। मुझे पूरा भरोसा था कि वे मेरी अंगुली पकड़कर स्वयं ही लिखवा देंगे और हुआ भी ऐसा ही। जब-जब मैं अटक जाती उनसे ही प्रार्थना करती और वे ही कोई-ना-कोई स्फुरणा कर देते। जो भी लिखा गया है उन्हीं की कृपा से लिखा गया है। इस पुस्तक में जो भी अच्छाई है वह सब उनकी कृपा का ही फल है और जो भी कमियाँ हैं उनके लिये पाठकगणों से मेरी करबद्ध क्षमा प्रार्थना है।

बाबूजी-बाबा जैसा दिव्य सन्तों का चरणाश्रय प्राप्त करके, उनके आनुगत्य में चलकर, उनकी हर आज्ञा का पालन करके, जो महानतम रागानुगा भक्ति श्री-बंकाजी को प्राप्त हुई वही अन्य सभी को हो सकती है, यही बताने के लिये मैंने यह जीवनी लिखी है। सभी साधकों को, भक्तों को और हमारे बंका कुल को इस जीवनी को पढ़कर लाभ मिले, प्रभु से यही प्रार्थना है। इस जीवनी को लिखने में बहुत से लोगों ने मेरे सहायता की है, मैं उन सबको बारंबार प्रणाम करती हूँ।

बाबूजी-बाबा के श्रीचरणों में मेरा बारम्बार प्रणाम।

इस पुस्तक में जहाँ-जहाँ भी 'बाबूजी' शब्द का प्रयोग हुआ है उसे 'श्री-हनुमानप्रसाद पोद्दार' ही समझना चाहिये। 'बाबा' शब्द का प्रयोग 'श्रीराधा बाबा' के लिये हुआ है और 'महाराजजी' शब्द का प्रयोग वेणु विनोद कुञ्ज के 'श्रीबालकृष्ण दासजी' महाराज के लिये हुआ है।

सब विधि दीन मलिन हूँ, दुर्गुण दोष निधान।
रसना पावन हेतु कछु, करहु चरित गुणगान।।
सोउ अतिशय सहज नहीं, सन्त चरित गायन-कथन।
कृपा तिन्ही की होय यदि, शुद्ध होय तन-मन-वचन।।

विनीत,
श्वेता भुवालका

****

पूर्वज

भारत का राजपूताना शूरवीरों, सन्तों और सतियों की पुण्यभूमि रहा है। 1947 के पहले तक सारे भारत में पूर्णतः राजतन्त्र था। राजतन्त्र अर्थात भूमिखण्ड पर किसी राजा या बादशाह का शासन होना। वंशानुवंश परम्परा के अनुसार महाराजा का वंशज सन्तान ही राजसिंहासन पर विराजित होता था। आजकल जिसे राजस्थान कहा जाता है वह पहले राजपूताना कहलाता था। राजपूताना में अनेक प्रमुख रजवाड़े थे जैसे जयपुर, जोधपुर, उदयपुर, बीकानेर आदि। राजपूताना के महाराजाओं के नीचे जो छोटे-छोटे राज्य हुआ करते थे, वहाँ के राजाजी को मारवाड़ी भाषा में 'ठाकराँ' कहा जाता था, अर्थात आजकल की प्रचलित भाषा के अनुसार ठाकुर साहब का राज्य था।

पहले मारवाड़ी लोग राजपूताना को प्रचलित भाषा में 'देस' कहा करते थे। राजपूताना में चारों ओर बंजर रेगिस्तान था। ऊँचे-ऊँचे बालू के रेतीले धोरे थे। वहाँ जीविका उपार्जन के लिए सहज साधन उपलब्ध नहीं थे। उस समय राजपुताने के युवकों में यह विचारधारा उभरने लगी थी कि देस की परिधि से बाहर जाकर ही धनोपार्जन करना चाहिये। जिनके दिलों में हौंसला था, दिमाग में सूझ-बूझ थी, हृदय में जोखिम उठाने का साहस था, अपनी कर्मण्यता पर भरोसा था तथा कुछ कर दिखलाने की उमंग नस-नस में थी, ऐसे अनेक मारवाड़ी नवयुवक देस की परिधि को छोड़कर अकेले अथवा परिवार सहित, भारत के अन्य भागों में आकर बस गये और फिर वंश विस्तार होता चला गया।

जिन वाटिका निधि श्रीराधेश्यामजी बंका की जीवन गाथा को मैं प्रस्तुत करने का प्रयास कर रही हूँ उनके पूर्वज राजपूताना में अलसीसर ग्राम, जिला झुंझुनू के निवासी थे। श्रीबंकाजी के पड़दादाजी पूज्य श्रीरामदयालजी बंका सम्भवतः 1849-1850 के आस-पास अलसीसर से पडरौना, उत्तर-प्रदेश चले आये थे। केवल परदादाजी ही नहीं अपितु बंका-वंश के अन्य लोग एवं तुलस्यान, बगड़िया आदि अनेक मारवाड़ी वंश भी साथ आये थे और अपनी

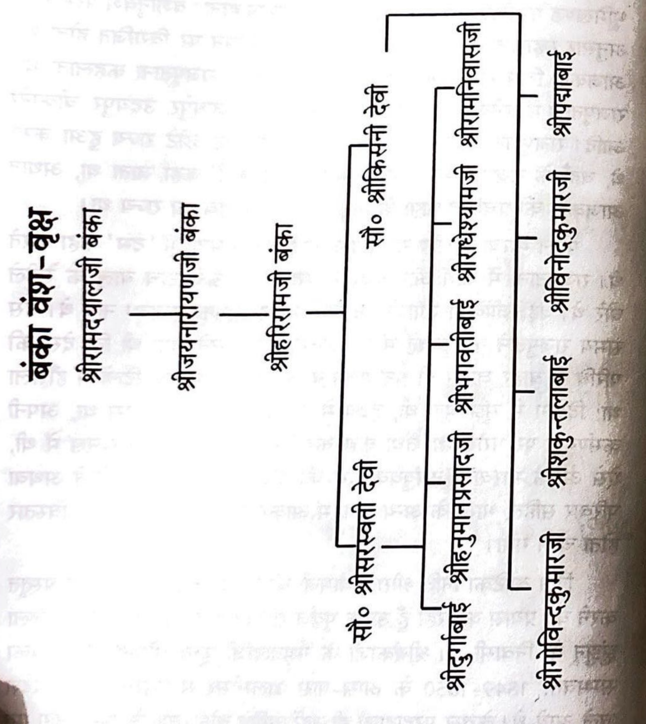

श्रीबंकाजी के आराध्य श्रीप्रिया-प्रियतम युगल सरकार

पसन्दानुसार उत्तर-प्रदेश के पडरौना, रामकोला, लक्ष्मीगंज, कप्तानगंज, छितौनी, सिसवाँ आदि स्थानों में आकर बस गये थे।

श्रीबंकाजी के परिवार का गोत्र सिंहल है। यह वस्तुतः 'शाण्डिल्य' शब्द का परवर्ती रूप है। 'शाण्डिल्य' शब्द परम पूज्य महर्षि शाण्डिल्य का द्योतक है। इन्हीं महर्षि शाण्डिल्य को श्रीनन्द बाबा के पुरोहित होने का गौरव प्राप्त है। कालान्तर से शब्दों में अपभ्रंश होता ही है। अब 'शाण्डिल्य' शब्द परिवर्तित होकर 'सिंहल' कैसे हो गया उसकी प्रक्रिया इस प्रकार है। 'शाण्डिल्य' शब्द के तीन भाग कर लें, 'शा', 'ण्डि', और 'ल्य'। 'शा' घिसकर 'सा' हो गया। 'ण्डि' की 'इ' मात्रा अर्थात छोटी 'इ' मात्रा का चिह्न 'सा' पर चढ़ गया और 'सा' का 'सि' हो गया। 'ण्डि' का जो 'ण्' था, वह विलित हो गया और यह 'ण्' बिन्दु के रूप में 'सि' पर चढ़ गया और 'सिं' हो गया। 'ड' के अन्तिमांश ने घिसकर 'ह' का रूप ले लिया और 'ल्य' 'ल' के रूप में रह गया। इस प्रकार 'शाण्डिल्य' शब्द कालक्रम में विकृत होकर 'सिंहल' हो गया और शाण्डिल्य गोत्र 'सिंहल गोत्र' कहलाने लगा।

जब श्रीबंकाजी के पड़दादाजी पूज्य श्रीरामदयालजी बंका पडरौना आये तब सभी स्थानीय भोजपुरी लोगों के मन में यह उत्सुकता जगी और उन्होंने पूछा कि—आप हैं तो अग्रवाल जाति के परन्तु आप बंका कैसे कहलाये जाने लगे?

पूज्य पड़दादाजी ने उनको संक्षिप्त उत्तर दिया—मैं राजपूताना का रहने वाला हूँ। वहाँ क्षत्रिय ठाकरों का राज्य है। ठाकरों के मध्य प्रायः युद्ध हुआ करता था जिससे कि उनके द्वारा प्रशासित भूमि का विस्तार हो। कई सौ वर्ष पहले मेरे पूर्वजों ने युद्ध में अति शौर्ययुक्त वीरता का कार्य किया था। उनकी वीरता पर मुग्ध होकर तत्कालीन ठाकराँजी कहने लगे कि अमुक व्यक्ति ने 'बाँका' कार्य किया है। ठाकराँजी ने प्रसन्न होकर सराहना में जिस शब्द का प्रयोग कर लिया, वही शब्द उनके नाम के साथ संसिक्त हो गया। मेरे पूर्वज को तत्कालीन मारवाड़ी समाज 'बाँका' कहकर पुकारने लगा। उसी बाँका शब्द का परवर्ती रूप बंका है।

पडरौना आकर पड़दादाजी पूज्य श्रीरामदयालजी बंका ने कपड़े का थोक और फुटकर क्रय-विक्रय का कार्य आरम्भ किया। वे घोड़े पर कपड़ों के थान लादकर गाँव-गाँव में घूमकर बेचा करते थे। धीरे-धीरे अपनी कर्मठता, सूझ-बूझ, दूरदर्शिता, कार्यकौशल एवं 'बनिया बुद्धि' के द्वारा विपुल धनोपार्जन कर लिया। फिर पडरौना में काफी जमीन खरीद ली। खरीदी हुई जमीन पर रहने के लिये सुन्दर और सुदृढ़ भवन बनवाया जिसकी दीवारें अठारह इंच चौड़ी थी। घर के पीछे एक छोटी गौशाला भी बनवायी। गौ सेवा में उनका बहुत उत्साह था। आज भी बंका परिवार पडरौना में इसी भवन में निवास करता है।

कुछ समय उपरान्त बाजार में कपड़ों के बढ़ते व्यापार के लिए एक दुकान खरीद ली तथा कुछ दूरी पर एक बगीचा भी खरीद लिया। इस बगीचे में आम, लीची, अमरूद, फालसा, बेल, आँवला, जामुन, केला, लोकाट आदि के वृक्ष लगवाये। बगीचे में कई रखवाले नियुक्त किये जो वहाँ ऋतु अनुरूप शाक-भाजी भी उगाते थे। बाद में घर की गौशाला में जब गायों की संख्या अधिक बढ़ गयी तब उन्हें घर के पिछवाड़े से बगीचे में स्थानान्त्रित कर दिया गया। पड़दादाजी प्रतिदिन ताजी फल-सब्जी तथा दूध बगीचे से मँगवाया करते थे।

पूज्य पड़दादाजी प्रभु श्रीसीता-रामजी के उपासक थे और श्रीसीता-रामजी के परम भक्त श्रीहनुमानजी महाराज को अपना कुलदेवता मानते थे। राजस्थान के सालासर धाम के श्रीहनुमानजी महाराज के प्रति उनकी बड़ी श्रद्धा थी। घर में बालक का जन्म होने पर उसका मुण्डन संस्कार सालासर जाकर ही किया करते थे। पड़दादाजी ने अपने भवन के निकट ही श्रीरामजानकीजी का एक मन्दिर भी बनवाया।

सपरिवार पड़दादाजी सुख से पडरौना में रहने लगे और व्यापार के साथ-साथ साधन भजन भी करते रहे। परिवार में वैष्णव संस्कार थे, श्रीहनुमान चालीसा व श्रीरामचरितमानस का पाठ, तुलसी पूजन, सूर्य भगवान को अर्घ्य और गौमाता-अतिथि-साधु-सन्तोंकी सेवा होती थी। **सब बिधि सब पुर लोग सुखारी ॥**

****

श्रीरामजानकी मन्दिर

पूज्य पड़दादाजी श्रीरामदयालजी बंका ने अपने भवन के निकट ही अपने आराध्य देव श्रीरामचन्द्रजी तथा कुलदेवता श्रीहनुमानजी महाराज का मन्दिर बनवाया। इस मन्दिर का नाम श्रीरामजानकी मन्दिर रखा गया। इस श्रीरामजानकी मन्दिर के निर्माण के पीछे एक विशेष वृत्त है।

प्रसंग उस समय का है जब पड़दादाजी के एकमात्र पुत्र श्रीजयनारायणजी को किशोरावस्था में कुष्ठ रोग हो गया था। उस जमाने में कुष्ठ रोग का कोई इलाज नहीं था। आज तो चिकित्सा विज्ञान ने बहुत उन्नति कर ली है परन्तु पडरौना जैसे छोटे शहर में उस वक्त कुष्ठ रोग को अस्पृश्य रोग माना जाता था। अफवाहों तथा बदनामी के डर से लोग अपने रोग को बहुत छिपा कर रखते थे। पडरौना में न रेलगाड़ी थी और न ही कोई अन्य साधन उपलब्ध थे। घरेलू उपचार और देसी दवाएँ चलती रहीं पर कोई लाभ नहीं हुआ।

परिवार में सबका मन बड़ा उदास हो गया कि अगर यह रोग बढ़ गया तो बालक के हाथ और पैरों की अंगुलियाँ कालान्तर में गल जायेगी। अपने एकमात्र पुत्र का कष्ट पड़दादीजी से देखा न गया। हारे को हरिनाम का ही सहारा होता है। पड़दादीजी की कुलदेवता श्रीहनुमानजी महाराज के प्रति बड़ी श्रद्धा थी। उन्होंने श्रीहनुमानजी महाराज से मनौती माँगी कि जयनारायण का रोग ठीक हो जाये और उसका विवाह हो जाये तो जोड़े से कड़ाही चढ़ाऊँगी। **दुर्गम काज जगत के जेते, सुगम अनुग्रह तुम्हरे तेते ॥**

श्रीहनुमानजी महाराज की बड़ी कृपा हुई। श्रीजयनारायणजी का कुष्ठ रोग ठीक हो गया। कुछ समय बाद उनका विवाह भी हो गया, पर पड़दादीजी को मनौती की विस्मृति हो गई। हर्ष और आनन्द में फूली पड़दादीजी सर्वथा भूल गयी कि उन्हें श्रीहनुमानजी महाराज को कड़ाही भरकर हलवा का प्रसाद

अर्पण करना है और अपनी मनोकामना को पूर्ण करने के लिए कृतज्ञता सहित प्रणाम करना है।

कुछ काल प्रसन्नता से व्यतीत हो गया। विधि का विधान, श्रीजयनारायणजी को पुनः कुष्ठ रोग हो गया। इस बार चिकित्सा के उपरान्त भी रोग ठीक नहीं हो रहा था। उन दिनों श्रीसीतारामजी के एक भक्त जटाधारी साधु थे, जो प्रतिदिन ब्राह्म मुहूर्त में उच्च स्वर से हरिनाम गान करते हुये पडरौना में नगर कीर्तन किया करते थे। वे साधुजी सदा श्रीरामदयालजी के घर पर भिक्षा करने आया करते थे।

एक दिन दोपहर में ज्यों ही वे जटाधारी साधुजी श्रीरामदयालजी के घर आये, आँगन में खड़े होते ही उछल-उछल करके हुँकार भरने लगे। उनमें विचित्र भावावेश के लक्षण स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होने लग गये। पड़दादाजी और पड़दादीजी कुछ भयभीत होकर हाथ जोड़े पूछने लगे—आप कौन हैं और कैसे पधारने की कृपा की? अपना परिचय प्रदान करें।

हुँकार भरते हुये वे साधुजी कहने लगे—मैं श्रीसीतारामजी का सेवक हनुमान हूँ। तुमने जोड़े से कड़ाही चढ़ाने के लिए कहा था सो अभी तक नहीं चढ़ाई है। तुम्हारी मनौती तो कब की पूर्ण हो गयी है।

पड़दादीजी ने सविनय कहा—हमसे बहुत बड़ी भूल हो गयी। विस्मृति हो गई। आप हमारी भूल को क्षमा करें। अब मैं शीघ्र ही जोड़े से कड़ाही चढ़ा दूँगी।

फिर साधुजी ने कहा—मेरा एक मन्दिर बनवा दो।

तब पड़दादाजी ने कहा—आपकी आज्ञा हमारे सिर माथे है। मन्दिर तो बन जायेगा परन्तु मूर्ति कहाँ से लाऊँगा? मूर्ति तो जयपुर में मिलती है। पडरौना में न रेलगाड़ी है और न ही कोई अन्य साधन उपलब्ध हैं। मूर्ति कैसे आयेगी?

इस पर साधुजी ने कहा —तुम मन्दिर बनवा दो। मूर्ति अपने आप आ जायेगी।

यह सुनकर पड़दादाजी परम आनन्दित हुये। उन्होंने तत्काल मन्दिर निर्माण का निश्चय कर लिया और मन्दिर निर्माण कार्य हेतु पर्याप्त धनराशि भी अलग निकाल कर रख दी।

इसके बाद श्रीसाधुजी का हनुमद्‌वेश शान्त हो गया। उनकी भिक्षा झोली का सारा आटा उछलने-कूदने के कारण बिखर गया था। वह सारा आटा गौमाता को दे दिया गया और उससे भी अधिक आटा देकर श्रीसाधुजी को विदाई दी गयी। शीघ्र ही पड़दादीजी ने जोड़े से कड़ाही चढ़ा दी और प्रभुकृपा से श्रीजयनारायणजी का रोग क्रमशः ठीक हो गया। ये बंका वंश पर श्रीहनुमानजी की कृपा का प्रत्यक्ष उदाहरण है।

कुछ दिनों के बाद ही पड़दादाजी ने देखा कि जयपुर से एक मूर्तिकार मूर्तियाँ बेचने के लिये आया है। वह अनेक मूर्तियाँ बैल गाड़ी पर लादकर लाया है और घर के पीछे, पाकड़ के विशाल पेड़ के नीचे पड़ाव डालकर बैठा है। पड़दादाजी तुरन्त उत्सुकतावशात् उसके पास पहुँच गये और संकटमोचन श्रीहनुमानजी महाराज के श्रीविग्रह का दर्शन करते ही उनका चित्त प्रसन्नता और आह्लाद से विभोर हो गया। उन्हें अतिशय आश्चर्य हो रहा था कि आज से पहले इस क्षेत्र में कभी भी संगमरमर की मूर्तियों को बेचते किसी को नहीं देखा गया। यह मूर्तिकार बैल गाड़ी पर कितनी दूर से आया है और संयोग कैसा सुन्दर है कि उसके पास श्रीरामजी, श्रीसीताजी श्रीहनुमानजी और श्रीशिव परिवार की मनोहर मूर्तियाँ हैं।

सभी मूर्तियों की बनावट अतिशय सुन्दर थी। श्रीरामजी के काले पत्थर की मूरत साक्षात शालिग्राम से प्रकट ही लगती थी। श्रीसीताजी का श्रीमुख विशुद्ध भोलेपन से युक्त था और संकटमोचन श्रीहनुमानजी के बड़े-बड़े नेत्रों में विचित्र आकर्षण था। पड़दादाजी ने अकस्मात, सहज रीति से अपने संकल्प को पूर्ण होता देख इसे ठाकुरजी की अनन्त कृपा का सुन्दर परिणाम माना और बारम्बार हृदयस्त ठाकुर को प्रणाम करने लगे। उन्होंने अविलम्ब मूर्तिकार से सारे श्रीविग्रह खरीद लिये। मन्दिर निर्माण का कार्य आरम्भ हो गया।

मूर्तियों के अनुरूप ही मन्दिर का निर्माण हुआ जिसमें तीन पृथक छोटे कक्ष में शिव परिवार, श्रीसीतारामजी और श्रीहनुमानजी के श्रीविग्रह सिंहासन पर विधिपूर्वक प्रतिष्ठित किये गये। सामने विस्तृत हॉल बनाया गया जिसमें अनेक भक्त एक साथ बैठकर कीर्तन भजन कर सकें। प्रवेश द्वार के पास दोनों ओर फूलों की बगिया लगाई गयी। **सोभा बहुत थोरि मति मोरी॥** जो संकल्प पड़दादाजी ने किया था वह बहुत ही सुन्दर रीति से श्रीहनुमानजी महाराज की कृपा से पूर्ण हुआ।

कुलदेवता श्रीहनुमानजी महाराज के आदेशानुसार पूज्य पड़दादाजी श्रीरामदयालजी बंका द्वारा स्थापित यह पडरौना का अति प्राचीन, अठारहवीं सदी का मन्दिर है। श्रीहनुमानजी महाराज के पूजन-अर्चन-वन्दन से यहाँ असंख्य लोगों के अनन्त कार्य सिद्ध हुये हैं। इस मन्दिर का पंजीकरण भारतीय सरकार द्वारा **श्रीरामजानकी मन्दिर** के नाम से हो चुका है।

कालान्तर में रघई नामक एक विरक्त साधु इस मन्दिर में रहते थे और पूजा-अर्चना करते थे। संध्या आरती के वक्त वे घर के समस्त बालक-बालिकाओं को बुला लेते थे और बड़े प्रेम से आरती करते थे। घर के छोटे-छोटे बालक प्रसाद और मिठाई के लोभ से प्रसन्नतापूर्वक रघई बाबा के आगे-पीछे डोलते रहते थे। करीब आठ-दस युवक विद्यार्थी भी मन्दिर में रहा करते थे जिन्हें संस्कृत की शिक्षा दी जाती थी। उन सबके शिक्षा, भोजन और वस्त्र की व्यवस्था बंका परिवार ही करता था।

आज भी बंका परिवार के वंशज यहाँ प्रतिदिन सेवा-पूजा करते हैं और उत्सवों पर नवीन वस्त्र, भोग, आरती, अन्नकूट, साँझी आदि की सारी व्यवस्था सप्रेम सम्भालते हैं। प्रत्येक उत्सव-महोत्सव पर श्रीठाकुरजी का विशेष शृंगार बहुत श्रद्धापूर्वक किया जाता है। श्रीरामचरितमानस का पाठ और कीर्तन आदि का आयोजन सतत् होता रहता है।

****

श्रीहनुमानजी की कृपा

पूज्य पड़दादाजी श्रीरामदयालजी बंका ने श्रीरामजानकी मन्दिर बनवाया था, उसकी कुछ प्राचीन घटनायें उल्लेखनीय हैं। एक दिन पूर्वाह्न के समय एक बहुत बड़ा काले मुँह का लंगूर आया। उसकी काया की विशालता

को देखकर पारिवारिक जनों को बहुत विस्मय हुआ। वह लंगूर मन्दिर में श्रीहनुमानजी महाराज के श्रीविग्रह के समक्ष बैठ गया।

उसको देखकर लोगों के मन में भय का संचार हुआ और उसको भगाने का प्रयत्न किया जाने लगा। होनेवाले प्रयत्न का उस लंगूर पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। वह पर्याप्त समय तक मौन बैठा रहा। उस लंगूर ने किसी पर भी हमला नहीं किया। पारिवारिक जन भी अपने प्रयास से विरत हो गये और यह सोच लिया कि यह लंगूर अपने आप थोड़ी देर बाद चला जायेगा।

अब आश्चर्य की बात यह है कि उस लंगूर ने श्रीहनुमानजी महाराज के मन्दिर में, श्रीविग्रह के सामने ही अपने प्राणों का परित्याग कर दिया। पड़दादाजी ने यही मान लिया कि यह कुलाराध्य श्रीहनुमानजी महाराज का कोई विशेष जन रहा होगा जिसने उनका दर्शन करते हुए अपने शरीर को त्यागा है। फिर पड़दादाजी ने लंगूर के शव का अन्तिम संस्कार किया।

****

पूज्य पड़दादाजी श्रीरामदयालजी बंका को अपने व्यापार में इतनी सफलता मिली, उसमें श्रीहनुमानजी महाराज की कृपा का विशेष महत्त्व है। पूज्या पड़दादीजी की भी श्रीहनुमानजी महाराज में बड़ी आस्था थी।

पड़दादाजी मुख्यत: कपड़े का थोक व्यापार करते थे। उन दिनों रेलगाड़ी नहीं थी। कपड़ों के थान के गट्ठर घुड़िया लोग अपने घोड़े की पीठ पर लादकर एक ग्राम से दूसरे ग्राम ले जाया करते थे। घुड़िया लोगों पर विश्वास किया जाता था। वे लोग थान के गट्ठर ले जाते थे और व्यापारी से उसका मूल्य भी ले आते थे। तब नोट का प्रचलन नहीं था। न प्रेस थी, न नोट छपते थे। सारा लेन-देन चाँदी के रुपयों के मार्फत होता था जिसे आजकल लोग 'चाँदी का सिक्का' कहते हैं।

एक बार एक घुड़िया के मन में पाप आ गया और श्रीहनुमानजी की कृपा से पड़दादाजी के मन में ऐसी स्फुरणा हुई की यह घुड़िया व्यापारी से कपड़ों का मूल्य तो लाया है परन्तु झूठ बोल रहा है कि व्यापारी ने

आज भुगतान नहीं किया है। रकम बहुत बड़ी थी। पड़दादाजी ने कुलाराध्य श्रीहनुमानजी महाराज को याद किया और मन-ही-मन प्रार्थना की—यदि मेरे मन में उठने वाली बात सत्य है, तो आप कृपा करके मेरे कपड़ों का पूरा मूल्य अभी दिलवा दीजिये।

घुड़िया लोग जब थान का गट्ठर ले जाते थे, तो वह गट्ठर एक बहुत बड़े मजबूत थैले में रखा जाता था। यह थैला पटसन की सूत से बना होता था। इस थैले को घोड़े की पीठ पर लाद दिया जाता था और थान के गट्ठर घोड़े की पीठ पर दोनों ओर लटकते रहते थे। जब पड़दादाजी ने मन-ही-मन प्रार्थना की थी तब घुड़िया का घोड़ा वहीं खड़ा था। उसी समय एक गाय आयी और उसका सींग थैले के खोल से टकराया। टकराने से उस थैले के खोल में छेद हो गया और उसमें रखे सिक्कों की राशि खन-खन करती सड़क पर गिर पड़ी।

पड़दादाजी ने घुड़िया को डॉटा नहीं, केवल इतना पूछा—ये व्यापारी के भुगतान के रुपये हैं न?

घुड़िया कुछ शर्मिन्दा हुआ। उसकी नज़र झुक गई और व्यापारी से लाया हुआ सारा मूल्य देकर वह तुरन्त चला गया। इस घटना के बाद से पड़दादाजी की श्रीहनुमानजी महाराज के प्रति आस्था और भी सुदृढ़ हो गई। इसी प्रकार से परिवार के अनेकानेक लोगों की मनोकामनायें श्रीहनुमानजी की कृपा से यथासमय पूर्ण होती आई हैं।

****

बंका वंश

गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी महाराज ने श्रीरामचरितमानस के उत्तरकाण्ड शिव-पार्वती सम्वाद में लिखा है कि श्रीशिवजी माँ पार्वती से कहते हैं—हे उमा! सुनो। वह कुल धन्य है, संसार भर के लिये पूज्य है और परम पवित्र है, जिसमें श्रीरघुवीर परायण (अनन्य राम भक्त) विनम्र पुरुष उत्पन्न होता है।

सो कुल धन्य उमा सुनु जगत पूज्य सुपुनीत।
श्रीरघुबीर परायन जेहिं नर उपज बिनीत॥

हमारे चरित्रनायक श्रीराधेश्यामजी बंका का आविर्भाव पडरौना के वैश्य अग्रवाल कुल में हुआ। सन्त-जीवन की महान गरिमा की अभिव्यक्ति के लिये परिवार का संतोचित वातावरण आवश्यक पृष्ठभूमि का कार्य करता है। उनके पूज्य पड़दादाजी श्रीरामदयालजी बंका की गणना पडरौना के इने-गिने व्यापारियों में होती थी। वे बड़े ही धर्मप्राण व्यक्ति थे। उनके दो सन्तान हुई। प्रथम पुत्र श्रीजयनारायणजी और द्वितीय पुत्री सौ.श्रीशिवकुँवरी बाई। पूज्य श्रीजयनारायणजी बंका के तीन सन्तान हुई। प्रथम पुत्र श्रीहरिरामजी बंका, द्वितीय पुत्री सौ.श्रीमहाबीरी बाई, तृतीय पुत्री सौ.श्रीरमती बाई। द्वितीय पुत्री श्रीमहाबीरी बाई का विवाह पडरौना निवासी श्रीहरीरामजी खेतान से हुआ। तृतीय पुत्री श्रीरमती बाई का विवाह जमालपुर निवासी श्रीसाँवलरामजी खेतान से हुआ।

श्रीहरिरामजी बंका का प्रथम विवाह श्रीभोलीरामजी सरावगी की सुपुत्री पुण्यमयी सौभाग्यशालिनी पूज्या सौ.श्रीसरस्वती देवी से हुआ। हमारे चरित्र नायक श्रीराधेश्यामजी बंका के माता-पिता बनने का गौरव इन्हें ही प्राप्त हुआ। इनकी गोद में भगवान ने पाँच सन्तानें दी। प्रथम पुत्री सौ.श्रीदुर्गा बाई, द्वितीय पुत्र श्रीहनुमानप्रसादजी, तृतीय पुत्री सौ.श्रीभगवती बाई, चतुर्थ पुत्र हमारे चरित्रनायक श्रीराधेश्यामजी और पंचम पुत्र श्रीरामनिवासजी।

पूज्या श्रीसरस्वती देवी के देहान्त के उपरान्त श्रीहरिरामजी ने दूसरा विवाह श्रीगणेशदासजी चूड़ीवाला की सुपुत्री सौ.श्रीकिसनी देवी से किया, जिससे कुल पाँच सन्तानें हुई। एक सन्तान जीवित नहीं रह पाई। अन्य चारों के नाम इस प्रकार हैं—प्रथम पुत्र श्रीगोविन्दकुमारजी, द्वितीय पुत्री सौ.श्रीशकुन्तला बाई, तृतीय पुत्र श्रीविनोदकुमारजी और चतुर्थ पुत्री सौ. श्रीपद्मा बाई।

****

जन्म

हमारे चरित्रनायक, वाटिका निधि श्रीराधेश्यामजी बंका का जन्म

श्रीहरिरामजी बंका की प्रथम पत्नी पुण्यमयी सौभाग्यशालिनी पूज्या श्रीसरस्वती देवी की कोख से विक्रमी संवत् 1983 को पौष मास की कृष्ण एकादशी (सफला एकादशी), शुक्रवार (सन् 31 दिसम्बर, 1926) को पडरौना, उत्तर-प्रदेश में हुआ। इनके बड़े भाई श्रीहनुमानप्रसादजी से ये आयु में 14 वर्ष छोटे थे। जब 14 वर्ष बाद घर में पुत्र का जन्म हुआ तो परिवार में सबको बहुत हर्ष हुआ और बधाइयाँ बँटने लगी। इनके दादाजी श्रीजयनारायणजी बंका एवं दादीजी द्वितीय पौत्र रत्न को पाकर अति आनन्दित हुए।

बालक के जन्म के बाद तत्कालीन मारवाड़ी समाज में खुशियाँ मनाने का एक विशेष तरीका था। रात्रि के समय घर के आंगन में सुन्दर दरी बिछा दी जाती थी। मोहल्ले और परिवार के प्रियजन, ताउ, चाचा, भाई, भतीजे, मित्र सभी इकट्ठे होते थे। ये लोग इकट्ठे होकर ताश, चौपड़ आदि खेला करते थे। इस मनोरंजन में प्रतिदिन रात के समय 2-3 घण्टों का बीत जाना साधारण सी बात थी।

जब श्रीबंकाजी का जन्म हुआ, तब जमाना सस्ती का था। एक किलो घी की कीमत मात्र एक रुपया थी। उस समय का जीवन बहुत सरल और शान्त था। सबके संयुक्त परिवार थे जिनमें कई बेटे, बहुएँ, पौत्र और उनकी पत्नियाँ मिलकर रहा करते थे। पड़ौसी भी परिवार के सदृश ही प्रिय थे और दु:ख-सुख में साथ निभाया करते थे। तब जीवन में व्यस्तता थी ही नहीं। अत: दिन में दुकान का कार्य पूर्ण करने के बाद, रात्रि में 2-3 घण्टा मनोरंजन के लिये निकालना सहज बात थी। ऐसे सुअवसरों की तो सब प्रतीक्षा किया करते थे।

जिस भी स्वजन के यहाँ पुत्र का जन्म हुआ हो, उसके उल्लास में भाग लेने के लिये तथा बधाई देने के लिये यह ताश-चैपड़ आदि का कार्यक्रम हुआ ही करता था, जो बालक के जन्म के उपरान्त, लगभग एक-दो महीनों तक प्रतिदिन चलता था। सम्भ्रान्त कुल हो, सुसम्पन्न घर हो तो खातिरदारी में कमी क्यों हो भला? गृहस्थ आगंतुकों के सम्मान में जलपान की पूर्ण

व्यवस्था रखते थे जिसमें गरम दूध, विभिन्न प्रकार की मिठाई और कलेवा आदि हुआ करता था। यह सब कुछ श्रीबंकाजी के जन्म के अवसर पर भी हुआ और कई महीनों तक चला।

****

जन्मपत्री एवं फलादेश

नाम—श्रीराधेश्याम बंका

दादा का नाम—श्रीजयनारायण बंका

पिता का नाम—श्रीहरिराम बंका

माता का नाम—श्रीसरस्वती देवी बंका

लिंग—पुरुष

जन्म स्थान—पडरौना, उत्तर-प्रदेश

जन्म तिथि—31/12/1926

विक्रमी संवत्—पौष मास, कृष्ण एकादशी, सफला एकादशी 1983

दिन—शुक्रवार

जाति—वैश्य

गोत्र—सिंहल

राशि—तुला

1—आयु एवं स्वास्थ्य विचार—

गुरु के तृतीयेश एवं षश्ठेश होकर पंचम भाव में होना आपको दीर्घायु बनाता है। सामान्यत: शरीर स्वस्थ रहेगा। पेट, चर्म, पेशाब सम्बन्धी रोगों से आप आक्रान्त रह सकते हैं।

2—विद्या एवं सद्गुण विचार—

कुण्डली के अनुसार आप कुशाग्र बुद्धिवाले, प्रभावशाली व्यक्तित्व के स्वामी, दयालु, सत्यप्रिय, आदर्शवादी, कर्तव्यपरायण, परोपकारी, परिश्रमी,

साहसी, दृढ़ विचार वाले, महत्वाकांक्षी, शालीन, पराक्रमी, गम्भीर, उच्चकोटि के विद्वान और बुद्धिचातुर्य में प्रवीण होंगे।

आप कविता-कला-संगीत प्रेमी और समयानुसार शब्द सृजन करने में निपुण होंगे। विद्यार्जन में प्रारम्भिक कठिनाइयों के उपरान्त अपार सफलता का योग है।

3—पिता एवं परिवार के साथ सम्बन्ध—

तीसरे घर में सूर्य सूचित करता है कि आप पिता के विशेष भक्त होंगे परन्तु पिता के साथ बहुत गलतफहमियाँ भी होगी। यद्यपि आप रिश्तेदारों की सहायता करेंगे पर वे आपको बहिष्कृत कर देंगे। आप स्वयं को परिवार से दूरस्थ महसूस करेंगे। परिवार से सदैव अलगाव रहेगा और जन्म-स्थान से आप दूर रहेंगे। शुक्र के लग्नेश और अष्टमेश होकर तृतीय भाव में होने के कारण आपका भाई-बहनों से विरोध रहेगा। पारिवारिकजनों के विरोध के बावजूद आप उनकी सहायता करेंगे। विवाह का योग दुर्बल है। सन्तान से आपको दु:ख प्राप्त होगा।

4—आर्थिक स्थिति—

तृतीय का शुक्र आपदाएँ-परेशानियाँ और गरीबी देता है। प्रारम्भिक जीवन में आर्थिक कठिनाइयों का अधिक सामना करना होगा। पैतृक धन की प्रबल हानि होगी।

5—धर्म भाव विचार—

विशाखा नक्षत्र में जन्म होने के कारण आपका सनातन धर्मावलम्बी, धार्मिक, पवित्र और अमितापूर्ण रवैया रहेगा। आपको धार्मिक स्थानों की यात्रा का विशेष शौक रहेगा।

6—कीर्ति विचार—

गुरु 'बृहस्पति' सूचक है पुण्यवान् कृत्यों का तथा मान-सम्मान का। आप अपनी शिक्षा और विद्वता के कारण प्रख्यात होंगे। अपने प्रयत्न और अध्यवसाय से भाग्योन्नति का योग है। राजनीति में सर्वोत्कृष्ट सफलता की

सम्भावना है। एक बौद्धिक व्यक्ति के रूप में आप उच्च प्रसिद्धि प्राप्त करेंगे।

7—रूचक महापुरुष योग—

मंगल स्वगृही मेष राशि में स्थित है अत: 'रूचक महापुरुष योग' का निर्माण सप्तम भाव में हुआ है। 'रूचक महापुरुष योग' का अर्थ यह समझना चाहिए कि जिस व्यक्ति की कुण्डली में इस अतिदुर्लभ योग का सृजन होता है वह अपने क्षेत्र में परम ऐश्वर्यशाली उन्नति को प्राप्त करता है।

उदाहरण के लिए अगर यह योग किसी गायक के राशिफल में बनता है तो वह कोई साधारण गायक नहीं होगा अपितु उसकी उत्कृष्ट ख्याति विश्व भर में व्याप्त होगी। ठीक इसी प्रकार यहाँ श्रीबंकाजी के प्रकरण में 'रूचक महापुरुष योग' का अर्थ यह समझना चाहिये कि ये पूज्य श्रीराधाबाबा द्वारा प्रदत्त, श्रीनारद भक्तिसूत्र में वर्णित परम रस-रूपा, प्रेम-लक्षणा, रागानुगा भक्ति की उच्चतम स्थिति को प्राप्त करेंगे।

****

यहाँ बहुत आगे की एक बात का उल्लेख कर देना प्रसंगोचित लग रहा है। एक बार सन् 2014 में मेरा गोरखपुर जाना हुआ था और एकान्त वार्तालाप के मध्य मैंने श्रीबंकाजी से पूछा था—दादाजी! क्या आप अपने जीवन से प्रसन्न हैं? क्या आप पूर्णत: संतुष्ट हैं?

मेरे प्रश्न को सुनते ही उन्होंने अविलम्ब उत्तर दिया—मेरी लाली! मैं आवश्यकता से अधिक संतुष्ट हूँ।

मेरे मुख पर शायद उन्हें कुछ प्रश्नवाचक भाव दिखाई दिये होंगे इसलिये वे और अधिक विस्तारपूर्वक बताने लगे। उन्होंने कहा—जब मेरा जन्म हुआ था तब मेरी दादी ने पडरौना के एक विद्वान पण्डित को मेरी जन्मपत्री दिखलायी थी और भाग्य बताने के लिये कहा था। दादी को अपने लाडले पोते का भविष्य जानने की बहुत उत्सुकता थी।

पण्डितजी ने जन्मपत्री देखकर कहा—इस बालक के भाग्य में विद्या बहुत है। यह परम विद्वान, बुद्धिमान होगा पर लक्ष्मी नहीं है। लेकिन एक

विशेष बात है। माना इसके भाग्य में लक्ष्मी नहीं है पर जीवन में लक्ष्मी की कमी भी नहीं रहेगी।

अन्य ग्रहों कि गणना करके ज्योतिषी को यह समझते देर न लगी कि यह बालक घर से उपराम रहेगा और इसका विवाह-सन्तान आदि योग भी दुर्बल है। पिता से विरोध रहेगा और पैतृक धन की हानि होगी। परन्तु इन सब बातों को उसने दादीजी के सामने खोलकर कहना उचित नहीं समझा। मात्र इतना संकेत कर दिया कि यह बालक भ्रमण-प्रेमी होगा, घर पर नहीं रहेगा।

दादीजी को ज्योतिषी की बातें सुनकर प्रसन्नता नहीं हुयी। मारवाड़ी समाज की सोच कुछ इस प्रकार की है कि विद्या की अपेक्षा धन को अधिक महत्व दिया जाता था। सद्गुण और विद्वता की तुलना में गृहस्थ जीवन और पोते-पोती की विशिष्टता अधिक होती थी।

फिर श्रीबंकाजी आगे बताने लगे—अब आज की परिस्थिति देखो। मैं दूसरे के घर में रहता हूँ। दूसरों का दिया खाता-पहनता हूँ। न पत्नी है, न पुत्र, न व्यापार, न सम्पत्ति- पर मेरा मन एकदम निश्चिन्त है। कोई भी चिन्ता नहीं है। आज के ज़माने में अगर किसी के पास घर-परिवार, धन-व्यापार न हो तो उसका जीवन अन्धकारमय होगा या नहीं? होगा ही। निश्चित होगा। यहाँ परिस्थिति वही-की-वही है लेकिन भजन और सन्त कृपा के प्रभाव से वह अन्धकार, उस चाँदनी रात में बदल गया है जहाँ श्रीप्रिया-प्रियतम का नित्य रास-विहार होता है। किस्मत और जन्मपत्री की बात ज्यों-की-त्यों है। पैसा नहीं, पढ़ाई की कमी नहीं, परिवार नहीं है परन्तु आनन्द की सीमा नहीं है।

दादीजी की बातों को सुनकर मैंने कहा—यह तो वही बात हो गयी जो श्रीनारदजी ने श्रीपार्वतीजी की जन्मपत्री देखकर श्रीहिमाचल राजा से कही थी। जन्मपत्री के अनुसार पार्वतीजी के भावी पति में अनेक दुर्गुण होंगे परन्तु यदि पार्वतीजी तप करें तो भविष्य पलट सकता है। **जौं तपु करै कुमारि तुम्हारी। भाविउ मेटि सकहिं त्रिपुरारी॥** जिस प्रकार तपस्या के बल पर पार्वतीजी ने शिवजी को पति रूप में प्राप्त किया था और भावी पति में होने वाले दुर्गुण की भविष्यवाणी को पूर्णतः पलट दिया था ठीक उसी प्रकार आपने आजीवन भजन द्वारा अपने अन्धकारमय जीवन को रास-रस की रसीली चाँदनी-रात में परिवर्तित कर दिया है। सन्त कृपा और आपके भजन के प्रभाव से दूषण

'भूषण' हो गया है।

मेरी बात सुनकर श्रीबंकाजी ने अत्यन्त स्नेहभरी दृष्टि से मुझे देखा और मन्द-मन्द मुस्कुराने लगे।

****

जन्मदात्री माँ

श्रीबंकाजी की जन्मदात्री माँ पूज्या श्रीसरस्वती देवी अति सरला, निष्कपट, धर्मनिष्ठ, पूजा परायणा, पतिव्रता स्त्री थी। उनकी कुलदेवता श्रीहनुमानजी महाराज के प्रति सुदृढ़ आस्था थी। वे अपनी सेवा परायणता के कारण परिवार एवं मोहल्ले में सबकी बड़ी प्रिय थी। भोजन बनाने में वे बड़ी कुशल थी और घर में सबकी रुचि का ध्यान रखा करती थी। पूज्या माँ के तीन पुत्र हुये। इन तीनों पुत्रों का जन्म एकादशी को हुआ। यह एक अनोखी सी बात है।

पूज्या माँ गर्भवती थी और अपने पूजा घर में बैठी प्रार्थना कर रही थी। यह प्रसंग श्रीबंकाजी के जन्म के कुछ माह पूर्व का है। उसी समय आकाश से दो सुन्दर सुगन्धित पुष्प माँ के शीश पर गिरे। ये दिव्यलोक के उत्कृष्ट पुष्प थे जिनकी आकृति-रूप-रंग-सौरभ इस जगत से सर्वथा भिन्न थे। क्या ही आश्चर्य की बात है कि कमरे में पक्की छत है और कहीं से भी पुष्प के आने का कोई स्थान नहीं है, फिर भी पूजा करते वक्त दो फूल उनके शीश पर पड़े। इन पुष्पों को देखकर माँ बहुत अचम्भित तथा आनन्दित हुई। हर्षित होना स्वाभाविक ही था और उनकी यही आस्था थी कि हमारे कुलदेवता श्रीहनुमानजी महाराज की हमारे परिवार पर और आने वाले बालक पर बड़ी कृपा है।

यह बात उन्होंने अपनी दोनों नन्दों सौ.श्रीमहाबीरी बाई तथा सौ.श्रीरमती बाई को बतलाई। दोनों नन्दों ने ही अपनी प्यारी भाभी के भाग्य की सराहना की और इन पुष्पों को भावी जीवन में होने वाले महान शुभ का पूर्व संकेत माना। श्रीबंकाजी को तो यह दिव्यलोक के उत्कृष्ट पुष्पों वाली बात अपनी बड़ी बहन भगवती बाई से बहुत बाद में पता चली। माँ के मन में यह दिव्य

पुष्प वाली बात सदैव रहस्यमयी बनी रही। वे अक्सर सोचा करती थी कि ये पुष्प कहाँ से आये? भविष्य में क्या मंगल घटित होने वाला है आदि आदि।

एक लेखिका होने के नाते मैं जो कहने जा रही हूँ उसका मेरे पास कोई प्रमाण तो नहीं है परन्तु एक उदाहरण लें। रामायण में आता है कि जब प्रभु श्रीराम का जन्म होने वाला था, उस वक्त देवताओं ने अयोध्या के महल में आकर माता कौशल्या की स्तुति की थी। श्रीमद्भागवत में लिखा है कि प्रभु श्रीकृष्ण के जन्म से पूर्व, कंस के कारागार में देवताओं ने माता देवकी के ऊपर पुष्प वर्षण किया। आज के युग में परम पूज्य सन्त श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार एवं श्रीराधाबाबा श्रीराधा-कृष्ण स्वरूप ही हैं। जब-जब भगवान का प्राकट्य इस धरा-धाम पर होता है तब उनके साथ उनके दिव्यधाम एवं दिव्य सहचर अवतरित होते ही हैं, ठीक उसी प्रकार जब-जब सन्तों का प्राकट्य होता है, वे कदापि अकेले नहीं आते हैं। उनके साथ उनका दिव्य परिकर-मण्डल भी अवतरित होता है। श्रीबंकाजी पूज्य बाबूजी-बाबा के निजी परिकरों में से एक हैं। अब ऐसी स्थिति में श्रीबंकाजी के जन्म के पूर्व उनकी माँ का अगर देवता अर्चन करें, पुष्प-वर्षण करें तो क्या आश्चर्य किया जाय? अस्तु,

पूज्या माँ अपने बच्चों का लालन-पालन बड़े लाड-प्यार से किया करती थी। अपने हाथों से भोजन कराती, रात्रि में प्रेमपूर्वक लोरी गा-गा कर बच्चों को सुलाती, सदैव उनको सुन्दर शिक्षा देती जिससे प्रभु में उनका अटूट विश्वास हो। घर के आँगन में तुलसीजी विराजमान थी। माँ अपने छोटे बालकों को गोद में लेकर तुलसीजी की परिक्रमा किया करती थी। संध्या समय माँ अपने बालकों को लेकर श्रीरामजानकी मन्दिर में जाती। वहाँ आरती और प्रसाद वितरण में उनकी बहुत आस्था थी।

1950 में लिखी श्रीबंकाजी की एक कविता में उन्होंने अपनी माँ का उल्लेख किया है।

आर्त हो जिसने पुकारा
रह सके वह दीन अशरण,

कब कहाँ किसने सुना?
बाल जब था सर्वदा माँ ने बताया स्तन पिलाते,
गोद में मुझको डुलाकर लोरियाँ गा-गा सुलाते।
'सकल जग में तुम दया निधि दीन-रक्षक हो कहाते'
मौन फिर क्यों? सुन रहे मेरा रुदन फिर भी न आते॥

अर्थात् माँ ने अपने बालकों को गोद में लेकर खेलते-खिलाते-लोरियाँ सुनाते वक्त हमेशा यही सिखाया कि सारे जगत में दयामय प्रभु दीनों के रक्षक हैं। सदा उन्हीं की शरण लेनी चाहिये। कोई आर्त होकर पुकारे तो वह व्यक्ति दीन-अशरण रह ही नहीं सकता है।

केवल कुछ ही पंक्तियों में श्रीबंकाजी ने अपनी माँ का कितना भावपूर्ण वर्णन किया है और उनकी दृढ़ प्रभु भक्ति का सुन्दर चित्रण किया है। श्रीबंकाजी को बचपन में अपनी माँ का भरपूर स्नेह मिला और प्रारम्भिक सगुण साकार उपासना की शिक्षा भी उन्हीं से मिली।

****

शिशु जीवन एवं बाल्यकाल

शिशु अवस्था में श्रीबंकाजी बहुत ही खूबसूरत और स्वस्थ थे। उनके अंग का सुन्दर गौर वर्ण, भोली मुखाकृति और मधुर मुस्कान सबके मन को लुभा लेती थी। उनका स्वभाव बचपन से ही शान्त था, अन्य बालकों की भाँति चंचल नहीं था।

जब श्रीबंकाजी एक-डेढ़ वर्ष के हो गये तो बालक के मुख के भोलेपन पर और अधरों की किलकारी पर परिवार तथा पड़ौस की नारियाँ बलिहारी थी। जो भी व्यक्ति घर पर आता, शिशु को गोद में लेकर उछालता। मौहल्ले में उनकी मासूम सूरत और ललित मुस्कुराहट आकर्षण की वस्तु बनी हुई थी। घर की बुआ-बहन इनसे बहुत प्रेम करती थी। शिशु के लाड-प्यार की सीमा नहीं थी। **निरखहिं छवि जननीं तृन तोरी॥**

श्रीबंकाजी की दादीजी इन्हें बहुत अधिक प्यार करती थी। पहले के

जमाने में अक्सर मारवाड़ी घरों में ऐसा होता था कि पोतियों से अधिक पोतों का लाड-प्यार किया जाता था। आज की भाषा में चाहे इसे पक्षपात कहा जाय परन्तु उस जमाने में यह बहुत ही स्वाभाविक सी बात थी। श्रीबंकाजी तीन भाई थे। दादीजी तीनों की रुचि का ध्यान रखा करती थी और लाड लडाती थी परन्तु श्रीबंकाजी को कुछ अधिक ही स्नेह मिला करता था।

श्रीबंकाजी को 'चूंटिया घी' बहुत पसन्द था। यह एक मारवाड़ी शब्द है। जमें हुये दही को खूब मथना और मथते-मथते छाछ के ऊपर जो चिकना लौंदा आ जाय उसे 'चूटिया घी' कहते हैं। घर में गाय थी ही। अत: दूध-दही की कोई कमी नहीं थी। प्रतिदिन दादीजी स्वयं दही मथा करती थी। श्रीबंकाजी के लिए ताजा चूटिया घी दादीजी छिपाकर रखती थी। अन्य कोई माँगें तो चाहे माँगता ही रह जाये परन्तु दादीजी कभी नहीं देती थी। श्रीबंकाजी को बासी मिस्सी रोटी बहुत पसन्द थी। बाल्यकाल में सवेरे-सवेरे, कलेवा के समय बासी मिस्सी रोटी, लाल मिर्च के आचार का मसाला, दही और चूटिया घी दादीजी बहुत ही प्रेमपूर्वक श्रीबंकाजी को खिलाया करती थी।

****

पिताजी का वात्सल्य

शिशु अवस्था में श्रीबंकाजी को अपने पिताजी श्रीहरिरामजी बंका का भरपूर स्नेह मिला। उनका मुख इतना सहज और सलोना था कि उनके पिताजी सदैव दुलारते रहते थे। बचपन से ही श्रीबंकाजी बुद्धिमान थे तथा समझदारी से बातचीत किया करते थे। उनमें सहज बाल सुलभ वाक्पटुता और हाजिरजवाबी थी जिसके फलस्वरूप उनकी कही बातें पिताजी को बहुत मधुर लगती थी। **जौं बालक कह तोतरि बाता। सुनहिं मुदित मन पितु अरु माता॥**

श्रीबंकाजी की प्रत्येक इच्छा को उनके पिताजी शीघ्रातातिशीघ्र पूरा किया करते थे। सुसम्पन्न घर था, नौकर-चाकर के ठाट-बाट थे, फिर भला लाडले शिशु की प्रत्येक इच्छा क्यों न पूरी हो? उस वक्त का जीवन बड़ा सात्त्विक

और शुद्ध था। श्रीबंकाजी के पिताजी प्रतिदिन प्रात: घर के सभी बालकों के साथ बगीचे चले जाते। तब श्रीबंकाजी की उम्र चार-पाँच वर्ष की रही होगी। बगीचा घर से करीब एक मील की दूरी पर था। सब वहाँ जाकर कुछ देर कसरत-व्यायाम करते। पानी की एक बहुत बड़ी हौद थी जिसके नल से बहुत तेज़ पानी आता था। सभी बालकों को वहाँ पानी की तेज धार के नीचे नहाने में बहुत आनन्द आता।

बगीचे में चार माली कार्यरत थे। उनका काम था बगीचे की रखवाली करना, मौसम के अनुसार फल-फूल-सब्ज़ियाँ उगाना, पके फलों को यथासमय तोड़ना, गौशाला में गौसेवा करना, दूध दुहना, आदि। जब तक सब बच्चे कसरत करते, खेलते और नहाते तब तक ये माली प्रतिदिन की शाक-भाजी तोड़ लेते और गायों को दुह लेते थे। टोकरी भर फल-फूल-सब्जी तथा दूध से भरी बाल्टी लेकर दो मालीगण, पिताजी एवं सभी बालक घर की ओर चल पड़ते। सर्वप्रथम श्रीरामजानकी मन्दिर जाते और ठाकुरजी की सेवा में ताजे फल-फूल समर्पित करते। पिताजी तो वहीं रुक जाते और करीब दो घण्टे तक अपना स्वाध्याय पूजा-पाठ आदि करते, बालक सब घर आ जाते और दादीजी एवं माँ उन्हें प्यार से कलेउ कराती। यह प्रतिदिन का क्रम था।

इस अवसर पर जीवन के बहुत आगे की एक बात का उल्लेख कर देना प्रसंगोचित लग रहा है। जब श्रीबंकाजी अपनी युवावस्था में आ गये और राष्ट्रभक्ति की भावना से प्रेरित हो उठे, तब वे प्राय: अपने पिताजी की बात न मान करके अपने निर्णय के अनुसार कार्य किया करते थे। उनका युवावस्था में ऐसा किया जाना पिताजी को बहुत चुभता था। श्रीबंकाजी देशभक्ति के कार्य में रुचि लेते थे और उनके पिताजी चाहते थे कि वे पडरौना में दुकान पर बैठे और व्यापार करे, व्यापार के द्वार पर्याप्त धनोपार्जन करे। पिताजी सोच रहे थे अमीरी की बात और श्रीबंकाजी की किस्मत में लिखी थी फकीरी। अब अमीरी और फकीरी की दोस्ती भला कैसे हो?

श्रीबंकाजी के स्वतन्त्र चिन्तन और स्वतन्त्र जीवन-शैली से खिन्न होकर एक बार पिताजी ने कहा था—राधिया! तू भोत धोको दियो। बचपन में मैं तनै

जितनो लाड, प्यार, दुलार दियो बाको बदलौ जै रूप में तू दे रहयो है सो मेरो दुर्भाग्य है। ब लाड प्यार दुलार के बदले तू इसो धोखो देवैगो म कदै सोच्यो भी कोनी थो। (राधिया! तुमने मुझे बहुत धोखा दिया। बचपन में मैंने तुम्हारा जितना लाड-प्यार-दुलार किया, उसका बदला तुम जिस रूप में दे रहे हो, यह मेरा दुर्भाग्य है। उस लाड-प्यार-दुलार के बदले तुम ऐसा धोखा दोगे, यह मैंने कभी सोचा भी नहीं था।)

पिताजी के मन का यह धोखा बहुत आगे चलकर सर्वथा दूर हो गया और पिताजी फिर क्या सोचते और कहते थे उसका वर्णन यथासमय उपयुक्त स्थान पर स्वत: आयेगा, परन्तु बचपन में तो वे श्रीबंकाजी को अपनी पलकों पर रखते थे।

****

बचपन का आनन्द

बचपन के दिन भी क्या दिन थे! न कोई चिन्ता न परेशानी! उन्मुक्त क्रीड़ा, सरल हास्य और पुनीत व्यवहार। श्रीबंकाजी के मिलनसार स्वभाव के कारण उनके बहुत सारे मित्र बन गये थे और सब हमउम्र बालक साथ में खेला करते। दिन पंख लगा कर उड़ते चले जा रहे थे।

आज की तरह न तो टी.वी. थे, न मोबाईल, न कम्प्यूटर। बालक खुले आकाश के नीचे, घर के आँगन में अथवा मैदान-बगीचे में खेला करते थे। ग्रीष्म ऋतु की जल-क्रीड़ा में सबको बहुत आनन्द आता था। इस प्रकार के खेलों से उनका व्यायाम भी हो जाता था और शरीर भी तन्दुरुस्त रहता था।

श्रीबंकाजी के बड़े फूफाजी श्रीहरिरामजी खेतान उस जमाने के करोड़पति थे। उन्हें अंग्रेजों की ओर से रायबहादुर की उपाधि प्राप्त थी। उनका बहुत बड़ा बगीचा बकुलाहा में था जो पडरौना से लगभग एक मील की दूरी पर है। पडरौना और बकुलाहा के बीच में एक छोटा पानी का तालाब था। इस तालाब में प्राय: टखने भर पानी रहा करता था परन्तु वर्षा काल में अथाह जल बहने लगता था। जब वह तालाब जल से लबालब भर जाता था, तब

श्रीबंकाजी अपनी मित्र मण्डली और परिवार के छोटे भाई-भतीजों के साथा वहाँ जाया करते थे और बहुत देरतक तालाब में नहाया और तैरा करते थे। तैराकी और डुबकी की खूब होड़ लगती। इस जल विहार का आनन्द ही कुछ और था।

जल क्रीड़ा के उपरान्त वे सब फूफाजी के बगीचे में चले जाया करते थे और पेड़ों पर चढ़कर ताजे फल जैसे आम, लीची, काला जामुन, अमरूद, फालसे आदि तोड़कर खाने और खिलाने का मजा लेते थे। इस सरल जीवन और स्वच्छन्द आनन्द की कोई सीमा नहीं थी।

****

जन्मदात्री माँ का देहान्त

विधि के विधान बड़े विचित्र होते हैं। तृतीय पुत्र श्रीरामनिवासजी के जन्म के कुछ काल उपरान्त ही श्रीबंकाजी की माँ का स्वास्थ्य बिगड़ने लगा। इन्हीं दिनों में उनके बड़े पुत्र श्रीहनुमानप्रसादजी बंका की सगाई, झरिया के श्रीसम्पन्न अग्रवाला परिवार में तय हो गयी थी परन्तु अपने बड़े पुत्र का विवाह देखना उनके भाग्य में न था। विवाह के पूर्व ही वे बहुत अधिक रुग्ण हो गई। देसी और अंग्रेजी, दोनों प्रकार के इलाज हुये, परन्तु आयु की अवधि समाप्त हो चुकी थी और 8 अप्रैल 1934, सप्तमी तिथि को, माँ सरस्वती देवी का देहान्त हो गया। इस असमय मृत्यु से सारे परिवार में शोक छा गया।

इस वक्त श्रीबंकाजी की आयु मात्र आठ वर्ष की थी और भाई रामनिवास तो और भी छोटे थे। दोनों बच्चे अपनी दादीजी की गोद में जाकर रोने लगते और वे उन्हें अपने हृदय से लगाकर सिसकियाँ लेती रहती। हँसता खेलता घर एकदम से सूना हो गया था।

सरस्वती मइया अपने नाम के अनुरूप ही देवीस्वरूपा थी। जब तक वे घर में रही, घर श्रीसम्पन्न, सुख-सुविधाओं से पूर्ण, प्रेम एवं आनन्द का मन्दिर बना रहा। उनकी मृत्यु के बाद मानो घर की 'श्री' ही नष्ट हो गयी और दु:खों के घने काले बादल मण्डराने लगे।

****

घर में दो विवाह

दुःख हो या सुख समय का क्रम अपनी गति से चलता ही रहता है। श्रीसरस्वतीदेवी की अकाल मृत्यु ने सबको झकझोर कर रख दिया था। अकस्मात् आई इस विपत्ति को शोकाकुल बंका परिवार बड़े भारी मन से झेल रहा था। सब एक दूसरे के आँसू पोंछ रहे थे। कुछ दिन इसी प्रकार विषादपूर्ण वेदना में व्यतीत हो गये।

श्रीबंकाजी के बड़े भाई श्रीहनुमानप्रसादजी की मँगनी, माँ के सामने ही झरिया निवासी श्रीरामकिशनदासजी अग्रवाल की सुपुत्री सौभाग्यवती श्रीगंगादेवी से तय हो चुकी थी। लोगों ने कहा कि अब उनका विवाह शीघ्र ही कर देना चाहिये। घर में नयी बहू आ जायेगी तो हर्षोल्लास का माहौल फिर से बन जायेगा। माँ के असामयिक निधन से सब बच्चे अत्यन्त व्यथित हैं, घर में बड़ी भाभी के आ जाने से उनका दुःख कुछ मात्रा में कम हो जायेगा। श्रीहरिरामजी बंका को यह सुझाव पसन्द आया।

विवाह तो करना ही था अतः शीघ्र ही महूर्त निकाल लिया गया। पडरौना से बरात सजकर झरिया गयी। उस ज़माने में मारवाड़ी घरों में बरात में केवल पुरुष ही जाया करते थे। स्त्रियाँ घर पर ही रहकर देवी-देवताओं का पूजन, रात्रि जागरण एवं नव विवाहित जोड़े के स्वागत की तैयारियाँ किया करती थी। ऐसा ही हुआ।

श्रीबंकाजी भी अपने बड़े भाई श्रीहनुमानप्रसादजी की बरात में सम्मिलित हुये। बहुत ऊँचे घर में सम्बन्ध हुआ था। अग्रवाल परिवार की झरिया और आस-पास के इलाके में बहुत इज़्ज़त थी। सबके मन में विवाह का अत्यधिक उत्साह था। बरात का खूब स्वागत-सत्कार हुआ, हास्य-विनोद हुआ और सुन्दर खातिरदारी हुई। विवाह उपरान्त आनन्द उल्लास के साथ बरात पडरौना लौटी। नवीन पुत्रवधु सौभाग्यवती श्रीगंगादेवी प्रथम बार अपने ससुराल आयी थी। घर के द्वार पर दुल्हा-दुल्हन की आरती की जाती है। परम्परा के अनुसार दुल्हे की माँ ये आरती करती है परन्तु माँ के अभाव में दादीजी ने नव दम्पत्ति का स्वागत किया।

श्रीबंकाजी की भाभी सौभाग्यवती श्रीगंगादेवी उच्च कुल की कन्या होने के कारण अपने ज़माने के हिसाब से बहुत पढ़ी-लिखी थी। घर के सभी कार्यों में अत्यन्त दक्ष थी परन्तु अपने ससुराल में सामन्जस्य स्थापित करने में इन्हें कठिनाई होने लगी। इनके ससुराल की आर्थिक स्थिति और पीहर के सुख-सुविधाओं में बहुत अन्तर था। छोटे देवरों की भी जिम्मेदारी निभानी पड़ती थी और माँ के अभाव में उनका विशेष रूप से ख्याल रखना पड़ता था। दादीजी वृद्धा थी, उन्होंने घर के साज-सम्भाल की सारी जिम्मेदारी इनके ही ऊपर छोड़ दी। कुछ महीने ससुराल में रहने के बाद, ये मायके चली गयी। ये मायके जाना भी विवाह की ही एक रस्म होती है जिसे मारवाड़ी भाषा में 'पूठमोड़ा' या 'गौना' कहते हैं।

इधर पुत्र श्रीहनुमानप्रसाद के विवाह के कुछ महीने बाद ही पिताजी श्रीहरिरामजी बंका को किसी कार्य से राजस्थान जाना पड़ा। वहाँ अलसीसर में कुटुम्ब के बड़े बुजुर्गों ने श्रीसरस्वतीदेवी की अकाल मृत्यु पर गहरा शोक प्रकट किया और उनको दूसरा विवाह कर लेने का सुझाव दिया। पहले तो पिताजी ने इसे स्वीकार नहीं किया लेकिन सबने मिलकर समझाया कि घर में छोटे बच्चे हैं, उनकी सुन्दर परवरिश और देखभाल के लिये माँ का होना आवश्यक है। श्रीहरिरामजी बड़े बुजुर्गों का बहुत सम्मान करते थे अतः उनके सामने कुछ विपरीत बोल नहीं पाये। सबने मिलकर उनका विवाह 1934 में श्रीगणेशदासजी चूड़िवाला की अति सुशील कन्या सौभाग्यवती श्रीकिसनीदेवी से करवा दिया। श्रीकिसनीदेवी आयु में श्रीहरिरामजी से बहुत छोटी थी। वे अत्यंत भोली और संकोची स्वाभाव की थी। अपने पति के सामने तो उन्होंने कभी कुछ कहा ही नहीं। श्रीहरिरामजी अपनी नव-विवाहिता पत्नी को लेकर पडरौना लौट आये।

वृद्धा दादीजी ने नवीन पुत्रवधु सौभाग्यवती श्रीकिसनीदेवी का घर में स्वागत किया। **दीन्हि असीष सासु मृदु बानी**। उन्हें प्रसन्नता थी कि छोटे बालकों को माँ के आँचल की सुखद छाया मिल गयी है, अब सब ठीक हो जायेगा, सब पुनः सुखी हो जायेंगे परन्तु दुर्भाग्य से ऐसा नहीं हुआ। अभी

तक श्रीगंगादेवी अपने मायके से लौटी नहीं थी। अति शीघ्र ही अत्यन्त सरला श्रीकिसनीदेवी आदर्श बहू की तरह अपने घर-गृहस्थी में लग गयी और घर की सारी जिम्मेदारी उन्होंने अपने हाथों में ले ली। विवाह होते ही उनको छोटे बालक मिल गये थे और वे उनका लालन-पालन दादीजी की आज्ञानुसार करने लगी।

इधर श्रीगंगादेवी जब ससुराल लौटी तो इस बार गृह-द्वार पर उनका स्वागत उनकी नयी सासूजी श्रीकिसनीदेवी ने किया। उन्हें तो इस बात की जानकारी ही नहीं थी कि उनके ससुरजी ने दूसरा विवाह कर लिया है। नवीन सासूजी को देखकर उन्हें बहुत आश्चर्य हुआ और वे एकदम चौंक गयी। ससुराल में आये इस नवीन परिवर्तन से उन्हें तनिक भी प्रसन्नता नहीं हुई और वे बेहद नाखुश रहने लगीं।

अगर श्रीहरिरामजी का दूसरा विवाह श्रीहनुमानप्रसादजी के विवाह के पहले हुआ होता तब शायद ऐसी परिस्थिति उत्पन्न ही नहीं होती। अब अगर घर में पुत्रवधु आने के बाद ससुरजी का विवाह हो तो अटपटी बात लगती ही है। ये नवीन सासूजी उम्र में श्रीगंगादेवी के सामान ही थीं। दोनों के स्वाभाव और सोच-विचार में कोई भी समानता नहीं थी। अत: मिलनसारिता की कमी के कारण परस्पर का मन-मुटाव रहने लगा।

जब समय विपरीत हो तो मन्थरा-बुद्धि वाले लोग दोनों पक्ष को भिड़ाने का कार्य करने लगते हैं। कुछ लोगों ने सासूजी के कान भरे और कुछ ने भाभीजी के। पारिवारिक वैमनस्य बढ़ता चला गया और सम्बन्धों में खाईयाँ पड़ने लगी। सांसारिक दृष्टि से देखा जाय तो गलती किसी की भी नहीं थी, सब संयोग की बात है। विधि का विधान ही ऐसा था। सच ही कहा है—**सो सबु सहिअ जो दैउ सहावा॥**

श्रीगंगादेवी और श्रीकिसनी मैया के बीच प्रतिदिन की छोटी-छोटी बातों को लेकर घर में तनाव रहने लगा। दुर्भाग्य की बात है कि रिश्तों में माधुर्य का स्थान मानसिक कुण्ठा, पारिवारिक मतभेद ने ले लिया। इस गृहक्लेश का सबसे बुरा असर बालकों पर पड़ा। घर की बिगड़ती परिस्थिति ने श्रीबंकाजी

के अबोध मन पर गहरी छाप छोड़ी। उन्हें लगने लगा कि विवाह में तनिक भी सुख नहीं है और गृहस्थ-जीवन 'अशान्ति' का ही पर्यायवाची है। घर में हर वक्त कलह का परिवेश उन्हें बहुत अखरता था। इन दिनों पिताजी का स्वाभाव भी कुछ क्रुद्ध और रूखा हो गया था। श्रीबंकाजी मात्र आठ वर्ष के बालक ही तो थे। माँ की ममता को वे तरसते थे पर उन्हें माँ जैसा प्यार कहीं नहीं मिला, अधिकतर ताने और खारी-खोटी ही सुनने को मिलती इस कारण उन्हें मित्रों की संगति भाने लगी जहाँ केवल निर्मल स्नेह था। आगे चलकर आर॰एस॰एस॰ ने उन्हें आकृष्ट करना शुरु कर दिया।

श्रीबंकाजी स्वयं को परिवार से दूरस्थ महसूस करने लगे, घर से कतराने लगे और धीरे-धीरे परिजनों से उदासीन होते चले गये। आनेवाले कुछ वर्षों में श्रीबंकाजी के मस्तिष्क में दो बातों ने दृढ़ गाँठ बना ली। पहली कि विवाह कदापि नहीं करना चाहिये और दूसरी कि जीवन में कुछ भी करो, कहीं भी रहो, पडरौना में नहीं रहना चाहिये अन्यथा गृह-क्लेश सदा बना ही रहेगा। दूसरे शब्दों में कहा जाये तो मात्र आठ वर्ष की छोटी उम्र से ही उनके गृह-त्याग और आजीवन विवाह न करने की पृष्ठ-भूमि का निर्माण प्रारम्भ हो गया था।

****

नन्हा देश प्रेमी

यह प्रसंग लगभग 1936-37 के आस-पास का है। उन दिनों भारत पर अंग्रेजों का शासन था और भारत की स्वर्णभूमि को आर्थिक दृष्टि से पूर्णरूपेण चूस जाने के लिये तथा हिन्दुओं को इसाई बनाने के लिये जो भरपूर प्रयास अंग्रेजों द्वारा हो रहा था, इन सबका एक नन्हें शिशु के मन पर भी गहरा प्रभाव था। अंग्रेजों की क्रूरतापूर्ण अत्याचार के किस्से सुनकर श्रीबंकाजी का खून खौलने लगता था। उनका शिशु मन अंग्रेजों को नष्ट कर देना चाहता था और एक सैनिक के रूप में वे शत्रुओं का सामना करना चाहते थे।

उस वक्त श्रीबंकाजी की आयु मात्र दस-बारह वर्ष की थी। वे अपने मित्रों

के साथ किसी एकान्त स्थान पर अथवा बगीचे में जाकर अचूक निशानेबाजी का अभ्यास किया करते थे। बाँस की पट्टी से धनुष और सरकण्डे से तीर बना लेते थे। तीर को धनुष पर चढ़ाकर लक्ष्य बिन्दु पर छोड़ते थे। असफल होने पर पुनः प्रयास करते थे। अपने निशाने को वे एकदम अचूक बनाना चाहते थे। छोटे-छोटे बालक तीरन्दाज़ी का यह प्रयास घण्टों किया करते थे।

ऐसा वे इसलिये करते थे कि अंग्रेजों को समाप्त करने के लिये यदि कभी आमना-सामना करने का मौका पड़ जाये तो अंग्रेजों को पिस्तौल की गोली से निशाना लगाकर समाप्त कर दिया जाय। सही निशाना लगाने का अभ्यास इसमें सहायक होगा। अब चाहे वयस्क लोग इसे बच्चों की बाल-क्रीड़ा समझें, परन्तु इनकी भावना उत्कृष्ट देशप्रेम से ओत-प्रोत थी। इनका यह लघु प्रयास इनके सच्चे भारतीय नागरिक होने का प्रतीक था।

****

पडरौना हाई स्कूल

पडरौना में राज्य की ओर से एक हाई स्कूल था। आज तो उस छोटे से हाई स्कूल ने एक बहुत बड़े महाविद्यालय का रूप ले लिया है जहाँ उच्च स्तरीय शिक्षा दी जाती है परन्तु उस समय वह एक छोटा हाई स्कूल मात्र था। उस स्कूल का नाम था उदित नारायण क्षत्रिय हाई स्कूल और प्रधानाचार्य थे श्रीसरयूप्रसाद सिंह। श्रीबंकाजी के पिताजी ने इसी हाई स्कूल में इनका दाखिला करवा दिया था।

श्रीबंकाजी को पहले दिन से ही स्कूल जाना बहुत पसन्द था। उस स्कूल में पढ़ने वाले बहुत से बालकों को ये पहले से ही जानते थे। वे या तो पारिवारिक स्वजनों के बालक थे या पास-पड़ोस के। इस कारण स्कूल इन्हें कभी अनजाना स्थान नहीं लगा। पडरौना हाई स्कूल की बहुत सारी मधुर स्मृतियाँ वे अक्सर बताया करते थे। विद्यार्थी जीवन की बातें बताते वक्त उनकी आखों में एक विशेष चमक होती थी।

श्रीबंकाजी बचपन से ही बड़े मेधावी थे। पढ़ने-लिखने में इन्हें बहुत

आनन्द आता था। इनकी ग्रहण क्षमता अद्भुत थी, कक्षा में अध्यापकों द्वारा कही बातें इन्हें तत्काल याद हो जाती थी। ये नियमित रूप से घर आकर अपना गृहकार्य करते और छोटे भाई की भी पढ़ाई में सहायता किया करते थे। इनकी स्मरण शक्ति बाल्यकाल से ही विलक्षण थी। कोई भी गीत, कविता, दोहा, चैपाई, आदि इन्हें एक-दो बार पढ़ते ही कंठस्थ हो जाती। कलात्मक कार्यों में भी इनका अच्छा प्रवेश था। इनकी लिखावट बहुत सुन्दर थी। जब ये सुलेख लिखते तो अक्षर मोती जैसे प्रतीत होते थे।

पडरौना बहुत छोटा शहर था, वहाँ प्रत्येक व्यक्ति एक दूसरे को जानता था। इनकी कार्यतत्परता से इनके सभी अध्यापक बहुत सन्तुष्ट रहते ही थे और जब भी इनके पिताजी मिल जाते तो सभी अध्यापक इनके सदाचारी व्यवहार की, विनम्रता की, प्रखर स्मरण शक्ति की, सरल स्वभाव की, मिलनसार व्यक्तित्व की, कुशाग्र बुद्धि आदि की प्रसंशा करते। अपनी पुत्र की बुद्धिमत्ता की बातें सुनकर पिताजी फूले न समाते। **पितहि प्रमोदु चरित सुनि जासू॥**

****

प्रसंग उस समय का है जब श्रीबंकाजी पाँचवी कक्षा में पढ़ते थे। अध्यापक पढ़ा रहे थे और सभी विद्यार्थी दत्त-चित्त होकर पढ़ रहे थे। अंग्रेजों का ज़माना था। तभी बड़ी जोर की आवाज़ सुनाई दी। ऐसी तेज़ आवाज़ तो कभी किसी ने नहीं सुनी थी। उस भयानक गर्जन को सुनकर न केवल श्रीबंकाजी बल्कि विद्यालय के सब विद्यार्थी और अध्यापक आश्चर्यचकित हो गये और तुरन्त खुले मैदान में दौड़े चले आये।

उन सबने देखा कि आकाश में एक हवाई जहाज़ उड़ा चला जा रहा है। सब अवाक् रह गये। हवाई जहाज का उड़ना उस जमाने में ऐसी विलक्षण बात थी मानो कोई परियों की कथा सुना रहा हो! किसी ने कल्पना भी नहीं की थी कि आकाश में कोई निर्जीव जड़ वस्तु बड़ी आसानी से उड़ती चली जायेगी और यातायात के काम आयेगी। जीवन में पहली बार हवाई जहाज को देखकर सबके मन में असीम आश्चर्य था तथा विज्ञान की असाधारण उन्नति के प्रति सभी नतमस्तक थे।

जहाँ एक ओर प्रत्येक व्यक्ति विज्ञान की उन्नति के बारे में सोच रहा था, मानव जगत की नयी कामयाबी की प्रशंसा कर रहा था, वहीं श्रीबंकाजी की विचारधारा, जो उस समय मात्र एक बालक थे, बड़ी भिन्न और असाधारण थी। श्रीबंकाजी गर्दन को कुछ ऊँचा किये एकटक हवाई जहाज की ओर देखते हुये मन-ही-मन सोच रहे थे—मैं हवाई जहाज तो नहीं बना सकता मगर किसी दिन ऐसी उत्कृष्ट उड़ान जरुर भरूँगा जो इस हवाई जहाज की उड़ान से कहीं ज्यादा ऊँची और महत्त्वपूर्ण होगी।

कहना न होगा कि भावी जीवन में आध्यात्मिक पथ पर श्रीबंकाजी ने जो उड़ान भरी, जो उन्नति की और जिस उच्च परमार्थिक स्थिति को प्राप्त किया वहाँ तक विज्ञान की पहुँच है ही नहीं। बाल्यावस्था में ऐसे भावों का मन में स्फुरित होना, ऐसे विलक्षण उद्गारों का व्यक्त होना पूर्व जन्म की किसी महान शुभ कर्मराशि का ही परिणाम था।

****

देशभक्ति की प्रबल भावना

जब श्रीबंकाजी छठी कक्षा में पढ़ते थे तब 'हल्दीघाटी काव्य' के रचयिता श्रीश्याम नारायणजी पाण्डे पडरौना आये थे। हल्दीघाटी वीर रस का काव्य है जिसमें चित्तौड़ के महाराणा प्रताप के अतुल शौर्य का मर्मस्पर्शी चित्रण किया गया है। पडरौना हाई स्कूल के प्रधानाचार्यजी श्रीसरयूप्रसाद सिंह ने छात्रों को कविता सुनाने के लिये उन्हें आमंत्रित किया। हॉल में श्रीबंकाजी अन्य सभी विद्यार्थियों सहित बैठे थे और सम्मान्य श्रीश्याम नारायणजी ने बड़े ओजस्वी भाषा में कविता-पाठ करते हुये महाराणा प्रताप के भाले का वर्णन किया कि यह किसी को पता भी नहीं चलता था कि वह भाला विद्युत के समान कब, किधर, कैसे चमकता था और यवनों की सेना पर कहर ढाया करता था।

इस ओजस्वी वर्णन से श्रीबंकाजी का भावुक बाल हृदय बहुत प्रभावित हुआ। मातृभूमि के लिये प्रेम किस उच्च श्रेणी का होना चाहिये, कैसा अदम्य

साहस शूरवीरों में होना चाहिये, सर्वस्व बलिदान करके भी वतन की रक्षा कैसे करनी चाहिये, ऐसे प्रबल स्वदेशानुराग पूरित विचारों में वे बहते चले गये। उनकी देशभक्ति की भावना को इससे बहुत पोषण मिला।

****

पूत के पग पालने में नज़र आ जाते हैं

महान लोगों की उत्कृष्टता बाल्यकाल से ही झलकने-छलकने लगती है। उनकी सोच साधारण मानव से बिल्कुल भिन्न होती है। देखने में वे अन्य सभी समवयस्क बालकों की भाँति उठते-बैठते-खाते-पीते-पढ़ते-खेलते हैं परन्तु उनके क्रिया-कलापों में बड़ी विलक्षणता होती है जो यदा-कदा दीख ही जाया करती है।

पडरौना में फैन्सी कपड़ों की दो ही दुकानें थी। एक देसवाली श्रीविश्वनाथप्रसादजी की और दूसरी श्रीहरिरामजी बंका की। इनके फर्म का नाम था 'राधेश्याम रामनिवास'। पुत्रों के प्रति अतिशय स्नेह होने के कारण ही पिताजी ने अपनी फर्म का नाम अपने लाडले पुत्रों के नाम पर रखा था। दुकान पर पाँच मुनीम काम करते थे। वे थे कामता, ज्वाला, रामदौड़, अवधेश तथा दुर्गाप्रसाद। बात उस समय की है जब श्रीबंकाजी कक्षा सात के विद्यार्थी थे। एक दिन सायंकाल वे अपने कपड़े की दुकान पर सहज रूप से चुपचाप बैठे थे। संयोग की बात है कि उस वक्त दुकान पर न तो पिताजी थे और न ही बड़े भाई श्रीहनुमानप्रसादजी। कोई ग्राहक भी नहीं था।

मुख्य मुनीम कामता ने देहाती भाषा में श्रीबंकाजी से कहा—ऐ बबुआ! चुपचाप का सोचत हउ? जब बड़ा होइब ना तब ऐही दुकान पर, ऐही गज से कपडवा नापब, ऐही कैंची से कपड़वा काट के पैसा कमाईब। (ए बालक! तुम चुपचाप क्या सोच रहे हो? जब तुम बड़े हो जाओगे तब इसी दुकान पर, इसी गज से कपड़े को नापोगे, इसी कैंची से कपड़े को काट कर पैसे कमाओगे।)

श्रीबंकाजी ने चट उत्तर दिया—ए कामता! बड़ा भईले पर हम का करब

अबे पता नाही बा पर ई तू समझ ले कि कपड़ा के दुकानदारी त हम नाही करब। (ए कामता! बड़े होने पर मैं क्या करूँगा यह मुझे अभी पता नहीं हैं परन्तु तुम इतना समझ लो कि कपड़ों की दुकानदारी तो मैं नहीं ही करूँगा।)

श्रीबंकाजी के इस कथन को सुनकर प्रधान मुनीम कामता हँसने लगा और मज़ाक उड़ाने लगा। अन्य मुनीम भी हँसने लगे। उनका मज़ाक उड़ाना स्वाभाविक ही था। कामता बहुत बड़ी उम्र का था और श्रीबंकाजी अभी छोटे बालक थे। भले ही कामता ने श्रीबंकाजी का मज़ाक उड़ाया हो, परन्तु भविष्य में ऐसा ही हुआ। श्रीबंकाजी ने कभी कपड़े की दुकानदारी नहीं की और मान लेना चाहिये कि यह बात शत-प्रति-शत सत्य है कि पूत के पग पालने में ही नज़र आ जाते हैं।

पिताजी की आंतरिक इच्छा होते हुये भी श्रीबंकाजी कभी दुकान पर नहीं बैठे। वे बाल्यावस्था से ही उच्च विचारों में डूबे रहते थे। एक अंग्रेजी का वाक्य वे अक्सर कहा करते थे—Not failure but low thinking is crime अर्थात असफलता नहीं, निम्न विचारधारा का होना ही एक अपराध है। जिसका चिन्तन निम्न स्तरीय होगा वह कभी महत्वाकांक्षी हो ही नहीं सकता और न ही उसके जीवन में कभी आदर्श जीवन की झलक उभर पायेगी।

****

प्रतियोगिता में अग्रणी

जब श्रीबंकाजी पडरौना हाई स्कूल के सातवीं कक्षा में पढ़ रहे थे तब अन्ताक्षरी की इन्टर क्लास प्रतियोगिता हुआ करती थी अर्थात सातवीं कक्षा के विद्यार्थियों के साथ आठवीं कक्षा के विद्यार्थियों की प्रतियोगिता हुआ करती थी। यह प्रतियोगिता बड़ी रोचक होती थी और सभी विद्यार्थी बड़ी बेसब्री से इसकी प्रतीक्षा किया करते थे। आज जो सामान्य रूप से अन्ताक्षरी खेली जाती है उसमें सिनेमा के गीतों को गाया जाता है परन्तु उस वक्त ऐसा नहीं होता था। तब यह खेल भिन्न रूप से खेला जाता था।

तब अन्ताक्षरी प्रतियोगिता में पदों और दोहों का आदान-प्रदान होता था। एक विद्यार्थी एक पद, कविता, चैपाई या दोहा कहता। उस पद या दोहे के अन्तिम अक्षर से प्रतिपक्ष वाले को पद या दोहे का पाठ करना होता था। छात्रों को अधिक-से-अधिक पद, कविता, चैपाई, दोहा आदि कंठस्थ कराने की यह अत्यन्त प्रचलित युक्ति थी।

एक कक्षा के 35-40 विद्यार्थियों के मध्य से ग्यारह श्रेष्ठ विद्यार्थियों का चुनाव होता था। प्रतियोगिता में सातवीं कक्षा के ग्यारह विद्यार्थी आठवीं कक्षा के ग्यारह विद्यार्थियों से स्पर्धा करते थे। निर्णायक के पद पर प्रधानाचार्यजी के अतिरिक्त हिन्दी के दो विशेषज्ञ अध्यापक रहा करते थे। श्रीबंकाजी का चुनाव हर बार इन ग्यारह विद्यार्थियों में होता ही था और उन्हें इस प्रतियोगिता में भाग लेना अतिशय प्रिय भी था। उनकी विलक्षण स्मरण शक्ति में अनेकानेक पद, कविता और दोहों का संग्रह था जो उनके दल को जिताने में बहुत सहायक हुआ करता था। अध्यापकगण उनकी अद्भुत स्मरण शक्ति से बहुत प्रभावित रहा करते थे और उनकी तारीफ़ करते थकते नहीं थे। वे कहते थे—**हौंनहार बिरबान् के होत चीकने पात।** भविष्य में यह बालक महान व्यक्तित्व का धनी होगा।

****

आठवीं कक्षा में गणित के साथ-साथ algebra और geometry भी पढ़ाई जाती थी। श्रीबंकाजी का गणित कमजोर था परन्तु algebra और geometry में वे माहिर थे। उन्होंने अपने सारे सहपाठियों को यह चुनौती दे रखी थी कि अगर algebra का कोई सवाल उनसे हल न हो तभी उस सवाल को अध्यापक से पूछना चाहिये। उनके सहपाठी कठिन-से-कठिन प्रश्न लेकर उनके पास आया करते थे और अपनी बुद्धिमत्ता से श्रीबंकाजी चट algebra और geometry का हर प्रश्न हल कर दिया करते थे।

****

काश! मेरा जन्म चार सौ साल पहले हुआ होता

सन् 1941-42 में जब श्रीबंकाजी नवी कक्षा के विद्यार्थी थे। उनके पाठ्यक्रम में हिन्दी भक्ति काव्य की पुस्तक थी। इस पुस्तक में श्रीमीराबाई, श्रीतुलसीदासजी, श्रीरसखानजी, श्रीकबीरदासजी, श्रीरहीमदासजी आदि सन्तों की रचनाएँ थी। विशेष करके भक्तिमती श्रीमीराबाई के पद बहुत की भावपूर्ण थे। गिरधर प्रेम दीवानी मीराबाई की विरह वेदना, सन्त समाज में सदा से ही अति श्रद्धा का विषय रही है।

बचपन से ही श्रीबंकाजी का झुकाव भक्ति की ओर स्पष्ट परिलक्षित होता। जब ये इन रसीले पदों को पढ़ते, इनका हृदय पिघलने लगता था। वे अति भावुक हो जाया करते थे। भक्ति की भावना प्रबल रूप से उमड़ने लगती थी और वे मन-ही-मन कहा करते थे—हाय! मेरा जन्म चार सौ साल पहले क्यों नहीं हुआ? यदि मेरा जन्म श्रीमीराबाई के काल में हुआ होता तो मैं भी उनके साथ-साथ रहता और कृष्णप्रेम के रंग में डूबता। श्रीबंकाजी के नयनों से अश्रुधारा बहने लगती और कई-कई दिनों तक, एक ही पद का, विह्वल वाणी में वे गायन करते रहते थे। अश्रुपूरित नेत्रों से अपने कक्ष के एकान्त में पाठ्यक्रम की उस काव्य पुस्तक को उन्होंने असंख्य बार पढ़ा होगा। अपनी एक स्वलिखित कविता में उन्होंने स्वयं इस बात की पुष्टि की है।

हृदय की चाह

ऐसा कब होगा गोपाल?
रसना ले ले नाम तुम्हारा होगी अति बेहाल।
भले ना आवो किन्तु बुलाकर होगी पूर्ण निहाल॥

तैलधारवत चिन्तन होगा भूल सभी जग जाल।
मनहर छवि कब हृदय बसेगी हे छविधर नँदलाल॥

नहीं डसेंगे ना भय देंगे शंकाओं के ब्याल।
प्रीति प्रतीति बढ़ेगी प्रतिपल कब प्रियतम प्रतिपाल॥

भाव पूर्ण हो सूरदास-सा मधुमय सरस कृपाल।
कब पुलकित होकर गाऊँगा अविरल लीला माल॥

कब मीरा-सा जीवन होगा प्रेम-मत्त-सा हाल।
क्या न समर्पित होगा जीवन तुम पर हे नँदलाल॥

16.01.1951

अब एक तथ्य का उल्लेख कर देना प्रसंगोचित लग रहा है। भविष्य में श्रीबंकाजी को गीतावाटिका के परम भागवत सन्त पूज्य श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार एवं परम रसिक सन्त पूज्य श्रीराधाबाबा का अति निकट सान्निध्य प्राप्त हुआ।

कृष्ण प्रेम दिवानी श्रीमीराबाई की जैसी विह्वल स्थिति का वर्णन इतिहास में आया है वैसी ही दिव्य भावमय स्थिति पूज्य बाबूजी और बाबा की भी हो जाती थी। नेत्र है पर कुछ दिखाई नहीं देता, कर्ण है पर कुछ सुनाई नहीं देता, वाणी है पर कुछ बोला नहीं जाता......! बाह्य जगत का कुछ भी आभास नहीं होता था, समस्त इन्द्रियाँ कार्य करना छोड़ देती थी। रस सिद्ध सन्तों की ऐसी दिव्य भावमय अवस्था के मौन द्रष्टा बनने का सुअवसर, अपने भावी जीवन में अनेकानेक बार श्रीबंकाजी को मिला। उनके बाल्यकाल की विशिष्ट आकांक्षा को कृपामय ठाकुर ने अतिसुन्दर रीति से पूर्ण किया। किशोरावस्था में श्रीबंकाजी का भावुक हृदय जो सोचा और चाहा करता था उनके उत्तरीय जीवन का वह एक यथार्थ सत्य था।

****

नवीं कक्षा में विज्ञान का प्रारम्भिक अध्ययन कराया जाता था। अध्यापक महोदय ने अर्क के घनत्व को निकालने का एक सवाल कक्षा में दिया। घनत्व माने density और अर्क माने spirit। इस बात को ऐसे समझें कि पानी, अर्क, और पारा का एक बूँद लिया जाय और यदि तौला जाय तो सबका वज़न अलग-अलग होगा। जल के एक बिन्दु के भार के अनुपात में अर्क के एक बिन्दु के भार को बतलाना था। विज्ञान के अध्यापक श्रीसिन्हा साहब ने कुछ संकेत दे दिया था कि यह सवाल किस प्रकार हल होगा। अध्यापक महोदय यह जाँचना चाह रहे थे कि देखें कौन इस प्रश्न को अपनी बुद्धि से हल कर पाता है?

यह विषय विद्यार्थियों के लिये एकदम नवीन था, अत: वे परखना चाहते थे कि कौन ऐसा श्रेष्ठ विद्यार्थी है जो अपने बुद्धिबल से उस सवाल का हल

निकाल सके। इस बात में भी श्रीबंकाजी सबसे आगे निकल गये और कक्षा में सबसे पहले सही हल निकाल दिया। श्रीसिन्हा साहब श्रीबंकाजी की बुद्धिमत्ता पर बहुत प्रसन्न हुए।

****

नवीं कक्षा के पाठ्यक्रम में भूगोल भी था। भूगोल में श्रीबंकाजी बहुत माहिर थे। अध्यापक महोदय विभिन्न प्रकार के नक्शे बनाने का गृहकार्य दिया करते थे। वर्षा, तापमान, जनसंख्या, रेतीली-पहाड़ी-पठारी-मैदानी भाग, मानवीय भूगोल आदि की दृष्टि से भारत का या एशिया का नक्शा बनाना होता था। उस ज़माने में आज की तरह बाज़ार में नक्शे नहीं मिला करते थे और न ही xerox machine थी। छात्र स्वयं मेहनत करके हाथों से नक्शे बनाया करते थे।

भिन्न-भिन्न रंगों और संकेतों के द्वारा नक्शे को सुन्दर बनाने की कला में श्रीबंकाजी अति निपुण थे और उन्हें लगभग हर नक्शे पर good और very good के मन्तव्य मिला ही करता था। उनकी मित्र मण्डली एवं कक्षा के अन्य विद्यार्थी उनके नक्शों को देखने के लिये अतिउत्सुक रहा करते थे। अध्यापक महोदय स्वयं उनकी कापी कक्षा में अन्य विद्यार्थियों को दिखला कर उस स्तर का सुन्दर कार्य करने की प्रेरणा दिया करते थे।

****

पढ़ाई के साथ-साथ पडरौना हाई स्कूल में कई प्रकार की अन्य प्राकृतिक स्पर्धा हुआ करती थी जिनमें लम्बी दौड़, हाई जम्प, लाँग जम्प, रिले रेस आदि प्रमुख थे परन्तु श्रीबंकाजी को इन सब में कभी भी विजयश्री नहीं मिली। खेल कूद में कभी इनकी विशेष रुचि नहीं थी। किसी भी प्रकार का लेखन कार्य हो, वाद-विवाद प्रतियोगिता हो (डिबेट), कोई कालात्मक प्रदर्शन हो, कविता पाठ हो, सुलेख प्रतियोगिता हो, इन सबमें श्रीबंकाजी दक्ष थे। पढ़ाई में होनहार होने के कारण ये विद्यालय के प्रत्येक अध्यापक के प्रिय शिष्य कहलाते थे एवं अपने मधुर-मृदुल परोपकारी स्वभाव के कारण ये मित्र मण्डली में सदैव अति प्रिय रहे।

****

मित्रमण्डली

श्रीबंकाजी का सदा से ये स्वभाव रहा है कि या तो वे मित्र बनाते नहीं थे और अगर किसी को मित्र बना लिया तो फिर मित्र के लिये कुछ भी कर गुज़रने से चूकते नहीं थे। मित्र को प्रसन्नता मिले इसके लिये चाहे कोई नियम टूटे या अनुशासन का उल्लंघन करना पड़े, श्रीबंकाजी कभी पीछे नहीं हटते थे। इनका इतना हँसमुख, परोपकारी और मिलनसार स्वभाव था कि सभी बालक इनसे मित्रता करना चाहते थे।

विद्यालय में इनको मित्रमण्डली घेरे रहती और ये सहर्ष सबकी सुनते और गृहकार्य के कठिन प्रश्नों को हल करने में उनकी सहायता करते। अगर किसी मित्र को सजा मिल रही होती तो उसे बचाने का हर सम्भव प्रयास करते। अगर किसी साथी को आर्थिक सहायता की आवश्यकता होती तो उसे भी किसी-न-किसी प्रकार का सहयोग अवश्य प्रदान करते। इनके मित्र भी इन्हें प्राणपण से अपना मानते और जीवन में बहुत बार परिवार की अपेक्षा मित्रों ने ही इन्हें सम्भाला भी। श्रीबंकाजी अपने मित्रों के लिये कुछ भी कर जाने को प्रस्तुत हो जाया करते थे। मित्र के दु:ख से द्रवित होना इनका सहज स्वभाव था।

श्रीबंकाजी की बड़ी बुआजी पडरौना में ही रहती थी। इन महाबीरी बुआजी के पुत्र का नाम था श्रीभगवती प्रसाद खेतान। श्रीबंकाजी का भगवती भईया से बड़ा प्रिय सम्बन्ध था। वे श्रीबंकाजी से उम्र में केवल एक मास बड़े थे इसलिये भाई होने के साथ-साथ दोनों में सख्य भाव भी था।

भगवती भईया की मित्रता एक मुसल्मान बन्धु से हो गई थी। उस जमाने में मुसलमान से मित्रता करना तो दूर, उनसे बात करना भी बहुत निन्दनीय आचरण माना जाता था। तत्कालीन हिन्दू समाज मुसलमानों का संग-साथ नहीं किया करता था। उनके साथ उठने-बैठने-खाने-पीने पर कड़ा प्रतिबन्ध था। दोस्ती होने के बाद भी परिवार के सख्त अनुशासन के कारण दोनों मित्रों में भेंट नहीं हो पाती थी।

भगवती भईया के पिताजी उस वक्त के करोड़पति थे और उन्हें अंग्रेजों की ओर से रायबहादुर की उपाधि प्राप्त थी, अत: घर में बहुत अधिक कायदे कानून का होना स्वाभाविक था। भगवती भईया सोचने लगे—मैं अपने मुसलमान मित्र से मिल तो नहीं सकता, परन्तु कम-से-कम एक बार उसे बता तो देना चाहिये कि मेरा मन उसके प्रति शुद्ध है और केवल परिवार और समाज के दबाव में आकर मैं उससे मिल नहीं पा रहा हूँ। न जाने वह मेरे बारे में क्या सोचता होगा ? इधर समस्या यह है कि अगर मैं उससे मिलूँ और कोई व्यक्ति यह देखकर पिताजी से कह दे तो फिर मेरी खैर नहीं! पिताजी बेहद नाराज होंगे।

श्रीभगवती भईया ने अपने मन की यह बात अपने भाई तथा परम मित्र श्रीबंकाजी से कही। श्रीबंकाजी ने भगवती भईया के मन की उधेड़-बुन को समझा और कहा—मैं तुम्हारी इच्छा पूरी करूँगा। तुम चिन्ता मत करो।

रात के समय श्रीबंकाजी अपने पूज्य दादाजी श्रीजयनारायणजी के साथ कपड़ों की दुकान पर, सुरक्षा की दृष्टि से, सोया करते थे। श्रीबंकाजी ने एक दिन उस मुसलमान बन्धु से सम्पर्क स्थापित कर लिया और मध्य रात्रि में मिलने का समय निर्धारित कर दिया।

उस समय की परिस्थिति आज से बिल्कुल भिन्न थी। पडरौना में बिजली नहीं थी अत: लोग रात में आठ बजे तक खा-पीकर सो जाया करते थे। नौ बजे तक तो सड़कें एकदम सुनसान हो जाती थी। अंग्रेजों का ज़माना था। चालीस के दशक में अंग्रेजों की प्रशासकीय कड़ाई अपनी चरम सीमा पर थी। अंग्रेज सिपाही घोडों पर गश्त लगाया करते थे और कोई रात में घर से बाहर निकले तो उसे रोककर प्रश्न करना आम बात थी। ऐसी स्थिति में आधी रात के समय दुकान को खोलकर बाहर आना बहुत साहस का कार्य था। दुकान में तिजोरी थी। उसकी सुरक्षा को नज़रअन्दाज़ करके भी श्रीबंकाजी अपने मित्र की सहायता करने से नहीं चूके।

अर्ध रात्रि के समय अपने दादाजी को दुकान में सोता छोड़कर श्रीबंकाजी चुपचाप दरवाज़ा खोलकर बाहर निकल गये और बुआजी के घर जा पहुँचे। वहाँ से भगवती भईया को साथ लिया और मुसलमान बन्धु से निर्धारित स्थान पर भेंट करवायी। दोनों मित्रों का मिलन हुआ। इससे भगवती भईया को बड़ी

प्रसन्नता हुई। उन्होंने सारी बातें अपने मित्र से स्पष्ट रूप से कर ली और उनके मन का बोझ उतर गया।

अब मित्र को सुख मिले इसके लिये चाहे श्रीबंकाजी को स्वयं डॉट ही क्यों न खानी पड़े, पर वे कभी इसकी परवाह नहीं करते थे। श्रीबंकाजी के जीवन में बाल्यकाल से ही रामायण का यह विख्यात सूत्र देखा गया। **निज दुख गिरि सम रज करि जाना। मित्रक दुख रज मेरु समाना॥**

****

चोरी की लत

किशोरावस्था में श्रीबंकाजी में कुछ गलत आदतों ने भी घर बना लिया था। उन्हें चोरी करने की तथा झूठ बोलने की बुरी आदत लग गई थी। बंका वंश में कुछ ऐसे नियम-कानून थे कि बालकों को आवश्यकतानुसार तो सभी वस्तुएँ दी जाती थी, लाड-प्यार भी बहुत होता था परन्तु हाथ में नकद रुपया नहीं दिया जाता था। कभी बच्चे पिताजी से रुपये माँगते भी तो पिताजी टाल देते और आज की प्रचलित भाषा में जिसे 'पॉकेटमनी' कहते हैं वह नहीं दी जाती थी।

श्रीबंकाजी को भी जब रुपयों की आवश्यकता पड़ती और वे पिताजी से माँगते तो अक्सर निराशा ही हाथ लगती। अत: उन्होंने गलत मार्ग अपनाया और चोरी करना आरम्भ कर दिया। वे रात में दुकान पर अपने दादाजी श्रीजयनारायणजी के साथ सोया करते थे। दुकान में तिजोरी थी। घर का सारा नकद रुपया तिजोरी में ही रखा जाता था। उन्हें पता था कि तिजोरी की चाबी कहाँ रहती है। जब-जब श्रीबंकाजी को रुपयों की आवश्यकता पड़ती वे रात्रि के समय अपने दादाजी को सोता हुआ जानकर, दुकान की तिजोरी खोल लेते और कुछ रुपये चुराकर मित्रों के साथ खाने-पीने की मौज उड़ाया करते थे। अपने मित्रों के साथ बाज़ार में हलवाई की दुकान पर जाकर समोसे-कचौड़ी आदि खाना-खिलाना इन्हें बहुत रुचिकर था।

श्रीबंकाजी का एक मित्र था श्रीभीमसेन शर्मा। वह बड़ा कपटी था।

उसने लक्ष्य किया कि जब भी कोई मित्र राधेश्याम से रुपये माँगता है, तब अक्सर उसे रुपये मिल जाते हैं और जब भी सब मित्र खाने-पीने बाजार जाते हैं तब राधेश्याम की पाकेट में विपुल द्रव्य होता है, अत: क्यों न इससे कुछ रुपये माँग लिये जाँय?

एक दिन उसने श्रीबंकाजी से कुछ रुपयों की व्यवस्था करने के लिये कहा। भीमसेन ने अपनी मजबूरी बताते हुये अति करुण शब्दों में प्रार्थना की और श्रीबंकाजी अपने मित्र का उदास मुख देख न सके। श्रीबंकाजी उसकी बातों के जाल में फँस गये। संयोग से उस वक्त उनके पास रुपये थे नहीं, अत: उन्होंने रात्रि में किसनी मैया की नथ चुरा ली और मित्र भीमसेन को दे दी। भीमसेन ने वह नथ बाज़ार में बेच दी। नथ कीमती थी, अगले दिन घर में नथ की खोज शुरु हुई, बहुत हो-हल्ला मच गया। घर के नौकरों की तलाशी हुई, पारिवारिक जनों से पूछ-ताछ होने लगी, परन्तु श्रीबंकाजी ने कुछ बताया नहीं। कुछ दिन बीत गये।

पडरौना छोटा शहर होने की वजह से सब एक दूसरे को जानते थे। जिस सुनार ने वह नथ बनाई थी, संयोग से वह नथ उसी की दुकान पर बिकने के लिये पहुँच गयी। उसे नथ के चोरी हो जाने की जानकारी थी। उसने नथ पहचान ली और वह नथ लेकर श्रीहरिरामजी बंका के पास पहुँच गया। पुन: पूछ-ताछ होने लगी। धीरे-धीरे सारी पोल खुल गई। फिर तो श्रीबंकाजी को डॉट पड़नी ही थी। उनके पिताजी तो सोच भी नहीं सकते थे कि नथ का चोर उनका अपना ही पुत्र निकलेगा। प्रिय पुत्र के इस कुकर्म से उनको बेहद आश्चर्य और निराशा हुई। वे बहुत रुष्ट हुये।

जब श्रीबंकाजी आर.एस.एस. में स्वयंसेवक थे तब भी अनेक बार उन्होंने चोरी करके कभी अपने साथियों की, कभी सहकर्मियों की, कभी मित्रों की बहुत सहायता की। अधिकतर स्वयंसेवक गरीब थे और श्रीबंकाजी उनकी आर्थिक स्थिति से भली भाँति परिचित थे। उन दिनों आज की तरह गैस उपलब्ध नहीं थी। सबके घरों में लकड़ी जलाकर ही चूल्हा सुलगाया

जाता था। बारिश के दिनों में सूखी लकड़ी की कीमत बढ़ जाया करती थी अत: अच्छे घरों में सूखा काठ वर्षा काल के पहले ही कोठार में भरकर रख लिया जाता था।

श्रीबंकाजी कभी घर की लकड़ी का गोदाम खोल देते और उनके साथी सूखी लकड़ियाँ चुपचाप रात में निकाल कर ले जाते, कभी चीनी का बोरा गुप्त रूप से घर के भण्डार घर से निकाल लेते। कभी किलो-किलो दाल तो कभी घी, तेल, आटा, चावल! कभी पकड़े जाते तो बहुत प्रताड़ित होते पर परोपकार करने के जुनून में, तथा मित्रों की मदद करने की प्रबल भावना होने के कारण वे डॉट-फटकार की कुछ परवाह नहीं करते थे। इस प्रकार के एक नहीं असंख्य उदाहरण हैं।

कुछ समय बाद जब यह स्वभाव बहुत अधिक बढ़ गया तब घर के नौकर भी इनकी इस आदत का लाभ उठाने लगे। नौकर लोग स्वयं कुछ सामान कोठार घर से पार कर देते और अगर पकड़े गये तो राधेश्याम भईया का नाम लगा देते थे। बहती गंगा में सभी हाथ धो लेना चाहते हैं, घर के नैकरों ने भी इस परिस्थिति का खूब लाभ उठाया। माँ और भाभी का क्रोध श्रीबंकाजी पर केन्द्रित हो जाता और नौकर साफ बच जाते।

जब श्रीबंकाजी बड़ी आयु के हुये और अन्तर का विवेक जागृत हुआ, तब बचपन और युवावस्था की चोरी के इन कारनामों को याद करने से उन्हें बड़ी आत्मग्लानि हुआ करती थी। पश्चाताप की ज्वाला में उनका हृदय जलने लगता था। मन खिन्नता से भर जाया करता था। बचपन की बातों को सोचकर खिन्नता अवश्य होती थी परन्तु यही मान लेते थे कि बचपन आखिर बचपन ही होता है और प्रभु से कातर प्रार्थना किया करते थे कि उनके लड़कपन की इस भूल को प्रभु शीघ्र क्षमा कर दें।

यहाँ पर एक बात का उल्लेख कर देना अत्यन्त आवश्यक लग रहा है—श्रीबंकाजी ने जब भी चोरी की अपने ही घर में की। कभी भी उन्होंने अपने रिशतेदारों के, मित्रों के अथवा किसी अन्य के घर चोरी नहीं की।

उनके जीवन में अनेकानेक कठिन आर्थिक परिस्थितियाँ आयी। उन्होंने अपने रिश्तेदारों-दोस्तों से रुपये उधार अवश्य माँगे परन्तु अपने घर-दुकान के अलावा अन्यत्र कहीं चोरी नहीं की। चोरी करने में भी परोपकार की भावना की ही प्रधानता थी और आर.एस.एस. छोड़ने के बाद तो श्रीबंकाजी ने चोरी करना भी सर्वथा छोड़ दिया।

****

श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार से प्रथम मिलन

श्रीबंकाजी का जन्म वैश्य कुल में हुआ था और घर में वैष्णव संस्कार थे। उनके पूर्वजों द्वारा बनवाये श्रीरामजानकी मन्दिर में श्रीहनुमान चालीसा, श्रीरामचरितमानस का पाठ, कीर्तन आदि होता ही था। प्रत्येक रविवार को संध्या समय उनके घर पर भी संकीर्तन होता। अक्सर दादाजी, पिताजी, बड़े भाई श्रीहनुमानप्रसादजी तथा पडरौना के कुछ वरिष्ठ गणमान्य व्यक्ति घर पर एकत्रित होकर सत्संग किया करते थे। पण्डित श्रीराजारामजी शास्त्री संस्कृत के मूर्धन्य विद्वान एवं महान सन्त थे। वे अत्यन्त विरक्त थे और बहुत सुन्दर सत्संग-वार्ता करते थे। जब भी वे पडरौना में रहते, श्रीबंकाजी के घर पर आते थे। कालान्तर में इन्होंने वृन्दावन जाकर सन्यास ले लिया और इनका नाम श्रीकृष्णानन्दजी हो गया था।

प्राय: प्रतिदिन ही घर पर यह सत्संग हुआ करता था। आज तो कोई सुने तो इस बात पर हँसेगा मगर उन दिनों घर के बड़ों का बहुत लिहाज़ माना जाता था। बड़े लोग बच्चों के सामने अधिक ज्ञान-भक्ति की चर्चा या अन्य कोई वार्ता करने में संकोच महसूस करते थे। घर की सत्संग में बड़ों के बीच श्रीबंकाजी के बड़े भाई को तो प्रवेश मिलता था क्योंकि वे इनसे उम्र में चौदह वर्ष बड़े थे परन्तु श्रीबंकाजी को बालक मानकर उन बड़े लोगों की सत्संग में प्रवेश नहीं दिया जाता था। श्रीबंकाजी सत्संग के लोभी थे और सत्संग से वंचित रहना उन्हें बहुत चुभता था परन्तु संकोचवशात् अपने बड़ों को वे कुछ कह नहीं पाते थे।

प्रसंग 1941 का है जब श्रीबंकाजी नवीं कक्षा में पढ़ रहे थे। वे घर में खिड़की के बाहर से छिपकर सत्संग-वार्ता सुना करते थे। पकड़े जाने पर डाँट कर हटा दिये जाते थे परन्तु बेकरार मन कब माना करता है? वे पुनः किसी दूसरी खिड़की या द्वार के पास इस वार्ता के लोभ में कान लगाकर पहुँच जाया करते थे। उनका भावुक हृदय रसमयी चर्चा के लिये सदा ही लालायित रहता था और बारम्बार यही दोहराता रहता था—**धन्य घरी सोइ जब सतसंगा।**

पण्डित श्रीराजारामजी कभी एक स्थान पर बहुत दिनों तक नहीं रहते थे। वे कभी अयोध्या तो कभी वृन्दावन, कभी बनारस तो कभी किसी अन्य तीर्थ पर आते-जाते रहते थे। वे गोरखपुर स्थित गीतावाटिका भी जाया करते थे। उन दिनों घर में सत्संग-वार्ता के मध्य कभी वे गीताप्रेस के संस्थापक सेठजी श्रीजयदयालजी गोयन्दका, कभी श्रीरामसुखदासजी महाराज, कभी कल्याण सम्पादक श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार, कभी श्रीराधाबाबा की तो कभी वृन्दावन के अन्य सन्तों-साधकों-भक्तों की चर्चा किया करते थे। श्रीबंकाजी का मन श्रीपोद्दारजी की चर्चा सुनकर बड़ा प्रभावित होता था। उन्हें लगता था कि अगर कोई ऐसा समर्थ सदगुरु उन्हें अपने चरणों में स्वीकार कर ले, तो उनकी आध्यात्मिक उन्नति शीघ्र हो सकती है और जीवन को सुन्दर दिशा मिल सकती है।

ये भावनायें मात्र एक सोलह वर्ष के बालक की कोरी भावनायें नहीं थी अपितु थी एक दृढ़ निश्चयी बालक की प्रबल इच्छा, जिसके फलस्वरूप एक दिन श्रीबंकाजी श्रीपोद्दारजी (परम पूज्य रस-घन-मूर्ति श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) से मिलने के लिये गोरखपुर स्थित गीतावाटिका पहुँच गये। बाबूजी ने बहुत प्यार से उन्हें अपने पास बैठाया, नाम पूछा और आने का उद्देश्य जाना। श्रीबंकाजी ने प्रणाम करके अपना संक्षिप्त परिचय दिया। श्रीराजारामजी शास्त्री एवं घर पर सत्संग-वार्ता की सब बातें बाबूजी को बताते हुये उनसे प्रार्थना की—मैं आध्यात्मिक जीवन व्यतीत करना चाहता हूँ। आप मुझे अपने चरणों में स्थान दें। मैं आपके पास रहूँगा और आपकी आज्ञा का पालन करूँगा।

बाबूजी की दृष्टि बड़ी पैनी थी। वे पात्र की योग्यता को भली-भाँति समझते थे, एक ही दृष्टि में पहचान लेते थे परन्तु इतने छोटे बालक को, जो अभी मात्र नवीं कक्षा का विद्यार्थी था, उन्होंने अपने पास रखना उचित नहीं समझा। बाबूजी ने श्रीबंकाजी को बताया कि आदर्श विद्यार्थी कैसा होना चाहिये तथा घर पर रहते हुए ही साधनामय जीवन व्यतीत करने की, स्वाध्याय, भजन, ध्यान, नाम-जप, आदि की प्रेरणा दी और बहुत ही प्रेम से समझा-बुझाकर वापस पडरौना भेज दिया।

माना कि बाबूजी ने श्रीबंकाजी को वापस भेज दिया परन्तु बाबूजी उन्हें कभी भूले नहीं। सिद्ध सन्तों की कुछ ऐसी विशेष कृपा होती है कि जो सुपात्र साधक उनके दृष्टि-पथ पर आ जाता है उसे वे कभी भूलाते नहीं हैं। श्रीबंकाजी यदा-कदा गीतावाटिका बाबूजी-बाबा से मिलने आते रहे और फिर आगे ऋषिकेश तथा रतनगढ़ में भी मिलते रहे। बाबूजी समय-समय पर श्रीबंकाजी की हर दृष्टि से सम्भाल भी करते रहे। एक तरह से भावी जीवन के घनिष्ट सम्बन्ध का यह प्रथम चरण था।

जब श्रीबंकाजी गीतावाटिका गये थे तब पूज्य श्रीराधाबाबा का मौन चल रहा था। उन्होंने दूर से ही पूज्यबाबा को प्रणाम किया था और बाबा की सेवा में जो व्यक्ति थे, उनसे अनेक प्रश्न पूछे थे जैसे मौन क्या होता है? इसे क्यों किया जाता है? इससे क्या लाभ होते हैं? आदि आदि। जब उन्हें पता चला कि मौनव्रत साधक की साधना को दृढ़ बनाता है, मौन होने से वृत्ति स्वत: बाहर की ओर कम जाती है और जप-ध्यान अधिक होता है, तब उन्होंने भी पडरौना लौटकर, मौन लेकर साधना करने का निश्चय किया।

गीतावाटिका से पडरौना लौटने पर श्रीबंकाजी श्रीरामजानकी मन्दिर में सात दिनों तक मौन लेकर रहे। इस अवधि में वे श्रीरामचरितमानस का पाठ तथा नाम-जप किया करते थे। उन्हें इस मौनव्रत नियम के निर्वाह में बड़ी कठिनाई हुई। मन एकान्त में तनिक भी नहीं लगता था और जैसी उन्नति की वे अपेक्षा कर रहे थे वह उन्हें प्राप्त नहीं हुई।

कुछ दिनों बाद उन्होंने अठारह दिन का मौनव्रत लेकर मन्दिर में निवास किया परन्तु यह व्रत निभ नहीं पाया। पूर्व जन्मों के कुसंस्कार इतने अधिक थे कि वे एकान्त में बैठ नहीं पाते थे। मन बहुत अधिक विचलित हो जाता था। स्वभाव से ही मिलनसार बालक यदि हठपूर्वक अपने घर-परिवार वालों से दूर, मित्र-मण्डली से पृथक एकान्त मन्दिर में रहे, तो भला उससे रहा जायेगा? यह व्रत टूट गया। चाहे यह व्रत टूट गया परन्तु साधना-पथ पर आगे बढ़ने की ललक कम नहीं हुई। सन्त और सत्संग की खोज पुन: प्रारम्भ हो गयी।

इस पुस्तक में बारम्बार परम पूज्य सन्त श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार का नाम आयेगा। ये भारत भूमि को पावन करने वाले रससिद्ध सन्त, सुप्रसिद्ध हिन्दी धार्मिक पत्रिका कल्याण के यशस्वी आदि सम्पादक हैं। ये श्रीबंकाजी के गुरुदेव हैं। इनका अति संक्षेप में परिचय श्रीबंकाजी की पुस्तक 'माँ और बाबूजी' में लिखा गया है, वही यहाँ आगे दिया जा रहा है।

****

एक झलक में श्रीपोद्दारजी

लेखक—श्रीजगदीशप्रसादजी शर्मा

भगवान के 'विशेषकार्य' हेतु राजस्थानी अग्रवाल जाति के पोद्दार कुल में सं० 1949 वि० आश्विन कृष्ण 12 शनिवार (17 सितम्बर 1892) को शिलांग (आसाम)—में आपका आविर्भाव हुआ था। श्रीहनुमानजी महाराज की कृपा के फलस्वरूप जन्म होने से आपका नाम रखा गया 'हनुमानप्रसाद'। आपके जीवन में आरम्भ से ही देशसेवा-समाजसेवा की प्रवृत्ति प्रबल थी और आपने स्वदेशी आन्दोलन में शुद्ध खादी प्रयोग का व्रत ले लिया, जिसका निर्वाह आजीवन हुआ। आपका श्रीअरविन्द घोष आदि से निकट सम्पर्क था। क्रान्तिकारी गतिविधियों में भाग लेने के कारण अँग्रेजी सरकार ने आपको जेल भेज दिया और फिर बंगाल के शिमलापाल ग्राम में 21 मास के लिये नजरबन्द कर दिया। वहाँ एकान्त में आध्यात्मिकता का उन्मेष हुआ और गहन स्वाध्याय

के साथ भगवान के नामजप तथा ध्यान की साधना में उल्लेखनीय प्रगति हुई।

सरकार द्वारा बंगाल से निष्कासित किये जाने पर आप सन् 1918 में बम्बई गये। वहाँ लोकमान्य तिलक, लाला लाजपतराय, महात्मा गाँधी, मालवीयजी, संगीताचार्य श्रीविष्णु दिगम्बरजी आदि से घनिष्ट सम्पर्क हुआ। बम्बई निवास की अवधि में समाज सेवा तथा साधना, दोनों ही महत्त्वपूर्ण रही। भगवन्नाम-निष्ठा के फलस्वरूप आपको भगवान श्रीराम के दर्शन हुये। साकारोपासना के साथ-साथ निराकार साधना के क्षेत्र में भी ऐसी स्पृहणीय महदुपलब्धि हुई कि स्वप्न की सृष्टि के समान जगत की प्रतीति एवं निरन्तर आनन्दमय बोधस्वरूप परमात्मा में प्रत्यक्षवत् स्थिति आपकी सहजावस्था थी। इस महदुपलब्धि में बहुत सहायक रहा सन्त प्रवर श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका से प्राप्त सत्संग और क्रमश: श्रद्धेय श्रीसेठजी के प्रति अति पूज्य भाव आपके अन्तर में प्रतिष्ठित हो गया। बम्बई में सत्संग-भवन की स्थापना हुई और आपके सम्पादकत्व में वहीं से सुप्रसिद्ध हिन्दी धार्मिक मासिक पत्रिका 'कल्याण' का सन् 1926 में प्रकाशन आरम्भ हुआ। वहाँ चौपाटी पर पारसी प्रेत से साक्षात् वार्तालाप होने पर उनके उद्धार के लिये आपने गया में श्राद्ध करवाया, फिर अनेक दिव्य लोकों से आपका सम्पर्क स्थापित हुआ।

आपके हृदय में गंगातट पर एकान्तवास की प्रबल आकांक्षा जग उठी, अत: पत्रिका के सम्पादन-संचालन की दृष्टि से सन् 1927 में 'कल्याण' का बम्बई से गीताप्रेस गोरखपुर स्थानान्तरण हो गया, किन्तु ईश्वरीय योजना के अनुसार सम्पादकीय दायित्व से आप मुक्त न हो सके। भगवद्दर्शन की प्रबलोत्कण्ठा होने से आपको सन् 1927 में भगवान श्रीविष्णु के दर्शन हुये और शिवांक तथा शक्ति-अंक के प्रकाशन के समय शक्ति-शिव का भी साक्षात्कार हुआ। सन् 1936-37 में देवर्षि नारद एवं महर्षि अंगिरा के दर्शन हुये तथा उनसे प्रेमोपदेश के साथ-साथ ऐकान्तिक उपासना की महान प्रेरणा भी प्राप्त हुई। यही प्रकर्ष मधुरोपासना भविष्य में आप द्वारा 'ज्ञानोत्तर भावराज्य' संज्ञा से अभिहित हुई, जिसमें आपके रसाद्वैत दर्शन का रहस्य-स्वरूप निखरकर उद्भासित हो उठा। देवर्षि के कथनानुसार दिव्य सन्त मण्डल में आपका

अन्तर्निवेश हो गया। आपने 'कल्याण' पत्रिका का एवं उसके विश्वकोष जैसे विशेषांकों का 44 वर्षों तक सफल सम्पादन किया। श्रीराधामाधव सम्बन्धी विपुल साहित्य के साथ-साथ गद्य-पद्यात्मक प्रभूत मौलिक साहित्य की सृष्टि आपके द्वारा हुई। गीताप्रेस से प्रकाशित सम्पूर्ण साहित्य एवं देवी-देवताओं के चित्रों का निर्देशन-संशोधन-सम्पादन प्रमुख रूप से आपके ही द्वारा सम्पन्न हुआ। आप त्रस्त-रुग्ण-विकलांग मानव की सेवा में सदा तत्पर रहे। गोहत्या-बंदी के लिये सन् 1966 में जो अखिल भारतीय गोरक्षा आन्दोलन हुआ, उसके नेतृत्व करनेवाले सात प्रधान कर्णधारों में से एक आप भी थे। सब धर्मों को आदर देते हुये आप हिन्दू धर्म, हिन्दू संस्कृति, हिन्दू आदर्शों के हृदय से अनन्य पुजारी थे। आपने श्रीरामजन्मभूमि एवं श्रीकृष्ण जन्मभूमि के उद्धार में प्रमुख सहयोग दिया। 'राय बहादुर', 'सर', एवं 'भारतरत्न' जैसी राजकीय उपाधियों के प्रस्तावों को आपने व्याधि समझकर अस्वीकार कर दिया।

आपकी साधना के प्रमुख अंग थे—नामजप, ध्यान, सर्वत्र भगवद्दर्शन और भगवत्कृपा पर विश्वास। भगवान विष्णु के दर्शन के बाद गीतावक्ता भगवान श्रीकृष्ण, फिर वृन्दावनविहारी श्रीमुरलीधर के दर्शन हुये। श्रीराधामाधव के दिव्य लीला-राज्य में प्रवेश होने पर आप महाभाव-रसराज के रस-सिन्धु में सतत निमग्न रहने लगे। गम्भीर निमग्नता के फलस्वरूप भीतर-बाहर सर्वत्र ही श्रीराधामाधवमय हो गया। भाव-समाधि की सघनता के कारण कई-कई घंटे बाह्य की सर्वथा विस्मृति रहती। दिव्य लोकोत्तर भागवती स्थिति में सतत स्थिति होने से उनके स्थूल कलेवर में श्रीराधामाधव युगल नित्य अवस्थित रहकर उनकी सम्पूर्ण चेष्टाओं का नियंत्रण-संचालन करने लगे।

सन् 1927 वि० चैत्र कृष्ण 10 सोमवार (22 मार्च 1971) को प्रिया-प्रियतम श्रीराधामाधव की नित्य लीला में लीन होने तक आपके द्वारा भूतल पर आध्यात्मिकता-आस्तिकता-धार्मिकता-सात्त्विकता-नैतिकता का तन-मन-वचन-जीवन द्वारा प्रचार-प्रसार होता रहा।

****

दो प्रबल विचारधारा

किशोरावस्था में श्रीबंकाजी के मन में दो विचारधारा प्रबल रूप से विद्यमान थी। एक तरफ थी देशभक्ति की धारा और दूसरी ओर थी प्रभुभक्ति की धारा। श्रीबंकाजी का जन्म हिन्दू वैष्णव परिवार में हुआ था और उनके पूर्व जन्म की आध्यात्मिक शुभ सम्पत्ति के नाते प्रभुभक्ति की प्रबल धारा होना स्वाभाविक ही था। श्रीरामचरितमानस का वे नित्य पाठ बचपन से ही किया करते थे। श्रीरामचरितमानस के बालकाण्ड में ऋषिपत्नी अहिल्याजी ने जो स्तुति भगवान श्रीराम के प्रति की है, उसे श्रीबंकाजी प्रायः एकान्त में गाया करते थे। उस वक्त भाव-विभोर अवस्था में उनके कपोलों पर निरन्तर अश्रुधारा बहने लगती थी। वे मीराबाई के, श्रीचैतन्य महाप्रभु के एवं वृन्दावन के अन्य भक्तों के चरित्र भी बड़े चाव से पढ़ा करते थे।

श्रीबंकाजी के हृदय में प्रभुभक्ति के साथ-साथ देशभक्ति की धारा भी कम प्रबल नहीं थी। अंग्रेजों के काले कारनामों का बड़ा ही हृदयस्पर्शी विशद वर्णन सर सुन्दरलालजी ने, 'भारत पर अंग्रेजी राज्य' नामक अपनी पुस्तक में किया था। यह पुस्तक छपते ही अंग्रेज सरकार द्वारा जब्त कर ली गयी थी। किसी प्रकार से इस जब्त पुस्तक की एक प्रति श्रीबंकाजी ने प्राप्त कर ली और हमउम्र मित्रों के साथ एकान्त में बैठकर इस पुस्तक को पढ़ा-सुना करते थे। पुस्तक में वर्णित अंग्रेजों के अत्याचार और काले कारनामों को पढ़कर श्रीबंकाजी का खून खौलने लगता था। वे सोचा करते थे कि भारत को अंग्रेजों के शासन से मुक्त कराने के लिये उनके द्वारा जितना भी योगदान संभव होगा उसे वे अवश्य देंगे।

इस पुस्तक के अलावा उस समय के जो क्रान्तिकारी भक्त थे जैसे सरदार भगत सिंह, चन्द्रशेखर आज़ाद, रामप्रसाद बिस्मिल आदि के जीवन चरित्रों को किसी भी प्रकार से प्राप्त करके वे पढ़ा करते थे। अंग्रेज सरकार अति सतर्क रहती थी कि किसी भी क्रान्तिकारी की आत्मकथा न छपे, कोई देशभक्ति गीत न छपे, भारतीयों को उत्साहित करने वाले कोई साहित्य प्रकाशित न हो, आदि। अंग्रेजी राज्य के विरुद्ध जो भी उत्तेजनापूर्ण लेख छपता

उसे तुरन्त जब्त कर लिया जाता था। इतना सतर्क रहने के बावजूद भी मुख्य-मुख्य क्रान्तिकारियों के जीवन चरित्र चुपचाप यत्र-तत्र, प्रकाशित होते ही थे और जनता ऐसे निर्भीक शूरवीरों की कथाओं को पढ़ने के लिये सदा उत्कंठित रहती थी। ऐसी पुस्तकों का निरन्तर अध्ययन करने से श्रीबंकाजी के मन का झुकाव देशभक्ति की ओर अधिकाधिक बढ़ता चला गया।

****

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के प्रारम्भिक संगठन का लक्ष्य हिन्दू अनुशासन के माध्यम से नवयुवकों का चरित्र निर्माण करके एक हिन्दू राष्ट्र के लिये हिन्दू समुदाय को एकजुट करना था। ये संगठन भारतीय संस्कृति और सभ्यता के मूल्यों को कायम रखने के लिये आदर्श माना जाता था। धीरे-धीरे आर.एस.एस. की वृद्धि एक प्रमुख हिन्दू राष्ट्रवादी संगठन के रूप में हुई जिसके अन्तर्गत कई दर्जन संबद्ध संगठन, शाखाएँ और स्कूल आ गये जहाँ आर.एस.एस. की वैचारिक मान्यताओं का प्रचार-प्रसार होता था।

द्वितीय विश्व युद्ध, 1939-1945, के दौरान श्रीमाधव सदाशिव गोलवलकर राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सर्वोच्च नेता बने। श्रीगोलवलकरजी अपने धर्म, संस्कृति और भाषा को बनाये रखने पर बहुत बल दिया करते थे। श्रीबंकाजी भारतीय संस्कृति और सभ्यता के मूल्यों का पूर्णरूपेण समर्थन करते थे तथा हिन्दुत्व के प्रति श्रद्धावान थे। हिन्दू धर्म, हिन्दू संस्कृति, हिन्दू आदर्शों के हृदय से अनन्य पुजारी थे। देशभक्ति की भावना से अत्यधिक प्रेरित होकर उन्होंने आर.एस.एस. की शाखा में स्वयंसेवक की हैसियत से भाग लेना प्रारम्भ कर दिया। वे स्वयं तो आर.एस.एस. की शाखा में जाते ही और कभी-कभी अपने साथ अपने छोटे भाई श्रीरामनिवासजी को भी ले जाते थे।

आर.एस.एस. की शाखा प्रतिदिन किसी मैदान या खुली जगह पर एक घण्टे की लगती थी। शाखा में सूर्य नमस्कार, व्यायाम, खेल, समता (परेड), गीत और प्रार्थना होती थी। शाखाएँ भी कई प्रकार की होती थीं, प्रभात

शाखा, सायं शाखा, रात्रि शाखा, मिलन शाखा, संघ मण्डली आदि। जो भी सदस्य शाखा में स्वयं की इच्छा से आता, वह 'स्वयंसेवक' कहलाता था। इन शाखाओं में बौद्धिक व शारीरिक क्रियाओं के साथ स्वयंसेवकों का पूर्ण विकास किया जाता था। विचारों का आदान-प्रदान होता, स्थानीय और राष्ट्रीय स्तर पर देश की वर्तमान स्थिति की चर्चा होती और देशभक्ति की भावना को पोषण मिलता था।

पडरौना-गोरखपुर में होने वाली आर.एस.एस. की सभी सभाओं में श्रीबंकाजी भाग लेते, नवीनतम राजनैतिक विषयों पर चर्चा करते तथा अंग्रेजों की कुटिल नीतियों के विरुद्ध भाषण देते। लेखन कार्य में किशोरावस्था से ही दक्ष होने के कारण इनके लिखे भाषण बहुत ओजस्वी और प्रभावकारी होते थे। उनके द्वारा लिखित सामग्री का संयोजन, विचारों का प्रस्तुतिकरण बहुत प्रसंगोचित और सटीक होता था जो श्रोता के हृदय को छू जाता था। अंग्रेजी शासन के विरुद्ध इनके कड़े शब्दों के प्रहार की बड़े-बड़े नेता भी तारीफ़ करते। उनके तत्कालीन आर.एस.एस. के साथी थे भारत के पूर्व प्रधानमंत्री श्रीअटलबिहारी वाजपेयी, श्रीअनिल सिंहल, श्रीरघु रानाडे, श्रीनानाजी देशमुख आदि।

जब श्रीबंकाजी ने आर.एस.एस. की सभाओं में जाना प्रारम्भ किया तो इनके पिताजी को बहुत अप्रिय लगा। तत्कालीन मारवाड़ी समाज 'बनिया बुद्धि' से चलता था और धनोपार्जन और शान्तिपूर्ण जीवन ही उनका ध्येय हुआ करता था। क्रान्तिकारियों और देशभक्तों की राजनीति से वे दूर ही रहना चाहते थे। उन्होंने श्रीबंकाजी को बहुत समझाया और संघ से दूर रहने को कहा परन्तु श्रीबंकाजी की विचारधारा बचपन से ही अटपटी थी जो किसी का शासन मानने को तैयार नहीं थी। वे अपने स्वीकृत पथ पर हठता पूर्वक चलते रहे। सिर्फ पिताजी ने ही नहीं अपितु उनके बड़े भाई श्रीहनुमानप्रसादजी ने और भाभी ने भी बहुत मना किया परन्तु इनके सिर पर तो मातृभूमि को आज़ाद कराने की धुन सवार थी, अत: इन्होंने किसी की एक न सुनी। आर.एस.एस. के रोमांचकारी जीवन का आकर्षण इन्हें बहुत लुभाता था।

धीरे-धीरे ये आर.एस.एस. के मुख्य कार्यकर्ताओं में आ गये। तत्कालीन नियम के अनुसार अगर किसी साधारण स्वयंसेवक को मुख्य कार्यकर्ता की सूची में पदोन्नत किया जाता और विशेष कार्यों के लिये भेजा जाता था तो पहले यह जाँच की जाती थी कि इस व्यक्ति की सहनशीलता कितनी है? पकड़े जाने पर कहीं ये अंग्रेजों के सामने सारे भेद उगल तो नहीं देगा? कहीं ये हमारा भेदिया तो नहीं बन जायेगा? आदि। इन सारी बातों को पता करने का एक सहज तरीका आर.एस.एस. के द्वारा अपनाया जाता था।

एक मोटी मोमबत्ती जला ली जाती थी और कार्यकर्ता को अपनी हथेली जलती मोमबत्ती की लौ के ऊपर रखने को कहा जाता था। अगर उस व्यक्ति का हाथ लपलपाती लौ से जल रहा है, लाल हो गया है, और वह 'उफ' भी नहीं कर रहा है, उसका मुख सौम्य है, एकदम शान्त खड़ा है, शरीर से कोई प्रतिकार नहीं है, तब यह मान लिया जाता था कि यह कार्यकर्ता गुप्त कार्यों को करने के लिये सक्षम है। इसमें विपुल सहनशक्ति है। कठिन परिस्थिति के उपस्थित होने पर ये आसानी से विचलित नहीं होगा। इस सहिष्णुता की परीक्षा के बाद ही आर.एस.एस. के साधारण कार्यकर्ताओं को मुख्य विश्वसनीय कार्यकर्ता का दर्जा दिया जाता था।

ऐसा ही परीक्षण श्रीबंकाजी के साथ भी हुआ। उनके दाहिने हाथ की हथेली का मध्य भाग बड़ी मोटी मोमबत्ती की प्रज्ज्वलित लौ के ऊपर जल रहा था परन्तु वे निस्पन्द शान्त खड़े थे। न आह! न उफ! न कम्पन! न सिहरन! कुछ मिनटों तक आर.एस.एस. के वरिष्ठ कार्यकर्ता श्रीबंकाजी की शारीरिक क्रिया को एकटक देखते रहे। जब कहीं से भी किसी प्रकार की क्रिया लक्षित नहीं हुई तब सर्व सम्मति से उनकी विशेष आर.एस.एस. कार्यकर्ताओं की श्रेणी में पदोन्नति कर दी गयी।

श्रीबंकाजी को इस पदोन्नति से बहुत हर्ष हुआ। उन्हें लगा कि अब वे देश की स्वाधीनता के लिये अधिक योगदान दे सकेंगे। संघ के कार्यों में उनकी रुचि और क्रियाशीलता की तत्काल वृद्धि हुई। वे दिलोजान से

उत्साहपूर्वक देश सेवा में तन्मय हो गये। श्रीबंकाजी की डायरी में लिखी देशप्रेम से ओत-प्रोत एक कविता—

भारत महान भारत विशाल, उज्ज्वल भारत का उच्च भाल

चारों वेदों का अमर ज्ञान, गीतोपनिषद का विमल ज्ञान।
पावन भारत के कण-कण से, कण्ठों से निकला ब्रह्म ज्ञान।
सर-सरिता अपि सागर उताल, कहते गाते हर ताल-ताल
कणकण महान कणकण विशाल,
उज्ज्वल भारत का उच्च भाल॥

ज्ञान भक्ति और कर्म योग से, चारवाक और बौद्ध जैन से,
षट् दर्शन के गहन तत्त्व से, विविध-विशद चिन्तन के रव से।

प्रतिध्वनित हुआ प्रति छोर-छोर, जग भी कहता होकर विभोर
दर्शन महान दर्शन विशाल, उज्ज्वल भारत का उच्च भाल॥

स्नेह और कर्त्तव्य भाव से, अतिथि धर्म के श्रेष्ठ भाव से,
अनुप्राणित भारत का जीवन, सहिष्णुता निस्वार्थ भाव से।
अधना जीवन त्रस्त ग्रस्त है, दुख संकुल है तदापि सत्य है
जीवन महान जीवन विशाल, उज्ज्वल भारत का उच्च भाल॥

अर्थ धर्म और काम मोक्ष पर, चतुराश्रम और चतुर्वर्ण पर
आधारित रचना समाज की, विश्व-प्रेम के अमर मन्त्र पर।
भारत के अन्तर की पुकार, चाहे प्रहार हो बार-बार
रचना महान रचना विशाल, उज्ज्वल भारत का उच्च भाल॥

असुर शक्ति से दलित मेदिनी, जाग उठी तब शत्रु-भेदिनी
राम रूप में कृष्ण रूप में, शक्ति दिव्यतम असुर-मर्दिनि।
विजय केतु उन्मुक्त फहरता, पल-पल संस्कृति के गुण गाता
संस्कृति महान संस्कृति विशाल, उज्ज्वल भारत का उच्च भाल॥

आवृति पुनः तत्वों की, आदर्शों की बलिदानों की
संचालित जिनसे भारत हो, उन स्नेह त्यागमय मंत्रों की।
भारत के नारी नर गायें, भारत के स्वर में जग गाये
भारत महान भारत विशाल, उज्ज्वल भारत का उच्च भाल॥

****

पिताजी की मार

घटना सन् 1942 की है। इन दिनों श्रीबंकाजी आर.एस.एस. में पिताजी की रज़ामन्दी के विरुद्ध अत्यन्त तत्परतापूर्वक कार्य कर रहे थे। वे स्वयं तो बहुत काल से शाखा में जा ही रहे थे और अब उन्होंने अपने छोटे भाई रामनिवास को भी शाखा में ले जाना प्रारम्भ कर दिया था।

जब पिताजी को इस बात की जानकारी हुई तो वे बहुत क्षुब्ध हुये। उनके बड़े पुत्र श्रीहनुमानप्रसाद और उनकी पुत्रवधु श्रीगंगादेवी भी पिताजी की राय से सहमत थे कि आर.एस.एस. में भाग लेने से भविष्य में परिवार पर बहुत बड़ा संकट आ सकता है। सबने मिलकर श्रीबंकाजी को पुनः समझाने का प्रयास भी किया पर दीवाने देश प्रेमियों की उमड़ती देश-भक्ति को भला कौन कब रोक सका है? श्रीबंकाजी पर भी पारिवारिक दबाव का कोई प्रभाव न पड़ा। वे पूर्ववत् उत्साहपूर्वक शाखा में जाते रहे।

श्रीबंकाजी के विरुद्ध शिकायतें सुनते-सुनते पिताजी तंग आ चुके थे। कभी कोठार घर से लकड़ी चोरी, कभी भण्डार घर से घी-अनाज के चोरी चले जाने की शिकायत निरन्तर माँ और भाभी किया करती थीं। बड़े भाई का उपालम्भ था कि दुकान का काम नहीं सम्भालता है। सारा दिन यारी दोस्ती में व्यर्थ गँवाता रहता है। ये सब उलाहने तो थे ही, साथ ही पिताजी को इस बात का रोष भी था कि समझाने और मना करने के बाद भी आर.एस.एस. में जाता है। स्वयं तो बिगड़ ही गया है और अब छोटे भाई को भी संग लगा लिया है। उसका भी भविष्य चौपट कर देगा। इन सारी बातों को सोच-सोचकर पिताजी मन-ही-मन घुट रहे थे।

11 मई 1942 को संध्या सात बजे श्रीबंकाजी और भाई रामनिवास आर॰एस॰एस॰ की शाखा से दुकान पर लौट कर आये। श्रीबंकाजी ने आर॰एस॰एस॰ की वर्दी, सफेद गंजी और खाकी निकर (हाफ-पैंट) पहन रखा था। संयोग से पिताजी उस वक्त दुकान पर ही थे। पुत्रों पर दृष्टि जाते ही वे समझ गये कि ये लोग आर॰एस॰एस॰ से आ रहे हैं, फिर भी उन्होंने दोनों पुत्रों की ओर देखते हुये कड़क कर पूछा—कहाँ से आ रहे हो?

श्रीबंकाजी ने तो कुछ उत्तर दिया नहीं पर दुबारा पूछने पर भयवशात् छोटे भाई ने धीरे से कह दिया—आर॰एस॰एस॰ की शाखा अभी समाप्त हुई है। वहीं से हम दोनों आ रहे हैं।

इतना सुनते ही पिताजी का मुख क्रोध से लाल हो गया। उन्होंने कड़ी दृष्टि से दोनों पुत्रों को देखा और कन्जी नामक नौकर से दुकान तुरन्त बन्द करने के लिये कहा और स्वयं दुकान के बाहर सड़क पर चले आये। दोनों पुत्रों ने पिताजी का अनुगमन किया। मालिक का क्रोधित मुख देखकर कंजी नौकर ने तुरन्त दुकान में ताले लगाकर चाबी मालिक को दे दी। सब घर की ओर चल पड़े।

एक बहुत मजबूत देहरादूनी बेंत की छड़ी घर में रहती थी। छड़ी भी साधारण नही थी, कांटेदार थी। उसमें जगह-जगह गोल-गोल गांठे थी अर्थात सीधी न होकर वह छड़ी गांठो वाली थी। पिताजी प्रतिदिन इसी छड़ी को लेकर प्रातः सैर के लिये जाया करते थे। घर पहुँचते ही उन्होंने वह सख्त छड़ी उठाई और घर के बरामदे में आकर खड़े हो गये। पिताजी ने रोष में भरकर वह छड़ी घुमाई और पुत्रों को पीटने लगे। अपनी पूरी शक्ति से वे छड़ी घुमाकर पुत्रों को मार रहे थे।

जहाँ दो-चार छड़ी छोटे भाई रामनिवास पर पड़ी वह भूमि पर बैठ गया और रो पड़ा। दर्द से कराहते हुये उसने कहा—कोनी जाऊँ, कोनी जाऊँ! इब शाखा म कदै भी कोनी जाऊँ। अर्थात (नहीं जाऊँगा, नहीं जाऊँगा, अब शाखा में कभी भी नहीं जाऊँगा।)

रामनिवास को भूमि पर रोता हुआ देखकर और जहाँ छड़ी लगी थी, शरीर के उस भाग को अपने हाथों से दबाता-सहलाता हुआ देखकर, पिताजी ने उसे मारना छोड़ दिया और अपना पूरा ध्यान समक्ष स्थिर खड़े पुत्र राधेश्याम पर केन्द्रित कर दिया। वे तड़ा-तड़, तड़ा-तड़ छड़ी घुमाकर श्रीबंकाजी को मारने लगे।

श्रीबंकाजी ने उस वक्त आर॰एस॰एस॰ की वर्दी, मात्र गंजी और हाफ-पैंट पहना हुआ था। कठिन गांठ वाली बेंत की छड़ी की मार बड़ी पीड़ादायक होती है और यहाँ तो श्रीबंकाजी के कोमल देह पर एक दो नहीं लगातार सटा-सट वर्षा हो रही थी परन्तु न तो उनके मुँह पर आह थी! न कराह! न आँसू! न सिसकी! श्रीबंकाजी न हिले, न शिकायत की, न कोई प्रतिकार किया। पाषाण की भाँति होठों को दबाये, मुट्ठी बाँधे, स्थिर, निष्कम्प खड़े रहे। पिताजी मारते रहे, मारते रहे।

सामने के दक्षिण बरामदे में श्रीबंकाजी के बड़े भाई श्रीहनुमानप्रसादजी, उनकी भाभी श्रीगंगादेवी एवं श्रीकिसनी मैया खड़े-खड़े इस अमानवीय दृश्य को देख रहे थे। अगर कोई पिता अपने पुत्र को दो-चार थप्पड़ मारे तो यह आम बात है मगर इस प्रकार लाठी से निर्दयतापूर्वक पीटना तो ऐसा ही था मानो अंग्रेजों की काल कोठरी में क्रूरतापूर्वक अत्याचार किया जा रहा हो। बड़े आश्चर्य की बात है कि इस नृशंसता को देखकर भी परिवार में किसी का मन नहीं पसीजा। न कोई श्रीबंकाजी को बचाने आया न छुड़ाने। सब मूकदर्शक बने हुये थे। निष्ठुरतापूर्वक करीब-करीब 50-60 छड़ी चलाने के बाद पिताजी एकदम थक गये, पसीने-पसीने हो गये और उन्होंने छड़ी को जोर से भूमि पर पटकते हुये कहा—चला जा, निकल जा यहाँ से।

श्रीबंकाजी जो अबतक पिताजी के समक्ष जड़वत् खड़े थे धीरे-धीरे चलते हुये घर के बाहर आ गये। अब जायें कहाँ? यह सोचने की क्षमता भी उनमें नहीं बची थी। अनायास कदम जिस ओर बढ चले श्रीबंकाजी उधर ही चल पड़े। रात्री का अन्धेरा था। निरुद्देश्य वे सूनी सड़क पर चले जा रहे

थे। अनजाने में ही उनके कदम बढते रहे और वे चलते रहे। कुछ समय बाद उन्होंने स्वयं को अपने स्कूल के प्लेग्राउण्ड में पाया। वहाँ एक लकड़ी की बेंच थी। उसपर ही वे पड़ गये। शरीर में दर्द की सीमा नहीं थी। न भोजन किया था, न पानी पीया था। न कोई साथी था, न सम्भालने वाला और अपराध क्या था इस सोलह वर्षीय बालक का ? निस्वार्थ देश प्रेम !

हाय ! वह रात्रि कालरात्रि की भाँति कराहते-छटपटाते उस लकड़ी की बेंच पर कटी। इतनी अधिक मार के कारण सारे शरीर में सूजन आ गयी थी और सवेरे तक उनकी देह फूल कर करीब दुगुनी हो गयी। हर तरफ छड़ी के लाल-नीले निशान थे, कहीं-कहीं तो चमड़ी उधड़ गई थी। रात भर वे अर्धजाग्रत-अर्धमूर्छित अवस्था में तड़पते रहे।

हर रात्री की भोर होती ही है। सूर्योदय हुआ, यथासमय स्कूल में विद्यार्थी आने लगे। कुछ बालकों ने श्रीबंकाजी को प्लेग्राउण्ड की बेंच पर पड़ा देखा तो तुरन्त उनके मित्रों को खबर की। उनके मित्र दौड़े चले आये। श्रीबंकाजी की विकट अवस्था को देखकर सभी मित्र अचम्भित रह गये। सबके आश्चर्य का ठिकाना न था कि यह क्या हुआ ? कैसे हुआ ? किसने किया ? क्यों किया ? श्रीबंकाजी अचेतावस्था में थे। उनकी फूली हुई देह पर लाल-नीले निशान और उधड़ी चमड़ी देखकर सभी मित्र अत्यन्त घबरा गये।

उनके एक मित्र की बहन खेतानों के अस्पताल में लेडी डॉक्टर थी। उसने सुझाव दिया कि राधेश्याम को तुरन्त उनकी बहन के पास ले जाना चाहिए। चोट बहुत अधिक है अत: अस्पताल में ही उचित परामर्श मिल सकेगा और वहाँ उसकी बहन इन्हें सम्भाल लेगी। सभी विद्यार्थियों को उसका सुझाव पसन्द आया। सबने मिलकर श्रीबंकाजी को धीरे-धीरे सहलाकर जगाया, जल पिलाया और किसी प्रकार सहारा देकर अस्पताल ले आये। मित्रों के लाख पूछने पर भी श्रीबंकाजी ने कुछ नहीं बताया कि उनकी यह दशा कैसे हुई और किसने की।

अबतक दिन चढ आया था और पिताजी का क्रोध शान्त हो गया था।

अब उन्हें चिन्ता होने लगी कि राधेश्याम को मैंने क्रोध में आकर इतना मारा है और वह रातभर घर भी नहीं आया, क्या पता कहाँ गया होगा ? चोट तो अवश्य लगी ही होगी, पीड़ा भी होगी पर उसकी कोई खबर नहीं है। आखिर बात क्या है ? उन्होंने रामनिवास से पूछा कि राधेश्याम कि कोई खबर है क्या ? श्रीरामनिवासजी ने नकारातमक उत्तर दिया। पिताजी ने देखा कि उनके शरीर पर छड़ी के गहरे निशान है। अब उन्हें और अधिक चिन्ता हुई। जब मात्र दो-चार छड़ी के निशान रामनिवास के शरीर पर इतने गहरे हैं तब भला राधेश्याम की क्या दशा होगी ? उन्हें कुछ पश्चाताप भी हुआ पर अब भला हो भी क्या सकता था ?

अब राधेश्याम की खोज करने के लिये पिताजी स्वयं घर से निकले। अपने नौकरों को आस-पड़ोस में दौड़ाया पर कुछ पता न चला। पड़ोस में श्रीमंगलसिंह नामक होमियोपैथिक डॉक्टर थे। वे मित्र और अच्छे सलाहकार भी थे। पिताजी ने रात की सारी घटना उन्हें सुनाई और अपनी करनी पर पछतावा किया। श्रीमंगलसिंहजी ने अनुमान लगा लिया कि अगर राधेश्याम घर पर नहीं है तो अवश्य मित्रों के पास होगा। श्रीमंगलसिंहजी ने खेतानों के अस्पताल में पता करने की सलाह दी। पिताजी अस्पताल पहुँचे तो श्रीबंकाजी के मित्र मिल गये जो चिन्तित अवस्था में बाहर ही खड़े थे। उनसे पिताजी को राधेश्याम का सब समाचार मिला कि डॉक्टर ने दर्द और सूजन कम होने की दवा दे दी है और वे अस्पताल के एक कमरे में लेटे हुये है। पिताजी ने डॉक्टर को धन्यवाद दिया और श्रीबंकाजी से मिलकर कहा—जो होना था वह तो हो ही चुका है। यहाँ रह कर क्या होगा, चलो अब घर चलो।

श्रीबंकाजी ने कोई प्रतिकार नहीं किया, वे पिताजी के साथ घर चले आये। सूजन की वेदना और चोट के निशान इतने अधिक थे कि दवाईयों का प्रभाव शीघ्र हो ही नहीं रहा था। घरवालों को चिन्ता हुई कि कहीं देह में कोई स्थायी खराबी न रह जाये। देसी और अंग्रेजी, दोनों प्रकार के इलाज हो रहे थे। अन्त में दूधनाथ नामक नौकर ने दो महीने तक लगातार दवा और देसी शराब की मालिश दिन में तीन बार की, तब जाकर कहीं सूजन कम हुई और

देह सामान्य हुआ। इस घटना के बाद पिताजी ने बहुत दिनों तक श्रीबंकाजी से आर.एस.एस. के विषय में कोई बात नहीं की।

यह दिन श्रीबंकाजी के जीवन के सबसे अधिक भयंकर पीड़ादायक दिनों में से एक था। इस घटना का श्रीबंकाजी के कोमल हृदय पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा। नब्बे वर्ष की आयु में, अत्यन्त दुखित मन से जब वे मुझे यह घटना सुना रहे थे तब ऐसा लग रहा था कि इनके भावुक मन में अभी भी उस दिन की बहुत गहरी आन्तिरक व्यथा है। पिताजी ने मारा इस बात का जितना दुख था उससे भी कहीं अधिक दुख इस बात का था कि मैया, बड़े भाई और भाभी इस दृश्य को देख रहे थे पर कोई भी पारिवारिक सदस्य पिटते बालक को बचाने नहीं आया। वे इस बात को कभी भूल नहीं पाये।

****

अलसीसर गमन

1942 के मार्च मास में श्रीबंकाजी ने नवीं कक्षा प्रथम श्रेणी से उत्तीर्ण कर ली और वे दसवीं कक्षा के विद्यार्थी थे। इसी समय 1942 में पूज्य महात्मा गाँधी की प्रेरणा से कांग्रेस पार्टी ने 'भारत छोड़ो आन्दोलन' का प्रस्ताव पारित किया और यह निर्धारित किया गया कि आन्दोलन 9 अगस्त 1942 से आरम्भ किया जायेगा। इस प्रस्ताव के पारित होते ही सारे देश में जोश की लहर आ गयी। अंग्रेज शासक अधिक सावधान हो गये परन्तु गाँधीजी की आँधी का वेग बड़ा तीव्र था। यह अंग्रेज सरकार के लिये बड़े संकट का काल था। द्वितीय विश्व युद्ध छिड़ चुका था जो 1939 से 1945 तक चला।

द्वितीय विश्व युद्ध के पहले तक विश्व के अनेक देशों पर अंग्रेजों का आधिपत्य था और ऐसी कहावत प्रचलित थी कि अंग्रेजी राज्य में सूर्यास्त होता ही नहीं है। उनकी सेना कभी हार का मुख नहीं देख सकती। Union Jack के परचम को कोई झुका नहीं सकता। मगर द्वितीय विश्व युद्ध में पासा पलट गया। उस द्वितीय विश्व महायुद्ध में जर्मनी, जापान और इटली एक साथ थे और दूसरी तरफ अमेरिका, इंगलैण्ड और रूस एक साथ थे। जर्मनी के

नेता हिटलर की सेना कदम-कदम यूरोप में विजयी हो रही थी। इधर ऐशिया में जापान की सेना बुरी तरह अंग्रेजी सेना को रौंधती हुई बढ़ती चली जा रही थी। जापानी सेना ने बरमा पर आधिपत्य कर लिया था और अब आसाम की तरफ बढ़ रही थी।

अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि से जब विश्व के विभिन्न भागों में अंग्रेजों को पराजय देखनी पड़ रही थी, इसी विकट काल में कांग्रेस ने 'भारत छोड़ो' का प्रस्ताव पारित किया। सारे देशवासियों के मन में 9 अगस्त की प्रतीक्षा थी। अंग्रेज सरकार पीछे हटने को तैयार नहीं थी। उसने अपनी प्रशासकीय लगाम कस ली थी। इधर भारतीयों का उत्साह भी कम नहीं था। उत्साह इतना अधिक था कि 9 अगस्त की प्रतीक्षा कौन करे? उत्तर प्रदेश के चौरी-चौरा शहर के नागरिकों ने थाने में आग लगा दी। आग लगाते ही आन्दोलन की ज्वाला भड़क पड़ी। अब जगह-जगह यही दृश्य दिखलाई देने लगा। विद्यार्थियों ने स्कूलों से, न्यायालयों से, सरकारी कार्यालयों से अंग्रेजी झण्डा उतारना और तिरंगा फहराना प्रारम्भ कर दिया। सरकारी भवन और थाने आदि में आग लगाने की प्रक्रिया गाँव-गाँव और शहर-शहर में चालू हो गई।

आन्दोलन की लहर से पडरौना अलग नहीं रहा। श्रीबंकाजी ने इस आन्दोलन में खुल कर भाग लिया। अंग्रेजी शासन के विरुद्ध जो जुलूस निकलते थे और जगह-जगह तिरंगा फहराया जाता था एवं सभायें होती थी, सबमें श्रीबंकाजी उत्साहपूर्वक भाग लेते थे तथा ओजस्वी भाषण भी देते थे। इस काल में वे विद्यार्थियों के निर्भीक युवा नेता के रूप में उभर कर सामने आ रहे थे।

अंग्रेजों का दमन चक्र तेज़ी से चल पड़ा। सत्याग्रहियों को जेल में ठूसा जाने लगा। जेल में जगह कम होने पर कारागार शिविर बनाये गये जहाँ सत्याग्रहियों को कैद रखा जाता था। श्रीबंकाजी ने खुले आम आन्दोलन में भाग लिया था अत: अंग्रेजी शासकों की blacklist में उनका नाम आना स्वाभाविक था। उस जमाने में जिन व्यक्तियों का नाम अंग्रेजी सरकार की blacklist में आ जाता था, उन व्यक्तियों पर तथा उनके परिवार वालों पर

सरकार की बड़ी सख्त नज़र हो जाती थी। अंग्रेजी सरकार द्वारा उनके परिवार वालों को पकड़ना, धमकाया जाना, सताया जाना और उनकी जायदाद को जब्त कर लेना आम बात थी। अंग्रेजों की दहशत सबके मन में बहुत अधिक रहती थी।

श्रीबंकाजी का नाम अंग्रेजों की blacklist में आया है, इस बात की जानकारी किसी प्रकार से उनके पिताजी को मिल गयी। पिताजी अत्यधिक आतंकित हो उठे। वे इतने अधिक भयान्वित थे कि अंग्रेज सरकार पुत्र राधेश्याम को न सिर्फ गिरफ्तार करेगी बल्कि हमारे मकान, दुकान, ज़मीन, जायदाद, कारोबार आदि सबको जब्त कर लेगी। घर में अन्य पुत्र हैं, पुत्रवधु है, बच्चे हैं जो प्रतिदिन स्कूल जाते हैं, बहु-बेटियाँ हैं, सबको खतरा हो गया है। कोई भी सुरक्षित नहीं है। एक ओर श्रीबंकाजी के मन में देश को आज़ाद कराने की प्रबल उमंग थी जो किसी का शासन मानने वाली नहीं थी और दूसरी ओर पिताजी श्रीहरिरामजी अतिशय भयभीत थे अंग्रेजी सरकार की कड़ी नज़र से।

अपने पुत्र राधेश्याम को, परिवार वालों को, और पूर्वजों के जमे-जमाये मकान-कारोबार-दुकान आदि को बचाने के लिये पूज्य पिताजी ने यही उचित समझा कि पुत्र राधेश्याम को पडरौना से बहुत दूर, देस ले जाकर छिपा देना चाहिये। अगर घर पर पुलिस आ गई तो पूर्वजों की सब इज्ज़त माटी में मिल जायेगी और blacklisted होने के कारण पुलिस तो आनी ही थी। अतः उन्होंने तत्काल सपरिवार पूर्वज भूमि अलसीसर, राजस्थान जाने का निर्णय लिया।

1942 सितम्बर मास में घर के सभी सदस्यों को लेकर पिताजी पूर्वज भूमि अलसीसर चले गये। उनके साथ दादाजी श्रीजयनारायणजी, दादीजी, माँ (किसनीदेवी), बड़े भाई श्रीहनुमानप्रसादजी, भाभीजी, छोटे भाई श्रीरामनिवास और श्रीगोविन्दकुमार, बड़े भाई के पुत्र श्रीप्रभातकुमार, श्रीसुशीलकुमार एवं पुत्री प्रेमाबाई, मुकुन्द नाम का एक नौकर तथा श्रीबंकाजी थे। दुकान और कारोबार चारों मुनीमों के भरोसे छोड़ना पड़ा।

****

परिवार में किसी का भी मन नहीं था अलसीसर जाने का किन्तु समय का चक्र कुछ इस विधि से चला और परिस्थितियों ने कुछ ऐसा मोड़ लिया कि सबको यकायक भागकर अलसीसर आना ही पड़ा। राजस्थान का यह प्रान्त आज भी उन्नति से कोसों दूर है तो आज़ादी के पहले क्या रहा होगा इसका सहज अनुमान लगाया जा सकता है। चारों ओर दूर-दूर तक रेतीले धौरे थे जहाँ दिन-रात रेत उड़ा करती थी। पूर्वजों की पुरानी हवेली थी जिसमें पडरौना के भवन की भाँति सुख-सुविधाएँ नहीं थी। बिजली तो थी ही नहीं यहाँ तक की शौच के लिये भी घर से बहुत दूर रेतीले धौरों पर जाना पड़ता था। कोई काम-कारोबार नहीं था, अर्थोपार्जन का साधन नहीं था। जीवन में अचानक आये इस बदलाव से परिवार के सभी सदस्य बहुत दुःखी थे और इन सभी समस्याओं के लिये श्रीबंकाजी को दोषी मान बैठे। पडरौना का व्यवसाय मुनीमों के हाथों में छोड़ने की वजह से व्यापार में भी बेहद नुकसान उठाना पड़ा।

मातृभूमि के लिये अपना सर्वस्व अर्पण कर सके ऐसे आत्मोत्सर्ग की भावना बिरले ही सौभाग्यशाली व्यक्तियों में होती है। साधारण मानव तो अपनी घर-गृहस्थी चलाने में ही लगा रहता है। श्रीबंकाजी को अपना नाम blacklist में देखकर भी कोई खेद नहीं हुआ। पडरौना छोड़कर भागने के पक्ष में भी वे नहीं थे। घरवाले भले ही उनको दोषी माने परन्तु उन्होंने निस्वार्थ भाव से देशसेवा की थी और इसके लिये उनके मन में कोई पश्चाताप नहीं था।

चाहे श्रीबंकाजी स्वयं को दोषी न माने परन्तु पारिवारिक सदस्य उनसे एकदम खुश नहीं थे। श्रीबंकाजी के बड़े भाई और भाभी उनसे बहुत रुष्ट हुये। उनके पुत्र और पुत्री पडरौना के स्कूल में पढ़ते थे। देस जाने से उनकी स्कूल की पढ़ाई बीच में ही छूट गयी। श्रीबंकाजी की भाभी उन्हें हर वक्त खरी-खोटी सुनाने लगी। सामान्य जन की दृष्टि से देखा जाय तो उनका रुष्ट होना स्वाभाविक था। कोई भी व्यक्ति अपने जमे जमाये कारोबार को छोड़कर, घर के सुखों को त्यागकर, अंग्रेजी सरकार से भयभीत होकर पूर्वज भूमि में पालायान करना नहीं चाहता है। उन्होंने पहले भी बहुत बार आर॰एस॰एस॰ में

भाग न लेने के लिये श्रीबंकाजी को समझाया था। अब स्थिति ऐसी थी कि मधुर रिश्तों में सदा के लिये एक कड़ी गाँठ पड़ गयी थी।

जब श्रीबंकाजी पडरौना से अलसीसर गये थे तब अपनी दसवीं कक्षा के पाठ्यक्रम की पुस्तकों को साथ ले गये थे। अलसीसर जैसे ग्रामीण इलाके में और कुछ तो करने को था नहीं, वे हर वक्त अपनी पुस्तकों का अध्ययन करते रहते। उनका मन यहाँ एक क्षण को भी नहीं लग रहा था। न यहाँ स्कूल था, न मित्र और न ही कोई संगी-साथी। आर॰एस॰एस॰ की जोश-ख़रोश से कोसों दूर रेगिस्तान के धौरों पर अकेले बैठे श्रीबंकाजी पुनः पडरौना लौटने के सपने देखा करते।

जो दशा इनकी थी वही दशा मुकुन्द नामक नौकर की थी। वह नौकर उत्तर प्रदेश में बोली जाने वाली देहाती भाषा ही जानता था और यहाँ अलसीसर के स्थानीय लोग केवल मारवाड़ी भाषा में ही बात करते थे, अतः वह किसी से ठीक प्रकार से बात भी नहीं कर पाता था। श्रीबंकाजी ने उसका उदास मुख लक्षित किया और कारण जानना चाहा। मुकुन्द ने बताया कि वह यहाँ ऊब गया है और पुनः पडरौना लौटना चाहता है। उसे तो अंग्रेज सरकार से कोई भय भी नहीं है, वह तो बेकार ही यहाँ अलसीसर में फँस गया है। मौका मिलते ही वह भाग जायेगा।

मुकुन्द की बातों को सुनकर श्रीबंकाजी के नेत्रों में चमक आ गयी और उनके मन में एक नई युक्ति जागृत हुई। उन्होंने चुपचाप एक योजना बनाई। दादाजी की सन्दूक से कुछ रुपये चुराये, मुकुन्द को अपनी योजना में मिलाया और स्थानीय ऊँटवाले से साँठ-गाँठ कर ली। मात्र कुछ रुपयों के लोभ में ऊँटवाला तैयार हो गया और अर्धरात्रि ऊँटगाड़ी में बैठकर दोनों भागे और बाद में रेल द्वारा रेवाड़ी, दिल्ली, लखनऊ, गोरखपुर होते हुये पडरौना आ गये। परिवार वालों को अपनी योजना की भनक तक नहीं लगने दी क्योंकि जानते थे कि कोई उनकी सहायता तो करेगा नहीं, उलटे जाने और नहीं देगा। कहीं पिताजी को खबर लग गई तो आपत्ति ही आ जायेगी इसलिये रातों रात भागे। उधर घर में प्रातःकाल उनकी खोज़ हुई तो उनके कक्ष में पुस्तक और कपड़े

आदि न देखकर पिताजी का माथा ठनका। उन्हें यह समझते देर न लगी कि स्वच्छन्द पक्षी को पिंजरे में रख भले लो, अवसर मिलते ही वह उड़ जाता है। अब वह हाथ आने से रहा।

श्रीबंकाजी ने पडरौना आकर अपनी दसवीं कक्षा की पढ़ाई पुनः प्रारम्भ कर दी और नियमित रूप से स्कूल जाने लगे। अलसीसर से बिना बताये भाग जाने के कारण उनके पिताजी और भाई उनसे और भी अधिक नाराज़ हो गये। उनका कुपित होना स्वाभाविक था। जिसके कारण उन्होंने घर-बार छोड़ा, इतने दुःख झेले वही अगर बिना बताए धोखा देकर भाग जाये तो क्रोध तो आयेगा ही। कुछ काल पश्चात जब अंग्रेजों का मामला कुछ ठण्डा पड़ा तब सब पुनः पडरौना लौट आये लेकिन इस आवागमन में परिवार की अत्याधिक आर्थिक हानि हुई। सारा व्यापार चौपट हो गया, जमा जमाया कारोबार नष्ट हो गया।

****

गुलाब पर लेख

श्रीबंकाजी ने देस से पडरौना लौटने पर अपनी दसवीं कक्षा की पढ़ाई पुनः प्रारम्भ कर दी और नियमित रूप से स्कूल जाने लगे। एक दिन हिन्दी के अध्यापक श्रीचन्द्रिका सिंह ने सभी छात्रों को गुलाब पर कुछ पंक्तियाँ लिखने के लिए कहा और 10-15 मिनट का समय दिया। इस निर्धारित अवधि के बाद सभी छात्रों को एक-एक करके स्वलिखित पंक्तियाँ, कक्षा में खड़े होकर सभी विद्यार्थियों के समक्ष सुनानी थी।

यह पाठ कोई पूर्वनियोजित नहीं था, अचानक ही लिखने के लिये कहा गया था। सभी छात्र अपनी कापी में तत्परतापूर्वक लिखने लगे। अवधि पूर्ण होने पर अध्यापक महोदय ने विद्यार्थियों से लिखित पंक्तियाँ सुनाने को कहा। प्रायः सभी छात्रों ने गुलाब पुष्प के सौन्दर्य पक्ष का विस्तृत वर्णन करते हुये उसकी सुकोमलता, सुन्दरता, मंजुलता, सौरभ, वर्ण, उपयोगिता आदि गुणों पर प्रकाश डाला और स्वलिखित पंक्तियाँ सुनाने लगे। अध्यापकजी इस वर्णन

को रुचिपूर्वक सुन रहे थे और किसी छात्र को "अच्छा" और किसी को "बहुत अच्छा" कहकर टिप्पणी करते चले जा रहे थे।

जब श्रीबंकाजी से पढ़ने के लिए कहा गया तो उन्होंने अपनी कापी उठाई और खड़े होकर स्पष्ट वाणी में स्वलिखित पंक्तियाँ पढ़नी आरम्भ की। श्रीबंकाजी की प्रथम पंक्ति थी—

गुलाब न यहाँ निखर..............., गुलाब न यहाँ बिखर..............., ये गुलाम देश है।

इन्हीं पंक्तियोंकी विस्तृत व्याख्या करते हुये श्रीबंकाजी आगे बोलते चले गये—

ए गुलाब! माना कि तुम अत्यन्त शोभायमान हो, आकर्षक हो, परम सुघर-सुभग-सुरंग-सुरूप हो परन्तु तुम्हें यहाँ कौन देखेगा भला? यह देश, यह भारत भूमि आज पराधीन है। यहाँ गाँव-गाँव में दरिद्रता और भुखमरी है। जहाँ खाने को अनाज नहीं, जहाँ हर आँगन बच्चे भूख से बिलख रहे हैं, वहाँ तुम्हारी सुन्दरता-मनोहरता भला क्या काम आयेगी?

ए गुलाब! माना कि तुम अत्यन्त सुकोमल हो, मृदुल हो परन्तु इस देश में अंग्रेजों के खौफ से सबके रोंगटे खड़े हैं। हर गली में आतंक है, हर चौक पर क्रूरता का नग्न नाच है, भयानक काल चल रहा है। जहाँ हर क्षण अंग्रेजों द्वारा हो रहे अत्याचार का त्रास हो वहाँ तुम्हारी कोमलता क्या सुख प्रदान कर पायेगी?

ए गुलाब! तुम तो अपसराओं का सर्वश्रेष्ठ श्रृंगार हो, अपने रूप-लावण्य से तुम देवताओं के मालाओं की शोभा बढ़ाते हो, शिरोभूषण बनते हो। परन्तु हाय! यहाँ तो हर घर में शहीदों की विधवा स्त्रियों का करुण क्रन्दन है। अनाथ बालकों का आर्त रुदन है। कौन तुम्हें अपने बालों का श्रृंगार बनायेगा? कौन तुम्हें गजरों में गूँथेगा? अत: मेरा कहा मानो।

गुलाब न यहाँ निखर..............., गुलाब न यहाँ बिखर..............., ये गुलाम देश है।

श्रीबंकाजी की इन करुणात्मक हृदयस्पर्शी पंक्तियों को सुनकर विद्यार्थियों

सहित अध्यापक श्रीचन्द्रिका सिंह भी आश्चर्यचकित रह गये। अहो ऐसे मृदुल भाव! ऐसा मर्मस्पर्शी चित्रण! गुलाब के सदगुणों द्वारा देश की वर्तमान स्थिति का ऐसा मार्मिक हृदयद्रावी तुलनात्मक विवरण सबके मन को छू गया। अंग्रेजों के शासन काल में जहाँ प्रत्येक भारतीय के मन में देशप्रेम का भाव प्रबल था वहाँ ऐसी अद्भुत भावाभिव्यक्ति हृदय से सराहना का विषय थी। इन पंक्तियों की चर्चा जंगल के आग की भाँति हर एक कक्षा में फैलते-फैलते प्रधानाचार्यजी तक भी पहुँची और सबने श्रीबंकाजी के भावुक हृदय और अद्भुत लेखन प्रतिभा की भूरि-भूरि प्रशंसा की।

बाद में तो श्रीबंकाजी ने **गुलाब न यहाँ निखर, गुलाब न यहाँ बिखर** शीर्षक से एक कविता भी लिखी थी जो इन्हीं भावों पर आधारित थी परन्तु वह अब उपलब्ध नहीं है। वह कविता उन्होंने अपने एम.ए. के अध्यापकों को सुनाई थी और उस काल में वह बहुत लोकप्रिय भी हुई थी।

****

आर॰एस॰एस॰ गोरखपुर

1943 में श्रीबंकाजी ने दसवीं कक्षा की परीक्षा प्रथम-श्रेणी से उत्तीर्ण कर ली। प्रथम-श्रेणी का अर्थ हुआ 60 प्रतिशत से अधिक अंक प्राप्त करना। उन दिनों आजकल की भाँति 80-90 प्रतिशत अंक नहीं दिये जाते थे। अगर किसी छात्र का 60 प्रतिशत से अधिक अंक आया है तो वह अतिउत्तम परीक्षा-फल माना जाता था। श्रीबंकाजी तो सदा से ही अत्यन्त बुद्धिमान और उत्कट परिश्रमी थे अत: उनका ऐसा प्रमाण-पत्र अपेक्षित ही था। परिवार में सभी को इनकी First Division आने की अत्यधिक प्रसन्नता थी परन्तु पिताजी के तो आनन्द की सीमा नहीं थी। उन्होंने पडरौना में सारे जाति-बिरादरी-रिश्तेदारों की गोष्ठी बुलवाई। दावत में सबको खूब प्रेम से सुस्वादु भोजन करवाया गया।

उस जमाने में पडरौना में इन्टरमीडियेट (कक्षा-11,12) की सुविधा उपलब्ध नहीं थी। अत: 1943 में श्रीबंकाजी ने गोरखपुर के सेंट एण्ड्रूज कॉलेज में, इन्टरमीडियेट प्रथम वर्ष में अपना दाखिला करवाया और वहीं

कॉलेज होस्टल में रहने लगे। गोरखपुर पडरौना से मात्र 80 कि॰मि॰ की दूरी पर है। अवकाश मिलने पर वे बस द्वारा घर चले जाते थे।

उन दिनों गोरखपुर आर॰एस॰एस॰ शाखा के प्रमुख श्रीनानाजी देशमुख थे। श्रीनानाजी उन लोगों में थे जिन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन राष्ट्रसेवा में अर्पित कर दिया था। वे संघ प्रचारक के रूप में गोरखपुर भेजे गये और उन्होंने लोगों को संघ की विचारधारा के बारे में बताया। यह कार्य आसान नहीं था। संघ के पास बड़े कार्य की तो छोड़ो, दैनिक खर्च के लिये भी पैसे नहीं होते थे। श्रीनानाजी को धर्मशालाओं में ठहरना पड़ता था और बारम्बार धर्मशाला बदलनी पड़ती थी क्योंकि एक धर्मशाला में लगातार तीन दिनों से अधिक समय तक मुफ्त ठहरने नहीं दिया जाता था। तीन साल के अन्दर उनकी कड़ी मेहनत रंग लायी और गोरखपुर के आसपास संघ की ढाई सौ शाखायें खुल गयी।

श्रीबंकाजी गोरखपुर में आर॰एस॰एस॰ में जाने लगे। गोरखपुर बड़ा शहर होने के कारण यहाँ पर आर॰एस॰एस॰ की शाखा पडरौना शाखा से बहुत बड़ी थी और कार्य भी अधिक था। जहाँ एक ओर श्रीबंकाजी के अन्य सभी संगी-साथी होस्टल से गुट बनाकर सिनेमा देखने जाते, रेडियो सुनते, मनोरंजन के विविध साधनों का उपभोग करते, वहीं श्रीबंकाजी उन सबसे पृथक, अकेले पैदल चलकर आर॰एस॰एस॰ के कार्यालय में जाते और श्रीनानाजी देशमुख की देखरेख में भारतीय संस्कृति और सभ्यता के मूल्यों को कायम रखने में ततपरता से जुट जाते। उनके जैसी लगन और सोच उनके समवयस्कों में दुर्लभ ही थी।

आर॰एस॰एस॰ का कार्यालय इस्माइलपुर में था जो इनके सेंट एण्ड्रूज होस्टल से बहुत दूर था। पैदल आने-जाने में बहुत समय नष्ट होता और परेशानी भी होती परन्तु फिर भी देशभक्ति की सच्ची भावना के सामने चाहे जितनी भी रुकावट आये कोई न कोई मार्ग निकल ही आता है। एक साल तक तो ये प्रतिदिन पैदल आने-जाने का क्रम निभाते रहे लेकिन ग्यारवीं कक्षा पास करने के बाद 1944 में श्रीबंकाजी ने सेंट एण्ड्रूज होस्टल का सुखी

जीवन भी त्याग दिया और इन्टरमीडियेट परीक्षा (कक्षा-12) प्राइवेट देने का निर्णय लिया।

श्रीबंकाजी ने गोरखपुर के सेंट एण्ड्रूज कॉलेज में इन्टरमीडियेट द्वितीय वर्ष में अपना दाखिला नहीं करवाया और स्थायी रूप से श्रीनानाजी देशमुख के साथ संघ कार्यालय, इस्माइलपुर गोरखपुर में ही रहने लगे और अपना पूरा ध्यान संघ के कार्यों पर केन्द्रित कर दिया। आर.एस.एस. कार्यालय में श्रीबंकाजी की ही भाँति अन्य कई स्वयंसेवक भी रहते थे जिनमें से कई व्यक्तियों की आर्थिक स्थिति बहुत ही दु:खदायी थी। कभी-कभी तो उन लोगों के पास भोजन के पैसे भी नहीं होते थे। श्रीबंकाजी को अपनी पढ़ाई के लिये और जेब-खर्च के लिये पिताजी से आर्थिक सहायता प्राप्त थी। माना की वह बहुत अधिक नहीं थी मगर कम-से-कम उन्हें खाने-पीने की तकलीफ तो नहीं ही थी और इन्हीं रुपयों में से बचाकर वे अपने साथियों की सहायता भी कर दिया करते थे। मित्रों की मदद करना इनका सहज स्वाभाव था।

जब भी श्रीबंकाजी अपने घर पडरौना जाते तो अपने कुछ साथियों को भी साथ ले जाते। वहाँ सब श्रीबंकाजी के बगीचे में चले जाते और पेड़ों पर चढ़ कर ताजा पके हुये ऋतुफल का आनन्द लेते। कभी वे उन्हें अपने साथ घर ले जाते और अपने संग भोजन करवाते। उनके संगी-साथी-मित्र बहुत प्रसन्न होते परन्तु घर में माँ-भाभी को उनका यह रवैया बेहद नापसन्द था। घर में सब इनके मित्रों से कुढ़ते रहते। अक्सर उनकी माँ और भाभी खींज जाया करती और उनका प्रकोप श्रीबंकाजी को सहना पड़ता मगर उन्होंने कभी इस ओर ध्यान नहीं दिया। आवश्यकता पड़ने पर वे मित्रों के लिये चोरी भी कर लिया करते थे। कभी सूखा अनाज तो कभी रुपये चुरा लेते और बेहद अभावग्रस्त मित्रों को दे देते थे। पिताजी के पास शिकायत पहुँच ही जाती और वे क्रोधित हो इससे पहले ही श्रीबंकाजी वापस गोरखपुर आ जाते। ऐसा एक नहीं अनेकों बार हुआ।

जिस छात्र को कॉलेज जाने का बहुत शौक था, कक्षा में बैठना अति प्रिय था और जो अध्यापकों और सहपाठियों के संग-साथ को तरसता था वह

सर्वप्रकारेण योग्य छात्र देशसेवा के लिये अध्ययन में लापरवाही करने लगा। परिणाम यह हुआ कि जो वक्त पाठ्यक्रम को मिलना चाहिये था वह समय देशभक्ति में चला गया, जो क्षण कक्षा में अध्यापकों के साथ चिन्तन-मनन में व्यतीत होना चाहिए था वह हिन्दुत्व के उत्थान में लग गया और अति मेधावी छात्र होने के बावजूद श्रीबंकाजी ने प्राइवेट इन्टरमीडियेट की द्वितीय वर्ष की परीक्षा (कक्षा-12) द्वितीय श्रेणी से उत्तीर्ण की। श्रीबंकाजी अपने परीक्षा फल से प्रसन्न तो नहीं थे परन्तु उन्हें खेद भी नहीं था क्योंकि वे जानते थे कि उन्होंने निस्वार्थ देशप्रेम को प्राथमिकता दी है, समय अन्यथा व्यर्थ नहीं किया है।

****

कार्य तत्परता

एक बार की बात है, 1945 में श्रीबंकाजी इस्माइलपुर में आर.एस.एस. कार्यालय में किसी कार्य से गये। उस वक्त श्रीनानाजी देशमुख ने इन्हें देखते ही रोक लिया और तत्काल कुछ आवश्यक कागज़ात लेकर लखनऊ जाने के लिये कहा। वे जानते थे कि पडरौना शाखा में इनकी विशेष आर.एस.एस. कार्यकर्ताओं की श्रेणी में पदोन्नति कर दी गयी थी और इनपर अति महत्त्वपूर्ण कार्य के लिये विश्वास किया जा सकता है। इन आवश्यक दस्तावेज़ को लखनऊ आर.एस.एस. विभाग के मुख्य को अविलम्ब देना था। उस ज़माने में फैक्स और ई-मेल तो थे नहीं। महत्त्वपूर्ण कार्य विशेष स्वयंसेवकों द्वारा इसी प्रकार ही करवाये जाते थे।

श्रीनानाजी देशमुख ने श्रीबंकाजी को सतर्क करते हुये कहा—तुम्हें शीघ्रतातिशीघ्र दस्तावेज लेकर संघ कार्यालय लखनऊ पहुँचना है और लखनऊ आर.एस.एस. विभाग के प्रमुख को ही यह देना है। ध्यान रहे, किसी भी कीमत पर ये प्रलेख अन्य किसी के हाथ में नहीं देना है।

श्रीबंकाजी उस वक्त गोरखपुर संघ कार्यालय में ही रहा करते थे। ये अपने कक्ष में गये और अपनी एक धोती निकाली। सारे दस्तावेज़ को धोती में लपेट करके बाँधा और एक मजबूत झोले में रखा, झोले को कन्धे पर

लटकाया और तत्काल स्टेशन की ओर चल पड़े। लखनऊ जाने वाली गाड़ी प्लेटफार्म पर खड़ी थी। यात्रियों से स्टेशन खचाखच भरा था। तब ट्रेनों में आज की तरह बहुत अधिक डब्बे नहीं लगते थे। ट्रेन छोटी हुआ करती थी और भीड़ अधिक। इनके पास न टिकट था और न ही कोई आरक्षण। ट्रेन के द्वार पर भयंकर भीड़ थी। ऐसी स्थिति में किसी भी बोगी में प्रेवश पाना असम्भव सा प्रतीत हो रहा था।

श्रीबंकाजी सोच ही रहे थे कि क्या किया जाय कि तभी उन्हें एक परिचित व्यक्ति ट्रेन में बैठा हुआ दिखलाई दिया। ये उसके पास गये और बताया कि उनका लखनऊ जाना आवश्यक है। उसने कहा—इतनी भीड़ में तुम गेट से भीतर आ नहीं पाओगे। हाँ, यह खिड़की खुली है। अगर तुम चढ़ सको तो मैं भीतर खींच सकता हूँ।

उस वक्त जनता डिब्बों में खिड़कियों पर ग्रिल नहीं हुआ करती थी। श्रीबंकाजी तुरन्त प्रस्तुत हो गये और बड़ी मुश्किल से खिड़की द्वारा ट्रेन में प्रवेश किया। बैठने की तो बात ही छोड़ो, पैर रखने की भी जगह नहीं थी। भीड़ में दम घुट रहा था। लोगों ने इनको ठेलते-ठेलते शौचालय तक पहुँचा दिया।

जिस स्थान पर दो बोगियों का सम्पर्क होता है, वहाँ एक बहुत बड़ा मजबूत लोहे का हुक होता है जो रेल की एक बोगी को दूसरी बोगी से जोड़ता है। आजकल की रेल में वह हुक दिखाई नहीं देता क्योंकि उसपर एक लोहे की पट्टी आ जाती है जिसपर से यात्री सुविधापूर्वक आना-जाना कर सकते हैं। उस ज़माने में एक बोगी से दूसरी बोगी में आने-जाने का कोई मार्ग नहीं होता था।

भीड़ के धक्कों से तंग आकर श्रीबंकाजी गाड़ी रुकने पर बाहर आ गये। दो बोगियों के बीच में जो लोहे की हुक लगी थी वे उस पर चढ़ गये और अपना एक पैर लोहे की हुक के एक तरफ रखा और दूसरा पैर लोहे की हुक के दूसरी तरफ रखा और बीच में सन्तुलन बनाकर सीधे खड़े हो गये। इस प्रकार चलती ट्रेन में हिचकोले खाते, जान को ज़ोखिम में डालकर उन्होंने

आर॰एस॰एस॰ का कार्य निभाया और लगातार सात-आठ घण्टें खड़े रहकर लखनऊ पहुँच गये। खतरा इतना अधिक था कि ज़रा सा संतुलन गड़बड़ाया और पटरी पर गिर कर जान से हाथ धो बैठना था परन्तु श्रीबंकाजी का हौसला इतना बुलंद था, कर्मठता इतनी अधिक थी कि भावी दुर्घटना की सम्भावना भी इन्हें रोक न सकी। इन्होंने निर्धारित अवधि में अपनी उत्कृष्ट क्रियाशीलता द्वारा कार्य को पूर्ण किया।

जहाँ एक ओर श्रीबंकाजी जी-जान से आर॰एस॰एस॰ के कार्य में लगे हुये थे वहीं ऐसा नहीं सोचना चाहिये कि उनका भजन कम हो गया था। उनकी भगवद्प्राप्ति और भजन की ललक निरन्तर बनी रही। उनकी डायरी की कविता उनके हृदय के भावों को खोल कर रख देती है।

भले कोई तड़पता हो

भले कोई तड़पता हो, कहाँ परवाह तुमको है,
भले रोये किसी का मन, तनिक चिन्ता न तुमको है।
नयन की तप्त धारा में, बहे अन्तर भले गल-गल
हृदय को तोड़ देना क्या, कहो अभिप्रेत तुमको है॥

पुराणों और शास्त्रों में, वृथा तेरी कथाएँ क्या
भला तेरा सुयश सुन्दर, जगत में फैला क्या।
तनिक महिमा सुनी तेरी, तभी तन-मन सकल वारा
करोगे वंचना क्या तुम, यही तुमको उचित है क्या॥

विकल को शान्ति देते हो, निभाते लाज आगत की
यही जग तो सुनाता है, सुनी तुमने निराश्रित की।
सुनी जो विपुल गाथायें, सहारा हो अनाथों के
कहो क्या व्यर्थ ही सुनता, विमल गाथा दयामय की॥

विफल कर दो भले ही तुम, विनय अनुनय अनाथों की
तदपि आशा सदा ही थी, अभी भी युगल चरणों की।

किये विश्वास तेरा ही, जगत से ली विदाई है
संभालो श्याम अब तुम ही, तुरत पतवार नौका की॥

भले दुनिया हँसे मुझ पर, वहीं तट पर खड़े होकर,
हँसे वे आज मन भर कर, कहें वे खूब जी भरकर।
नहीं चिन्ता तनिक मुझको, दिया है भार जब तुमको
भरोसे एक तेरे ही, चली यह नाव लहरों पर॥

नहीं है मुक्ति अभिलाषा, न इच्छा कीर्ति कंचन की,
मिले दर्शन मुझे तेरा, यही है चाह अन्तर की।
पुलिन यमुना गगन चंदा, कलित कुंजें पवन चंचल
वहाँ मैं और तुम दो हों, सुनूँ बस तान वंशी की॥

****

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, बी॰ ए॰

तत्कालीन प्रचलित मारवाड़ी विचारधारा के अनुरूप पिताजी चाहते थे कि श्रीबंकाजी कलकत्ता जाकर वाणिज्य (Commerce), वित्तीय लेखांकन (Accounts) और अर्थशास्त्र (Economics) की उच्च शिक्षा प्राप्त करे, कपड़ों की दुकान और व्यापार सम्भाले, कारोबार को उन्नति की दिशा में ले जाकर विपुल धनोपार्जन-यशोपार्जन करे। पिताजी के इन सुनहरे-रुपहले सपनों के पूर्णत: विपरीत, श्रीबंकाजी की रुचि साहित्य, कला और राजनीति में थी। उच्च शिक्षा के वे भी पूर्ण समर्थक थे लेकिन उनकी दृष्टि में केवल आर्थिक उन्नति का कोई विशेष महत्त्व नहीं था।

श्रीबंकाजी की स्वतंत्र विचार-धारा के आगे पिताजी की एक न चली। उन्होंने पिताजी की रुचि के विरुद्ध 1945 में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में बी.ए. आर्टस में प्रवेश लिया। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, जो आजकल आई.आई.टी. वाराणसी के नाम से विश्वभर में विख्यात है, उत्तर भारत का सर्वश्रेष्ठ विद्यार्जन का केन्द्र सदा से रहा है। श्रीबंकाजी बिड़ला होस्टल में रहते थे। उनके मुख्य विषय थे अंग्रेजी, अर्थशास्त्र, राजनीति आदि।

पिताजी को उनका यह निर्णय नितान्त अप्रिय लगा परन्तु पुत्र के बाल-हठ के समक्ष उन्होंने कुछ कहा नहीं। कहते भी क्या ? उन दिनों काशी हिन्दू विश्वविद्यालय का बहुत नाम था। भारत की सर्वश्रेष्ठ विद्यालयों में उसकी गणना होती थी और वहाँ का छात्र होना बड़े गर्व और सम्मान की बात थी। आज तो उस विद्यालय में दाखिल होना बहुत की कठिन है परन्तु उस वक्त भी वहाँ प्रवेश पाना आसान नहीं था। अत्यन्त प्रतिभाशाली मेधावी छात्र को ही वहाँ स्वीकृति मिलती थी। पडरौना में जिसने भी सुना कि राधेश्याम का अंगीकरण वाराणसी के काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में हुआ है तो वह प्रसंशा करने लगा और पिताजी को बधाई देने लगे। अब ऐसे में पिताजी की रुचि भला कुछ भी हो, पुत्र के प्रतिकूल बोलने का तो प्रश्न ही नहीं उठता था।

श्रीबंकाजी बी॰ए॰ कार्यकाल की शुरुआत के पूर्व ही वाराणसी आ गये और बिड़ला होस्टल में रहने लगे। यहाँ का वातावरण उन्हें बहुत रुचिकर लगा। पडरौना और गोरखपुर की तुलना में यहा का विद्यार्थी जीवन हर दृष्टि से श्रेष्ठ और उन्नत था। बिड़ला होस्टल अतिशय विस्तृत था, जगह-जगह फूलों से भरे बाग-बगीचे, खेल के लम्बे-चौड़े मैदान, होस्टल में विद्यार्थियों के रहने के अलग-अलग कमरे जिसमें अलमारी, टेबल-कुर्सी और लकड़ी की चारपाई थी। भोजन के लिये विशाल शाकाहारी मेस थी जहाँ सभी विद्यार्थियों को यथासमय पौष्टिक भोजन दिया जाता था। महामना श्रीमदनमोहनजी मालवीय द्वारा स्थापित यह महाविद्यालय विद्यार्थियों के लिये स्वर्ग के समान ही था।

उस ज़माने में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय सम्पूर्ण एशिया का सबसे बड़ा और पहला विश्वविद्यालय था जहाँ करीब 3,000 विद्यार्थी होस्टल में रहकर शिक्षा प्राप्त करते थे। कॉलेज में कक्षाएँ साफ-सुथरी और आकार में बड़ी थी। सभी अध्यापक अतिशय योग्य और अपने-अपने विषय के अद्भुत प्रवक्ता थे। श्रीबंकाजी को सबसे अधिक आकर्षित किया वहाँ की विस्तृत लाइब्रेरी ने जहाँ पुस्तकों का ओर-छोर ही नहीं था। ऐसा कोई विषय नहीं था जिसकी पुस्तक वहाँ उपलब्ध न हो। जिज्ञासु छात्र को भला और क्या चाहिये ? पढ़ने

का शौक इन्हें सदा से ही था। अतिरिक्त समय में ये सदा पुस्तकालय में पहुँच जाया करते थे। शीघ्र ही श्रीबंकाजी अपने नये जीवन में घुल मिल गये और पाठ्यक्रम पर पूरा ध्यान केन्द्रित कर दिया।

श्रीबंकाजी का जीवन साधारण था और प्रतिभा असाधारण। सुगठित लम्बा कद, व्यायाम पुष्ट-सी देह, सुन्दर मुख, गौर-गेहुआ वर्ण, तेल लगाकर सँवारे हुये काले केश और पतली घनी मूँछें जो सरल स्मित हास को सदैव संजोये रहती थी। स्वच्छ सफेद वस्त्रों में ये खूब जँचते थे। धीरे-धीरे ये अध्यापकों की दृष्टि में ये चढ़ने लगे और बुद्धिजीवी छात्र भी इनकी मेधा से प्रभावित होने लगे।

जो जैसी प्रकृति का व्यक्ति होता है, मित्र भी उसे वैसे ही भाते हैं। कॉलेज के प्रथम दिन ही श्रीबंकाजी की मित्रता श्रीब्रह्मस्वरूपजी अग्रवाल से हो गई। ये मुजफ्फरनगर निवासी स्वभाव से वेदान्ती थे और स्वामी श्रीरामतीर्थ में पूरी निष्ठा रखते थे। सादा जीवन उच्च विचार, यही उनके जीवन का मूल-मन्त्र था। होस्टल में उनके कमरे में छात्रावास से प्राप्त लकड़ी की कठिन चारपाई और टेबल-कुर्सी थी। अन्य विद्यार्थियों के कमरों में तो पूरा बेड लगता था परन्तु ये अति वैराग्यवान थे। ये लकड़ी की तख्ती पर कम्बल डालकर सोते और केवल एक धोती-शर्ट पर जीवन चलाते थे। श्रीबंकाजी को इनकी सादगी और वैराग्ययुक्त जीवन ने बहुत प्रभावित किया। दोनों की घनिष्ट मित्रता हो गयी और आजीवन बनी रही।

एक अन्य व्यक्ति थे श्रीविश्वनाथ दामोदर मालपाणी। ये पुणे निवासी थे और इंजीनियरिंग के छात्र थे। शिक्षा का विषय कोई भी हो, मित्रता तो सम स्वभाव वालों से ही होती है। इनका भी व्यक्तित्व सरल और सादा था। अतः तीनों मित्र एक साथ रहने लगे। साथ-साथ भोजन करने छात्रावास की मेस में जाना, साथ-साथ कॉलेज जाना। वहाँ पृथक-पृथक कक्षाओं में अपने विषयों का अध्ययन करना और पुनः साथ-साथ होस्टल लौट आना। तीनों के विचार, रहन-सहन और स्वभाव में अतिशय समानता थी। आनन्द से दिन बीतने लगे।

****

गंगा की गोद में

श्रीबंकाजी के एक और मित्र थे। उनका नाम था श्रीदेवदत्त। ये रसिक गायक थे और बड़ी सुन्दर बाँसुरी बजाया करते थे। जितना ललित इनका कण्ठ स्वर था उतनी ही रसमय धुन इनकी बाँसुरी से प्रवाहित होती थी। श्रीबंकाजी की गीत-संगीत और कविता में विशेष रुचि थी ही, अत: दोनों की दृढ़ मित्रता हो गयी।

एक बार श्रीदेवदत्त ने बताया—कुछ काल पूर्व मैं आगरा गया था। वहाँ चाँदनी रात में ताजमहल के अतुल्य सौन्दर्य दर्शन का मुझे अवसर प्राप्त हुआ। ताजमहल के चारों कोनों पर ऊँची-ऊँची चार मीनारे हैं। सीढ़ियों के द्वारा मीनार की उच्चतम मंजिल तक पहुँचा जा सकता है। मैं एक मीनार की सर्वोच्च मंज़िल पर चढ़ गया। मीनार की ऊपरी मंजिल से ताजमहल का दृश्य बड़ा ही मनमोहक था। ताजमहल के समीप बहती यमुना का भी दर्शन हो रहा था। पूर्णिमा की शोभामयी चन्द्रिका चर्चित रमणीय रात्रि में मैं बाँसुरी बजाने लगा। उस वक्त उस सौन्दर्ययुक्त मनमोहक वातावरण को देखकर एक विचित्र आनन्द की अनुभूति हुई।

श्रीदेवदत्तजी की बातें सुनकर श्रीबंकाजी बहुत आनन्दित हुये और उन्होंने कहा—भाई! यहाँ बनारस में ताजमहल तो नहीं है, न ही यमुना है परन्तु भगवती गंगा तो है। क्यों न हमलोग एक नौका किराये पर ले लें और पूर्णिमा की रात्रि को गंगाजी में नौकारोहण करें। मैं नाव चलाऊँगा और तुम बाँसुरी बजाना, रसमय गीत गाना। बड़ा आनन्द आयेगा।

श्रीबंकाजी का सुझाव श्रीदेवदत्त को बहुत पसंद आया। उन्होंने श्रीबंकाजी के मंजुल सोच की खूब सराहना की और कहा—वाह! क्या सुन्दर कल्पना है, इसे शीघ्र-से-शीघ्र क्रियान्वित करना चाहिये।

फिर क्या था? पूर्णिमा तिथि की प्रतीक्षा होने लगी। नौका किराये पर लेनी थी अत: नाविकों से पूछताछ की गयी तो पता चला कि बनारस में गंगाजी का वेग अधिक होने के कारण रात्रि में नौकारोहण वर्जित है। फिर तो

दोनों मित्रों ने शाम के वक्त ही नौका विहार करने का निश्चय किया।

सर्द ऋतु में संध्या समय एक नौका किराये पर ले ली और धीरे-धीरे खेते हुये दोनों बीच मझधार तक पहुँच गये। बनारस में श्रीगंगाजी का पाट अत्यधिक चौड़ा है। ठीक मध्य गंगा की धारा पर दोनों मित्रों ने नौका को खेना छोड़ दिया। शीतल मन्द पवन प्रवाहित हो रहा था। लहरियों पर नौका स्वत: बहती रही। ढलते सूर्य की रोशनी में, गंगाजी की पावन लहरियों पर तिरती नौका में श्रीदेवदत्तजी ने बाँसुरी बजाना प्रारम्भ कर दिया। स्वर लहरी की पियूष धारा में श्रीबंकाजी बहने लगे, डूबने लगे। क्या ही सुहावना दृश्य था!

कभी प्रचलित लोकगीत, कभी हिन्दी सिनेमा के गीत, कभी देशभक्ति के गीत तो कभी कोई मधुर धुन श्रीदेवदत्त बजाते और कभी वे श्रीबंकाजी से कोई कविता सुनाने का अनुरोध करते। तब श्रीबंकाजी अपने मित्र का मन रखने के लिये अपनी डायरी में से स्वलिखित गीत सुनाया करते थे। उनकी रचनाएँ अत्यधिक भावपूर्ण हुआ करती थी। उनके मित्र उत्कृष्ट शब्दों में वर्णित भावों की कोमलता पर, दैन्य पर, ललित श्रृंगार पर रीझ जाते। घण्टों का समय पलक झपकते बीत जाता। बी.ए. काल की डायरी में श्रीबंकाजी द्वारा लिखित रचना—

प्रियतम कृष्ण मुरारी

मोहन मुरलीधारी वृन्दा विपिन विहारी।
शरण पड़ा अब तेरे दया करो बनवारी॥ प्रियतम कृष्ण मुरारी॥

अमित व्यथा है मन में तनिक कृपा कर देखो।
किस पथ का मैं राही कुछ कह दो गिरधारी॥ प्रियतम कृष्ण मुरारी॥

प्रभु! मैं पूजूँ कैसे, पूर्ण अपरिचित विधि से।
दर्शन दे बतलाओ आया तेरे द्वारी॥ प्रियतम कृष्ण मुरारी॥

भाव सुमन हैं अर्पित अश्रुमाल तव पद पर।
बदले केवल देना निर्मल भक्ति तुम्हारी॥ प्रियतम कृष्ण मुरारी॥

मान कीर्ति अभिलाषी काम वासना भीषण।
सबसे मुक्त करा दे यमुना पुलिन विहारी॥ प्रियतम कृष्ण मुरारी॥

कब से खड़ा हुआ हूँ करुणा कर अब हेरो।
वंशी तान सुना दे व्रजपति वंशीधारी॥ प्रियतम कृष्ण मुरारी॥

इतना तो तुम करना, तनिक न मुझे भुलाना।
जग विषयों को भूलूँ हो बस याद तुम्हारी॥ प्रियतम कृष्ण मुरारी॥

बहुत अधम है तारे सन्त बताते सारे।
आकर मुझको तारो मेरी अबकी पारी॥ प्रियतम कृष्ण मुरारी॥

10.08.1946

****

शौचालय की सफाई

प्रसंग 1945 का होना चाहिये। श्रीबंकाजी बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के बिड़ला होस्टल में रहते थे। उन दिनों आजकल की तरह शौचालय में फ्लश-सिस्टम वाले कमोड़ नहीं होते थे। उस जमाने में शोचालयों का निर्माण सर्वथा पुरानी शैली के अनुसार हुआ करता था। कमोड के नीचे एक बहुत बड़ी बाल्टी रखी रहती थी एवं विसर्जित मल इसी बाल्टी में एकत्रित होता था जिसे मेहतर बाहर ले जाकर फेंक आया करते थे। तत्कालीन यही प्रथा प्रचलित थी।

सम्भवत: 1945 के नवम्बर मास में मेहतरों ने हड़ताल कर दी। तीन दिन तक एक भी व्यक्ति कार्य पर नहीं आया। न तो कहीं झाड़ू लगी और न शौचालयों का प्रक्षालन हुआ। भयंकर दुर्गन्ध व्याप्त होने लगी। प्रथम और दूसरे दिन तक तो शौचालयों के बाहर ही दुर्गन्ध थी परन्तु तीसरे दिन तो समस्त वातावरण दूषित हो गया। जन-जन उस दुर्गन्ध से सन्त्रस्त था। विश्वविद्यालय के अधिकारीगण क्या सोच रहे थे और क्या कर रहे थे इसका तो कुछ पता नहीं परन्तु छात्रावास में प्रत्येक छात्र अत्यन्त लाचार था और

मन-ही-मन कुढ़ रहा था।

इस कठिन परिस्थिति में श्रीबंकाजी ने एक साहसिक कदम उठाया। उन्होंने स्वयं शौचालयों को साफ करने की सोची और अपने कमरे से मात्र अण्डरवियर और गंजी पहनकर शौचालय की ओर चल दिये। श्रीबंकाजी की दृष्टि में कभी कोई काम छोटा या बड़ा नहीं था। छात्रावास के कुछ छात्र उनकी ओर आश्चर्यजनक दृष्टि से देख रहे थे, कुछ कटाक्ष भरी टिप्पणी कर रहे थे कि ये नया नेता बनने चला है और कुछ छात्र सराहना कर रहे थे। अधिकांश मूकदर्शक बने हुये थे।

जैसे एक दीप से दूसरा दीपक जलता है, इसी सिद्धान्त के अनुसार दो-चार छात्र और इस काम में सहयोग देने के लिये श्रीबंकाजी के साथ बाहर निकल आये। अब इन चार-पाँच छात्रों ने मिलकर सारे शौचालयों की सफाई कर दी और बाल्टी में भरा मल विश्वविद्यालय के बाहर जाकर निर्दिष्ट स्थान पर विसर्जित कर आये। फिर सब ने आकर स्नान किया, कपड़े धोये और अपने-अपने कार्यों में लग गये।

दूषित वातावरण स्वच्छ हो गया। सभी छात्रों ने चैन की साँस ली। चारों ओर सराहना होने लगी। छात्रों के द्वारा वार्डन और फिर अध्यापक, प्रधानाचार्य तक भी यह बात पहुँच गयी। इसकी चर्चा यहीं समाप्त नहीं हुई। विश्वविद्यालय के संस्थापक परम पूज्य पण्डित श्रीमदनमोहनजी मालवीय तक भी यह चर्चा पहुँच गयी। सभी ने उन्मुक्त स्वर से इन छात्रों के अत्युत्तम सेवा की प्रशंसा की और परिणाम यह हुआ कि मेहतरों की हड़ताल टूट गयी।

****

रोनाल्ड हेनरी निक्सन

श्रीकृष्णप्रेमजी सम्भवतः प्रथम विदेशी थे जिन्हें ब्रजमण्डल में 'सन्त' की उपाधि से विभूषित किया गया। ये मूलतः इंग्लैण्ड के निवासी थे। इनका नाम था रोनाल्ड हेनरी निक्सन। 18 वर्ष की उम्र में प्रथम विश्व युद्ध में इन्होंने उत्साहपूर्वक भाग लिया था। ये उस युद्ध में हवाई बेड़े के लड़ाकू विमान चालक थे। युद्ध का उन्माद उतर जाने पर उनके हृदय में भयंकर व्याकुलता

छा गई। प्रथम विश्व युद्ध की विभीषिका इन्होंने अपनी आँखों देखी थी। हत्या, मारकाट, मृत्यु का ताँडव, रक्तपात, हाहाकार और चीत्कार ने इनकी शान्ति हरण कर ली। मानवीय विकास के नाम पर किये जा रहे विनाशक युद्ध के वीभत्स दृश्यों ने इनके हृदय में भयंकर उथल-पुथल मचा दी थी। बहुत प्रयत्न करने पर भी मन:स्थिति शान्त नहीं हुई। मानसिक व्यग्रता ने उन्हें विक्षिप्त सा बना दिया था। इनके मन को कहीं भी चैन न मिला।

मानसिक शान्ति और अध्यात्मिकता की खोज में ये भारत आ गये और कालान्तर में लखनऊ विश्वविद्यालय के वाइस चान्सलर की धर्मपत्नी परम कृष्णभक्ता पूज्या श्रीयशोदा माँ के प्रिय शिष्य बने। इन्होंने हिमालय में अल्मोड़ा के आगे, मिरतोला पहाड़ी गाँव में अपना आश्रम बनाया जिसका नाम है 'उत्तर वृन्दावन'।

श्रीनिक्सन साहब वृन्दावनी गौड़ीय सम्प्रदाय में दीक्षित प्रथम अंग्रेज वैष्णव सन्त थे। आजकल तो वृन्दावन जाने पर यत्र-तत्र अंग्रेज गौड़ीय सन्यासी के दर्शन हो जाते हैं परन्तु चालीस के शतक में ऐसा नहीं था। पराधीन भारत में जब हिन्दू अंग्रेजों के विरुद्ध अपने देश को आज़ाद कराने के लिये हर सम्भव प्रयास कर रहे थे, वहाँ एक अंग्रेज का हिन्दू वैष्णव धर्म अपनाकर सन्यासी बन जाना एक अनोखी-अनकही-अनसुनी बात थी।

एक बार श्रीनिक्सन साहब अल्मोड़ा से श्रीजगन्नाथपुरी की यात्रा पर निकले। बीच में काशी पड़ता ही है। इनके काशी पहुँचने की सूचना महामना श्रीमदनमोहनजी मालवीय को मिल गयी। उन्होंने श्रीनिक्सन साहब से आग्रह किया कि उन्हें काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में आकर विद्यार्थियों को सम्बोधित करना चाहिये। श्रीनिक्सन साहब पूज्य श्रीमालवीयजी के अनुरोध को टाल न सके और सारे विश्वविद्यालय में यह घोषणा करा दी गयी कि 25-01-1946 को आडिटोरियम हॉल में संध्या पाँच बजे श्रीनिक्सन साहब का 'श्रीकृष्ण भक्ति' पर प्रवचन होगा। सभी विद्यार्थियों के मन में उत्सुकता की लहर दौड़ पड़ी क्योंकि यह पहला अवसर था जब उन्हें एक ऐसे सन्त के दर्शन का अद्भुत अवसर प्राप्त होने वाला था जो शरीर से अंग्रेज हो, वैष्णव गौड़ीय सन्त की उपाधि से विभूषित हो एवं 'श्रीकृष्ण भक्ति' पर बोले।

श्रीबंकाजी उन दिनों काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में बी.ए. के विद्यार्थी थे। उन्होंने भी यह घोषणा सुनी और अपने प्रिय मित्र श्रीब्रह्मस्वरूपजी अग्रवाल एवं श्रीविश्वनाथ मालपाणी के साथ आडिटोरियम हॉल में पहुँच गये। हॉल पहले से ही खचा-खच विद्यार्थियों एवं अध्यापकों से भरा हुआ था अतः तीनों एक किनारे खड़े हो गये। सारे श्रोतागण एकदम शान्त थे और उत्सुकता भरी दृष्टि से मंच की ओर देख रहे थे।

मंच पर श्रीरोनाल्ड हेनरी निक्सन साहब खड़े थे। उनकी वाणी और मुख का प्रबल आकर्षण सभी श्रोतागणों को बाँधे हुये था। लम्बा सुगठित कद, गौर वर्ण, सन्यासी वेश, कंठ में तुलसी की माला, वैष्णव गौड़ीय तिलक, असाधारण रूप से तेजस्वी मुखमण्डल, धाराप्रवाह अंग्रेजी में वे श्रीकृष्ण भक्ति पर बोल रहे थे। उनका विषय था—**'कृष्णात्परं किमपि तत्त्वमहं न जाने'**। उनकी अंग्रेजी इतनी बढ़िया थी और तथ्यों का प्रस्तुतीकरण इतना सुन्दर सटीक था कि सभी श्रोता मंत्रमुग्ध थे।

श्रीबंकाजी के जीवन का यह पहला अनुभव था कि खचाखच भरे हॉल में उन्हें एकमात्र श्रीनिक्सन साहब का ही चेहरा दिखलायी दे रहा था, अन्य कुछ भी नहीं। वे पाषाणवत्, निष्कम्प खड़े होकर श्रीनिक्सन साहब को एकटक देख रहे थे। उन्हें जगत की पूर्ण रूप से विस्मृति हो गयी थी, एकमात्र उन्हीं की वाणी श्रीबंकाजी के कानों में गूँज रही थी। लगभग एक घण्टे तक श्रीनिक्सन साहब शुद्ध अंग्रेजी में बोलते रहे। जैसे ही उनकी वाणी ने विराम लिया, सारा हॉल तालियों की गड़गड़ाहट से गूँज उठा।

सभी श्रोतागण उनके उत्कृष्ट भावपूर्ण प्रवचन से अत्यन्त प्रभावित हुये। श्रीबंकाजी भीड़ को चीरते हुये मंच की ओर बढ़ने लगे। अब तक श्रीनिक्सन साहब मंच से नीचे उतर चुके थे। श्रीबंकाजी ने उन्हें प्रणाम किया और अपना संक्षिप्त परिचय दिया। श्रीबंकाजी के पीछे-पीछे उनके दोनों मित्र भी चले आये थे। उन्होंने भी श्रीनिक्सन साहब को प्रणाम किया। श्रीनिक्सन साहब के जाने से पूर्व श्रीबंकाजी ने उनसे उनका स्थानीय पता ले लिया जिससे आगे पत्राचार किया जा सके।

श्रीनिक्सन साहब चले गये परन्तु अपने चुम्बकीय व्यक्तित्व की स्थायी छाप श्रीबंकाजी के हृदय पर छोड़ गये। वे मन-ही-मन सोचने लगे—जब

इंग्लैण्ड से आया एक लड़ाकू-विमान-चालक अंग्रेज श्रीकृष्ण का भक्त हो सकता है, पाश्चात्य सभ्यता के प्रबल आकर्षण को त्याग सकता है, हिन्दू धर्म के पवित्र संस्कारों को अपना सकता है, सन्यास ले सकता है, सनातन धर्म के कठिन शौचाचार नियम स्वीकार कर सकता है, अपवित्र भोजन त्याग सकता है, संस्कृत सीख सकता है, गैरिक वस्त्र, वैष्णव तिलक और तुलसी माला धारण कर सकता है, हिन्दू साहित्य और सद्रन्थों का विषद अध्ययन कर सकता है, श्रीकृष्ण-भक्ति-रस में डूब सकता है, श्रीकृष्ण के लिये अश्रु बहा सकता है, तो धिक्कार है मुझ जैसे हिन्दू पर जो वैष्णव घर में जन्म लेकर भी अब तक यत्र-तत्र भटक रहा है!

श्रीबंकाजी के मन मस्तिष्क पर श्रीनिक्सन साहब की ऐसी छाप पड़ी कि वे उन्हें भुला नहीं पाये और अक्सर अपने साथियों से उनकी चर्चा करते रहते। एक बार ये अपने दोनों मित्रों के साथ उनके मिरतोला आश्रम पर भी गये थे और एक सप्ताह तक सत्संग लाभ किया था जिसका विवरण आगे आयेगा। श्रीबंकाजी ने श्रीनिक्सन साहब पर एक विस्तृत लेख भी लिखा था जो कल्याण में श्रीकृष्णप्रेमभिखारी के नाम से प्रकाशित हुआ।

(यहाँ श्रीनिक्सन साहब की भावपूर्ण श्रीकृष्णभक्ति का किंचित परिचय देना प्रसंगोचित लग रहा है। श्रीनिक्सन साहब वृन्दावनी गौड़ीय सम्प्रदाय में दीक्षित प्रथम अंग्रेज वैष्णव सन्त थे। इनका कन्हैया से इतना प्रगाढ़ प्रेम था कि वे कन्हैया को अपना छोटा भाई मानने लगे थे। अपने आराध्य श्रीविग्रह की ये बहुत प्रेमपूर्वक सेवा-पूजा किया करते थे। एक दिन उन्होंने हलवा बनाकर ठाकुरजी को भोग लगाया। पर्दा हटाकर देखा तो हलवे में छोटी-छोटी उँगलियों के निशान थे। श्रीनिक्सन साहब की आखों से अश्रुओं की धारा बहने लगी क्योंकि इससे पहले भी वे कई भार भोग लगा चुके थे पर पहले कभी भी ऐसा नहीं हुआ था।

दूसरी घटना नवम्बर 1965 की है। सर्दियों के दिन थे, श्रीनिक्सन साहब कुटिया के बाहर सोया करते थे। कुटिया में इनके आराध्य का श्रीविग्रह था। ये प्रतिदिन ठाकुरजी को शयन कराकर, भली प्रकार से रजाई उढ़ाकर, द्वार

बन्द करके स्वयं बाहर सोया करते थे।

एक दिन श्रीनिक्सन साहब सो रहे थे, मध्यरात्रि में अचानक उनको ऐसा लगा जैसे किसी ने उन्हें आवाज़ दी हो—दादा! ओ दादा!

उन्होंने उठकर देखा परन्तु कोई दिखलाई नहीं दिया। वे सोचने लगे कि हो सकता है यह उनका भ्रम होगा। थोड़ी देर बाद उन्हें फिर सुनाई दिया—दादा! ओ दादा! ओऽऽ दादा!

उन्होंने अन्दर जाकर देखा तो पता चला कि आज वे ठाकुरजी को रजाई उढ़ाना भूल गये थे। वे ठाकुरजी के पास जाकर बैठ गये और बड़े प्यार से बोले—आपको भी सर्दी लगती है क्या?

श्रीनिक्सन साहब का इतना कहना था कि ठाकुरजी के श्रीविग्रह से आँसुओं की धारा बह चली। ठाकुरजी को इस तरह रोता देख श्रीनिक्सन साहब भी फूट-फूट कर रोने लगे।

सन् 1965 में श्रीनिक्सन साहब ने अपने पांचभौतिक कलेवर का परित्याग किया। इनका सारा जीवन अनेकानेक उल्लेखनीय प्रसंगों-घटनाओं से परिपूर्ण था। इनकी श्रीराधाकृष्ण भक्ति अकथनीय थी। इनका नाम भारतवर्ष की सन्त परम्परा में सदा स्मरणीय रहेगा।)

****

विवाह प्रस्ताव

होनहार व्यक्तित्व की कान्ति अलग ही होती है। जिस प्रकार पूर्व दिशा में फैलने वाली अरुणाभा सूर्योदय की पूर्व-सूचिका है, इसी प्रकार बाल्यकाल एवं किशोरावस्था में सहज रूप से दिखलायी दे जाने वाले विशिष्ट आचार-विचार-व्यवहार, भावी जीवन की महत्ता-दिव्यता-विशिष्टता आदि का पूर्व-संकेत देते हैं। श्रीबंकाजी ने भी अपनी किशोरावस्था में कई ऐसे निर्णय लिये जो उनके भावी जीवन की आधारशिला बने। इनमें से सबसे मुख्य भूमिका निभाई उनके आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत के भीष्म निर्णय ने। आधुनिक उच्चतम शिक्षा प्राप्त करने वाले नवयुवक के ये निर्णय अपूर्व ही थे।

मारवाड़ी परिवारों में पुत्र के ब्याह का बहुत अधिक उत्साह रहा करता

है। आजकल तो 25-26 साल के पहले कोई शादी-ब्याह की बात ही नहीं करना चाहता है परन्तु तब ऐसा नहीं था। उन दिनों मारवाड़ी घरों में अधिक पढ़ाई तथा उच्च शिक्षा का प्रचलन नहीं था। मात्र दसवीं कक्षा पास करते ही शादी-ब्याह के रिश्ते आने लगते थे और अगर कोई बी.ए. की पढ़ाई कर रहा हो, तब तो फिर बात ही क्या!

पडरौना में श्रीबंकाजी के पिताजी के पास, श्रीबंकाजी के लिये, अनेक रिश्ते आने लगे और आते भी क्यों नहीं? श्रीबंकाजी सम्भ्रान्त कुल के थे, सुशिक्षित थे, सुन्दर चेहरा, हृष्टपुष्ट कद काठी, सौम्य व्यवहार, प्रभावशाली व्यक्तित्व, हर प्रकार से वे एक सुयोग्य वर की श्रेणी में खरे उतरते थे। श्रीबंकाजी के पिताजी का पडरौना में बहुत नाम था तथा बंका परिवार की बहुत इज्जत थी, अत: कोई अपनी कन्या का विवाह ऐसे कुलीन घर में करना चाहे तो भला आश्चर्य की बात ही क्या थी?

प्रसंग लगभग 1946 के जनवरी मास का है। श्रीबंकाजी बी.ए. आर्टस, दूसरे वर्ष में पढ़ रहे थे और बिड़ला होस्टल में रहा करते थे। सीतामढ़ी के एक सम्भ्रान्त परिवार का रिश्ता, श्रीबंकाजी के पिताजी के पास आया और वे लोग बनारस जाकर श्रीबंकाजी से होस्टल में मिल भी आये। उस वक्त श्रीबंकाजी को जरा भी आभास नहीं हुआ कि ये लोग अपनी पुत्री का विवाह उनसे कराना चाहते हैं। सामान्य रूप से बात-चीत हो गयी और श्रीबंकाजी के सरल मिलनसार व्यवहार से वे लोग बहुत प्रभावित हुये। पडरौना लौटकर उन लोगों ने श्रीबंकाजी के प्रभावशाली व्यक्तित्व एवं सौम्य स्वभाव की बहुत सराहना की तथा पाँच सोने की गिन्नी और एक अंगूठी श्रीबंकाजी के पिताजी को देकर अपनी सुयोग्य पुत्री का रिश्ता पक्का कर दिया।

1946 अप्रैल में जैसे ही बी.ए. दूसरे वर्ष की परीक्षा समाप्त हुई, श्रीबंकाजी के पास उनके पिताजी का पत्र आया जिसमें लिखा था कि उनका सम्बन्ध सीतामढ़ी के एक सम्भ्रान्त कुल में तय कर दिया गया है। सीतामढ़ी वाले उनसे बनारस में मिल भी चुके हैं और रिश्ता पक्का हो गया है। सुशील, गुणवती कन्या है, अत: अब उन्हें पडरौना आकर औपचारिक रूप से सगाई कर लेनी चाहिये।

श्रीबंकाजी ने ऐसे पत्र की कल्पना भी नहीं की थी। पत्र पढ़ते ही वे तो अवाक् रह गये। उनके पैरों तले जमीन खिसक गयी। जहाँ एक ओर उनके हृदय में आर.एस.एस. का कार्यकर्ता होने के नाते देश को आज़ाद करने की प्रबल भावना थी वहीं दूसरी ओर उनके हृदय में भगवद्भक्ति की प्रगाढ़ धारा प्रवाहित हो रही थी जो मीरा और चैतन्य की भाँति उन्हें साधनापूर्ण जीवन व्यतीत करने की प्रेरणा दे रही थी। अब इन दोनों गहन धाराओं के मध्य घर-गृहस्थी का तो कोई प्रश्न ही नहीं उठता था।

उनकी विचारधारा साधारण व्यक्तियों से बिलकुल विपरीत थी। बचपन में उन्होंने अपने घर में दो विवाह देखे थे और उसके अप्रिय परिणाम से वे परिचित थे अत: पूर्व अनुभवों के अनुसार उनका दृढ़ विश्वास था कि गृहस्थ-आश्रम उनके अध्यात्म मार्ग की सबसे बड़ी रुकावट बन सकता है इसलिये वे इससे दूर ही रहना चाहते थे। संयोग से होस्टल में मित्र मण्डली भी कुछ ऐसी ही विचार पद्धति वाली मिल गयी। उनके परम मित्र श्रीब्रह्मस्वरूपजी अग्रवाल भी उनके सिद्धान्तों से पूर्णत: सहमत थे।

श्रीबंकाजी ने पिताजी का पत्र अपने दोनों मित्र, श्रीब्रह्मस्वरूपजी अग्रवाल तथा श्रीविश्वनाथ मालपाणी को अविलम्ब दिखलाया। श्रीब्रह्मस्वरूपजी वेदान्त तत्वज्ञान में तथा पूज्य स्वामी श्रीरामतीर्थ में पूर्ण निष्ठा रखते थे। किसी स्त्री से अगर अनजाने में भी उनका स्पर्श हो जाये, तो घण्टों होस्टल का कमरा बन्द करके, हाथ पैर हवा में झटक-झटक कर स्वच्छ करने का मन्त्र बोला करते थे, नाम-जप करते और उपवास भी रखते थे। विवाह की बात से तो वे शायद बेसुध ही हो जाते। उन्होंने श्रीबंकाजी को राय दी कि यह पत्र नहीं परमाणु बम है। मनुष्य को इस शादी-ब्याह के झंझट में कदापि नहीं फँसना चाहिये। दुर्लभ मानव जीवन कुत्ते-बिल्लियों का खेल नहीं है अत: उन्हें स्त्री के सम्पर्क से दूर ही रहना चाहिये। यह तो श्रीबंकाजी की मनचाही बात थी ही, परन्तु समस्या यह थी कि ग्रीष्मकालीन अवकाश में बिड़ला होस्टल बन्द होने वाला था और पडरौना लौट नहीं सकते थे, अत: जायें कहाँ?

श्रीब्रह्मस्वरूपजी ने सहज ही सुझाव दिया—चलो हिमालय की ओर चलते हैं। वहीं स्वामी श्रीरामतीर्थ का स्थान ऋषिकेश के आगे लक्ष्मण झूला के पास है। वहीं चला जाय। बड़ा आनन्द आयेगा।

श्रीबंकाजी को स्वामी श्रीरामतीर्थजी की एवं वेदान्त की बातें अच्छी तो लगती थी परन्तु उसमें रस नहीं आता था। उनके हृदय की माँग तो कुछ और ही थी। उनके मन में श्रीकृष्ण भक्ति हिलोरे ले रही थी, अत: उन्होंने कहा— क्यों न अलमोड़ा, श्रीनिक्सन साहब के आश्रम पर चला जाय?

श्रीब्रह्मस्वरूपजी एवं श्रीमालपाणीजी को यह सुझाव बेहद पसन्द आया। अभी हाल ही में उन्होंने श्रीनिक्सन साहब का श्रीकृष्णभक्ति पर सुन्दर भावपूर्ण प्रवचन सुना था और अत्यन्त प्रभावित थे ही, अत: अलमोड़ा जाना सुनिश्चित हुआ। श्रीब्रह्मस्वरूपजी का घर मुजफ्फरनगर था इसलिए यह तय हुआ कि तीनों मित्र सर्वप्रथम मुजफ्फरनगर जायेंगे और फिर वहीं से हिमालय यात्रा की तैयारी करके अलमोड़ा के लिये प्रस्थान करेंगे। इस योजना के बन जाने पर श्रीबंकाजी को हार्दिक प्रसन्नता हुई। यह पडरौना और सगाई, दोनों से पिंड छुड़ाने का बेहतरीन तरीका था।

****

प्रथम हिमालय यात्रा

मुजफ्फरनगर में श्रीब्रह्मस्वरूपजी की बड़ी बहन पूज्या चन्द्रावती देवी ने तीनों मित्रों का स्वागत किया। बहन क्या थी, वह तो मातृ-स्वरूपा ही थी। तीनों के भोजन विश्राम आदि की सारी सम्भाल रखती थी। उन्होंने ही हिमालय यात्रा की सम्पूर्ण तैयारी कर दी। सूखे मेवे, ओढ़ने बिछाने के गर्म ऊनी वस्त्र, दवा आदि का प्रबन्ध भी कर दिया और तीनों मित्र उन्हें प्रणाम करके तथा आशीर्वाद प्राप्त करके 08-05-1946 को मुजफ्फरनगर से बस द्वारा हरिद्वार की ओर निकल पड़े।

श्रीबंकाजी के जीवन में हिमालय यात्रा का यह पहला अवसर था अत: हृदय अति आनन्दित था। यात्रा उन्हें बचपन से ही अतिशय प्रिय थी और नवीन भगवदीय स्थानों के दर्शन को वे सदा ही ललायित रहते थे।

हरिद्वार आकर तीनों मित्रों ने भगवती गंगा के पावन प्रवाह का दर्शन किया। जगतपावनी भागीरथी का दर्शन तो वे बनारस में किया ही करते थे परन्तु हरिद्वार में गंगा मैया के दुग्ध-फेन-युक्त प्रबल वेग को देखकर तथा उज्ज्वल-स्वच्छ-शीतल जल का स्पर्श पाकर उनकी भावना कुछ और ही हो गयी थी। हरिद्वार में कालीकमलीवाले की धर्मशाला में सबने एक दिन निवास किया।

अगले दिन प्रात: तीनों मित्रों ने ऋषिकेश के लिये प्रस्थान किया और नौका द्वारा गंगा पार करके स्वर्गाश्रम पहुँच गये। उन दिनों ऋषिकेश एकदम सुनसान था। हरिद्वार और ऋषिकेश के बीच में पक्की सड़क नहीं थी। नौका से ही गंगा पार की जाती थी। न आज की तरह दुकानें, न मकान, न धर्मशाला और न ही आश्रम। गीताभवन का भी निर्माण नहीं हुआ था। चारों ओर ऊँचे-ऊँचे वृक्षों का घोर जंगल दूर-दूर तक फैला था। परम पूज्य सेठजी श्रीजयदयालजी गोयन्दका का सत्संग गंगा किनारे वटवृक्ष के नीचे हुआ करता था।

तीनों मित्रों ने वहाँ पहुँचकर पूज्य सेठजी के प्रथम दर्शन किये और सत्संग लाभ किया। सफेद धोती और बगलबन्दी पहने, माथे पर बड़ी सी राजस्थानी पगड़ी, आँखों पर मोटा काला चश्मा, मन्द मुस्कान से युक्त मुखारविन्द, वट वृक्ष के नीचे, आधी मारवाड़ी-आधी हिन्दी भाषा में सेठजी का प्रवचन हो रहा था। सादगी और पवित्रता का पूर्ण साम्राज्य था। ऋषि जीवन का वास्तविक रूप प्रत्यक्ष दीख रहा था। न कोई दिखावा, न प्रचार, न आडम्बर, न विज्ञापन। श्रोतागण गंगाजी के पावन पुलिन की माटी पर ही बैठे थे। दिव्य आध्यात्मिक शान्ति सारे वातावरण में परिव्याप्त थी।

पूज्य सेठजी ने ही इनको आवास दिया तथा भोजन की व्यवस्था की। सेठजी के सादगीपूर्ण जीवन, नम्र व्यवहार और ज्ञानमय प्रवचन से तीनों ही बहुत प्रभावित हुये। श्रीमालपाणीजी का तो मन हुआ कि यहीं रह जाना चाहिये लेकिन श्रीबंकाजी ने उनको अलमोड़ा जाने के लिये मना लिया और फिर यही निश्चित हुआ कि अगले दिन प्रात: तीनों साथ-साथ अलमोड़ा की यात्रा करेंगे।

****

अर्धरात्रि में लक्ष्मण झूले पर

संयोग की बात है कि उस दिन पूर्णिमा की शोभामयी चन्द्रिका-चर्चित रजनी थी। दिनभर की यात्रा के बाद श्रीबंकाजी के दोनों मित्र थकान के कारण शीघ्र ही सो गये परन्तु इनकी आँखों में नींद कहाँ? इनका मन तो भगवती गंगा की तरल तरंगों की भाँति हिलोरे ले रहा था। वे चुपचाप अपने मित्रों को निद्रित अवस्था में छोड़कर रात के अँधेरे में निकल पड़े।

चारों ओर सुनसान, केवल कल-कल निनादिनी की धारा और वृक्षों की सॉय-सॉय। भगवन्नाम का जप करते हुये ये लक्ष्मण झूला तक आ पहुँचे। न इन्हें किसी प्रकार का भय था, न संकोच। पूर्णतः निर्भीक, मानो कोई बालक अपनी माँ से मिलने जा रहा हो। अर्धरात्रि का समय था। धीरे-धीरे इन्होंने लक्ष्मण झूले पर चरण रखे। लक्ष्मण झूला पवन के वेग से मन्द-मन्द हिल रहा था। ये मन्थर गति से चलते हुये पुल के मध्य भाग तक आ गये। दूर-दूर तक किसी जीव का नामोनिशान न था। ऊपर आकाश में पूर्ण चन्द्र की रुपहली छटा और नीचे भगवती के आँचल में लहराते पूर्ण चन्द्र का प्रतिबिम्ब। शीतल पवन का स्पर्श और कल-कल निनाद, बहुत ही भावोद्दीपक था वह दृश्य!

श्रीबंकाजी नामोच्चारण करते हुये अश्रु बहाते, बहुत काल तक वहाँ रुके रहे। उन्होंने माँ को पुकारा, हृदय की करुण पुकार! क्या माँ के कोई एक-दो नाम हैं? भागीरथी, हरिपदोद्भवा, जटा शंकरी, गोमुख झरणी, पर्वत शिखरा, चपल तरंगिणि..., जब पुकारा तो बस पुकारते ही चले गये। वह आनन्दोल्लास अपने आप में अनूठा ही था। कितना समय बीता कौन बता सकता है! प्रातः होने के पर्याप्त पूर्व ही श्रीबंकाजी अपने मित्रों के पास पुनः लौट आये।

2009 में श्रीबंकाजी ने भगवती गंगाजी के इन नामों को श्रृंखलाबद्ध करके एक सौ आठ नामों की माला पूर्ण की। वह 108 की माला इस प्रकार है—

1 हरिपदोद्भवा
2 जटा शंकरी
3 अनन्त उत्तरा
4 गोमुख झरणी

5 पर्वत शिखरा
6 हिमगिरि अंकिनि
7 गिरि अवतरणी
8 चपल तरंगिणि
9 शिला खण्डिनि
10 पद पद संगम
11 इत उत वक्रा
12 अमल वारिणि
13 पल पल नवला
14 गौरव गाथा
15 अचलास्तित्वा
16 भगिरथ नन्दिनि
17 नाम जाह्नवी
18 सन्त वन्दिता
19 पूज्या देवी
20 देवोपास्या
21 सर्वाराध्या
22 मकरासीना
23 श्वेत अम्बरा
24 दुग्ध उज्ज्वला
25 युग पद मृदुला
26 अत्यभिरामा
27 दिव्य वैभवा
28 वरदे मुद्रा
29 वरद अमोघा
30 सर्व ईश्वरी
31 लोक अर्चिता
32 कृपा स्वरूपा
33 नित निष्कामा
34 अमृत रूपा
35 विश्व अतुल्या
36 अतिशय सरला
37 विशद उदारा
38 सबकी माता
39 करुणा शीला
40 सदय वत्सला
41 कोमल हृदया
42 अमित अनुग्रहा
43 कलिमल हारिणि
44 पाप विमोचिनि
45 ताप निवारिणि
46 पतितोद्धारिणि
47 भव भय नाशिनी
48 मुक्तिरूपिणी
49 मोक्ष प्रदायिनि
50 जन कल्याणी

51 कल्प वल्लरी
52 वांछा दात्री
53 गुण मंजूषा
54 छवि आगारा
55 शुचिता सीमा
56 महा पवित्रा
57 महिमापारा
58 रज कण शुभ्रा
59 अतुल शीतला
60 मोद विधायिनि
61 लोल लहरियाँ
62 कलित कलरवा
63 कल कल वादिनि
64 नयनाह्लादिनि
65 असीम अमृता
66 शुचि आद्यन्ता
67 मनहर पुलिना
68 तट देवालय
69 अगणित तीर्था
70 नित्य प्रफुल्ला
71 शुक ताल पुलिन
72 कथा भागवत
73 शुक वचनावलि
74 हरि रस पूरित
75 मुक्त परीक्षित
76 सरिता मुख्या
77 यमुना बहिनि
78 कृष्णाकर्षिणि
79 दीर्घ त्रिवेणी
80 तिरती नौका
81 केवट पालिनि
82 राम रंजिनी
83 काशी तटिनि
84 शव शिव कारिणि
85 मंजुल सलिला
86 जलचर निलया
87 अविरल धारा
88 विपिन विहारिणि
89 सघन वनस्पति
90 घोर जंगला
91 सतत प्रवाहिणि
92 उदधि उन्मुखी
93 सिन्धूद्देश्या
94 पाट विस्तृता
95 सलिल अगाधा
96 अतल गहन तल

97 अतिगम्भीरा
98 मन्थर गामिनि
99 सागर मिलिता
100 जलधि संगमा
101 गंगा सागर
102 भारत गरिमा
103 ऋषिगुण कथिता
104 पुराण वर्णिता
105 कविकुल कविता
106 जन जन पूज्या
107 जय जगदम्बा
108 नमः अम्बिके

****

उत्तर वृन्दावन की यात्रा

अगले दिन प्रातः 19-5-1946 को, तीनों मित्रों ने पूज्य सेठजी श्रीजयदयाल गोयन्दका को प्रणाम किया और विदाई ली। नौका द्वारा गंगा पार करके हरिद्वार लौट आये और अलमोड़ा के लिये मोटर बस से प्रस्थान किया। बहुत लम्बा सफर तय करके रामनगर, नैनीताल होते हुये कई दिनों में ये लोग अलमोड़ा पहुँचे। अलमोडा से 20 कि॰ मी॰ पहाड़ी पगडण्डियों पर पैदल यात्रा करके पूज्य श्रीनिक्सन साहब के आश्रम, मिरतोला 'उत्तर वृन्दावन' पहुँचना था। श्रीब्रह्मस्वरूपजी ने तो पहले ही कह दिया था कि वे इतनी दूर पैदल नहीं चल पायेंगे अतः उनके लिये डोली कर ली गयी। श्रीमालपाणीजी और श्रीबंकाजी ने पैदल जाने का निश्चय किया और अगले दिन प्रातः कुछ अल्पाहार करके सबने यात्रा प्रारम्भ की।

घुमावदार पहाड़ी रास्ता, झुके-झुके बादल, शीतल पवन का संस्पर्श, घने सुन्दर चीर और भोजपत्र के वन थे। कहीं निर्मल निर्झर झर रहे थे और कहीं छोटी नदी बलखाती हुई बहे जा रही थी। मित्रों का प्रेमिल संग और प्राकृतिक सौन्दर्य एक साथ हो तो सफर सुहावना-लुभावना हो ही जाता है। पारस्परिक चर्चा करते हुये सब चले जा रहे थे। श्रीब्रह्मस्वरूपजी डोली पर थे और श्रीमालपाणीजी एवं श्रीबंकाजी पैदल।

कुछ मील चलने पर श्रीमालपाणीजी ने पसीना पोंछते हुये कहा—तनिक विश्राम कर लिया जाये। थोड़ी थकान महसूस हो रही है।

श्रीबंकाजी की स्थिति बड़ी विचित्र थी। उनका मन श्रीनिक्सन साहब के दर्शन करने के लिय इतना उतावला-बावला हो रहा था कि न तो शरीर में थकावट थी और न उन्हें चलने में श्रम की अनुभूति हो रही थी। वे तो शीघ्रतातिशीघ्र उत्तर वृन्दावन पहुँचने को ललक रहे थे परन्तु मित्र को श्रमित जानकर कुछ देर मार्ग में रुक गये।

श्रीब्रह्मस्वरूपजी ने दोनों मित्रों को तरु छाया में बैठे देखा तो कहारों को उनके पास ही डोली रोकने को कहा और मीठी-मीठी चुटकी लेते हुये मित्रों से बोले—हमने तो पहले ही कहा था कि रास्ता लम्बा है, पालकी कर लो। लेकिन यहाँ हमारी सुनता कौन है ?

श्रीबंकाजी ने पालकी पर विराजित श्रीब्रह्मस्वरूपजी के समक्ष हाथ जोड़ते हुये विनोदयुक्त वाणी में तपाक से उत्तर दिया—राजा चले पालकी पर, प्रजा चले पैदल। यही सृष्टि का नियम है।

इस व्यंग्यात्मक टिप्पणी को सुनकर और श्रीबंकाजी की शरारतभरी मुस्कुराहट को देखकर सभी एक साथ जोरों से हँस पड़े। इसी प्रकार हास्य-विनोद करते हुये, कभी रुकते कभी चलते हुये, नैसर्गिक दृश्यों को निहारते शाम तक सब उत्तर वृन्दावन पहुँच गये।

श्रीनिक्सन साहब वृन्दावनी गौड़ीय सम्प्रदाय में दीक्षित प्रथम अंग्रेज वैष्णव सन्त थे। हाल ही में बनारस में इनके प्रथम दर्शन सबको हो चुके थे। श्रीबंकाजी का इनसे पत्राचार चलता था, अतः सूचना पहले से ही थी कि ये लोग आने वाले हैं। उन्होंने तीनों नवयुवकों का प्रेमपूर्वक अपने आश्रम में स्वागत किया।

श्रीनिक्सन साहब के आश्रम उत्तर वृन्दावन का वातावरण अत्यन्त पवित्र, शान्त और साधनामय था। यहाँ चारों ओर ऊँची-नीची पहाड़ियाँ, मनभावती हरियाली, लम्बे-घने देवदार के वृक्षों पर पक्षियों का मीठा कलरव, बहते पवन का मधुर संगीत, निःशब्दता और नितान्त निर्जनता का पूर्ण साम्राज्य था। बड़ा ही सुन्दर सात्विक माहौल था। पर्वत पर बहुत ऊपर एक मकान

था। उससे कुछ नीचे भगवान श्रीराधाकृष्ण का मन्दिर था। मन्दिर में ठाकुरजी की अर्चना श्रीनिक्सन साहब ही किया करते थे। मन्दिर के पास ही नैवेद्य बनाने के लिये चैका था। ठाकुरजी के नैवेद्य बनाने के लिये श्रीनिक्सन साहब हाथ-पैर धोकर स्वयं भोजनालय में जाया करते थे। रसोई के नीचे तीन-चार कमरों का एक भवन था जिसमें इन लोगों को ठहराया गया। ऐसा विशुद्ध उत्कृष्ट परिवेश का सबको रुचिकर लगना स्वाभाविक ही था। सात दिन तक तीनों मित्र आनन्दपूर्वक यहाँ रहे और श्रीनिक्सन साहब के भावपूर्ण सत्संग का भरपूर लाभ उठाया।

श्रीनिक्सन साहब बड़े भावुक हृदय के सन्त थे और श्रीकृष्ण को अपना भाई मानते थे। उन्हें श्रीकृष्ण के अनेकों दिव्य अनुभव भी हुये थे। उनकी निर्मल शान्त दृष्टि प्राणीमात्र को आकर्षित करती और वाणी में इतनी मिठास थी मानो प्रेम का सोता झरता हो। जो भी उनसे मिलता वह भावाविभूत हो उठता। प्रायः वे श्रीकृष्णभक्ति पर ही बोलते थे। श्रीबंकाजी को उनके सत्संग से अतिशय आनन्द की अनुभूति होती। इन प्रेरणादायक क्षणों में साधनामय जीवन व्यतीत करने की उनकी प्रबल भावना को बहुत बल मिलता था।

श्रीनिक्सन साहब ने तीनों मित्रों से व्यक्तिगत वार्तालाप किया और श्रीबंकाजी से अचानक हिमालय की ओर आने का कारण पूछा। श्रीबंकाजी ने स्पष्ट रूप से सत्य बतला दिया कि जीवन को आध्यात्मिक दिशा शीघ्रतातिशीघ्र देने कि अत्यधिक चाह तो है ही परन्तु अभी अचानक हिमालय यात्रा का कार्यक्रम बना पिताजी के पत्र प्राप्ति के बाद जिसमें सगाई करने पडरौना आने की बात लिखी थी। श्रीबंकाजी के आजीवन ब्रह्मचारी रहने के निर्णय से और साधनामय जीवन व्यतीत करने के उत्कृष्ट विचारों को सुनकर श्रीनिक्सन साहब बहुत प्रसन्न हुये और उनको हृदय से विपुल आशीर्वाद भी दिये।

श्रीबंकाजी आश्रम के सभी कीर्तन-आरती-सत्संग-प्रवचन आदि कार्यक्रमों में रस निमग्न रहते। कम बोलना और मन में भीतर-ही-भीतर डूबे रहना, यही उनका जीवन बनता चला जा रहा था। कई बार उनकी आँखों से प्रेमाश्रुओं की धारा बहने लगती थी परन्तु यह स्वर्ग सा सुन्दर सुख भला कहाँ तक चलता ? एक सप्ताह दो पल की भाँति बीत गये और न चाहते हुये भी तीनों मित्रों को हरिद्वार, मुजफ्फरनगर होते हुये पुनश्चः काशी लौटना पड़ा।

श्रीनिक्सन साहब से श्रीबंकाजी का पत्राचार भी होता था। जो पत्र श्रीबंकाजी ने उन्हें लिखे थे वे पत्र तो उपलब्ध नहीं है परन्तु निक्सन साहब के लिखे हुये कुछ उत्तर श्रीबंकाजी की अलमारी में सुरक्षित प्राप्त हुये। उन पत्रों को यहाँ दिया जा रहा है।

पत्र—1

Jai Shree Krishna

Uttar Vrindavan
Post Mirtola
Dist. Almora
19/9/1946

My dear Radheyshyam,

I was really glad to get your letter of last month but I went away to Vrindavan for the Jhulan Utsava and only got back here just before Janamashtami. Anyhow when I got back, what with the Janamashtami and Radha Ashtami festival, a bad cough that I got through wandering about Vrindavan in the rain and the pile of letters that had accumulated while I was away, I was in difficulties. Hence the delay. When you were writing (On Rakshabandhan Day), I was still in Vrindavan.

It was so nice having you here. We all remember you often. Now you are back at Banaras and I hope you are getting on all right with your studies. You did not tell us whether your father was angry or not over your delay.

You asked about your puja archana. Such things are not very easy for one who is still a student living in college, that is to say, in their outer forms. But the outer form though helpful are not necessary. Shri Bhagwan dwells in your heart and it is always possible to do puja of him there. Always try to keep his image brightly shining there in your heart which will only happen if you constantly think of him there and constantly offer him all that you do. When you eat, first offer it to him. When you are in doubts and difficulties, lay it before him. When you do anything offer its results to him. Gradually you will come more and more to feel his actual presence their, but that only will be if you really make him the center of your life. Nothing else matters. All else will sooner or later crumble and fall into dust. Only he remains forever. The image you will have in your heart is doubtless made by your imaginations, just as the image in the temple is made by a sculptor or metal worker but by constantly worshipping and thinking of image, he reveals himself within it. So when you have made the image clear you should try to feel his actual presence within it. Always think yourself as belonging to him, never to yourself or anyone else. This is the only thing that matters— remember him and that we belong to him and therefore to serve him in every way possible.

How can we serve him ? By keeping our bodies and minds as pure as possible, by offering all our actions to him (abstaining from such actions that we cannot offer him), by trying to realise his presence in all men and all beings whatsoever and in consequence by doing no harm to anyone by speech, thought or action.

I won't write to you more but I shall always be glad to answer any difficulties you may have. Try and free your mind from all doubts. They do not really come from the mind itself but from our desires which naturally fear that if we come to realise Shri Krishna's constant presence they will not be able to have their own way as before. Consequently, they (desires) suggest doubts to our minds just as we sometimes suggest difficulties to our friends when we wish to dissuade them from action. Understand this nature and do not accept them in your mind. There may be doubts about all other things but there is no doubt whatever that He is in your heart and in the hearts of all men and that in gaining him we gain everything; in knowing him we know everything and in serving him we serve all. Moti Didi sends you her love and blessings. Jai Shree Krishna.

The same always,
Yours,
Sri Krishna Prem

पत्र—2

Jai Shree Krishna

Uttar Vrindavan
Post Mirtola
Dist. Almora
19/10/1946

My dear Radheyshyam,

Sorry I could not reply earlier as I had guests here and got no time at all to write. "It was so nice having you here" meant just what it said. As for coming again— you are always welcome, now or at any time.

"The outer forms, though helpful, are not necessary" meant that having an image of Shri Krishna and doing regular puja in the mornings is usually not easy when living in a hostel.

You complain that your mind "इच्छा उधर जाती है" to that the only answer is that everybody's mind does that— if it is allowed to. If you really want to come on this path, you must practice controlling your mind as you would control a horse that you wanted to train. Why does the mind wander here and there ? Because of desires. So we must control our desires and then the mind will be at peace. You would find it no easier even if you were in some "एकांत कुटीर". Wherever we are, our mind and desires go with us and they must be fought and mastered. It is useless to say " I cannot do it ". We simply must do it and no one can do it for us. The desires must always be checked and the mind made to concentrate on Shri Krishna's feet. It is good that you do bhajan everyday. The path is a long and hard one but little by little it can be travelled. Moti sends her love and blessings. Anandpriya is still away. With love and blessings to you always.

Yours,
Sri Krishna Prem

****

मँगनी टूट गयी

हिमालय यात्रा के दौरान श्रीबंकाजी अपने पिताजी को पत्र तो लिखते थे परन्तु अपना पता नहीं देते थे। सांकेतिक रूप से मात्र इतना बता देते थे कि मुजफ्फरनगर, हरिद्वार या ऋषिकेश में हैं, सत्संग लाभ उठा रहे हैं, स्वस्थ हैं, लेकिन सही पता नहीं देते थे क्योंकि जानते थे कि पिताजी का पत्र आ जायेगा और तुरन्त पडरौना लौटने को कहेंगे ही।

उधर पडरौना में घर पर सब श्रीबंकाजी की प्रतीक्षा कर रहे थे। सगाई की तैयारियाँ हो रही थी और सबको उम्मीद थी कि श्रीबंकाजी शीघ्र ही आ जायेंगे। सीतामढ़ी वाले नये सम्बन्धी श्रीबंकाजी से मिलने तीन बार आ चुके थे और रिक्तहस्त लौट चुके थे। उनके मन में भी उथल-पुथल मच रही थी कि जो युवक ग्रीष्म अवकाश में घर नहीं आता है उससे अपनी पुत्री का विवाह करना कहाँ तक उचित होगा ? पिताजी श्रीबंकाजी की इस लापरवाही से बहुत नाराज़ थे। नये सम्बन्धियों के सामने उन्हें बार-बार नीचा देखना पड़ रहा था परन्तु वे कुछ कर नहीं पा रहे थे। उनके पास श्रीबंकाजी से सम्पर्क करने का कोई सूत्र नहीं था।

कुछ सप्ताह इसी प्रकार बीत गये और सीतामढ़ी वाले सम्बन्धी चौथी बार पडरौना आये और पुन: श्रीबंकाजी को न पाकर मँगनी तोड़ने की बात सोचने लगे। उन्हें आश्चर्य और हैरानी थी कि आखिर बात क्या है ? जिस युवक से उनकी बनारस में इतने प्रेमपूर्वक मुलाकात हुई थी, सम्बन्ध पक्का होने के बाद भला वह मिलने क्यों नहीं आ रहा है ? कहीं कोई अन्य कारण तो नहीं है जिसे उसके पिताजी बता नहीं रहे हैं ? इस प्रकार के भावों में बहते हुये सीतामढ़ी वालों ने मँगनी तोड़ देने की बात पिताजी के समक्ष व्यक्त की। पिताजी को बुरा तो बहुत लगा परन्तु वे सब प्रकार से लाचार थे। जब सारी गलती अपने ही पुत्र की हो तो किसी अन्य से कुछ कहा भी नहीं जा सकता था। उन्होंने भारी मन से अपनी विवशता व्यक्त करते हुये पाँच स्वर्ण गिन्नी और अंगूठी सम्बन्धियों को लौटा दी। सम्बन्ध छिन्न-भिन्न हो गया और सबका मन खिन्न हो गया।

पडरौना छोटा शहर है। वहाँ प्रतिदिन की छोटी सी बात भी घर के भीतर नहीं रह पाती है और यह तो एक बहुत बड़ी बात थी। सम्भ्रान्त परिवार में किसी की सगाई टूट जाये तो ईर्ष्यालु लोगों को व्यंग्य करने का सुनहरा अवसर मिल जाता है। जितने मुँह उतनी बातें शुरु हो गयी। इस टीका-टिप्पणी से श्रीबंकाजी की माँ, भाभी, भुआ, और बहिनों को बेहद बुरा लगा। उन्हें यह समझ में ही नहीं आ रहा था कि क्यों राधेश्याम विवाह के पक्ष में नहीं हैं। समझ में आता भी भला कैसे? श्रीबंकाजी का दृष्टिकोण हर प्रकार से असाधारण जो था।

एक दिन श्रीबंकाजी के पिताजी अपने दो मुनीम के साथ दुकान की ओर जा रहे थे। रास्ते में पडरौना के श्रीबाजोरियाजी मिल गये। पारस्परिक अभिवादन हुआ और मीठी-मीठी चुटकी लेते हुये श्रीबाजोरियाजी ने मारवाड़ी भाषा में पूछा—क्यूँ भाया! ब्याह का लाडू कद खुवाओगा? (भाई! विवाह के लड्डु आप कब खिला रहे हैं?)

पिताजी—के बताऊँ भाया! घराँ आई लक्ष्मी चल गी। इब ब्याह कोनि होवै। (क्या बताऊँ भाई! घर में आई हुई लक्ष्मी चली गयी। अब ब्याह नहीं होगा।)

श्रीबाजोरियाजी ने कड़ा उपालम्भ देते हुये कहा—म थाने प्ल्या ही कहयो थो न कि थारो छोरो बिगड़ गयो है। थे ध्यान कोनि देवो हो। (मैंने आपसे पहले ही कहा था कि आपका पुत्र बिगड़ गया है। आपने उस पर ध्यान नहीं दिया।)

इतना सुनना था कि पिताजी ने एकदम से श्रीबाजोरियाजी को डॉटते हुये कहा—मैं मानू हूँ कि राधेश्याम मेरी बात कोनि सुणें है पण थे टाबर क चरित्र पर आँगली कोनि उठाने सको हो। (मैं मानता हूँ कि राधेश्याम मेरी बात नहीं सुनता है परन्तु आप बालक के चरित्र पर अँगुली नहीं उठा सकते हैं।)

इस बात को सुनकर और एक पिता का अपने पुत्र के प्रति ऐसे दृढ़ विश्वास को देखकर, श्रीबाजोरियाजी एकदम चुप हो गये। ये सारी बातें तो बहुत बाद में मुनीमों के द्वारा श्रीबंकाजी को ज्ञात हुई। मुनीमों ने यह भी बताया

कि चाहे श्रीबंकाजी घर आये या ना आये, पिताजी की रुचि अनुसार दुकान पर बैठे अथवा ना बैठे, घरवालों के इच्छानुसार ब्याह करें या ना करें आदि आदि परन्तु मन-ही-मन उनके पिताजी सदैव यह जानते थे कि राधेश्याम का मार्ग गलत नहीं है, उसकी सोच और संगत बुरी नहीं है और उन्हें इस बात का हृदय से बहुत संतोष था।

****

श्याम यदि मैं जान पाता

सन्तों की कृपावर्षा कब, किसपर, कहाँ, क्यों, कैसे, किस क्षण होगी, यह कौन जान सका है भला? और कहीं अगर वे सन्त, परम विशुद्ध सन्त हों और हों परम रसिक तब तो फिर कहना ही क्या! ऐसी ही महती कृपा का एक अद्भुत उदाहरण है श्रीबंकाजी के जीवन का वह परम पावन क्षण जब वे बनारस से गीतावाटिका पूज्य श्रीबाबूजी-बाबा के दर्शनार्थ आये थे।

बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में, बी॰ए॰ की पढ़ाई के समय श्रीबंकाजी के हृदय में कभी-कभी भक्ति की ऐसी प्रबल भावना जागृत होती कि वे स्वयं को रोक नहीं पाते और गोरखपुर स्थित गीतावाटिका में पूज्य बाबूजी एवं पूज्य श्रीराधाबाबा से मिलने चले जाते। एक बार की बात है श्रीबंकाजी 20-21 साल के होंगे। तब वे अपने घनिष्ट मित्र, पुणे निवासी श्रीविश्वनाथ मालपाणी के साथ गीतावाटिका चले आए।

चालीस के दशक में गीतावाटिका का स्वरूप आज से बिल्कुल भिन्न था। उस वक्त न तो बड़ा मन्दिर था, न समाधि, न अतिथिशाला और न ही अखण्ड संकीर्तन भवन। बस बाबूजी की कोठी, बाबा तथा कुछ अन्य साधकों की कुटिया थी। शेष सब ओर आम, लीची, केला और अमरूद के वृक्षों से भरी सघन वाटिका थी।

श्रीबाबूजी-बाबा के दर्शनोपरान्त दोनों मित्र वाटिका में एक वृक्ष के नीचे बैठे थे और पारस्परिक चर्चा हो रही थी। इसी सद्चर्चा के बीच श्रीबंकाजी

ने अपनी डायरी में से एक स्वरचित कविता बड़े भाव भरे मन से अपने मित्र श्रीमालपाणीजी को सुनानी प्रारम्भ की। वह कविता इस प्रकार है—

श्याम यदि मैं जान पाता

श्याम यदि मैं जान पाता
मधुर मुरली की मधुरता
नित मिलन सुख की अतलता।
पांचभौतिक देह का क्यों श्याम! इतना मोह करता?
कीर्ति की अभिलाष लेकर सर्वदा मैं क्यों तरसता?

यदि कभी मैं देख पाता
पीत वस्त्रों को झलकता
पवन झोकों से लहरता
श्याम यदि मैं जान पाता
भर हृदय में वासना क्यों विषय चिन्तन नित्य करता?
हरि भजन को छोड़कर क्यों स्वप्नवत जग में भटकता?

यदि कभी मैं देख पाता
साथ गायों के विचरता
श्याम सूरत की सुघरता
श्याम यदि मैं जान पाता
विषय की रमणीयता पर हृदय अपना क्यों लुभाता?
क्षणिक जग के रूप धन पर रूप तेरा क्यों भुलाता?

यदि कभी मैं देख पाता
संग राधा के विहरता
अरुण अधरों को विहसता
श्याम यदि मैं जान पाता

26.08.1946

श्रीबंकाजी ने यह कविता 1946 में लिखी थी। वे धीरे-धीरे, अपनी डायरी के पन्नों को उलटते हुये, भरे-भरे मन से यह कविता सुना रहे थे और

श्रीमालपाणीजी सराहना के स्वर में सिर हिलाते हुये आनन्दित हो रहे थे। दोनों मित्रों को इस बात की भनक तक नहीं थी कि पूज्य श्रीराधाबाबा एक वृक्ष की ओट में, उन दोनों से कुछ दूरी पर खड़े होकर इस कविता को सुन रहे थे।

कविता पूर्ण होने पर पूज्य श्रीराधाबाबा वृक्ष की ओट से निकलकर श्रीबंकाजी के सामने आ गये। बाबा को अचानक सामने आया देख दोनों मित्र झट से उठ खड़े हुये। श्रीबंकाजी का हाथ पकड़कर पूज्य बाबा उन्हें एकान्त स्थान पर ले आये और यही कविता पुनः सुनाने को कहा। एक परम रसिक सिद्ध सन्त द्वारा अपने हाथ का पकड़ा जाना देखकर श्रीबंकाजी सिहर उठे। उन्होंने इसे अपना परम सौभाग्य माना और आनन्दित मन से बाबा के समक्ष उन्होंने अपनी कविता सुना दी।

कविता पाठ के उपरान्त बाबा ने एक घण्टे तक श्रीबंकाजी से बात की। उस वार्तालाप के मध्य न जाने पूज्य बाबा को श्रीबंकाजी में ऐसे कौन से गुण दिखलायी दिये अथवा श्रीबंकाजी की कौन-सी बात पर पूज्य बाबा रीझ गये और उनकी कृपा ऐसी बरसी की उन्होंने चार परम आत्मीय व्यक्तियों द्वारा श्रीबंकाजी के लिये एक विशेष अनुष्ठान करवाया। वे चार व्यक्ति थे परम पूज्य श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी, श्रीकृष्णचन्द्रजी अग्रवाल, श्रीराधेश्यामजी पालड़ीवाल तथा एक व्यक्ति और थे। इस अनुष्ठान का उद्देश्य एकमात्र यही था कि इस बालक राधेश्याम बंका को श्रीकृष्णभक्ति प्राप्त हो और इसकी लेखनी सफल हो। इतना सब करके भी बाबा को पूर्ण सन्तोष नहीं हुआ। इन चारों महज्ञनों से अनुष्ठान करवाने के साथ-साथ पूज्य बाबा ने स्वयं भी चार साल तक श्रीबंकाजी के लिये अनुष्ठान किया कि इस बालक को श्रीकृष्णभक्ति प्राप्त हो और इसकी लेखनी में अद्भुत लेखन क्षमता का अवतरण हो।

श्रीराधाबाबा जो स्वयं श्रीराधा स्वरूप हैं, अगर वे किसी व्यक्ति के लिये स्वेच्छापूर्वक अनुष्ठान करें तो सोचिये उसके लिये भला कुछ अप्राप्य रहेगा? सन्त कृपा से क्या कुछ सम्भव नहीं है? इस बात का यह प्रत्यक्ष उदाहरण है।

भगति तात अनुपम सुख मूला, मिलइ जो सन्त होइँ अनुकूला॥

श्रीबंकाजी के भावी जीवन में जो अद्भुत भक्ति की मन्दाकिनी बही और जितना बृहद उत्कृष्ट लेखन कार्य इनके द्वारा हुआ वह शत-प्रति-शत बाबा का ही आशीर्वाद था। बाबा की ऐसी कृपावर्षा से श्रीबंकाजी निहाल हो गये परन्तु उस वक्त उन्हें इस बात का कुछ भी आभास न हुआ। यह अनुष्ठान वाली बात तो बहुत बाद में, जब वे स्थायी रूप से गीतावाटिका में रहने लगे थे तब एक एकान्त गुप्त गोष्ठी के समय पूज्य श्रीराधाबाबा ने स्वयं श्रीबंकाजी को बतलायी थी।

यहाँ एक और बात का उल्लेख कर देना अत्यन्त आवश्यक लग रहा है। श्रीबंकाजी बचपन से ही अपनी डायरी में स्वरचित गीत-कविता आदि लिखा करते थे। यह डायरी उनके आर्त हृदय का करुण क्रन्दन थी और वे हमेशा उसे बहुत छिपा कर रखते थे। मुझे सौभाग्य से इस अनमोल डायरी के पन्नों को देखने का अवसर मिला। पूज्य बाबा ने श्रीबंकाजी के लिए जो अनुष्ठान किया वह लगभग 1947 के आस-पास होना चाहिये। इस अनुष्ठान के फलस्वरूप श्रीबंकाजी को केवल श्रीकृष्णभक्ति ही नहीं मिली अपितु उनको योगीन्द्र-मुनीन्द्र दुर्लभ गोपी-भाव भी प्राप्त हुआ। इसका प्रमाण है श्रीबंकाजी की डायरी की कविता जो उन्होंने 1951 में लिखीं थी जिसमें उन्होंने स्वयं के लिये स्त्रीवाचक संज्ञा का प्रयोग किया है। 1951 के पहले की किसी भी कविता में उन्होंने स्वयं के लिये स्त्रीवाचक संज्ञा का प्रयोग नहीं किया था। इधर पूज्य श्रीराधाबाबा द्वारा किया अनुष्ठान चार सालों में पूरा हुआ और उधर श्रीबंकाजी के भाव में आमूल परिवर्तन आ गया।

ऐसे परम समर्थ आचार्य की जब कृपा हो गयी तो सरस-रस-रूपा-भक्ति का विस्तार होना ही था। सदगुरु रूपी किसान साधक के निष्काम-सरस-सरल—निश्छल हृदय रूपी खेती में, भगवान की भक्ति के बीज का वपन करता है और भक्ति अंकुरित होने लगती है। वह भक्ति रूपी पौधा धीरे-धीरे बढता है और विशाल वृक्ष बन जाता है। आधुनिक शिक्षा प्राप्त एक नवयुवक विद्यार्थी, अचानक स्वयं का शृंगार करने और माँग भरने की बात अपनी डायरी में लिखने लगे यह सर्वथा अकल्पनीय बात थी। श्रीबंकाजी के

मन में अचानक गोपी-भाव की स्फुरणा होना किसी परम समर्थ रसिक सन्त की अहैतुकी कृपाका ही सुपरिणाम हो सकता था।

1951 में लिखी यह पहली दो कविताएँ हैं जिसमें श्रीबंकाजी ने स्वयं के लिये स्त्रीलिंग शब्दों का प्रयोग किया है अर्थात् स्वयं को एक ब्रजगोपी के रूप में वे देख रहे हैं। बाबा द्वारा किये अनुष्ठान के पहले लिखी कविता और बाद में लिखी कविता के भावों में पर्याप्त अंतर है जो श्रीबंकाजी की साधना में उन्नति का स्पष्ट द्योतक है।

तेरे द्वार खड़ी

मेरी लज्जा रख लो, कब से चरण पड़ी।
तेरे द्वार खड़ी॥

भटकी चैन न पायी, द्वारे तेरे आई।
सुन लो अब तो प्यारे उर की कसक गड़ी। तेरे द्वार खड़ी॥

आवो कृष्ण दुलारे, खड़ी पुकारुँ द्वारे
क्यों न खोलते पट को अब क्या बात अड़ी। तेरे द्वार खड़ी॥

जीवन बगिया सूखी, कली कली सब भूखी
नेह सलिल का सिंचन कर दो एक घड़ी। तेरे द्वार खड़ी॥

कहता हृदय पुकारे, भले न आवो प्यारे
तेरे हाथ बिकी हूँ , तेरे शरण पड़ी। तेरे द्वार खड़ी॥

14.1.1951

क्या तुम्हें मैं पा सकूँगी

क्या तुम्हें मैं पा सकूँगी ? और जी भर मिल सकूँगी ?

यदि मुझे संदेश मिलता, केश में मैं माँग भरती
और मैं शृंगार करती, पर न जाने कब करूँगी ?

चाह कितनी मिलन की है, मधुर वंशी श्रवण की है
किन्तु अबला मैं भला क्या, स्वप्न पूरा कर सकूँगी ?

हैं कहाँ साहस हृदय में, स्वयं चलकर आ सकूँ जो
किन्तु यदि तुम स्वयं आते, नयन काजल दे सकूँगी ?

29.05.1956

****

आनन्दमयी माँ से वार्तालाप

आनन्दमयी माँ भारत की आध्यात्मिक चेतना की एक विलक्षण प्रतिनिधि के रूप में जगत में प्रख्यात हैं। माँ स्वयं पूर्ण, निर्मुक्त, उदासीन, निर्लिप्त होने पर भी सबको आकर्षित करती थीं। वे सब धर्मों, सब जाति के मनुष्यों, पशु-पक्षी, वृक्ष-लताओं में एक अखण्ड भावलीला का भावसंचार देख, सबको एक ही आनन्द का प्रतिरूप मान, सबके प्रति समान भाव से अनुराग, श्रद्धा, और सम्मान प्रदर्शित करती थीं। उनकी निर्मल शान्त दृष्टि, पवित्र स्मित, करुणा एवं ममता का स्त्रोत प्राणी मात्र को बरबस आकर्षित करता। माँ के दर्शन मात्र से ही जनसमुदाय में आनन्द की लहर दौड़ जाती थी। वे भारत की परमोच्च कोटि की आध्यात्मिक विभूति थीं। उनका एक आश्रम भागरथी गंगा के तट पर बनारस में है। एक बार माँ अपने काशी आश्रम में आयी हुई थीं।

श्रीबंकाजी काशी हिन्दूविश्वविद्यालय में बी.ए. के छात्र थे और बिड़ला होस्टल में रहा करते थे। उन दिनों वे एक विचित्र प्रकार की खुजली से ग्रसित थे। अगस्त के महीने में, उनके सारे शरीर में छोटे-छोटे दाने निकल आते थे और बेहद खुजलाहट होती थी। दिसम्बर महीने के आते-आते ये सारे छोटे दाने पक कर बड़े हो जाया करते थे और उनसे मवाद बहने लगती थी। इस अवधि में श्रीबंकाजी को विशेष कष्ट होता था। कॉलेज की पढ़ाई चल रही थी और इन मवाद भरे दानों के कारण, लकड़ी की कुर्सी पर, कक्षा में घण्टों बैठना अति कठिन हो जाता था। सफेद धोती पर मवाद के दाग लग जाते थे। एक और विचित्र बात यह थी कि मकर संक्रान्त के आते ही ये सारे दाने स्वत: ही सूख कर ठीक हो जाते थे।

यह तकलीफ पिछले कई सालों से हर साल हो रही थी। अगस्त से जनवरी तक का कष्ट-भोग अति पीड़ादायक होता था। देसी, यूनानी, होमियोपैथिक, अंग्रेजी, सभी प्रकार का इलाज श्रीबंकाजी ने करवाया परन्तु किसी दवाई का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। उनके भीषण कष्ट का निवारण न हो सका। वे इस बिमारी से तंग आ चुके थे और निरुपाय होने के कारण अत्यन्त दु:खी भी थे।

संयोग से उन्हीं दिनों श्रीबंकाजी को सूचना मिली कि परम पूज्या श्रीआनन्दमयी माँ बनारस आई हुई हैं। पूज्या माँ की आध्यात्मिक स्थिति से श्रीबंकाजी परिचित थे अत: वे अपने मित्र श्रीब्रह्मस्वरूप अग्रवाल एवं श्रीविश्वनाथ मालपाणी के साथ 7-12-1946 को माँ के दर्शनार्थ उनके काशी आश्रम पर पहुँच गये।

भागीरथी गंगा के तट पर श्रीआनन्दमयी माँ का आश्रम बंगाली महिलाओं से भरा हुआ था और वे सब ऊच्च स्वर में, **'जोय माँ, जोय माँ, जोय माँ, जोय जोय माँ'** का बंगाली कीर्तन कर रही थीं। पूज्या आनन्दमयी माँ उस कीर्तन वाले कक्ष में उपस्थित नहीं थी। ये तीनों मित्र न तो आश्रम में किसी को जानते थे और न ही कोई इन्हें जानता था, अत: ये कीर्तन वाले कक्ष में एक किनारे खड़े हो गये। करीब आधे घण्टे बाद पूज्या आनन्दमयी माँ की सेविका श्रीप्रियाजी उस कक्ष में आयीं और तीनों मित्रों की ओर देखते हुये कहा—आप तीनों को माँ ने बुलाया है।

अब सोचने वाली बात यह है कि न तो इन लागों का माँ से कोई पूर्व परिचय था और न ही इन्होंने कोई आवेदन पत्र माँ को दिया था। फिर भी माँ ने यह कैसे जान लिया कि उस कक्ष की भीड़ में तीन विद्यार्थी दर्शनाभिलाषा लेकर आये हैं? यही तो है सिद्ध सन्तों की पहचान! अस्तु,

माँ ने बड़े प्रेम से तीनों विद्यार्थियों की ओर देखकर उनका नाम पूछा और उत्तर सुनते ही मुस्कुरा कर बोली—ब्रह्मस्वरूप अर्थात् ब्रह्मा, राधेश्याम अर्थात् विष्णु और विश्वनाथ अर्थात् महादेव! आज जो साक्षात् ब्रह्मा-विष्णु-

महेश ही पधारे हैं! फिर माँ उन्मुक्त रूप से हँसने लगी। माँ की विनोदयुक्त वाणी सुनकर तीनों मित्र बड़े प्रसन्न हुये और वे भी हँसने लगे। माँ ने सबको प्रसादी मालाएँ दीं।

पूज्या आनन्दमयी माँ ने श्रीबंकाजी की ओर देखते हुए पूछा—कुछ कहना चाहते हो?

श्रीबंकाजी ने अपनी खुजली वाली समस्या माँ को विस्तार से बताते हुए कहा—माँ! आप कोई निदान बतलाइये। मैं अत्यधिक कष्ट में हूँ। इस बीमारी से कॉलेज की पढ़ाई में बहुत अधिक व्यवधान होता है।

माँ ने कुछ सोचते हुए उत्तर दिया—तुम प्रतिदिन काशी विश्वनाथ मन्दिर में अवढ़रदानी भोलेबाबा को जल चढ़ाया करो।

श्रीबंकाजी ने सविनय प्रणाम करके ऐसा करना स्वीकार कर लिया और कहा—जैसी आपकी आज्ञा।

तीनों मित्र वापस लौट आए। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से श्रीकाशी विश्वनाथ मन्दिर की दूरी लगभग पाँच किलोमीटर है। उन दिनों काशी में मोटर बस की सुविधा नहीं थी। श्रीबंकाजी प्रतिदिन कॉलेज समाप्त होने के बाद पाँच किलोमीटर पैदल चलकर श्रीकाशी विश्वनाथ मन्दिर जाते तथा जल चढ़ाकर पुन: पाँच किलोमीटर पैदल वापस लौट आते। इस प्रकार प्रतिदिन उन्हें दस किलोमीटर पैदल चलना पड़ता था।

पूज्या आनन्दमयी माँ से जिस दिन श्रीबंकाजी मिले थे उसके अगले दिन से उन्होंने श्रीविश्वनाथ मन्दिर में जल चढ़ाने का क्रम शुरू कर दिया था। इतना अधिक पैदल चलने का अभ्यास नहीं होने के कारण शरीर दर्द से टूट रहा था। प्रथम दिन जल चढ़ाकर आने के बाद रात्रि के वक्त उन्होंने अपनी डायरी में जो कविता लिखी वह यहाँ दी जा रही है। अहा! कितनी करुण पुकार है।

प्रभु! भूल न जाना तुम मुझको

प्रभु! भूल न जाना तुम मुझको।
देना मत त्याग कहीं मुझको॥

सन्तों की संगति से पाया प्रेम पंथ का कुछ सौरभ।
पथ में राही जब विचलित हो, अवलम्बन देना मुझको॥

परम सहारा सुनकर तेरा कठिन मार्ग हूँ अपनाया।
हो निराश जब बैठूँ पथ में उत्साहित करना मुझको॥

काम-क्रोध की दुपहरिया में जब बैठा प्यासा हूँगा।
आर्त-हृदय की ओर देखकर स्नेह-सुधा देना मुझको॥

कठिनाई बाधा में पड़ जब तुझे भुलाने की सोचूँ।
भ्रान्त पथिक पर दया दृष्टि कर दिव्य दृष्टि देना मुझको॥

लोग हँसेगे पागल कह कर और कसेंगे जब ताने।
दुनिया दर से जब ठुकरा दे चरण-शरण देना मुझको॥

लोक-व्यंग की घातो से जब मानस तन्त्री टूट चले।
वंशीरव के साथ बजाने नव वीणा देना मुझको॥

08.12.1946

हाय! कितना कठिन परिश्रम होता होगा और यह कोई एक-दो दिन की बात नहीं थी। कभी सर्द हवाएँ, तो कभी बरसता पानी, कभी भीषण गर्मी तो कभी तपती लू! प्रतिदिन जल चढ़ाने का यह कठिन क्रम कई महीनों तक अखण्ड रूप से चलता रहा।

वार्षिक परीक्षा की तिथि निकट आ रही थी। दस किलोमीटर प्रतिदिन पैदल चलने से पैरों में बेहद दर्द होता था और परिश्रम से अत्यधिक थकान भी होती थी, अत: जैसी पढ़ाई श्रीबंकाजी करना चाहते थे वह हो नहीं पा रही थी। मन्दिर आने जाने में बहुत समय भी लग जाता था। उनके सामने एक बहुत बड़ी समस्या थी कि वार्षिक परीक्षा की सम्पूर्ण तैयारी समयाभाव के कारण इस परिस्थिति में किस प्रकार की जाय? कुछ समझ नहीं आ रहा था। एक ओर एक सिद्ध सन्त को दिया अपना वचन था और दूसरी ओर वार्षिक परीक्षा की निकट आती तिथि। बहुत सोच विचार करके श्रीबंकाजी ने पुन:

पूज्या आनन्दमयी माँ के पास जाने का निर्णय लिया और माँ के समक्ष जाकर अपनी सारी समस्याओं का सविनय निवेदन किया।

माँ ने सारी बातों को ध्यानपूर्वक सुनकर एवं समझकर कहा—ऐसा करो, तुम प्रति सोमवार को जल चढ़ा दिया करो।

माँ के इस कथन से श्रीबंकाजी को बहुत सुविधा हो गयी। अब वे सप्ताह के छ: दिन परीक्षा के लिये जी-तोड़ मेहनत करते और प्रति सोमवार को श्रीकाशी विश्वनाथ मन्दिर जाकर जल चढ़ा आते। श्रीबंकाजी ने यह नियम ही ले लिया था कि जब भी वे बनारस में सोमवार को रहते, जल चढ़ाने हेतु मन्दिर जाया ही करते थे। कालान्तर में, पूज्या आनन्दमयी माँ की कृपा से एवं भोलेबाबा के आशीर्वाद से श्रीबंकाजी की खुजली पूर्णत: समाप्त हो गयी। कभी यह तकलीफ जीवन में दुबारा हुई ही नहीं।

स्वास्थ्य लाभ के बाद पढ़ाई में आ रही सारी बाधा दूर हो गयी और श्रीबंकाजी ने अपना सम्पूर्ण ध्यान पाठ्यक्रम पर केन्द्रित कर दिया और कठिन परिश्रम करने लगे। इनकी मेहनत रंग लाई और इन्हें पूर्ण सफलता प्राप्त हुई। सन् 1947 में इन्होंने बी.ए. की फाइनल परीक्षा प्रथम श्रेणी से उत्तीर्ण कर ली।

****

भाई श्रीरामनिवास का विवाह

सन् 1947 में श्रीबंकाजी बी.ए. की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण करके पडरौना वापस लौट आये थे। परिवार और पड़ोस में वे जहाँ भी जाते सब उनको उत्तम परीक्षा-फल प्राप्त करने की बधाई देते और अब विवाह करके पडरौना में ही रहने की सलाह देते। श्रीबंकाजी विवाह की बात सुन-सुनकर थक चुके थे अत: उन्होंने स्पष्ट रूप से सबसे कह दिया—अगर आपलोग मुझसे बार-बार विवाह करने का आग्रह करेंगे तो मैं गोरखपुर चला जाऊँगा और आर.एस.एस. का कार्य पुन: आरम्भ कर दूँगा। फिर पडरौना कभी लौटकर नहीं आऊँगा।

श्रीबंकाजी का ऐसा कड़ा रुख देखकर सबने हताश मन से ही सही पर उनके विवाह की उम्मीद छोड़ दी और उनके छोटे भाई श्रीरामनिवासजी के विवाह के बारे में सोचने लगे। उस ज़माने में अगर बड़ा भाई अविवाहित हो तो छोटे भाई का विवाह करना बड़ी अटपटी बात थी। जगह-जगह टीका-टिप्पणी होने लगी परन्तु कोई उपाय नहीं था। श्रीबंकाजी का निर्णय दृढ़ था और वे किसी के भी समझाने से समझने वाले नहीं थे। उन्होंने विवाह न करने का निश्चय किया था जिस पर वे अटल रूप से आजीवन दृढ़ रहे।

श्रीरामनिवासजी को विवाह से कोई आपत्ति नहीं थी और ने सर्वथा योग्य भी थे अत: गीताप्रेस के प्रकाशक और मुद्रक पूज्य श्रीघनश्यामदासजी जालान के प्रयास से उनका सम्बन्ध गोरखपुर के सम्पन्न जालान परिवार में श्रीछोटेलालजी जालान की सुपुत्री सौभाग्यवती श्रीकौशल्यादेवी से तय कर दिया गया। यह विवाह सन् 1947 के जून माह में हुआ। विवाह के वक्त श्रीकौशल्यादेवी की आयु मात्र 14 वर्ष की थी। उस ज़माने में मारवाड़ी घरों में कन्या का विवाह बहुत छोटी उम्र में ही कर दिया जाता था। श्रीकौशल्यादेवी सुन्दर, सौम्य, मिलनसार और हँसमुख स्वाभाव की थी। वे गृहकार्यों में दक्ष, भोजन बनाने में अतिशय प्रवीण और सभी से स्नेहयुक्त यथायोग्य व्यवहार करने में कुशल थी। शीघ्र ही उन्होंने ससुराल में अपने सदगुणों से सबका मन मोह लिया।

श्रीबंकाजी को इस विवाह से हार्दिक प्रसन्नता हुई। उन्हें लगा कि अब परिवारवालों का ध्यान नवविवाहित दम्पत्ति में लग जायेगा और वे सबके केन्द्र बिन्दु नहीं रहेंगे। कोई उनसे विवाह के लिये बारम्बार आग्रह नहीं करेगा। उन्होंने हर्षित मन से अपने छोटे भाई और वधू को आशीर्वाद दिया। कुछ दिन पडरौना में रहने के बाद जुलाई महीने में वे बनारस चले आये।

****

पाञ्चजन्य पत्रिका का कार्य

सन् 1947 में काँग्रेसी नेताओं की अदूरदर्शिता एवं संतुष्टिकरण नीति के फलस्वरूप भारतमाता के दो खण्ड कर दिये गये थे। एक खण्ड मुसलमानों

के अधिकार में आया और उन्होंने मुसलमानी राज्य पाकिस्तान की स्थापना कर ली। दूसरा खण्ड भारत के हिन्दुओं के हाथ में आया, परन्तु हिन्दू राज्य की स्थापना नहीं हो सकी। काँग्रेसी नेताओं के दिल और दिमाग पर मुसलमानी संतुष्टीकरण का भूत सवार था, अतः धर्मनिर्पेक्ष राज्य की स्थापना हुई।

15 अगस्त 1947, स्वतंत्रता दिवस का दिन, यूँ तो प्रत्येक भारतवासी के लिये ही अति आनन्द का दिन था परन्तु आर.एस.एस. के निष्ठावान कर्मठ स्वयंसेवक श्रीबंकाजी तो देश की आज़ादी की खबर सुनकर फूले ही नहीं समा रहे थे। आज उनका बरसों पुराना 'आज़ाद भारत' का सुनहरा-रूपहला स्वप्न सार्थक जो हो गया था। जगह-जगह देशवासी तिरंगा फहरा रहे थे, आपस में गले मिल रहे थे, अबीर-गुलाल उड़ा रहे थे, एक-दूसरे को बधाई दे रहे थे, 'वन्दे मातरम्' और 'जय हिन्द' की ध्वनि से सम्पूर्ण नगर-गाँव गुंजायमान था।

आर.एस.एस. कार्यालय में बृहद् उत्सव मनाया गया, मिठाइयाँ बाँटी गयी, और इस खुशी के अवसर पर आर.एस.एस. ने राष्ट्रधर्म और पाँचजन्य नामक दो साप्ताहिक हिन्दी समाचार पत्र (weekly newspaper) और स्वदेश नामक दैनिक हिन्दी समाचार पत्र (daily newspaper) निकालने का फैसला किया। श्रीअटलबिहारी वाजपेयी को सम्पादन, श्रीदीनदयाल उपाध्याय को मार्गदर्शन और श्रीनानाजी देशमुख को प्रबन्ध निर्देशक की जिम्मेदारी सौंपी गयी।

श्रीनानाजी देशमुख श्रीबंकाजी की विद्वता, परिश्रमशीलता, कर्तव्यनिष्ठा उत्कृष्ट लेखन क्षमता और समयोचित सुन्दर शब्द सृजन करने की कला से पूर्व परिचित थे ही अतः उन्होंने श्रीबंकाजी को पाञ्चजन्य पत्रिका के कार्य में लगा दिया। श्रीबंकाजी को इस नियुक्ति से बड़ी प्रसन्नता हुई। यह कार्य उनकी रुचि के सर्वथा अनुरूप था। श्रीकृष्ण के शंख का नाम पाँचजन्य है। महाभारत के युद्ध में श्रीकृष्ण जब-जब पाँचजन्य शंख को बजाते थे तब-तब शत्रुओं के दिल दहल जाते थे और स्वपक्ष प्रबल हो जाता था। श्रीबंकाजी को पूरी उम्मीद थी कि पाञ्चजन्य पत्रिका के मध्यम से वर्तमान में भी वहीं कार्य

पुनः होगा। विपरीत विचार धाराओं का दमन होगा और हिन्दूराष्ट्र का सृजन होगा जो स्वतन्त्रत भारत के सुन्दर निर्माण में परम सहायक सिद्ध होगा। वे आशान्वित होकर बनारस में रहते हुये संघ प्रचारक जीवन व्यतीत करने लगे और काशी तहसील तथा पाँचजन्य का काम उत्साहपूर्वक देखने लगे।

जहाँ एक ओर हिन्दुस्तान की आज़ादी का सहर्ष उत्सव मनाया जा रहा था वहीं दूसरी ओर देश के बँटवारे को लेकर सब अत्यन्त दुःखी भी थे और सबसे अधिक चिन्ता पाकिस्तान में रहने वाले हिन्दुओं के लिये हो रही थी। पाकिस्तान की गलियों में कत्लेआम मचा हुआ था जहाँ हर हिन्दू बालक, वृद्ध, पुरुष, नारी की घोर निर्दयता से हत्या की जा रही थी। हर चौराहे पर क्रूरता का नग्न नाच हो रहा था। अत्यन्त वीभत्स दृश्य था। शवों से भरी रेल-गाड़ियाँ भारत आ रही थी। ऐसे कठिन वक्त में आर.एस.एस. के कार्यकर्ताओं ने अद्भुत साहस, पराक्रम और निस्वार्थ सेवा का प्रदर्शन किया। वे भूखे को भोजन देने में और शरणार्थियों को पुनर्वासित करने में जी जान से जुटे हुये थे। आतंकित-आशंकित कांग्रेस सरकार के लिये आर.एस.एस. की बढ़ती प्रतिष्ठा और लोकप्रियता असहनीय हो रही थी। वे किसी भी प्रकार से आर.एस. एस. का दमन करना चाहते थे।

कैसी विडम्बना थी कि आज़ादी के तुरन्त बाद ही पाकिस्तान में रहने वाले हिन्दुओं पर विपत्तियों का कहर टूट पड़ा था। जितने हिन्दुओं को पाकिस्तान में मात्र दो-तीन महीनों में मार डाला गया, वह संख्या 6 साल लम्बे चलने वाले द्वितीय विश्वयुद्ध के मृतकों की संख्या से कहीं अधिक थी। श्रीबंकाजी समाचार-पत्रों में दिल दहला देने वाली इन खबरों को जब पढ़ते थे तो उनका खून खौल उठता था। उन्हें लगने लगा कि हिन्दुत्व की रक्षा करने के लिये और आम जनता को वर्तमान स्थिति से जागरूक कराने के लिये समाचार-पत्र बहुत ही सशक्त माध्यम है और वे पूरी तत्परता और लगन से पाँचजन्य के कार्य में जुटे रहे।

प्रारम्भिक अनेक कठिनाइयों के बाद, 14 जनवरी 1948 को मकर संक्राति के पावन पर्व पर अपने आवरण पृष्ठ पर भगवान श्रीकृष्ण के मुख

से शंखनाद के साथ, श्रीअटलबिहारी वाजपेयी के संपादकत्व में 'पाँचजन्य' साप्ताहिक का अवतरण हुआ। यह पत्रिका स्वाधीन भारत में स्वाधीनता आन्दोलन के प्रेरक आदर्शों एवं राष्ट्रीय लक्ष्यों का स्मरण दिलाते रहने के संकल्प का उद्घोष ही थी। पैसे के अभाव में इस पत्रिका का प्रकाशन आर.एस.एस. संगठन के लिये बेहद मुश्किल कार्य था, लेकिन इससे उनके उत्साह में कमी नहीं आयी और सुदृढ़ राष्ट्रवादी सामग्री के कारण इस प्रकाशन को लोकप्रियता और पहचान मिली।

30 जनवरी 1948 को संघ के पूर्व सदस्य नाथूराम गोडसे ने पिस्तौल की एक गोली से महात्मा गाँधी की हत्या कर दी। सम्पूर्ण भरत में शोक छा गया। इस हत्या-काण्ड से नेहरु सरकार को आर.एस.एस. जैसे देशभक्त संगठन की निन्दा करने, बदनाम करने और नष्ट करने का एक ईश्वर प्रदत्त सुनहरा अवसर मिल गया। आर.एस.एस. के प्रधान श्रीगोलवलकरजी को 1 फरवरी 1948 की आधी रात, धारा 302 के तहत गिरफ्तार कर लिया गया। सिर्फ उन्हें ही नहीं, देशभर के अनेकानेक आर.एस.एस. कार्यकर्ताओं और पदाधिकारियों को रातों-रात गिरफ्तार किया गया और हजारों सलाखों के पीछे रखा गया।

4 फरवरी, 1948 को नेहरू सरकार ने आरोप लगाया कि अपने आदर्शों के विपरीत, आर.एस.एस. के सदस्य हिंसक गतिविधियों में भाग लेते हैं, गैरकानूनी हथियार एकत्रित करते हैं और हिंसात्मक कार्यों के लिये लोगों को प्रेरित करते हैं। श्रीगोलवलकरजी ने नेहरू सरकार द्वारा लगाये सभी आरोपों को पूर्णरूप से अस्वीकार किया लेकिन कानून का सम्मान रखने के लिये आर.एस.एस. का काम स्थगित कर दिया।

सरकार द्वारा आर.एस.एस. पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया जिससे पाँचजन्य आदि सभी प्रकाशन कार्यों पर व्यापक असर पड़ा। सरकार ने जगह-जगह छापे मारने आरम्भ कर दिये और शक की बुनियाद पर वरिष्ठ आर.एस.एस. कार्यकर्ताओं की, पत्रकारों की गिरफ्तारी हो रही थी। आर.एस.एस. के बीस हजार से अधिक कार्यकर्ताओं पर तरह-तरह के आरोप लगाये गये और

साजिश के सुराग प्राप्त करने के लिये उनके घरों की बारीकी से तलाशी ली गयी लेकिन कांग्रेस सरकार को कहीं कोई सबूत नहीं मिला। संघ पर प्रतिबन्ध लग जाने से सारे स्वयंसेवकों को, स्थिति सामान्य हो जाने तक, घर लौटने का आदेश दे दिया गया। ज्वलन्त राजनीति का घटना-क्रम कुछ ऐसी शीघ्रता से बढ़ा कि श्रीबंकाजी की सारी गर्मजोशी पूर्ण निराशा में परिवर्तित हो गयी। आर.एस.एस. और पत्रिका का सारा काम रातों रात बन्द हो गया। ऐसे हालात में बनारस में रहने का कोई अर्थ नहीं था। अत: श्रीबंकाजी निराश मन से पडरौना वापस लौट आये।

उन दिनों इनकी मानसिक स्थिति बड़ी विचित्र थी। बचपन से श्रीबंकाजी के जीवन में दो प्रबल विचारधारा रही है। एक देशप्रेम की ओर दूसरी भगवद्प्रेम की। भारत को अंग्रेजों से आजादी मिल चुकी थी अत: मातृभूमि को आजाद कराने का इनका स्वप्न पूरा हो चुका था, परन्तु देश की वर्तमान अस्थिर स्थिति उनको अपनी ओर बरबस खींच रही थी और वे मातृभूमि की हर सम्भव सेवा करना चाहते थे और दूसरी ओर इनका मन हरि चरणों में भी समर्पित हो जाना चाहता था। 1948 की डायरी में लिखी इस कविता में इन्होंने अपने व्यथित निराश हृदय को मानो खोल कर रख दिया है।

कमल कलिका अति प्रसन्ना

कमल कलिका अति प्रसन्ना स्वप्न जग की राज रानी।
थी उमंगें मन अनेकों कल्पनाएँ अति सलोनी॥

श्याम चरणों पर सुमन हो ओस कणवत् कमलदल पर।
हो समर्पित फिर कहूँ मैं भाग्य मेरा परम सुन्दर॥
अल्प जीवन यह सफल हो सुमन की यह कामना थी।
श्याम सुन्दर को रिझाऊँ बस इसी की चाहना थी॥

किन्तु दुर्लभ है सफलता मार्ग में बाधा अनेकों।
वातझंझा कठिन आये तुरत मानो तोड़ फेकों॥
सकल विपदा तदपि झेली थी सुरक्षित पुष्प कलिका।
रूप निधि बिखरी पड़ी थी जब उठा तारुण्य उसका॥

प्रात बेला भैरवी गा कर रहे थे भ्रमर गुंजन।
पूर्व दिशि में गगन पथ पर झाँकता रवि स्वर्ण वाहन॥
हास्य अधरा दिव्य उषा रक्त कमलों को लजाती।
मेघ निर्मित पालने में बाल रवि को थी झुलाती॥

खग चहकते डाल पर थे द्रुम दलों में मधुर सिहरन।
मन्द झोंके पवन के थे कमल कलिका का विकम्पन॥
फूल चुनने हेतु माली कमल सर वर तीर आया।
मिला कलिका को वचन था हृदय अति आनन्द छाया॥

सान्त्वना उसको मिली थी था यही विश्वास उसको।
श्याम सुन्दर चरण छवि पर वार दूँगी आज मन को॥
किन्तु बेबस अब पड़ी थी हार में गुथ पुष्प कलिका।
साथ छूटा आश टूटी हाट में थी आज कलिका॥

स्वप्न सचमुच स्वप्न निकले सान्त्वना बस सान्त्वना थी।
हार में वह विंध चुकी थी भावनाएँ बिंध रही थीं॥
एक ही दिखता सहारा एक ही है श्याम प्यारा।
बुझ चुका हो आश दीपक उस निशा का चाँद प्यारा॥

अश्रु जल से लिख रही थी भग्न गाथा व्यथित कलिका।
श्याम चरणों चढ़ न पायी कर न पाई स्पर्श उनका॥
हो विताड़ित नियति कर से मसल कलिका दी गयी थी।
विश्व सारा हँस रहा था खिन्न कलिका रो रही थी॥

20.03.1948

****

श्रीबदरीनाथ की यात्रा

सन् 1948, पडरौना का प्रसंग है। शीतकाल के दिन थे। सुन्दर धूप खिली थी। घर के आंगन में वृद्धा दादीजी धूप में बैठी थी। श्रीबंकाजी को पूज्या दादीजी का अतिशय स्नेह बचपन से ही मिला है। उन्हें बाहर धूप में

अकेले बैठा देखकर श्रीबंकाजी भी वहीं आ गये और बगल में बैठ गये। सहज चर्चा चल पड़ी।

दादीजी भली प्रकार जानती थी कि आजकल राधेश्याम का हृदय बड़ा व्याकुल है। आर.एस.एस. पर प्रतिबन्ध लगने से यह पडरौना लौट तो आया है पर उसका मन यहाँ तनिक भी नहीं लग रहा है। उनकी वृद्ध आँखों ने ठीक लक्ष्य कर लिया था कि आजकल यह शान्त-गम्भीर रहता है और एकान्तप्रिय होता चला जा रहा है अत: उन्होंने अपने पोते को प्रसन्न कर देने वाली चर्चा छेड़ी और पूछा—राधेश्याम! तुम हिमालय की यात्रा पर गये थे न? वहाँ तुमने क्या-क्या देखा, कैसा है वह देस भला? तनिक बताओ तो सही।

यह तो श्रीबंकाजी का सर्वाधिक प्रिय विषय था। उन्होंने अपनी हिमालय यात्रा की कथा कहनी आरम्भ कर दी। दादीजी उनके रोमांचकारी वर्णन को बड़े प्रेमपूर्वक सुन रही थी। कभी उन्हें आश्चर्य होता तो कभी आह्लाद। दादीजी ने कहा—अंग्रजों के ज़माने में तो यात्रा का बहुत भय था। कुलीन घर की स्त्रियाँ बाहर आने-जाने में संकोच अनुभव करती थी। पर अब तो देश स्वतंत्र हो चुका है। अब कोई डर नहीं है। मेरी श्रीबदरीनाथजी के दर्शन की बड़ी लालसा है। अगर सम्भव हो तो तू मुझे तीर्थ करा ला।

दादीजी की मधुर वाणी सुनकर श्रीबंकाजी तो मानो खुशी से उछल ही पड़े। आर.एस.एस. का कार्य बन्द था, ऐसे हालातों में दादीजी के साथ तीर्थयात्रा, हिमालय-यात्रा का विचार ही उन्हें रोमांचित करने के लिये पर्याप्त था। उन्होंने आतुरतापूर्वक पूछा—क्या सच में जाना चाहती हो, विनोद तो नहीं कर रही हो ना कहीं मुझसे?

दादीजी ने प्रेमपूर्वक श्रीबंकाजी के सिर पर हाथ फेरते हुये कहा—नहीं रे! मैं भला अन्यथा विनोद क्यों करूँगी? तेरे दादाजी की और मेरी आन्तरिक इच्छा है कि श्रीबदरीनाथजी का दर्शन इस जीवन में प्राप्त हो जाये तो यह मानव जीवन सफल हो जायेगा।

श्रीबंकाजी के तो आनन्द का ठिकाना ही न रहा। वे तुरन्त दौड़कर

दादाजी के पास गये और उनसे सारी बातें कही। दादाजी के नेत्र भर आये। उन्होंने कहा—श्रीबदरीनाथजी के दर्शन का अत्यधिक महात्म्य है। सन्तों से सुना है—अन्य तीर्थों में स्वधर्म का विधिपूर्वक पालन करते हुये मृत्यु होने से मुक्ति होती है, परन्तु बदरी क्षेत्र के तो दर्शन मात्र से ही मुक्ति मनुष्य के हाथ आ जाती है। जहाँ साक्षात् सनातन देव परमात्मा नारायण विराजमान हैं, वहाँ सारे तीर्थ तथा सम्पूर्ण जगत को ही प्रस्तुत मानना चाहिये। श्रीबदरीनाथ ही परमतीर्थ, तपोवन तथा साक्षात् परात्पर ब्रह्म हैं। मैं तो कब से इस यात्रा पर जाने की सोच रहा हूँ पर संयोग ही नहीं बैठा। अब शरीर लाचार हो चला है। कोई युवक सारी व्यवस्था कर दे और संग-साथ मिल जाये तो मैं जा सकता हूँ।

उन दिनों आजकल की भाँति तीर्थयात्रा नहीं होती थी कि अपनी गाड़ी या बस में हरिद्वार से सवेरे बैठे और सायं तक श्रीबदरीनाथ धाम पहुँच गये। तब पक्की सड़क नहीं थी और ऋषिकेश से ही यात्रा का सारा सामान लेकर पैदल जाना पड़ता था। अगर अन्य टोलियाँ भी ऋषिकेश से जा रही होती तो वे भी संग हो लेती और सब एक साथ मार्ग में स्थित तीर्थस्थलों के दर्शन करते हुये, कहीं स्नान तो कहीं प्रणाम करते हुये आगे बढ़ते। रास्ते में ठहरने के पड़ाव-स्थल बने हुये थे जिन्हें प्रचलित भाषा में 'चट्टी' कहा जाता था। इन चट्टियों पर लोग पड़ाव डालते। भोजन पकाने के बर्तन यहाँ किराये पर ले लिये जाते और सब सात्विक भोजन पकाकर ठाकुरजी को भोग लगाते और प्रसाद पाते। रात्रि-विश्राम होता और प्रातः पुनः यात्रा आरम्भ कर दी जाती। स्थानीय लोगों से वहाँ के तीर्थ महात्म्य और सन्तों-भक्तों की कथा सुनने को मिलती। इस प्रकार सम्पूर्ण श्रीबदरीनाथ यात्रा में करीब एक महीने का समय लग जाया करता था।

श्रीबंकाजी को दादाजी के मन की बातें सुनकर अति प्रसन्नता हुई। उन्होंने कहा—मेरा हिमालय यात्रा का पूर्व अनुभव भी है और इस वक्त मैं किसी कार्य में व्यस्त भी नहीं हूँ अतः आप लोग अगर चलना चाहें तो मैं साथ चलकर आवश्यक प्रबन्ध कर सकता हूँ।

दादाजी यात्रा के लिये राजी हो गये। परिवार में यात्रा की बात चली तो पिताजी ने कार्यबाहुल्य के कारण यात्रा पर न जाने का निर्णय लिया और अपने छोटे पुत्र श्रीरामनिवासजी से भी पडरौना में ही रहने के लिये कहा। इन दिनों श्रीबंकाजी के बड़े भाई श्रीहनुमानप्रसादजी और भाभी नये व्यापार के सिलसिले में इन्दौर (मध्य प्रदेश) जा कर बस गये थे। श्रीकिसनी मईया की इच्छा होते हुये भी उन्होंने पति के साथ घर पर रहना ही उचित समझा। अगले दिन तक तीर्थयात्रा की चर्चा पडरौना के बंका परिवारों में आग की तरह फैल गयी। सबसे पूछा गया कि जो व्यक्ति जाना चाहता है वह साथ चल सकता है। पूज्या छेदी चाचाजी की माँ और रमती बुआजी साथ चलने के लिये प्रस्तुत हो गयी।

श्रीबंकाजी में नवस्फूर्ति का संचार हो गया। कहाँ तो वे अनमने से थे और पडरौना में ऊब गये थे परन्तु इस नवीन तीर्थयात्रा प्रकरण से वे हर्षित रहने लगे और बेसब्री से अक्षय तृतीया की प्रतीक्षा करने लगे। अक्षय तृतीया पर ही श्रीबदरीनाथजी के पट खुलते हैं और यात्रा आरम्भ होती है। वे यात्रा के उत्कृष्ट प्रबन्ध में लग गये। उस ज़माने में आजकल की तरह अनेकों होटल और धर्मशालाएँ तीर्थस्थलों में नहीं थीं। प्रमुख धर्मशालाओं में कमरा प्राप्त करने के लिये साधन सम्पन्न व्यक्तियों के अनुशंसा-पत्र की आवश्यकता होती थी। श्रीबंकाजी इन अनुशंसा-पत्रों की व्यवस्था में जुट गये। रेल का आरक्षण, गर्म कपड़ों की व्यवस्था, सामान्य दवाएँ, भोजन सामग्री आदि का प्रबन्ध भी कर लिया गया।

पडरौना में बहुत बड़ा बंका परिवार निवास करता है। सब लोग घर पर आकर दादाजी-दादीजी से मिलने लगे, प्रणाम करने लगे। उस ज़माने में जो भी वृद्ध व्यक्ति हिमालय की ओर तीर्थयात्रा पर जाता था, तो यह निश्चित नहीं माना जाता था कि यह वापस लौटकर आयेगा या नहीं। लम्बी पैदल यात्रा होती थी, कहीं वर्षा का तो कहीं आँधी-तूफान का प्रकोप सहना पड़ता था। कभी-कभी ऊँची चोटियों से पत्थर बरसने लगते थे और पैदल चलता व्यक्ति आहत हो जाता था। इसलिए यह परम्परा थी कि परिवार में सबसे

विदाई लेकर, बड़ों का आशीर्वाद और छोटों को स्नेहासिक्त करके, मन को पूर्ण रूप से विरक्त करके यात्रा की जाती थी। आन्तरिक भाव यही होता था कि लौट सके तो ठीक और नहीं लौट सके तो तीर्थ में प्राण जायेंगे, हानि तो कुछ है नहीं, लाभ-ही-लाभ है।

****

यात्रा प्रारम्भ

आखिरकार वह चिर प्रतिक्षित दिन भी आ गया। 06-05-1948 को श्रीबंकाजी ने पूज्य दादाजी, दादीजी, रमती बुआजी तथा छेदी चाचाजी की माँ के साथ श्रीबदरीनाथजी की यात्रा के लिये पडरौना से प्रस्थान किया। बस द्वारा सब गोरखपुर आये और ट्रेन से हरिद्वार पहुँच गये। हरिद्वार उत्तराखण्ड की पहाड़ियों के बीच बसा सुन्दर पवित्र धार्मिक नगर है। यहाँ भगवती गंगा की दुग्ध-फेनयुक्त निर्मल धारा की मनोहारिणी छटा सबका मन मोह लेती है। यह नगरी उत्तराखण्ड के चार धाम यात्रा के लिये प्रवेश द्वार है। श्रीबंकाजी का प्रथम पड़ाव यहीं था। सबने हर-की-पौड़ी पर स्नान किया और गंगा मैया मन्दिर तथा अन्य मुख्य देवालयों का अवलोकन किया। संध्या समय सबने श्रीगंगा महारानी की भव्य आरती के दर्शन किये और दो रात्रि हरिद्वार में व्यतीत करके तीसरे दिन नौका द्वारा सब ऋषिकेश पहुँच गये।

ऋषिकेश के आगे यात्रा पैदल करनी थी। सारी व्यवस्था पहले से थी ही। अत: ऋषिकेश के प्रमुख मन्दिरों का और लक्ष्मण झूला का दर्शन करके अगले दिन प्रात: देवप्रयाग की यात्रा आरम्भ की गयी। ऋषिकेश से देवप्रयाग की दूरी करीब 25 मील है। मार्ग में स्थान-स्थान पर चट्टियाँ है जहाँ श्रमित यात्री विश्राम कर सकते हैं। वृद्ध यात्रियों के लिये डोली की सुविधा उपलब्ध थी और सामान उठाने के लिये कुली कर लिये गये। प्राकृतिक सौन्दर्य का दर्शन करते हुये सबने प्रसन्न मन से सफर का श्रीगणेश किया। श्रीबंकाजी पूरी यात्रा में सतर्क थे कि वृद्ध दादाजी-दादीजी और माँ को कहीं भी असुविधा न हो। वे तत्परतापूर्वक सबकी सेवा-सम्भाल कर रहे थे।

भारत में दो नदियों का संगम-स्थल बहुत ही दिव्य माना जाता है

विशेषत: इसलिये कि नदियाँ देवी का रूप मानी जाती हैं। प्रयाग में गंगा, यमुना और सरस्वती के संगम के बाद गढ़वाल-हिमालय क्षेत्र के संगमों को सबसे पवित्र माना जाता है, क्योंकि गंगा, यमुना और इनकी सहायक नदियों का उद्गम-स्थल यहीं है। जिन स्थानों पर संगम होता है उन्हें प्रमुख तीर्थ कहा जाता है। ऋषिकेश से श्रीबदरीनाथ के मार्ग में पाँच संगम आते हैं। ये उत्तराखण्ड के प्रसिद्ध पंचप्रयाग देवप्रयाग, रुद्रप्रयाग, कर्णप्रयाग, नन्दप्रयाग तथा विष्णुप्रयाग मुख्य नदियों के संगम पर स्थित हैं। आज के युग में जब यात्री एक ही दिन में बदरीनाथ पहुँचना चाहता है तो वह इन मुख्य तीर्थों के दर्शन-स्नान से वंचित रह जाता है। उस ज़माने में पैदल यात्रियों की टोली प्रत्येक प्रयाग पर स्नान-तर्पण करती और सत्संग लाभ करते हुये आगे बढ़ती थी।

श्रीबंकाजी ने भी देवप्रयाग में अगला पड़ाव डाला। इसे सुदर्शन क्षेत्र भी कहा जाता है। अलकनंदा (बदरीनाथ से आने वाली धारा) तथा भगीरथी (गंगोत्री से आने वाली धारा) नदियों के संगम पर देवप्रयाग तीर्थ स्थित है। देवप्रयाग संगम-स्थल के बाद ही इस नदी को गंगा के नाम से जाना जाता है और गंगा पर्वतों को त्याग कर समतल भूमि पर सर्वप्रथम अवतरित होती हैं। यहाँ का संगम दृश्य इतना लुभावना है कि दर्शक मंत्रमुग्ध होकर बस देखता ही रह जाता है। दो नदियों के जल का अलग-अलग रंग एकदम स्पष्ट दिखाई देता है और संगम-स्थल पर मठमैले जल और हरिताभ जल का मिलन अत्यन्त आकर्षक लगता है। देवप्रयाग में शिव मन्दिर तथा रघुनाथ मन्दिर दर्शनीय हैं। श्रीबंकाजी यात्रा से पूर्व ही दर्शनीय स्थलों का विशद अध्ययन करके आये थे, उन्होंने सबको देवप्रयाग महात्म्य से अवगत कराया।

तीर्थ यात्रा का नियम था कि सूर्योदय के बाद जब रोशनी हो जाती तब यात्रा प्रारम्भ होती थी और दोपहर के तीन बजते-बजते सब पड़ाव तक पहुँचने का प्रयास करते थे क्योंकि तब बिजली कहीं थी नहीं और संध्या होने पर घने जंगलों में हिंसक पशुओं का भय रहता था। अत: सब सूर्यास्त के पहले ही किसी-ना-किसी चट्टी पर डेरा डाल देते थे। फिर भोजन बनाना और रात्रि विश्राम की व्यवस्था की जाती थी।

देवप्रयाग के बाद अगला पड़ाव था रुद्रप्रयाग जो कि 40 मील की दूरी पर था। मन्दाकिनी तथा अलकनंदा नदियों के संगम पर रुद्रप्रयाग स्थित है। पुराणों में इस तीर्थ का वर्णन विस्तार से आया है। यहीं पर ब्रह्माजी की आज्ञा से देवर्षि नारद ने हजारों वर्षों की तपस्या के पश्चात भगवान शंकर का साक्षात्कार कर सांगोपांग गन्धर्व शास्त्र और 'महती' नामक वीणा को प्राप्त किया था। संगम-स्थल पर नैसर्गिक सौन्दर्य के मध्य नीले और हरे रंग की नदियों के जल का परस्पर मिलन मन को सम्मोहित सा कर लेता है। समीप ही चामुंडा देवी व रुद्रनाथ मन्दिर विशेष दर्शनीय है। श्रीबंकाजी सबको तीर्थ महात्म्य बताते जा रहे थे और मुख्य मन्दिरों का दर्शन करवाते हुये आगे बढ़ रहे थे।

देवप्रयाग तक तो पहाड़ियाँ छोटी ही थीं मगर रुद्रप्रयाग समुद्रतल से अधिक ऊँचाई पर होने के कारण पहाड़ी रास्ता घुमावदार था और कठिन चढ़ाई प्रारम्भ हो गयी थी। ठण्ड भी बढ़नी शुरु हो गयी थी। श्रीबंकाजी के साथ तीन वृद्ध जन थे अत: उन्हें हर पल उनके स्वास्थ्य की चिन्ता बनी रहती थी। पूज्या छेदी चाचाजी की माँ की तबीयत कुछ खराब हो गयी थी। छेदी चाचाजी की माँ को प्रेमपूर्वक सभी माँ ही कहा करते थे। उन्हें सफर की थकान तो थी ही साथ हल्का ज्वर भी था। समयोचित उपलब्ध उपचार किया गया, परन्तु कुछ लाभ नहीं हुआ। तब सबने यह निश्चय किया कि आगे ऊखीमठ बड़ा शहर है, वहाँ किसी चिकित्सक से सम्पर्क कर लिया जायेगा। अन्य कुछ किया भी नहीं जा सकता था।

रुद्रप्रयाग से दो मार्ग श्रीबदरीनाथजी की ओर जाते हैं। एक मार्ग कर्णप्रयाग, नन्दप्रयाग होते हुये जोशीमठ जाता है और दूसरा मार्ग ऊखीमठ गुप्तकाशी होते हुये जोशीमठ जाता है। श्रीबंकाजी ने ऊखीमठ वाला मार्ग चुना। यह मार्ग थोड़ा लम्बा था अत: उन्होंने सोचा कि जाते वक्त इस लम्बे मार्ग से चलना चाहिये जिससे ऊखीमठ और गुप्तकाशी के दर्शन हो जायेंगे और बड़ा शहर होने के कारण माँ का सही उपचार भी हो जायेगा। श्रीबदरीनाथजी से लौटते वक्त नन्दप्रयाग, कर्णप्रयाग के दर्शन कर लिये जायेंगे। इस प्रकार से

यात्रा करने पर अधिक तीर्थों में जाने का अवसर प्राप्त होगा और दोनों मार्गों का अनुभव लाभ भी हो जायेगा।

रुद्रप्रयाग से ऊखीमठ की दूरी करीब 25 मील थी। ऊखीमठ अति प्राचीन पवित्र नगरी है। यहाँ की स्थानीय किंवदन्ती के अनुसार इस स्थान का नाम 'बाणासुर' की पुत्री 'ऊषा' से उत्पन्न हुआ है। ऊषा-अनिरुद्ध की प्रसिद्ध पौराणिक प्रणयकथा की घटनास्थली यही है। यहीं पर उनका विवाह हुआ था। एक विशाल मन्दिर में अनिरुद्ध और ऊषा की प्रतिमाएँ प्रतिष्ठित हैं। शीतकाल में पहाड़ी मार्ग बन्द हो जाने के कारण श्रीकेदारनाथजी की यात्रा स्थगित हो जाती है तब उनकी उत्सव मूर्तियों को ऊखीमठ के ओंकारेश्वर मन्दिर में ही प्रतिष्ठित किया जाता है। सर्दियों के करीब छः महीने श्रीकेदारनाथजी का पूजन-वन्दन यहीं होता है।

ऊखीमठ पहुँच कर सबने धर्मशाला में निवास किया। पूज्या रमती बुआजी, माँ की सेवा-शुश्रूषा में तत्परता से व्यस्त थीं। चिकित्सक को भी दिखाया गया परन्तु माँ की स्थिति बिगड़ती ही चली जा रही थी और वही अप्रिय घटना घटित हो गयी जिसका सबको पूर्वाभास हो रहा था। ऊखीमठ की पावन भूमि पर पूज्या छेदी चाचाजी की माँ का शरीर शान्त हो गया। श्रीबंकाजी ने पुत्र की भाँति उनका अग्नि संस्कार किया और सारी कर्मकाण्ड की क्रियाएँ पूर्ण की। पडरौना तार द्वारा सूचना भेजी गई। सबका शोकाकुल होना तो स्वाभाविक ही था मगर प्रसन्नता इस बात की थी कि परम पवित्र तीर्थ भूमि में, श्रीबदरीनाथजी का स्मरण करते-करते उनके प्राण छूटे हैं, इससे उत्तम मृत्यु भला क्या हो सकती है ? सारे कार्य पूर्ण होने पर यात्रा पुनः शुरु की गयी।

ऊखीमठ के पास ही गुप्तकाशी अति प्राचीन और पवित्र तीर्थ है। गुप्तकाशी अपने प्रसिद्ध पुराने विश्वनाथ मन्दिर, मणिकर्णिका कुण्ड और अर्द्धनारीश्वर मन्दिर के कारण लोकप्रिय आकर्षण है। अर्द्धनारीश्वर मन्दिर में भगवान शिव की मूर्ति आधे पुरुष और आधे स्त्री के रूप में स्थापित है। गुप्तकाशी में गुप्त-दान की विशेष महिमा बताई जाती है। सबने तीर्थ दर्शन और गुप्त-दान किये।

****

स्वामी श्रीसत्यानन्दजी से भेंट

गुप्तकाशी में श्रीबंकाजी की भेंट पूज्य स्वामी श्रीबालानन्दजी से हुई। स्वामी श्रीबालानन्दजी ने कालान्तर में सन्यास ले लिया था और उनका नाम स्वामी श्रीसत्यानन्दजी हो गया था और उन्होंने रमण-रेती, वृन्दावन में, कृपाविलास आश्रम की स्थापना की। उस वक्त स्वामी श्रीबालानन्दजी भी श्रीबदरीनाथजी की यात्रा पर जा रहे थे और श्रीबंकाजी से उनकी घनिष्ठ मित्रता हो गयी।

श्रीसत्यानन्दजी केरल प्रान्त से थे और उन्हें हिन्दी कम आती थी। वे अंग्रेजी में बोलते थे और उस ज़माने में पहाड़ी क्षेत्रों में और तीर्थों में अंग्रेजी बोलने वाले लोग कम मिलते थे। श्रीबंकाजी अच्छी अंग्रेजी बोलते थे अतः मित्रता होना स्वाभाविक ही था। दोनों समवयस्क थे और यदि यात्रा में अच्छा संगी-साथी मिल जाये तो आनन्द दुगुना हो जाता है। सम्पूर्ण मार्ग में दोनों पारस्परिक सत्संग-वार्ता करते हुये, आध्यात्मिक विचारों का आदान-प्रदान करते हुये प्रसन्नतापूर्वक साथ-साथ चलते रहे।

आगे की कुछ बातों का यहाँ उल्लेख कर देना प्रसंगोचित लग रहा है—श्रीसत्यानन्दजी के साथ श्रीबंकाजी का मधुर सम्पर्क आजीवन बना रहा। वे प्रेमपूर्वक उन्हें बंके! कहकर सम्बोधित किया करते थे।

श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार के साथ श्रीबंकाजी गर्मी में स्वर्गाश्रम, ऋषिकेश जाया करते थे। श्रीसत्यानन्दजी भी सत्संग के लोभ में वहाँ आ जाते थे। एक बार श्रीबंकाजी ने उनके लिये, श्रीबदरीनाथ धाम में साधना हेतु रहने के लिये कुटिया की व्यवस्था भी की थी। पारस्परिक प्रेम ऐसा था कि ऋषिकेश में जब श्रीबंकाजी बीमार पड़ते तो श्रीसत्यानन्दजी बार-बार सम्भालते थे, उनके कमरे में आकर चाय बनाया करते थे और जब श्रीसत्यानन्दजी अस्वस्थ्य होते तब श्रीबंकाजी उनका कमण्डल उठाकर शौच के लिये साथ में जाया करते थे।

90 के दशक में जब गीतावाटिका में श्रीबंकाजी बहुत अस्वस्थ हुये तो श्रीसत्यानन्दजी ने समाचार पाते ही रमण रेती से पत्र लिखा—आपको किसी भी वस्तु की आवश्यकता हो तो सूचित करें, मैं अवश्य व्यवस्था करूँगा।

दोनों एक दूसरे का सम्मान भी करते थे और सख्य भाव भी था। यह मधुर सखा भाव आजीवन बना रहा।

****

श्रीबदरीनाथ दर्शन

गुप्त काशी से जोशीमठ का मार्ग अति घुमावदार और लम्बा था। ये सौ मील की दूरी कई दिनों में तय की गयी। जोशीमठ सदियों से वैदिक शिक्षा तथा ज्ञान का केन्द्र रहा है। इसकी स्थापना आठवीं सदी में आदि शंकराचार्यजी ने की थी। जाड़े के छः महीने जब श्रीबदरीनाथ मन्दिर बर्फ से ढ़का होता है तब श्रीविष्णु भगवान की पूजा जोशीमठ के श्रीनरसिंह मन्दिर में ही होती है। यह मान्यता है कि श्रीबदरीनाथ की यात्रा तब तक अपूर्ण रहती है जब तक जोशीमठ जाकर श्रीनरसिंह मन्दिर में पूजा न की जाय। यहाँ कल्पवृक्ष एवं आदि शंकराचार्य गुफा दर्शनीय है।

जोशीमठ में दर्शन-पूजन-अर्चन एवं पर्याप्त विश्राम करके अगले दिन श्रीविष्णुप्रयाग की यात्रा प्रारम्भ हुई। धौली गंगा तथा अलकनंदा नदियों के संगम पर विष्णुप्रयाग स्थित है। संगम स्थल पर भगवान विष्णु का प्राचीन मन्दिर और विष्णुकुण्ड दर्शनीय हैं। यहीं से सूक्ष्म बदरिकाश्रम प्रारम्भ होता है। इसी स्थल पर दो पर्वत हैं, जिन्हें भगवान के द्वारपाल जय-विजय के रूप में जाना जाता है।

श्रीविष्णुप्रयाग से बदरीनाथ की दूरी करीब 20 मील है। श्रीबदरीनाथ हिमालय की उपत्यका में अवस्थित मुख्य धाम है। यह हिन्दुओं के चार धामों में प्रमुख तीर्थ-स्थल है। श्रीबदरीनाथजी की चतुर्भुज मूर्ति शालिग्राम शिला से निर्मित, ध्यानमुद्रा में है। कहा जाता है कि यह मूर्ति देवताओं ने नारदकुण्ड से निकालकर यहाँ स्थापित की थी। मन्दिर में श्रीलक्ष्मीजी, कुबेरजी, गरुड़जी, नारदजी, उद्धवजी और नर-नारायण विग्रह की पूजा होती है एवं अखण्ड दीप जलता है, जो कि अचल ज्ञानज्योति का प्रतीक है। प्रत्येक हिन्दू की यह कामना होती है कि वह श्रीबदरीनाथ का दर्शन एक बार अवश्य ही करे। यहाँ

पर अत्यधिक शीत के कारण अलकनन्दा नदी में स्नान करना अत्यन्त ही कठिन है। अलकनन्दा के तो दर्शन ही किये जाते हैं। यात्री तप्तकुण्ड में स्नान करते हैं। मुख्य मन्दिर में वनतुलसी की मालाएँ, चने की कच्ची दाल, सूखा नारियल, मेवा और मिश्री आदि का प्रसाद चढ़ाया जाता है।

जब भगवान विष्णु योगध्यान मुद्रा में तपस्या में लीन थे तो बहुत अधिक हिमपात होने लगा। भगवान विष्णु हिम में पूरी तरह डूब चुके थे। उनकी इस दशा को देखकर माता लक्ष्मी का हृदय द्रवित हो उठा और उन्होंने स्वयं भगवान विष्णु के समीप खड़े होकर एक बेर (बदरी) के वृक्ष का रूप ले लिया और समस्त हिम को अपने ऊपर सहने लगीं। माता लक्ष्मीजी भगवान विष्णु को धूप, वर्षा और हिम से बचाने की कठोर तपस्या में जुट गयीं। कई वर्षों बाद जब भगवान विष्णु ने अपना तप पूर्ण किया तो देखा कि लक्ष्मीजी हिम आच्छादित हैं। उन्होंने माता लक्ष्मी के तप को देख कर कहा—हे देवी! तुमने भी मेरे ही बराबर तप किया है अत: आज से इस धाम पर मुझे तुम्हारे ही साथ पूजा जायेगा और क्योंकि तुमने मेरी रक्षा बदरी वृक्ष के रूप में की है इसलिये आज से मुझे बदरी के नाथ, 'बदरीनाथ' के नाम से जाना जायेगा। इस तरह से भगवान विष्णु का नाम बदरीनाथ पड़ा।

जहाँ भगवान बदरीनाथ ने तप किया था, वही पवित्र स्थल आज तप्त-कुण्ड के नाम से विश्व-विख्यात है। उस कुण्ड में हर मौसम में गर्म पानी उपलब्ध रहता है। यहीं सबने स्नान किया और मन्दिर में श्रीबदरीनाथजी का दर्शन-पूजन करके सबने अतिशय आह्लाद का अनुभव किया।

****

ब्रह्मकपाली पर पितरों का तर्पण-श्राद्ध

श्रीबदरीनाथ धाम में ब्रह्मकपाली पर पितरों के लिये तर्पण-श्राद्ध किया जाता है। पौराणिक मान्यता के अनुसार श्रीबदरीनाथ धाम पितरों को पिण्डदान देने के लिये सर्वश्रेष्ठ स्थान माना गया है। बदरीनाथ पहुँचते ही बंका कुल के पण्डे मिल गये थे और उन्हीं के नेतृत्व में पिण्डदान की प्रक्रिया पूर्ण करने की व्यवस्था की गयी। दादाजी-दादीजी ने अपने पूर्वजों के नाम से ब्रह्मकपाली

पर पिण्डदान दिया और अब श्रीबंकाजी को अपनी जन्मदात्री माता का पिण्डदान करना था। श्रीबंकाजी ने पण्डाजी से कहा—आपने एक पिण्ड मेरी माँ के नाम से बनाया है, आप एक पिण्ड और बना दें।

पण्डाजी को श्रीबंकाजी की बात बहुत अटपटी लगी। उन्होंने कहा—आपके पिताजी को प्रभु लम्बी आयु प्रदान करें। वे तो जीवित हैं फिर आप दूसरा पिण्ड बनाने के लिये क्यों कह रहे हैं? यह उचित नहीं है।

श्रीबंकाजी ने कहा—पण्डाजी! आप गलत समझ रहे हैं। एक पिण्डदान तो मैं अपनी जन्मदात्री माँ के लिये करूँगा ही मगर दूसरा पिण्ड मैं देश के उन समस्त शहीदों के नाम से करना चाहता हूँ जिन्होंने भारत भूमि को आज़ाद कराने के लिये अपने प्राणों की सहर्ष आहुति दी है। यह दूसरा पिण्ड देश के वीर शहीदों के लिये है।

पण्डाजी के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। उन्होंने कहा—आप तो बड़ी अनोखी-अनसुनी बात कह रहे हैं। पीढ़ियों से हम यहाँ तीर्थ में पिण्डदान करवा रहे हैं, आजतक किसी ने भी ऐसा नहीं किया है।

श्रीबंकाजी के नेत्र सजल हो गये। उन्होंने कहा—स्वतन्त्रता संग्राम में अनगिनत व्यक्ति शहीद हुये हैं। किसी-किसी का तो सम्पूर्ण कुल ही नष्ट हो गया है, कोई जलदाता तक नहीं है। उनकी मुक्ति भला कैसे होगी? इस देश के प्रत्येक शहीद वीर मेरे लिये पिता तुल्य हैं और मैं उनका बालक हूँ। अब एक पुत्र होने के नाते मैं उनका पिण्डदान करूँगा। हर सच्चे भारतीय का कर्तव्य है कि वह तीर्थ में जाय तो देश के शहीदों के लिये भी पिण्डदान करे, तर्पण करे। मेरा आप सबसे सविनय अनुरोध है कि आप एक पिण्ड और बना दें और आगे भी सब यात्रियों से देश के शहीदों के लिये पिण्डदान अवश्य करवायें।

श्रीबंकाजी को न तो यश प्राप्ति की कामना थी, न सत्ता की भूख थी और न ही किसी व्यक्तिगत लाभ की इच्छा थी। वे एक सच्चे देशप्रेमी थे जो भारत के समस्त देश वासियों का हृदय से मंगल चाहते थे। मात्र इक्कीस वर्ष के युवक की स्वार्थरहित-परमविशुद्ध-देशभक्ति, उर्मिल हृदय और ऐसी उत्कृष्ट

कर्तव्य परायणता देखकर सभी पण्डे नतमस्तक थे। उन्होंने श्रीबंकाजी के करकमलों से देश के वीर शहीदों के नाम पिण्डदान करवाया। सबके नेत्र बरबस सजल हो रहे थे। ब्रह्मकपाली से लौटकर श्रीबंकाजी ने पूज्य दादाजी-दादीजी के श्रीचरणों में साष्टांग प्रणाम किया। शब्दों में वर्णन करना कठिन होगा कि अपने प्रिय पौत्र राधेश्याम के लिये उनके हृदय से कितने आशीर्वादों की वृष्टि हो रही थी।

श्रीबदरीनाथजी के समस्त तीर्थों के दर्शन उपरान्त सभी नन्दप्रयाग, कर्णप्रयाग वाले मार्ग से लौटते हुये ऋषिकेश पहुँचे। वहाँ से हरिद्वार होते हुये, 17-06-1948 को सकुशल वापस पडरौना लौट आए। इस प्रकार से एक महीने में हरिद्वार, ऋषिकेश, ऊखीमठ, गुप्त काशी, जोशीमठ, बदरीनाथ एवं पंच प्रयाग के दर्शनों का सौभाग्य सबको प्राप्त हुआ।

****

इन्दौर आगमन

तीर्थ यात्रा से लौटने के बाद कुछ दिन बीत गये। जहाँ पहले पडरौना में केवल दो ही कपड़ों की दुकानें थी, वहाँ आज़ादी के बाद अब कई नयी दुकानें खुल गयी इसलिये कपड़ों के कारोबार का काम कुछ मन्दा हो चला था। श्रीबंकाजी के बड़े भाई श्रीहनुमानप्रसादजी और भाभी नये व्यापार के सिलसिले में पहले ही इन्दौर (मध्य प्रदेश) जा कर बस चुके थे।

पिताजी ने श्रीबंकाजी को दुकान सम्भालने के लिये कहा लेकिन सदा की भाँति उन्होंने इसमें कोई रुचि नहीं दिखलाई। वे बनारस जाकर एम.ए. करना चाहते थे और पिताजी चाहते थे कि बड़े पुत्र की अनुपस्थिति में वे कपड़ों का कारोबार देखे। दोनों में आपसी मन-मुटाव रहने लगा। पिताजी ने हर सम्भव प्रयत्न करके देख लिया, प्यार से समझाया, क्रुद्ध हुये, पडरौना के सम्मान्य लोगों से व्यक्तिगत बातचीत करवाई, पर वे पुत्र राधेश्याम को कपड़ों की दुकान पर न बैठा सके।

श्रीबंकाजी किसी भी कीमत पर अपनी पढ़ाई छोड़ने को तैयार नहीं थे। वे अपनी जिद पर अड़े रहे कि उन्हें एम.ए. करना-ही-करना है। पिताजी ने दो शर्तों पर उनकी बात स्वीकार की। पहली शर्त—वे अपने बड़े भाई के पास इन्दौर चले जायें और वहाँ किसी अच्छे कॉलेज से एम.ए. करें। दूसरी शर्त—एम.ए. में Economics उनका मुख्य विषय होगा, Politics नहीं। पिताजी की सोच थी कि पडरौना में तो यह दुकान पर जायेगा नहीं, इन्दौर चला जायेगा तो कम-से-कम इसी बहाने आर.एस.एस. से तो दूर रहेगा और शायद बड़े भाई के साथ काम पर भी जाने लगे।

श्रीबंकाजी को पिताजी की दोनों ही शर्त पसन्द नहीं आयी। स्थिति ऐसी थी कि न तो वे इन्दौर जाना चाहते थे और न ही Economics पढ़ना चाहते थे मगर उनके पास अन्य कोई चारा नहीं था। पडरौना में करने को कुछ था नहीं और वे एकदम हताश-निराश हो रहे थे। हारकर उन्हें पिताजी की दोनों ही शर्तें माननी पड़ी। पिताजी ने श्रीबंकाजी को जुलाई 1948 में इन्दौर भेज दिया और वहाँ अहिल्या बाई होलकर कॉलेज में उनका दाखिला एम.ए. Economics में करवा दिया।

श्रीबंकाजी इन्दौर अपने बड़े भाई के पास चले आये। श्रीहनुमानप्रसादजी बंका नहीं चाहते थे कि उनका छोटा भाई राधेश्याम इन्दौर आकर उनके साथ रहे। चोरी की लत, अलसीसर पलायन, व्यापार में हानि, और मँगनी टूटने के कारण हुई टीका-टिप्पणी को वे भूले नहीं थे परन्तु उन्होंने पिताजी की आज्ञा स्वीकार की और अपने भाई को सप्रेम अपने घर में रखा। वहाँ उनके भतीजे-भतीजी प्रभात, सुशील, प्रेम, किरण और वीणा भी थे जिनके साथ रहना श्रीबंकाजी को बहुत पसन्द था। वे भाई के पुत्रों-पुत्रियों को प्यार करते, शिक्षा सम्बन्धी जिज्ञासा करते, पढ़ने के लिये प्रेरित करते परन्तु होलकर कॉलेज का जीवन उन्हें रुचिकर नहीं लग रहा था।

अध्यापक अपने विषय के चाहे कितने भी प्रवीण प्रवक्ता क्यों न हों, अपनी पसन्द का विषय न हो तो कक्षा में आनन्द नहीं आता है। यही हाल श्रीबंकाजी का था। वे Economics की पुस्तक कम और समाचार-पत्र अधिक पढ़ने लगे। ज्वलन्त सक्रिय राजनीति में वे भाग ले चुके थे अतः

समाचार-पत्र बहुत रुचिपूर्वक पहले भी पढ़ा करते थे और अब आर.एस.एस. पर प्रतिबन्ध लगने के बाद देश की वर्तमान गतिविधियों से जुड़े रहने का बस यही एकमात्र माध्यम शेष रह गया था।

****

गिरफ्तारी

महात्मा गाँधी हत्या काण्ड के बाद जबसे श्रीगोलवलकरजी को गिरफ्तार किया गया था तब से उनका प्रधानमन्त्री श्रीजवाहरलाल नेहरू और उपप्रधानमन्त्री सरदार पटेल से लगातार पत्राचार हो रहा था। देशभर के आर.एस.एस. कार्यालयों की तलाशी में सरकार को कुछ भी हासिल नहीं हुआ था। अत: श्रीगोलवलकरजी आर.एस.एस. पर लगे प्रतिबन्ध को हटाने की माँग कर रहे थे। नेहरू सरकार का कहना यह था कि उनके पास बड़े पैमाने पर सबूत हैं जिससे आर.एस.एस. दोषी साबित होता है। सरकार की प्राणपण कोशिश के बावजूद श्रीगोलवलकरजी के खिलाफ कोई सबूत हाथ नहीं लगने के कारण छ: महीने बाद, जुलाई में उनको तो जेल से रिहा कर दिया गया परन्तु आर.एस.एस. का प्रतिबन्ध फिर भी नहीं हटाया गया।

सितम्बर महीने में श्रीगोलवलकरजी ने सरकार को खुली चुनौती दी कि अगर उनके पास एक भी पुख्ता सबूत आर.एस.एस. के खिलाफ़ है तो उसे राष्ट्र के सामने सार्वजनिक पेश करे अन्यथा आर.एस.एस. पर लगे प्रतिबन्ध को हटा दिया जाये। प्रकट किये बिना 'बड़े पैमाने पर सबूतों' के होने की बात कोई मोल नहीं रखती है। आर.एस.एस. एक राष्ट्रीयवादी देशभक्त संगठन है, वह सरकार के निरंकुश शासन को स्वीकार नहीं करेगी। सत्तारूढ़ नेताओं द्वारा हिन्दुओं के हित का शोषण किसी भी कीमत पर बर्दाश्त नहीं किया जायेगा। इतनी खुली चुनौती के बाद भी नेहरू सरकार ने कोई सबूत सार्वजनिक नहीं किया बल्कि श्रीगोलवलकरजी को दिल्ली छोड़ कर नागपुर चले जाने के लिये कहा। श्रीगोलवलकरजी ने दिल्ली छोड़ना स्पष्ट रूप से अस्वीकार कर दिया।

जहाँ एक ओर दिल्ली के नेताओं में ज्वलन्त राजनीति चल रही थी वहीं

भीतर-ही-भीतर आर.एस.एस. के सभी कार्यकर्ताओं को वापस बुलाने का काम आरम्भ हो गया था। सबको गुप्तरूप से सूचित किया जाने लगा कि अपने-अपने संघ कार्यालय में अविलम्ब लौट आयें। श्रीबंकाजी के पास इन्दौर में पत्र आया और वे तत्क्षण संघकार्य के लिय कॉलेज की पढ़ाई छोड़कर, घर पर बिना किसी को बताये, 1948 सितम्बर को इन्दौर से बनारस लौट आये।

नवम्बर महीने के अन्त में श्रीगोलवलकरजी ने सरकार को अत्यन्त कठोर शब्दों में पत्र लिखा कि या तो आर.एस.एस. का अपराध सिद्ध किया जाये या प्रतिबन्ध को हटाया जाये। मनमाने ढंग से कार्य करने वाली सरकार निरंकुश, असभ्य और एकतंत्र कहलाती है। अगर सबूत सार्वजनिक नहीं किये जायेंगे तो संघ के स्वयंसेवक अविलम्ब शाखा को पुन: प्रारम्भ करेंगे। इस विस्फोटक पत्र के उत्तर में श्रीगोलवलकरजी को दिल्ली में पुन: गिरफ्तार कर लिया गया।

गुरुजी के गिरफ्तार होते ही 9 दिसम्बर को गर्मजोशी से सत्याग्रह प्रारम्भ हो गया। सारे देश में आर.एस.एस. के स्वयंसेवक धरना दे कर बैठ गये। उनकी माँग थी—आरोप को सिद्ध करो, आर.एस.एस. पर लगे प्रतिबन्ध हटाओ, गुरुजी को छोड़ो। (Prove the charges, Lift the ban, Release Guruji) नेहरू सरकार ने सत्याग्रह का खुला विरोध किया जिसके फलस्वरूप एक महीने में, करीब 80,000 आर.एस.एस. कार्यकर्ताओं को गिरफ्तार किया गया लेकिन फिर भी आर.एस.एस. के विरुद्ध अधर्म का कोई सबूत सरकार द्वारा सार्वजनिक नहीं किया गया।

9-12-1948 संघ के सत्याग्रह में श्रीबंकाजी ने भी पाँचजन्य के अन्य कार्यकर्ताओं के साथ बनारस में भाग लिया। कुछ दिन शान्तिपूर्ण सत्याग्रह करने के बाद भी जब सरकार, तीन माँगों में से एक भी माँग पूरी करने को प्रस्तुत नहीं हुई और दिल्ली में सत्याग्रहियों पर लाठी चार्ज किया गया तब सबके सब्र का बाँध टूट गया। दिल्ली के लोगों की सहानुभूति में, 27 दिसम्बर 1948 को श्रीबंकाजी समेत अनेक स्वयंसेवकों ने बनारस में अनशन आरम्भ

किया। श्रीबंकाजी खूब भाषण देते थे और सबके साथ नारे लगाते थे। सरकार का रोष कहर बनकर टूटा और सभी सत्याग्रहियों को बनारस में गिरफ्तार कर लिया गया और केन्द्रीय कारागार बनारस में रखा गया।

****

जेल जीवन

श्रीबंकाजी इन्दौर से बिना किसी को बताये, कॉलेज की पढ़ाई छोड़कर अचानक भाग निकले थे। रात्रि में जब वे घर नहीं लौटे तो उनके बड़े भाई-भाभी को चिन्ता हुई। उन्होंने होलकर कॉलेज में पता किया, मित्रों से पूछा परन्तु कोई समुचित उत्तर नहीं मिला। जब तीसरे दिन भी श्रीबंकाजी नहीं लौटे तो उन्होंने पत्र द्वारा पिताजी को सूचित किया कि राधेश्याम तीन दिनों से घर नहीं आया है। पिताजी अपने पुत्र राधेश्याम की बिना बताये भाग जाने की बुरी आदत से भली-भाँति परिचित थे। यह कोई पहला अवसर तो था नहीं जब ऐसा हुआ हो! कहाँ गया है, क्यों गया है, किसी को कोई खबर नहीं थी। वे क्रोधित-चिन्तित तो बहुत हुये पर लाचार थे। उनके पास राधेश्याम से सम्पर्क करने का कोई तरीका नहीं था। वे उनके पडरौना लौटने की या पत्र-प्राप्ति की प्रतीक्षा करने लगे।

श्रीबंकाजी तो पडरौना आये नहीं, कुछ दिनों बाद बनारस सेन्ट्रल जेल से पिताजी के नाम एक पत्र आया जिसमें लिखा था कि उनके पुत्र श्रीराधेश्याम बंका को सरकार ने—न्याय विरुद्ध उत्तेजक भाषण द्वारा जनता को भड़काने, सरकार के विरुद्ध प्रतिकूल प्रदर्शन करने, अनशन करने और प्रतिबन्धित आर.एस.एस. की उग्र गतिविधियों का भागीदार होने के जुर्म में 27 दिसम्बर 1948 को गिरफ्तार किया है और अनिश्चित-काल के लिये केन्द्रीय कारागार बनारस में कैद रखा गया है।

पिताजी ने ऐसे पत्र की कल्पना भी नहीं की थी। उनके तो पैरों तले ज़मीन ही खिसक गयी, साँसें तेज़ हो गयी और वे हक्के-बक्के से रह गये। भविष्य में क्या होगा? कारागार में राधेश्याम कैसे रहेगा? सरकार कैदियों के

साथ कैसा सलूक करेगी? किस प्रकार से इस विपत्ति का हल निकलेगा? कब पुत्र की रिहाई होगी? इन्हीं सब प्रश्नों में उलझे पिताजी कभी प्रार्थना करते, कभी क्रुद्ध होते, कभी आशंकित होते तो कभी भयान्वित!

****

उधर नेहरु सरकार के आदेश से केन्द्रीय कारागार बनारस में, अनशन पर बैठे सभी आर.एस.एस. स्वयंसेवकों को लोहे की मजबूत सलाखों वाली जेल की कोठरी में बन्द रखा गया। उन्हें बाहर किसी से भी मिलने और बातचीत करने की अनुमति नहीं थी। जेल के सभी कठोर नियम-कानून पूर्ण सख्ती से सब पर आरोपित कर दिये गये।

राजनीतिशास्त्र (Politics) के प्रखर विद्यार्थी होने के नाते और समाचार पत्रिका से जुड़े होने के कारण, श्रीबंकाजी जानते थे कि जो व्यवहार सामान्य अपराधियों के साथ किया जाता है वही व्यवहार राजनैतिक बन्दियों के साथ करना सर्वथा अनुचित है। उन्होंने जेल में विरोध किया कि राजनैतिक बन्दी कोई साधारण चोर-डाकू-लुटेरा नहीं हैं। राजनैतिक बन्दियों को उचित सम्मान मिलना चाहिये। कारागार के कर्मचारियों को उनकी बराबरी सामान्य अपराधियों से नहीं करनी चाहिये और अपने व्यवहार की कटुता को नियन्त्रण में रखना चाहिये।

अपनी स्पष्टवादिता, तर्कशीलता, प्रसंगोचित शब्द सृजन करने के कारण श्रीबंकाजी को जहाँ आर.एस.एस. स्वयंसेवकों के बीच सम्मान मिलता था, वहीं जेल के अधिकारी उनसे चिढ़ गये और उन्होंने यह निश्चय किया कि अगर इस उपद्रवी व्यक्ति को अन्य कार्यकर्ताओं के साथ यहाँ रखा गया तो आगे चलकर यह सबका नेता बन बैठेगा और जेल में विरोध-विद्रोह होने की सम्भावना प्रबल हो जायेगी। अच्छा यही होगा कि इसका तबादला किसी अन्य जेल में करा दिया जाये। अधिकारियों ने अपनी कार्यशीलता का प्रदर्शन किया और दो सप्ताह बाद श्रीबंकाजी का तबादला बनारस केन्द्रीय कारागार से गाज़ीपुर जेल में करा दिया गया।

गाज़ीपुर जेल में श्रीबंकाजी को एकान्त पृथक कोठरी (Isolated cell) में रखा गया। ऐसी एकाकी कोठरी, जिसमें खूँखार अपराधियों को रखने की प्रथा है, आकार में 6/3 फुट की होती है और जिसका दरवाजा सिर्फ लोहे की सलाखों का ही नहीं अपितु पूरा-का-पूरा लोहे का होता है। दीवार में मात्र एक छोटी-सी ऊँची खिड़की होती है जिसे रोशनदान कहना अधिक उचित होगा। ऐसी ही एकान्त कोठरी में श्रीबंकाजी करीब साढ़े तीन महीने रहे। दिन में तीन बार कोठरी का दरवाजा खुलता। प्रात: एक घण्टा शौच-स्नानादि के लिये, दोपहर में एक घण्टा भोजन के लिये और संध्या समय एक घण्टा स्नान-भोजन के लिये। शेष दिन के इक्कीस घण्टे वे अपनी छोटी-सी कोठरी में अकेले ही बन्द रहते, न किसी को देख सकते, न सुन सकते।

एकान्त कोठरी में क्या था? मात्र एक कम्बल और पेशाब करने के लिये माटी की मटकी। शीतकाल के दिन थे, उत्तर भारत में वैसे भी शीत का प्रकोप कुछ अधिक ही रहता है। श्रीबंकाजी ने एक अतिरिक्त कम्बल की अधिकारियों से माँग की मगर जेल में कोई सुनवाई नहीं थी। हजारों की संख्या में बन्दी जेलों में भर दिये गये थे और उनके पास पर्याप्त कम्बल थे ही नहीं। श्रीबंकाजी ने भीषण ठण्ड के वे कष्टदायक साढ़े तीन महीने, आधी कम्बल ज़मीन पर बिछाकर और आधी ओढ़कर ठिठुरते हुये काटे।

एक 22 वर्ष का अत्यन्त मेधावी छात्र जो आराम से कॉलेज में पढ़ सकता था, सुखपूर्वक व्यापार कर सकता था, सुविधापूर्वक घर में जीवन यापन कर सकता था, वह देशवासियों के उत्थान के लिये, हिन्दू राष्ट्र के उज्ज्वल भविष्य के लिये, सत्तारूढ नेताओं की मनमानी राजनीति से हिन्दुत्व की रक्षा करने के लिये जेल की अन्धेरी कोठरी में अकेला निरुपाय-निरुद्देश्य-निराश पड़ा था।

जब श्रीबंकाजी को एकान्तिक कोठरी में रखा गया तो पहले तो ये घबराये, मन ऊब जाता, बेचैनी होती परन्तु पूर्ण एकान्त में इन्हें अपने जीवन पर गम्भीर मीमांसा, मानस-मन्थन, करने का सुअवसर मिला। धीरे-धीरे एकाकी पृथक्कृत कोठरी एक वरदान के रूप में परिवर्तित हो गयी। ये मन-ही-मन विचार करने लगे कि सन्तों से सुना है—**हरि व्यापक सर्वत्र समाना,**

तो क्या प्रभु यहाँ जेल की इस कोठरी में भी हैं? अगर मंगलमय प्रभु का हर विधान मंगलमय होता है तो क्या यह जेल यात्रा भी उनके मंगल विधान का ही एक अंग है? अगर ऐसा है तो जीवन का हर क्षण प्रभु स्मरण-चिन्तन में ही बिताना चाहिये। इसी प्रकार की विचार धारा, आत्मनिरीक्षण, स्वानुशीलन में डूबते-उतरते श्रीबंकाजी ने इन कठिन दिनों में वैष्णवों के सूत्र '*अव्यर्थ कालत्व*' को अपनाया अर्थात् साधक को एक पल का समय भी व्यर्थ नहीं गँवाना चाहिये। प्रतिपल भगवत् चिन्तन में व्यतीत करना चाहिये।

कई दिनों के गम्भीर आत्मविश्लेषण-विवेचन-चिन्तन-मनन का नवनीत श्रीबंकाजी के सामने रामायण की इस चैपोई के रूप में प्रकट हुआ। **भाय कुभाय अनख आलसहूँ, नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ।** श्रीरामचरितमानस की यह चैपाई इनके जीवन का मूल मन्त्र बन गयी और इनके मस्तिष्क में यह बात दृढ़तापूर्वक बैठ गयी कि प्रभु के पावन नाम से ही अब मंगल होगा। इसी से जेल जीवन से छुटकारा मिलेगा और इसी से जीवन को सही दिशा भी मिल जायेगी और इन्होंने निरन्तर नाम-जप करना प्रारम्भ कर दिया।

श्रीबंकाजी पूर्ण एकान्त में कभी प्रभु भक्ति में डूबते, तो कभी नाम-जप में। जो कागज-कलम उन्हें घर पत्र लिखने के लिये मिलता उसपर वे कविता लिखते। उन्होंने कारागार कोठरी की छोटी खिड़की से आने वाले मन्द प्रकाश में अनेकानेक कविताएँ, शेरों-शायरियाँ, और प्रार्थना लिखी पर दुर्भाग्यवश् वे सारे कागज़ात जेल में ही जब्त कर लिये गये और वह उत्कृष्ट लेखन सदा के लिये विलुप्त हो गया।

जहाँ इनके जेल में बन्द अन्य संगी-साथी राजनैतिक चर्चा कर रहे थे, जेल कर्मचारियों की कटुता को कोस रहे थे, नेहरु सरकार के एकतंत्र निरंकुश शासन को गाली दे रहे थे वहीं श्रीबंकाजी सबसे पृथक निरन्तर नाम-जप में लगे रहे और दयामय प्रभु से कातर प्रार्थना चल रही थी कि किसी भी प्रकार एक बार यहाँ से मुक्ति मिल जाय तो पुन: कभी राजनीति के पचड़े में नहीं पड़ूँगा। शेष जीवन को भगवतोन्मुख अग्रसर करते हुये प्रभु चरणों में पूर्णरूपेण समर्पित कर दूँगा।

यहाँ एक आश्चर्यमय संयोग का उल्लेख कर देना उचित लग रहा है। पूज्य श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार और पूज्य श्रीराधाबाबा के जीवन में भी ठीक ऐसी ही घटना घटी थी। उन दोनों सन्तों ने भी जेल यात्रा के समय ही राजनीति छोड़ने का निश्चय किया और अपने जीवन को पूर्ण रूप से भगवान की ओर मोड़ दिया था। फर्क सिर्फ इतना था कि उन्हें अंग्रेजों के समय जेल की यातनाएँ भोगनी पड़ी थी और श्रीबंकाजी आज़ादी के बाद गिरफ्तार हुये थे परन्तु तीनों के जीवन में जेल जाने के बाद ही प्रभु चरणों में समर्पण पुष्ट हुआ।

****

जेल से रिहाई

80,000 से अधिक स्वयंसेवक भारत की जेलों में यत्र-तत्र बन्द थे। आर॰एस॰एस॰ के वरिष्ठ पदाधिकारी इन्हें आज़ाद कराने के प्रयास में जी जान से जुटे हुये थे। अप्रैल मास में जाकर इन्हें कुछ सफलता प्राप्त हुई और अनेक स्वयंसेवकों को रिहा किया गया। श्रीबंकाजी को भी चार महीने की सज़ा काटने के बाद गाज़ीपुर जेल से मुक्ति मिली। कालान्तर में एक जाँच समिति की रिपोर्ट आ जाने के बाद संघ को गाँधी-हत्या-काण्ड के आरोप से बरी किया गया और आर॰एस॰एस॰ पर लगे प्रतिबन्ध को समाप्त कर दिया गया।

रिहाई के बाद श्रीबंकाजी ने घर लौटना उचित नहीं समझा अत: कुछ दिन बनारस में रहे और बाद में लखनऊ के राष्ट्रधर्म कार्यालय में काम करने लगे पर वहाँ उनका मन तनिक भी नहीं लगा। तन्हाई कोठरी में साढ़े तीन महीने व्यतीत करने के बाद, लगातार नाम-जप और भागवद्-चिन्तन में लीन रहने के कारण उनकी सोच में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन आया था। उनका झुकाव देश-भक्ति की अपेक्षा भगवद्-भक्ति की ओर अधिक होता चला जा रहा था।

अंग्रेजों के जमाने में जब श्रीबंकाजी राजनीति में आये थे तब देशभक्ति व्यापार नही थी। वह बाजार में बिकती नहीं थी। देशभक्ति तो मातृभूमि की स्वतंत्रता के लिये बिना किसी आशा-आशंका के जीवन को उत्सर्ग कर देने का निर्मल भाव था। उस समय था विशुद्ध त्याग और आज उसके स्थान पर

थी अधिकार की माँग। श्रीबंकाजी की सोच के सर्वथा विपरीत, आज़ादी के बाद देश में निरंकुश, स्वार्थी, सत्तारूढ नेताओं की अनीतिपूर्ण राजनीति प्रारम्भ हो गयी थी जिसके चंगुल से देश को आज़ाद कराना कठिन ही नहीं अपितु असम्भव था। जिस देश की बागडोर अयोग्य, बहुभक्षक अधिकारियों के हाथ में चली जाती है, उस देश के नागरिकों का भविष्य सर्वथा अन्धकारमय हो जाता है। श्रीबंकाजी का मन इस स्वार्थ लोलुप मलिन सियासत के गिरते स्तर से पूर्णत: उचट गया या फिर यह कहा जा सकता है कि दयामय प्रभु ने उनको अब राजनैतिक असीम दलदल से बाहर निकालकर उन्नति की ओर अग्रसर होनेवाले एक सुन्दर नवीन उत्कृष्ट मार्ग पर चलने की प्रेरणा दी।

श्रीबंकाजी की मन-ही-मन प्रभु से कातर प्रार्थना चल रही थी कि इस कठिन दुविधा के पल में उनको उचित मार्गदर्शन मिले। राजनीति में मन लग नहीं रहा था और प्रभु-भक्ति का कोई सही ढंग बैठ नहीं रहा था। ठीक ही कहा गया है—**दुचित कतहुँ परितोषु न लहहीं।** बचपन से ही वे समर्थ सन्त और सतगुरु की तलाश कर रहे थे और वह खोज अब भी ज्यों-की-त्यों जारी थी। क्या किया जाये ? कोई रास्ता समझ ही नहीं आ रहा था। इस काल की लिखित कुछ पंक्तियाँ उनके हृदय की पीड़ा को बखूब दर्शाती है।

अश्रुधारा

मृदुल कर किसका बढ़ेगा देख मेरी अश्रुधारा।
पी सकेगा कौन मेरी वेदना का सिन्धु खारा॥

नियति का कन्दुक बना हूँ क्या अमित है नियति रेखा
कौन अपने मृदु करो से नियति रेखा मेट देगा ?
है बसी पीड़ा हृदय में, हृदय-शिशु मेरा बिलखता
कौन अपने मृदु करों से थपथपा कर प्यार देगा ?

कहाँ आश्रय पा सकेगा अश्रु का जलकण बिचारा ?
मृदुल कर किसका बढ़ेगा देखकर मेरी अश्रुधारा ?

दीर्घ पथ में अबल अन्धे का सहारा दण्ड टूटा,
कौन मेरा दण्ड बनकर राह का सम्बल बनेगा ?
घोर तम हैं कठिन पथ है थक चुका हूँ हार बैठा
कौन अपना प्यार देकर लगा पथ पर आज देगा ?

प्यार उमड़ेगा कहाँ पर देख मुझको बैठ हारा ?
मृदुल कर किसका बढ़ेगा देख मेरी अश्रुधारा ?

हिल उठेंगे तार जिसके आज वह वीणा कहाँ है ?
बज उठेगी स्वयं वंशी आज वह वंशी कहाँ है ?
आकुलित मेरे हृदय के करुण गीतों के स्वरों पर
चल पड़ेंगे चरण जिसके आज वह करुणा कहाँ है ?

कहाँ मृदु कर जो उठेगा दिखा देने को किनारा ?
मृदुल कर किसका बढ़ेगा देख मेरी अश्रुधारा ?

जल रही ज्वाला निरन्तर वेदना में जल रहा है।
कौन जग में आज मेरे साथ पल भर जल सकेगा ?
या गगन के मेघ बनकर घिर उठे मेरे हृदय में
हृदय पट पर एक पल जो स्नेह वर्षण कर सकेगा ?

द्रवित होगा हृदय किसका हाथ का देने सहारा ?
मृदुल कर किसका बढ़ेगा देख मेरी अश्रुधारा ?

सुन सकेगा कौन मेरे करुण जीवन की कहानी
द्रवित होकर हो सकेगा हृदय जिसका तरल पानी
नयन में पानी भरेगा देख मेरा नयन पानी
एक पल जो रो सकेगा साथ में सुनकर कहानी

वह कहाँ है और उसके मृदों करों का स्नेह सारा ?
मृदुल कर किसका बढ़ेगा देख मेरी अश्रुधारा ?

वेदना की प्रलयधारा में पड़ी जीवन तरी है
कौन अपने मृदु करों में डाँड लेगा पार करने ?
गरजता मेरे हृदय में गरल का सागर भयंकर
कौन अपने मृदु करों में सिन्धु लेगा पान करने ?

कहाँ मृदु कर कर सके जो एक अंजुलि सिन्धु सारा
पी सकेगा कौन मेरी वेदना का सिन्धु खारा ?
मृदुल कर किसका बढ़ेगा देख मेरी अश्रुधारा ?

होलिका दहन वि.सं.2006, सन् 03.03.1950

कई महीनों की मानसिक उथल-पुथल के बाद श्रीबंकाजी ने एक ऐसा प्रमुख निर्णय लिया जिसने उनके भावी जीवन की धारा को सर्वथा मोड़ दिया। उन्होंने लखनऊ, आर.एस.एस. और पॉचजन्य पत्रिका का कार्य सदा-सदा के लिये छोड़ दिया तथा अपने प्रिय मित्र श्रीब्रह्मस्वरूपजी अग्रवाल के साथ 08.04.1950 को सन्त-सदगुरु की खोज में हरिद्वार के कुम्भ मेले में चले गये।

कुम्भ मेले में दोनों मित्र कई दिनों तक रहे। भारत के विभिन्न सम्प्रदाय के महंतों के दर्शन किये, साधु-यति-संयासी-वेदान्ती-ज्ञानी-भक्तों के प्रवचन सुने, सन्तों का संग किया और उनकी रहनी को करीब से देखा परन्तु श्रीबंकाजी को कोई भी ऐसा व्यक्ति न मिला जिसे देखते ही अपने जीवन को उन्हें समर्पित करने की हृदय में स्फुर्ण हो। श्रीबंकाजी ने बाल्यकाल में श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार के प्रति विनीत प्रार्थना की थी कि उन्हें अपने चरणों में स्वीकार कर लें। तब से श्रीबंकाजी उसी कोटि के सन्त की तलाश में थे। इसी उद्देश्य से वे कुम्भ में भी आये थे परन्तु यहाँ भी उनकी नज़रों में कोई नहीं चढ़ा और उनका प्रयोजन सफल नहीं हुआ। सन्त-सद्गुरु की खोज बनी ही रही।

****

भाई रामनिवास का देहावसान

श्रीबंकाजी के छोटे भाई श्रीरामनिवासजी उनके भाई कम और मित्र अधिक थे। जहाँ बड़े भाई श्रीहनुमान भईया, चौदह वर्ष बड़े होने के कारण पितृतुल्य थे वहीं श्रीरामनिवासजी मात्र एक-दो वर्ष छोटे होने के कारण हमउम्र मित्र सदृश थे, जो बचपन की हर छोटी-बड़ी नटखट शरारतों में उनका भरपूर साथ दिया करते थे।

कभी-कभी विधि के विधान बड़े क्रूर और कठोर होते हैं। सन 1950 में जेठ का महीना चल रहा था। पडरौना में भीषण गर्मी पड़ रही थी। गर्मी में विवाह तो होते ही हैं और उस ज़माने में सजनगोठ के बाद विवाह की जो भी भोजन सामग्री बच जाती थी वह परिवार और पास पड़ोस में वितरित कर दी जाती थी। सब लोग बड़े चाव से ठण्डी पूड़ी-सब्जी खाया करते थे। इन दिनों श्रीहनुमानप्रसादजी भी इन्दौर का काम-काज नहीं चलने के कारण सपरिवार पुनः पडरौना लौट आये थे। श्रीहनुमानप्रसादजी और श्रीरामनिवासजी को बासी पूड़ी और दही खाने का बहुत शौक था और वे कई दिनों से विवाह की बची हुई पूड़ियाँ खा रहे थे।

संयोग की बात है, इन्हीं दिनों खेतान परिवार में श्रीभगवती प्रसाद खेतान की धर्मपत्नी पूज्या भाभीजी का असामयिक निधन हो गया। श्रीभगवती भईया का श्रीबंकाजी से और श्रीरामनिवासजी से, फूफेरे भाई होने के नाते, सदा ही बहुत अधिक प्रेम रहा है। इस दुखद समाचार से बंका परिवार के सभी सदस्य शोकाकुल हो उठे। श्रीरामनिवासजी का तो भाभीजी से अत्यन्त स्नेहयुक्त देवर-भाभी का मधुर सम्बन्ध था। वे बहुत ही दुःखी मन से अर्थी के साथ चले। उन दिनों अर्थी के साथ लोग पैदल बहुत दूर-दूर तक जाया करते थे और सब नंगे पैर ही चलते थे। आजकल की भाँति गाड़ियों में जाने की प्रथा नहीं थी। तपती धूप थी, सड़क जल रही थी, और ऐसी विपरीत परिस्थितियों में सारे दिन श्रीरामनिवासजी दाह क्रिया आदि कार्यों में लगे रहे।

संध्या समय जब घर लौटे तो जोरों की भूख लगी थी। पक्की रसोई की व्यवस्था उनके सम्बन्धियों ने कर रखी थी। श्रीरामनिवासजी ने भोजन किया।

विधि का विधान, अतिशय गर्मी के कारण उन्हें लू लग गई और अगले दिन उन्हें हैजा हो गया और यह रुग्णता घातक सिद्ध हुई। उपचार किया गया परन्तु उल्टी और दस्त बन्द ही नहीं हो रहे थे। डाक्टर बार-बार घर पर आकर उनकी सम्भाल कर रहे थे। दो दिन इसी भाँति कष्ट पाते बीत गये। उनकी पत्नी श्रीकौशल्यादेवी क्षण-क्षण अपने पति की सेवा-सुश्रूषा में जी जान से लगी रहीं। हारे को हरि नाम का ही सहारा होता है। पिताजी श्रीहनुमानजी के मन्दिर में कष्ट निवारणार्थ सकाम अनुष्ठान करने बैठ गये। कातर प्रार्थना की जा रही थी कि पुत्र को शीघ्र स्वास्थ्य लाभ हो। अभी श्रीरामनिवासजी के विवाह को सिर्फ दो वर्ष ही हुये थे कि यह सर्वथा अप्रिय घटना घटित हो गयी। 11-05-1950 को रात के करीब बारह बजे उनका शरीर सदा के लिये शान्त हो गया।
भयउ कराल कालु बिपरीता॥

घर में कोहराम मच गया। युवक पुत्र की असामयिक मृत्यु से पिताजी पूर्णरूपेण टूट गये। श्रीकौशल्यादेवी की आयु मात्र सोलह वर्ष की थी, उनके क्रन्दन की तो कोई सीमा ही नहीं थी। जिसके यौवन का अभी आरम्भ ही हुआ था, उसके माथे का सुहाग सिंदूर पुँछ गया, भाल की अरुण बिन्दी उतर गई और कलाई की सुनहरी चूड़ियाँ परित्यक्त हो गयीं। क्या गोरखपुर क्या पडरौना , हाहाकार का स्वर तुमुल था। पीहर और ससुराल के परिजनों ने जो सुनहला सपना सजाया था, उस पर वज्रपात हो चुका था।

फूलत फलत भयउ बिधि बाबा। जानि न जाइ काह परिनामा॥
लिखत सुधाकर गा लिखी राहू। बिध गति बाम सदा सब काहू॥

श्रीबंकाजी उस वक्त पडरौना में नहीं थे। उनका अपने भाई के प्रति बड़ा ममत्व था। जब उन्हें प्रिय भाई की मृत्यु का हृदय विदारक समाचार मिला, उनके तो होश उड़ गये!! वे पत्र पर लिखे शब्दों को बस घूरते-के-घूरते ही रह गये। हाय-हाय करते फूट-फूट कर रोने लगे। तुरन्त पडरौना लौटे। समस्त परिवार अत्यधिक शोकाकुल था, भला कौन किसे ढाढ़स बँधाये? श्रीबंकाजी की डायरी के पन्ने उनके हृदय की वेदना की असीमता को भलीभांति अभिव्यक्त करते हैं।

भस्म का मूल्य

पाठ सीखा कटु जगत का
बन्धु ही का मूल्य देकर
क्या यही था मूल्य उसका?
मूल्य इसका बन्धु ही है, यदि तनिक मैं जान लेता,
सत्य कहता हूँ वहीं पर स्वयं ही मैं मूल्य होता।
नेह जग से तोड़ देता, छोड़ देता क्षणिक जग को,
है यही कटु रीति जग की, स्वयं ही मैं सीख लेता॥
किन्तु विधि ने है सिखाया
'क्षणिक जग है' बन्धु लेकर
बन्धु ही क्या मूल्य उसका?

पाठ पढ़ लूँ सीख लूँ औ समझ लूँ नश्वर जगत को
यह सदा से लालसा थी जान लूँ विधि के नियम को।
पाठ सीखा किन्तु क्या जब खो दिया अपने हृदय को
नियति ने जब छल लिया है दोष दूँ मैं आज किसको॥
किन्तु यदि मालूम होता
मूल्य होगा कठिन इतना
मूल्य देता मैं न उसका।

दिवस का मध्याह्न देखा और उसका अंत देखा
सरल रवि को घोर तम का एक लघु सा ग्रास देखा।
जगत में निर्माण के पीछे छिपा अवसान देखा
सृजन में संहार ही है बन्धु देकर आज देखा॥
यदि यही था देखना ही
मूल्य देता और कुछ भी
बन्धु ही क्यों मूल्य उसका?

लुट चुका सर्वस्व ही जब अश्रुजल में क्या धरा है
जब चिता पर जल चुके अरमान अपने क्या धरा है?
काल मुख जाते हुए चंचल जगत में क्या धरा है।
देखता हूँ बस चिता की भस्म से ही जग भरा है।
भस्म बनने को चिता पर
बलि चढ़ेगी बन्धु की ही
था कहाँ अनुमान इसका?

25.05.1950

****

बहिन कौशल्या

जवान हमउम्र भाई-बन्धु-साथी के गुजर जाने का दुःख क्या होता है यह तो वही जान सकता जिस पर यह कहर टूटा हो। श्रीबंकाजी की नेत्रों के सामने बचपन की वे मधुर स्मृतियाँ नृत्य करने लगी जब दोनों भाई हर शरारत में एक दूसरे के हमराज़ हुआ करते थे। जन्मदात्रि माँ के देहान्त के बाद दोनों भाई एक दूसरे का सहारा थे। भाई के अचानक चले जाने से श्रीबंकाजी को माँ की कमी भी पुनः खलने लगी।

श्रीबंकाजी अपने ही दुःख से अत्यन्त दुःखी थे कि तभी उनकी दृष्टि कक्ष के कोने में गुमसुम बैठी, सजल नयना, षोडश वर्षीय नवविधवा श्रीकौशल्यादेवी पर पड़ी। जो पुत्रवधु कल तक सुन्दर वस्त्रों से सुशोभित यत्र-तत्र चहकती रहती थी, अपनी मुस्कुराहट से घर में सबको लुभाती रहती थी, हाय! आज वह श्वेत वस्त्रों में उन्मुक्त अश्रुधार बहाती दुःख की साकार प्रतिमा प्रतीत हो रही थी। **पति बिहीन सबु सोक समाजू।**

श्रीकौशल्यादेवी की अतिशय करुण, दयनीय दशा देखकर श्रीबंकाजी अपना दुःख भूल गये। उन्हें लगा कि उनसे कई गुना अधिक दुःख इस कमसिन कन्या का है जो इतनी छोटी उम्र में विधवा हो गयी है। इसका तो समस्त जीवन ही अन्धकारमय हो गया है। बिना पति के तो इसके प्रत्येक सुख

पर ही ग्रहण लग गया है। केवल तीन वर्ष विवाह को हुये हैं और अभी तो यह सिर्फ सोलह साल की ही है कि वैधव्य का महान दुख देखना पड़ गया है। उन्होंने मन-ही-मन निश्चय किया कि आज तक तो यह मेरे छोटे भाई की पत्नी थी, परन्तु आज से यह मेरे लिये छोटी बहिन के सदृश है। मैं एक बड़े भाई की भाँति इसे आश्वासन दूँगा, अग्रज समान प्रेम और सहानुभूति दूँगा। हर सम्भव प्रयास करूँगा कि किसी भी मात्रा में इसका दु:ख कुछ कम हो सके, इसे किसी प्रकार की कोई असुविधा न हो। उन्होंने श्रीकौशल्यादेवी को बहिन मानकर अपनी डायरी में पहला पत्र लिखा। पत्र क्या था मानों लेखनी को आँसुओं की स्याही में डुबाकर-डुबाकर लिखा जा रहा हो। मन की अत्यधिक शोकाकुल अवस्था में छोटे भाई के प्रति श्रीबंकाजी का जो ममत्व था, इस ममत्व का विषय बाई कौशल्या बन गई और वह ममत्व इन कतिपय शब्दों में बरस पड़ा।

बहिन कौशल्ये!

जीवन अंधेरी रात है जिसका सबेरा अब नहीं,
है घिर उठी जो कालिमा, अब लालिमा उसकी नहीं।
प्रतिदिन छिपेगा और निकलेगा जगत में रवि सदा
है अस्त यह ऐसा हुआ जिसका उदय है ही नहीं॥

उजड़े चमन की तू कली जिसका ठिकाना कुछ नहीं,
मसल दी निष्ठुर करों से, इति यहीं पर है नहीं।
विधि ने दिया है फेंक जग के घोर तम तूफान में,
असहाय हो जो उड़ चली जिसको सहारा कुछ नहीं॥

सर्वस्व तेरा छिन गया है नाव का नाविक नहीं।
मझदार नौका हो गयी जिसको किनारा है नहीं।
छिन क्या गया? सब लुट गया छाई अंधेरी रात है,
है शून्य तेरे नेत्र ये जिनमें उजेला है नहीं॥

तुम चाहती कुछ देखना पर दिखता कुछ भी नहीं,
बेचैन इतनी दर्द से, भर आह ले फुरसत नहीं।
छाई निराशा की निशा, जीवन निशा ही हो गया,
क्या है यही विधि के नियम, जिनमें नियम है ही नहीं॥

कल शाम को थी हँस रही, अब हास थोड़ा भी नहीं,
जीवन बना उपहास है, मृदु हास जिसमें है नहीं।
मधुमास जीवन का गया, मधु राग कोकिल का गया
स्वर शेष इतना ही नहीं जो कह सके अब 'वह' नहीं॥

कैसे तुम्हें दूँ सान्त्वना जब शान्ति मुझमें है नहीं।
धीरज तुम्हें दूँ किस तरह जब स्वयं को धीरज नहीं।
पर बहिन! मैंने सुना, प्रभु हैं, कहाते दीन वत्सल,
अब चल वहीं, जिनके स्वरों में स्वर 'नहीं' है ही नहीं॥

12.06.1950

****

श्रीराधाबाबा का सतसंग

दु:ख हो या सुख समय अपनी गति से चलता ही रहता है। दिन बीत रहे थे परन्तु श्रीकौशल्यादेवी के नयनों के अश्रु सूखने का नाम नहीं ले रहे थे। उनकी दीन दशा देखकर और अन्धकारमय भविष्य की कल्पना करके बंका परिवार के वरिष्ठ जन उनका पुनर्विवाह करवाने की बात सोचने लगे। पचास के दशक में आज की भाँति विधवा-विवाह आम बात नहीं थी। हिन्दू विधवा स्त्री को अत्यन्त मर्यादित जीवन व्यतीत करते हुये समाज के अतिशय कठोर नियमों का पालन करना पड़ता था लेकिन बंका परिवार रूढ़िवादी परम्परा के विरुद्ध विधवा-विवाह के पक्ष में था। वे अपनी घर की लाडली पुत्रवधु को हरपल तड़पते-सिसकते हुये देखने में समर्थ नहीं थे। उन्होंने यह चर्चा श्रीकौशल्यादेवी के पिताजी श्रीछोटेलालजी जालान के सामने चलाई।

गोरखपुर का जालान परिवार सदा से पूज्य श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार

एवं पूज्य श्रीराधाबाबा के प्रति पूर्णरूपेण निष्ठापूर्वक समर्पित रहा है। उन्होंने विधवा-विवाह की बात को धर्म-विरुद्ध बताया और पुनर्विवाह का स्पष्ट विरोध किया। उनकी दृष्टि में यही उचित था कि हिन्दू सनातन धर्म की मर्यादा के अनुसार उनकी पुत्री श्रीकौशल्यादेवी को सात्विक साधनामय जीवन व्यतीत करते हुये समाज के दायरे में रहना चाहिये।

प्रचलित रीतियों के अनुसार श्रीकौशल्यादेवी अपने पति के निधन के बाद अपने मायके गयी। वहाँ उनके पिताजी लगभग डेढ़-दो माह बाद उनको गीतावाटिका ले गये। पूज्या माँ, पूज्य बाबूजी एवं पूज्या बाई ने उन्हें अपने प्यार से नहला दिया। फिर उनको गीतावाटिका स्थित पूज्य श्रीराधाबाबा के पास ले आये। बाबा को देखते ही श्रीकौशल्यादेवी के हृदय की पीड़ा एकदम से पुनः प्रकट हो गयी और वे करुण क्रन्दन करते हुये संताप करने लगी मानो अभी ही उनके पति का देहान्त हुआ हो। **सुनि बिलाप दुखहू दुखु लागा।**

राधा बाबा ने कहा—बेटी! क्या मैं झूठ बोलूँगा?

श्रीकौशल्यादेवी—आप भला झूठ क्यों बोलेंगे? जो सत्य होगा, वही कहेंगे।

राधा बाबा—बेटी! क्या मेरी बात पर तुम विश्वास करोगी?

श्रीकौशल्यादेवी—आप पर नहीं करूँगी तो किस पर करूँगी बाबा? आप वही कहेंगे, जिसमें मेरा भला होगा।

पूज्य श्रीराधाबाबा ने अपनी ओजस्वी वाणी में कहा—बेटी! मेरी बात ध्यान से सुन। तेरे जीवन में जो यह कष्ट आया है यह विधि का अभिशाप नहीं अपितु दयामय प्रभु का परम अनुग्रह है। यह परम दुर्लभ मानव शरीर भगवत्प्राप्ति के लिये मिला है। मनुष्य जीवन का एकमात्र ध्येय भगवत्प्राप्ति ही है। सांसारिक सुख तो क्षणभंगुर है। तुझे तो अलक्षित रूप से एक वरदान मिल गया है। तुम अब सांसारिक प्रपंच से दूर साधनामय जीवन व्यतीत कर सकती हो। जो त्याग और सादगी गृहस्थ के लिये दुर्लभ है वह सुयोग तुम्हें सहज ही प्राप्त हो गया है। जिस पर प्रभु की असीम कृपा होती है, जिसे वे इसी जन्म

में तारना-अपनाना चाहते हैं उसे ही ऐसा सुअवसर मिलता है। बिटिया! मेरी बात पर अगर विश्वास है तो समझ ले यह तेरे 'परम सौभाग्य' का अवसर है। इस अति दुर्लभ मानव देह को व्यर्थ अश्रुओं में मत गवाँ। आदर्श साधनामय जीवन, भक्तिपूर्ण जीवन अपनाकर सहज ही प्रभु चरणों की प्राप्ति कर ले।

पूज्य बाबा का अवलम्बन पाकर तथा आश्वासन भरे वाक्य सुनकर श्रीकौशल्यादेवी का क्रन्दन तत्क्षण बन्द हो गया, बन्द ही नहीं हो गया उनके मुख पर मन्द मुस्कान बिखर गयी। बाबा की ऐसी कृपा वर्षा हुई कि जो स्त्री रोते-बिलखते, अति दारुण दुःखी अवस्था में बाबा की कुटिया में प्रवेश की थी, वही अब शान्त, सौम्य, मन्द मुस्कानयुक्त मुख लिये कुटिया से बाहर निकली। उनको बाबा की सक्षम वाणी का सहारा मिल गया था और उन्होंने निश्चय किया कि अब भविष्य में मानव जीवन का परमोच्च लाभ 'भगवत्-प्राप्ति' ही उनके जीवन का मुख्य ध्येय होगा। श्रीकौशल्यादेवी के जीवन में जो यह परिवर्तन आया, उससे उसके सभी आत्मीय जनों को बड़ा संतोष मिला।

पूज्य बाबा-बाबूजी का भरपूर स्नेह और मार्गदर्शन श्रीकौशल्यादेवी को आजीवन प्राप्त रहा। बाबा की प्रेरणा के उपरान्त पुनर्विवाह की बात वहीं समाप्त हो गयी और श्रीकौशल्यादेवी का सम्पूर्ण जीवन साधनामय बन गया। उन्होंने अपने परवर्ती जीवन का बहुत लम्बा समय गीतावाटिका में बाबा-बाबूजी की सेवा में व्यतीत किया। श्रीबंकाजी ने आजीवन उन्हें अपनी छोटी बहिन माना और पत्राचार द्वारा हमेशा सहयोग-सुझाव देते रहे।

****

पिताजी का क्षोभ

भाई श्रीरामनिवासजी के देहान्त को कुछ काल बीत चुका था। श्रीबंकाजी अपनी एम॰ए॰ की अधूरी पढ़ाई को पूरा करना चाहते थे। विद्यार्जन की प्रबल आकांक्षा उनके मन में अब भी थी। मौका पाकर उन्होंने पिताजी से विनम्र शब्दों में कहा की उन्हें कुछ रुपयों की आवश्यकता है क्योंकि वे पुनः अध्ययन प्रारम्भ करना चाहते हैं।

इतना सुनते ही पिताजी का दबा हुआ क्षोभ गुब्बार बनकर श्रीबंकाजी पर बरस पड़ा। जब श्रीबंकाजी इन्दौर से भाग आये थे और गिरफ्तार हो गये थे तो पिताजी अत्यन्त क्रोधित हुये थे और वे उनके पडरौना लौटने की प्रतीक्षा कर रहे थे मगर श्रीबंकाजी का आगमन हुआ श्रीरामनिवासजी की अकाल मृत्यु के विशादपूर्ण अवसर पर इसलिये उस वक्त उनके जेल यात्रा की बात गौण हो गयी थी। अब आज श्रीबंकाजी की एम.ए. की पढ़ाई छोड़ने का क्षोभ, बिना बताये इन्दौर से भागने की खिन्नाता, आर.एस.एस. प्रकरण की विषण्णता, गिरफ्तारी का दु:ख और युवक पुत्र के अकाल मृत्यु की पीड़ा, सब एक साथ पिताजी की वाणी में व्यक्त हो गयी।

उन्होंने अपने पुत्र को कठोर शब्दों में फटकारते हुए कहा—भाई के चिता की राख अभी ठण्डी भी नहीं हुई है और तुम घर छोड़कर चले जाना चाहते हो, धिक्कार है! धिक्कार है ऐसी सोच पर और ऐसी पढ़ाई पर! तुमने मुझे बहुत धोखा दिया। बचपन में मैंने तुम्हारा जितना लाड-प्यार-दुलार किया, उसका बदला तुम जिस रूप में दे रहे हो, यह मेरा परम दुर्भाग्य है। उस लाड-प्यार-दुलार के बदले तुम ऐसा धोखा दोगे, यह मैंने कभी स्वप्न में भी नहीं सोचा था। तुम्हारे स्वार्थपूर्ण स्वतन्त्र चिन्तन से इस घर की बहुत हानि हुई है। अब उचित यही है कि तुम यहाँ रहो और व्यापार सम्भालो। मैं अब एक भी पैसा तुम्हें पढ़ाई के लिये नहीं दूँगा। तुमने एक पल के लिये भी नहीं सोचा कि तुम्हारे और तुम्हारे बड़े भाई की अनुपस्थिति में रामनिवास अकेला दुकान सम्भालता था, अब तो वह भी नहीं रहा, घर में राशन कहाँ से आयेगा? तुम्हारे छोटे-छोटे चार भाई-बहन हैं। उनका भरण-पोषण कैसे होगा? सबका ख्याल करो, सिर्फ अपने बारे में सोचना छोड़ दो।

श्रीबंकाजी चुपचाप पिताजी की डाँट सुनते रहे, उन्होंने एक शब्द भी नहीं कहा। वे बिना मन के ही सही, दुकान पर जाने लगे परन्तु जब जी भर आता तो वे एकान्त में अपनी डायरी लेकर बैठ जाते, रो पड़ते और घण्टों लिखते रहते.....

ले नचा ले

है बनाया गेंद मुझको, खेल ले तू आज मन भर॥
ले नचा ले आज जी भर॥

पुष्प जीवन का अभी पाया कहाँ था पूर्ण खिलने।
पाप मेरे! आज मचले पुष्प को ही मसल देने॥
मसल दे तू, चढ़ न पाँऊ, गाँ न पाँऊ वन्दना स्वर,
गा न पाँऊ एक क्षण भर, भर न पाँऊ आह का स्वर॥
ले नचा ले आज जी भर॥

प्रबल होकर जग उठे हो, स्वप्न मेरे नष्ट करने।
जा रहा था राह अपनी किन्तु अब पथ-भ्रष्ट करने॥
नष्ट कर दे भ्रष्ट कर दे छीन ले मेरा सुअवसर।
ले बिछा ले आज पथ पर, कंटकों को खूब जी भर॥
ले नचा ले आज जी भर॥

साधना पथ में मुझे तू थकित पाकर जग उठा है।
आज मुझको अबल पाकर तू भयंकर बन उठा है॥
राह में भयभीत करने गा रहा है प्रलय का स्वर॥
ले डरा ले बन भयंकर, प्रलय स्वर को आज गाकर॥
ले नचा ले आज जी भर॥

ले नचा ले किन्तु यह भी याद रख ओ पाप मेरे।
कब तलक तेरी चलेगी, श्याम ही जब साथ मेरे॥
जानता, प्रारब्ध ही मैं भोगता हूँ आज रोकर॥
अन्त जिसका सत्य सत्वर, अतः केवल आज क्षण भर॥
ले नचा ले आज जी भर॥

आज का मतलब सदा से आज ही है, है नहीं कल।
कल न थे और कल न होंगे, खेल लो बस आज केवल॥

पुष्प जीवन का चढ़ेगा अंत में हरि-पद-कमल पर॥
तंग कर लो आज पल भर, सह रहा हूँ मौन होकर॥
ले नचा ले आज जी भर॥

लाज रख ली द्रौपदी की पापियों की उस सभा में।
वही मेरी भी रखेगा लाज मेरे पाप जग में॥
श्याम मेरे, श्याम का मैं, श्याम ही पर पूर्ण निर्भर॥
इसलिए तू आज कण भर, नहीं कण से अधिक अणु भर॥
ले नचा ले आज जी भर॥

18.10.1950

श्रीकौशल्यादेवी को अपने पति के निधन के बाद अपने मायके गये हुये काफी समय बीत चुका था। जब वे ससुराल लौटी तो एक नयी समस्या खड़ी हो गयी। एक परम सम्पन्न घराने की पुत्री होने के कारण विवाह के समय उन्हें विपुल आभूषण उपहार स्वरूप दिये गये थे। वे सभी गहने पडरौना में उनके ससुरजी के पास तिजोरी में रहते थे। पति की मृत्यु के बाद अब श्रीकौशल्यादेवी के पास इन गहनों के सिवा कुछ भी नहीं था और बहुत लम्बी जिन्दगी काटनी थी। समय-असमय में काम आने के लिये यह गहने ही उनकी एकमात्र जमा-पूंजी, संचित धन-राशि थी। सुरक्षा की दृष्टि से उन्होंने सारे गहने अपने पिताजी के पास गोरखपुर में रखने की बात परिवार के सामने व्यक्त की। इसी बात को लेकर घर की स्त्रियों में झगड़ा छिड़ गया और बढ़ते-बढ़ते बात इतनी अधिक बढ़ गयी कि चारित्रिक लाँछन और आक्षेप लगने लगे।

पिताजी स्त्रियों की बातें सुनकर अत्यन्त कुपित हुये और अबतक जो बात घर की औरतों के मध्य शुरु हुई थी वह परिवार के पुरुषों के सामने आ गयी। सभी आभूषणों को तिजोरी से निकालकर घर के आँगन में, सारे परिवार के सामने रखा गया और अब इसे कहाँ रखना है, इस बात को लेकर घर में काफी वाद-विवाद हो रहा था। श्रीकौशल्यादेवी आभूषणों को पडरौना में

नहीं रखना चाहती थी और बंका परिवार उनके पिताजी के पास रखने के पक्ष में नहीं था। घर के प्रांगण में वीभत्स दृश्य की सृष्टि हो गई। कितने दुख की बात है कि जिस स्त्री का सब सुख नष्ट हो चुका था, जिसपर दुःख का पहाड़ टूट पड़ा था उसकी एक छोटी सी इच्छा को भी पूर्ण नहीं किया जा रहा था!

श्रीबंकाजी एकदम चुपचाप, एक किनारे मूकदर्शक बने खड़े थे। ऐसी घृणास्पद, कुत्सित बातें सुनकर उनका दम घुट रहा था। जिसे उन्होंने बहन माना था उस पर परिवार के लोग वाचिक अत्याचार करे यह उनकी बर्दाश्त से बाहर था। उनका भावुक हृदय इस भीषण नारकीय, निन्दनीय दृश्य को सहन करने में सर्वथा असमर्थ था। वे घर की लड़ाई को ज्यों-का-त्यों छोड़कर 7-02-1951 को गोरखपुर चले आये। **जरउ सो संपति सदन सुख सुहृद मातु पितु भाइ। सनमुख होत जो राम पद करै न सहस सहाइ॥**

****

श्रीजयदयालजी गोयन्दका से भेंट

श्रीबंकाजी पडरौना छोड़कर गोरखपुर आ तो गये परन्तु घर की अशान्ति और विषम परिस्थितियों ने उनके मानस को नहीं छोड़ा। उन्होंने श्रीकौशल्यादेवी को हृदय से बहन माना था और अगर वे अपने आभूषण अपने पिताजी के पास रखना चाहती थी तो इसमें श्रीबंकाजी को कोई आपत्तिजनक बात नहीं लग रही थी। उनकी निष्पक्ष सोच के अनुसार एक विवाहिता स्त्री को जो भी आभूषण दिये जाते हैं उस पर न ससुराल वालों का हक होता है और न ही पीहर वालों का। उन सभी आभूषणों पर केवल और केवल उस स्त्री का ही एकमात्र अधिकार होता है। अब वह अपना धन चाहे जहाँ रखे इस पर किसी को आपत्ति नहीं होनी चाहिये मगर इनकी न्यायोचित सोच से क्या होने वाला था भला? घर में दादी, माँ, भाभी और बहिनों के आगे इनकी एक नहीं चलने वाली थी। चाहे ये अपने स्तर पर इस समस्या का कितना भी निष्कर्ष निकालने का प्रयत्न करें, कोई मार्ग नज़र नहीं आ रहा था।

इन्हीं दिनों श्रीबंकाजी को सूचना मिली कि गीताप्रेस के संस्थापक

परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका गोरखपुर पधार रहे हैं। श्रीसेठजी को मारवाड़ी समाज में अत्यधिक सम्मान और प्रतिष्ठा प्राप्त थी। उनका दर्शन श्रीबंकाजी को ऋषिकेश में हो ही चुका था। उन्होंने सुन रखा था कि श्रीसेठजी प्रतिदिन श्रीमद्भगवद्गीता पर प्रवचन तो देते ही हैं, साथ ही समाज के पारिवारिक झगड़ों-मतभेदों का भी सुन्दर निष्कर्ष निकाल देते हैं। श्रीबंकाजी ने उनसे मिलने का निश्चय किया।

22-2-1951 के शुभ दिन श्रीबंकाजी ने गोरखपुर में सम्मान्य श्रीघनश्यामदासजी जलान के घर पर परम श्रद्धेय श्रीसेठजी का दर्शन किया और एकान्त में उनसे बात करने की माँग की। श्रीबंकाजी का मन अनेक प्रकार के संशयों-संदेहों से भरा हुआ था। संयोग की बात थी कि उस वक्त श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार भी वहीं पर बैठे हुये थे। उन दोनों के समक्ष श्रीबंकाजी ने अपनी सारी पारिवारिक और व्यक्तिगत उलझने रखीं।

श्रीसेठजी ने सारी बातों को ध्यानपूर्वक सुना और कहा कि परिवार के व्यक्तिगत मामले में उनको दखल तो नहीं देना चाहिये परन्तु क्योंकि यह एक षोडश वर्षीय विधवा की समस्या है इसलिये उनका सुझाव था कि अगर परिवार में सबको उचित लगे तो सारे आभूषण, सुरक्षा की दृष्टि से गीताप्रेस की तिजोरी में रखे जा सकते हैं। श्रीसेठजी ने बताया कि और भी कई माताएँ-बहिनें अपने आभूषण और रुपयों को उनके पास, गीताप्रेस की तिजोरी में रखवा देती हैं और आवश्यकता पड़ने पर ले जाया करती हैं।

श्रीबंकाजी को श्रीसेठजी का यह सुझाव बेहद पसन्द आया। आभूषण न तो ससुराल में रहेंगे और न ही पीहर में और श्रीसेठजी अगर सुरक्षा की जिम्मेदारी ले रहे हैं तब फिर किसी के आपत्ति करने का कोई प्रश्न ही नहीं रह जाता है। बहुत ही सुन्दर रूप से सारे गृह-क्लेश का हल निकलता उन्हें दीख रहा था।

अब श्रीबंकाजी ने अपनी व्यक्तिगत समस्या की चर्चा चलाई। उन्होंने आर.एस.एस. छोड़ने का संक्षिप्त कारण, अध्ययन की अभिलाषा, पडरौना के पैतृक व्यापार में अरुचि, सद्गुरु की चाह आदि सभी बातें खोल कर श्रीसेठजी को बताई।

कुछ देर तक श्रीसेठजी ने बड़े प्यार से श्रीबंकाजी को समझाया। ऐसा लग रहा था कि श्रीबंकाजी को उनकी समस्याओं का समाधान मिल रहा है। श्रीबंकाजी ने उनसे विनम्र अनुरोध किया—क्या आप ये सब बातें मुझे लिख कर दे सकते हैं?

उस समय परम पूज्य बाबूजी वहीं पर बैठे हुये थे। उनकी उपस्थिति में ही पूज्य सेठजी श्रीबंकाजी को समझा रहे थे। श्रीसेठजी ने पूज्य बाबूजी से लिखने के लिये कहा। पूज्य श्रीसेठजी बोलते जा रहे थे और पूज्य बाबूजी उसे लिखते जा रहे थे। लिख लिये जाने के बाद पूज्य श्रीसेठजी ने उस पत्रे पर अपना हस्ताक्षर करके वह पत्रा श्रीबंकाजी को दे दिया। वही दिव्योद्बोधन नीचे इस प्रकार है—

श्रीहरिः

मानव जीवन की सफलता परमात्मा के मिलने में है।

परमात्मा की प्राप्ति प्रेम से होती है।

प्रेम के लिये एकान्त में करुणभाव से भगवान की शरण होकर स्तुति प्रार्थना करनी चाहिये। संसार से वैराग्य और भगवान में प्रेम होने के सम्बन्ध में जो शास्त्र हैं, उनका अध्ययन करना चाहिये। भगवान के भक्तों का संग करना तथा उनके बताये अनुसार साधन करना चाहिये।

भगवान के गुण, प्रभाव, लीला, स्वरूप का श्रद्धापूर्वक निरन्तर चिन्तन करना चाहिये। इससे मनुष्य भगवान के गुण, प्रभाव, स्वरूप और लीला के भाव-रहस्य को समझ सकता है और उससे भगवान में श्रद्धा होकर प्रेम हो सकता है। भगवान निश्चय हैं, भगवान हजारों को मिले हैं, मिल रहे हैं और मिलते रहेंगे, अतः हमें न मिलने में कोई भी कारण नहीं है, अतएव हमें उपर्युक्त प्रकार से इसके लिये प्राणपर्यन्त प्रयास करना चाहिये।

भगवान आकाश में हमारे सम्मुख खड़े हैं और गुणों का हमपर प्रभाव डाल रहे हैं, अर्थात् भगवान आनन्द, शान्ति, प्रेम, ज्ञान, समता,

दया आदि गुणों की मानो अनवरत वर्षा करते हैं, जिससे उनके परमाणुओं का हममें प्रवेश हो रहा है। जैसे आकाश में स्थित पूर्णिमा का चन्द्रमा सर्वत्र अमृत की वर्षा करता है, इसी प्रकार भगवान हमपर वर्षा कर रहे हैं। ऐसा भाव करने से रोमांच और अश्रुपात होते हैं, अतः बार-बार इन बातों का स्मरण करके प्रेम में मुग्ध होना चाहिये और अश्रुपात तथा रोमांच की प्रतीक्षा करते रहना चाहिये।

उपर्युक्त बातों को छोड़कर अन्य किसी का चिन्तन ही न करें।

हस्ताक्षर-

जयदयालजी गोयन्दका

गोरखपुर में श्रीसेठजी से मिलकर श्रीबंकाजी को आन्तरिक शान्ति मिली। वे प्रसन्न मन से पडरौना लौटे। आभूषणों को गीताप्रेस की तिजोरी में रखने के श्रीसेठजी के प्रस्ताव को परिवार में सभी ने बिना किसी तर्क-वितर्क के स्वीकार कर लिया। जालान परिवार ने भी सहर्ष अनुमति दे दी। सारी समस्या का सुन्दर हल निकल गया। श्रीबंकाजी ने चैन की साँस ली। बाद में अनेक वर्षों तक श्रीकौशल्यादेवी के गहने गीताप्रेस की तिजोरी में ही रहे।

****

स्वामी 108 श्रीशंकर चैतन्य भारतीजी

पण्डित श्रीराजारामजी शास्त्री सत्संग-वार्ता के लिय पडरौना में श्रीबंकाजी के घर पर अक्सर आया करते थे। श्रीबंकाजी की उनमें बड़ी श्रद्धा थी और वे भी इनसे बहुत स्नेह करते थे। वे जानते थे कि बंका वंश की मर्यादा के अनुसार बच्चों को बड़ों की वार्ता के मध्य बैठने नहीं दिया जाता है अतः वे श्रीबंकाजी से घर के बाहर ही यदा-कदा मिला करते थे। श्रीबंकाजी की जिज्ञासु प्रवृत्ति और साधना पथ पर आगे, नहीं नहीं..., बहुत आगे बढ़ जाने की ललक से वे भली-भाँति परिचित थे।

श्रीराजारामजी आकाशवृत्ति से रहते थे। कभी किसी से कुछ माँगते नहीं थे, कोई व्यक्ति इन्हें स्वेच्छा से जो दे देता उसी से अपना गुज़ारा कर लिया

करते थे। श्रीबंकाजी इस बात से परिचित थे अतः वे भरसक इनकी सहायता करते रहते थे।

इस बार जब श्रीबंकाजी पण्डित श्रीराजारामजी शास्त्री से मिले, तब श्रीबंकाजी ने अपनी प्रथम गीतावाटिका यात्रा, श्रीराधाबाबा के दर्शन-काष्ठमौन, एवं निज के द्वारा पडरौना मन्दिर में किये गये दोनों मौन अनुष्ठान, श्रीजयदयालजी गोयन्दका और श्रीपोद्दारजी से मिलन आदि सब बातें उन्हें बतला दी और साथ में यह भी कहा कि उनका एकान्त साधना में मन नहीं लगता है। सन्त और सतसंग की चाह तो है परन्तु भक्ति-पथ पर अग्रसर होने का कोई सही मार्ग नहीं मिल रहा है।

सारी बातों को धैर्यपूर्वक सुनकर एवं समझकर पण्डित श्रीराजारामजी शास्त्री ने श्रीबंकाजी के सामने बनारस में रहने वाले एक सिद्ध सन्त की चर्चा की। उन्होंने बताया कि बनारस में ललिता घाट पर, भगवती गंगा के तट पर एक सात मंजिला मकान है। उस मकान की छत पर संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान, एक सिद्ध सन्त रहते हैं जिनका नाम है स्वामी 108 श्रीशंकर चैतन्य भारतीजी। वे सोलह साल से एकान्त साधना कर रहे हैं। शौच-स्नानादि को छोड़कर वे अपने कक्ष के बाहर आते ही नहीं हैं। प्रतिदिन शाम को चार बजे उनका कमरा एक घण्टे के लिये खुलता है। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग के प्रधान उनके पास वेदान्त, संस्कृत आदि पढ़ने जाते हैं। वे बहुत ही पहुँचे हुये सन्त हैं। अगर हो सके तो उनका दर्शन-लाभ करना चाहिये।

श्रीबंकाजी का भावुक हृदय सन्त की खोज तो कर ही रहा था, इस विवरण को सुनकर वे बहुत प्रभावित हुये और बनारस जाने की ठान ली। बचपन से ही ये अपनी धुन के पक्के थे। जो बात मन में ठान लेते थे वह करके ही रहते थे। पिताजी से तो कुछ भी द्रव्य मिलने की उम्मीद थी नहीं परन्तु ये किसी प्रकार जोड़-तोड़ बैठाकर पहुँच गये काशी धाम। उस समय के काशी नगर में और आज के बनारस शहर में जमीन आसमान का फर्क है। तब काशी विद्वानों की, पण्डितों की, सन्तों की और साधकों की नगरी हुआ

करती थी। आज की तरह चहल-पहल थी ही नहीं। न यातायात के साधन थे, न इतने मकान-दुकान, न ही शोर-शराबा। भोलेबाबा की यह नगरी युगों से साधकों का प्रेरणा स्रोत रही है।

20-10-1951 की शाम को चार बजे के पर्याप्त पूर्व ही श्रीबंकाजी ललिता घाट के सात मंजिले मकान की छत पर पहुँच गये। क्या ही रमणीय दृश्य था! भगवती गंगा का लहराता चौड़ा पाट, ढलते सूर्य की किरणें, खुला बरामदा, शीतल मन्द वायु, नितान्त एकान्त एवं पूर्ण शान्ति का वातावरण श्रीबंकाजी को स्वाभाविक ही बहुत प्रिय लगा। वे छत के एक कोने में जाकर बैठ गये।

ठीक शाम को चार बजे काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग के प्रधान वहाँ आये और बन्द कक्ष की देहली को प्रणाम करके वहीं कक्ष के बाहर भूमि पर बैठ गये। कुछ समयोपरान्त कक्ष के द्वार खुले। श्रीशंकर चैतन्य भारतीजी कक्ष के भीतर ही, देहली के उस-पार बैठ गये। अहो! क्या ही अद्भुत दृश्य था, सन्त अपनी कुटिया की देहली के भीतर विराजमान थे और प्रधानजी कुटिया की देहली के बाहर। संस्कृत भाषा में वार्तालाप प्रारम्भ हो गया। वेदान्त का एक अतिशय कठिन ग्रन्थ है—खण्डन खण्ड खाद्य। इसी ग्रन्थ की व्याख्या श्रीशंकर चैतन्य भारतीजी प्रधानजी को समझा रहे थे। वे धाराप्रवाह संस्कृत में बोल रहे थे और प्रधानजी दत्त-चित्त होकर सुन रहे थे।

श्रीबंकाजी चुप-चाप एक किनारे बैठे रहे। न कुछ बोलना, न पूछना, न हिलना। ठीक एक घण्टे बाद जब प्रधानजी चले जाते, कमरे का द्वार पुनः बन्द हो जाता था। तब श्रीबंकाजी भी प्रणाम करके वापस चले आया करते थे। यह क्रम 8-9 दिनों तक चला। श्रीशंकर चैतन्य भारतीजी प्रतिदिन श्रीबंकाजी की ओर देखते अवश्य थे परन्तु कुछ बोलते नहीं थे। 8-9 दिन के बाद उन्होंने पूछा—तुम कौन हो? यहाँ क्यों आते हो?

श्रीबंकाजी ने प्रणाम करके अपना संक्षिप्त परिचय दिया और कहा—साधना की दृष्टि से मैं एकान्त में बैठ नहीं पाता हूँ। मन में बहुत संशयों-संदेहों का उपद्रव है। भक्ति तो करना चाहता हूँ परन्तु असमंजस में हूँ, क्या प्राप्त

करना है तथा कैसे प्राप्त करना है, कुछ समझ नहीं आता है। आप कृपा करके कुछ उपदेश करें।

श्रीशंकर चैतन्य भारतीजी श्रीबंकाजी की सादगी, सरलता, सच्चाई, स्पष्टवादिता, भावुकता, दृढ़निश्चय आदि गुणों से बहुत प्रभावित हुए और उन्होंने कहा—एकान्त साधना में कठिनाई भाव-दोष के कारण होती है। भाव-दोष चार प्रकार के होते हैं। या तो तुमने कुछ बुरा पढ़ लिया है, या कुछ बुरा खा लिया है, या कुछ बुरा देख लिया है अथवा पूर्व जन्म के कुसंस्कार जाग उठे हैं। इन चारों में से यदि एक भी दोष हो तो एकान्त साधना में बहुत कठिनाई आती है।

फिर कुछ देर मौन रहने के उपरान्त श्रीशंकर चैतन्य भारतीजी ने कहना प्रारम्भ किया जिसका सार इस प्रकार है—

॥ श्रीहरिः शरणम्॥

भगवान हैं, निश्चित हैं, निसंदेह हैं। वे अनन्त शक्ति, अपरिमित गुण सम्पन्न, सर्वसमर्थ हैं। वे अवश्य मिलते हैं और भक्त की भावना अनुसार प्रत्येक भक्त को मिलते हैं। जैसे श्रीमीरा, श्रीसूरदास को 'श्रीकृष्ण' रूप में और श्रीतुलसीदासजी को 'श्रीराम' रूप में मिले। भगवान श्रीकृष्ण की प्राप्ति ही मानव जीवन का एकमात्र लक्ष्य है।

कभी-कभी पूर्व जन्म के पाप कर्म के फलस्वरूप अथवा दूषित आहार, कुसंग के कारण ऊपर लिखे तत्त्वों पर से विश्वास डिग जाता है परन्तु इससे क्या? उपरोक्त तत्त्व सर्वकाल तथा सर्वस्थान में सर्वरूपेण सत्य है तथा उपरोक्त तत्त्व की प्राप्ति ही किसी भी जीव के चरम उत्कर्ष की सीमा है।

विश्वास तथा श्रद्धा के साथ साधक निरन्तर साधना करता जाय। श्रद्धा माता के समान रक्षण करती है। तत्त्व के निर्णीत हो चुकने पर उसके लिये कर मिटे या मर मिटे।

साधकों को चार बातों पर ध्यान देना चाहिये-

- **सद्देश—एकान्त निर्जन सरिता, सरोवर जैसे पावन-पवित्र स्थान पर रहे।**

• सद्काल—प्रातःकाल, संध्याकाल, कभी आलस्य निद्रा में न खोकर जप-ध्यान में मन लगावे।

• सद्आहार—जो सात्त्विक है तथा जो शरीर के कफ-बात-पित्त को सम रखे वही आहार उचित है। पेट सदैव साफ रखना चाहिये। भोजन तीक्ष्ण-रुक्ष-बासी, खटाई, मिर्च मिश्रित न बनाये।

• सत्संग—सन्तों महापुरुषों की सेवा, उनका सहवास अथवा सद्ग्रन्थावलोकन।

एकान्त में बैठकर एक भोले बालक के समान प्रभु की शरण होवे। मन में एक तड़फन-जलन-विह्वलता हो। यही प्राथना करे—प्रभु! जो उचित हो वही करो। मैं क्या जानूँ क्या उचित अथवा उनुचित है। बस, आर्त भाव से उनके शरण होवे। उनके गुणों का गान करे। उनके नाम का जप तथा उनके चित्र का ध्यान करे। उनके भक्तों के चरित्रों का श्रवण करे। जीवन के अन्य सारे कार्य उनकी सेवा समझकर करे। जो भी खाये-पीये, उनको अर्पण करके प्रसाद रूप में स्वीकार करे। उनके अस्तित्व में संदेह-शंका करना ही सबसे बड़ा विघ्न है! बस, संदेह रहित होकर निरन्तर लगा रहे। इससे सतत् भाव की शुद्धि होती जायेगी तथा अवश्य ही एक दिन प्रभु अपना लेंगे।

॥ श्रीगोपालकृष्णाय नमः ॥

श्रीबंकाजी अत्यन्त ध्यानपूर्वक श्रीशंकर चैतन्य भारतीजी के उपदेशों को सुन रहे थे। उन्हें लगा कि उनकी समस्याओं का समाधान हो रहा है। उन्होंने विनम्रतापूर्वक पूछा—अगर आप कृपा करके कुछ सेवा इस बालक को बतलायें तो बड़ी कृपा होगी।

श्रीशंकर चैतन्य भारतीजी ने उनसे बबूल के दातून लाने के लिये कहा। श्रीबंकाजी ने पूछा—ये बबूल के दातून कहाँ मिलेंगे?

श्रीशंकर चैतन्य भारतीजी ने कहा—काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की ओर गंगा किनारे बढ़ते चले जाओ। वहाँ बबूल के वृक्षों का झुरमुट है। वहीं मिल जायेंगे।

श्रीबंकाजी उन्हें प्रणाम करके लौट आये और कक्ष का द्वार पुनः बन्द हो गया। बबूल के दातून को काटने के लिये श्रीबंकाजी ने एक तेज धार वाला चाकू खरीदा और निर्दिष्ट स्थान की ओर बढ़ चले। वहाँ वृक्ष पर चढ़कर कठिन परिश्रम के बाद उन्होंने स्वच्छ दातून एकत्रित किये और अगले दिन चार बजे पुनः श्रीशंकर चैतन्य भारतीजी के समक्ष पहुँच गये। यह दातून लाने का क्रम कई दिनों तक चला। श्रीबंकाजी की इस सेवा तत्परता से श्रीशंकर चैतन्य भारतीजी बहुत प्रसन्न हुये। बाद में श्रीबंकाजी का इनसे पत्राचार भी हुआ।

श्रीशंकर चैतन्य भारतीजी के उपदेशों से प्रेरित होकर श्रीबंकाजी ने निष्ठापूर्वक एकाग्रचित होकर एकान्त भजन करने की ठानी। वे भली-भाँति जानते थे कि पडरौना में भजन कर पाना सम्भव नहीं होगा इसलिये वे 1951 के अन्त में राजस्थान चले गये और चुरु के ऋषिकुल ब्रह्मचर्याश्रम में साधना की दृष्टि से तीन-चार मास एकान्त कोठरी में निवास किया। श्रीबंकाजी की डायरी में इस काल की लिखी हुई अनेकानेक सुन्दर रचनाएँ मिलती हैं।

अभिलाषा

कब होंगे वो सुदिन हमारे।
जीवन के तुम केन्द्र बनोगे मेरे, नन्द दुलारे॥

जीवन का प्रतिक्षण जब तेरा हो जायेगा प्यारे।
जीवन पूजन-पुष्प बनेगा होगा चरण तुम्हारे॥
तेरी पूजा हित होवें कार्य नित्य ही सारे।
जो कुछ बोलू तव वन्दन हो, मेरे कृष्ण मुरारे॥

कण-कण में तेरी छवि देखूँ हे मन मोहन प्यारे।
यमुना तट पर सघन विटप तर कर में वंशी धारे॥
श्याम भाव से रंजित होवें जग के अणु-अणु सारे।
श्याम मयी जगती देखूँगा कब हे श्याम दुलारे॥

स्वप्न कभी क्या ये होवेंगे सत्य रूप में सारे।
आशा सतत लगी है तुम पर हे मेरे रखवारे॥
चाह रहा हूँ किन्तु अभी तक थोड़ा भी न हुआ रे।
पूर्ण करोगे कब अभिलाषा हे नयनों के तारे॥

चलता चल

सदा राह चलते जाना।
प्रभु गुणगान निरन्तर करना, सदा भजन करते जाना॥

दुविधाओं की आँधी आये, दुर्वा-सा किंचित् झुकना।
शंकाओं की अँधियारी में, आशा-दीप जला लेना॥

जगत लुभाये रूप दिखाकर, मूँद नयन अपने लेना।
भीरू करने बाधा आये, दृढ़ भूधर-सा हो जाना॥

कितनी भी बाधाए आयें, रुद्ध मार्ग करने अपना।
'ये प्रभु तक क्या ले जायेंगी?' इसी कसौटी पर कसना॥

संकट-पर-संकट आयेंगे, फिर भी साहस मत खोना।
रक्षक ही जब जगदीश्वर हैं, फिर चिन्ता किसकी करना?

लाज बचाई द्रुपद सुता की, वही सहायक है अपना।
वही रखेगा लाज सदा ही, तू केवल चलते जाना॥

इन तीन-चार मास में श्रीबंकाजी ने श्रीसेठजी तथा श्रीशंकर चैतन्य भारतीजी के दिव्योद्बोधन का अक्षराक्षर पालन करने का प्रयत्न किया। खूब नाम-जप करते, कभी उपवास तो कभी दुग्धाहार किया परन्तु वे जैसी उन्नति की आशा कर रहे थे वैसा अनुभव और आनन्द उन्हें चुरु में प्राप्त नहीं हुआ। मन निराश हो गया। 1952 में वे चुरु से गोरखपुर लौट आये और गीतावाटिका में साधना की दृष्टि से कई महीने रहे।

****

श्रीराधाबाबा से लम्बी बातचीत

श्रीबंकाजी के पास बी॰ए॰ की डिग्री अवश्य थी परन्तु अपनी आवश्यकता पूर्ति के लिये उन्हें जब-तब लोगों से रुपये उधार माँगने पड़ते थे। पिताजी उन्हें दुकान पर बैठाना चाहते थे और उनके मानस में चैतन्य-मीरा घूमते! मन ग्लानि से भरा था क्योंकि वे सुशिक्षित होकर भी आत्मनिर्भर नहीं थे। शिक्षा का सदुपयोग कैसे हो? जीवनयापन के लिये क्या करना उचित है यह उनकी समझ में नहीं आ रहा था।

1952 में गीतावाटिका वास के दौरान श्रीबंकाजी को पूज्य श्रीराधाबाबा से लम्बी बात-चीत करने के कई सुअवसर प्राप्त हुये। अब यह नहीं कहा जा सकता कि आगे लिखी हुई बातें एक ही दिन में हुई या अलग-अलग सत्संग के दौरान परन्तु श्रीराधाबाबा की बातों का सारांश यही था। श्रीबंकाजी ने बाबा को अपने जेल जीवन का विस्तृत वर्णन सुनाया। आर॰एस॰एस॰ और राजनीति पूर्ण रूप से त्याग देने के अपने महत्त्वपूर्ण निर्णय से अवगत कराया। अविवाहित रहते हुये साधनामय जीवन व्यतीत करने की प्रबल चाह की भी जानकारी दी। इन सब बातों को सुनकर बाबा को बहुत संतोष हुआ।

यहाँ एक बात पर प्रकाश डाल देना प्रसंगोचित लग रहा है। 1946 में श्रीबंकाजी अपने मित्र श्रीविश्वनाथ मालपाणी के साथ गीतावाटिका आये थे। उस वक्त वे उन्हें अपनी कविता, **श्याम यदि मैं जान पाता** सुना रहे थे। पूज्य बाबा यह कविता सुनकर श्रीबंकाजी पर रीझ गये और उन्होंने अपने चार विशिष्ट व्यक्तियों द्वारा एक अनुष्ठान प्रारम्भ करवा दिया था जिसका उद्देश्य था कि श्रीबंकाजी को कृष्णभक्ति प्राप्त हो। फिर बाबा ने चार साल तक स्वयं भी यह अनुष्ठान किया था। इन सब बातों का विस्तृत वर्णन पहले आ चुका है। बाबा ने स्वयं किये हुये इसी अनुष्ठान का सुपरिणाम था कि श्रीबंकाजी के मन में राजनीति से वैराग्य और भगवत् भक्ति के मार्ग पर चलने की तीव्र ललक जागृत हुई थी। इस बात को बाबा भली भाँति जानते थे परन्तु उन्होंने अभी यह बात श्रीबंकाजी के सामने उजागर नहीं की। जिस जीव पर सिद्ध

सन्तों की कृपा हो जाये उसके जीवन में ऐसा परिवर्तन का आना भला क्या आश्चर्य की वस्तु है! अस्तु,

8-4-1952 को बाबा ने श्रीबंकाजी को बड़े प्यार से समझाते हुये धीरे-धीरे कहा—राजनैतिक जीवन का आकर्षण, सत्ता और सियासत का प्रलोभन बहुत प्रबल होता है। तुमने राजनीति के असीम दलदल से स्वयं को पृथक करके भक्ति-पथ का पथिक बनने की चाह व्यक्त की है, यह करुणामय प्रभु की बहुत बड़ी कृपा है तुम पर। **अति हरि कृपा जाहि पर होई। पाउँ देइ एहिं मारग सोई।।** फिर बाबा एक दृष्टांत सुनाने लगे।

पूर्वकाल में एक बड़े ही विरक्त सन्त रहते थे। संग्रह के नाम पर एक झोपड़ी और कुछ माटी के बर्तन के सिवा उनके पास कुछ भी नहीं था। उनके कई शिष्य भी साथ रहते थे। एक बार एक शिष्य ने कहा कि उसको एक कटिवस्त्र की आवश्यकता है।

सन्त ने पूछा—जो कटिवस्त्र अभी पहन रहे हो उसका क्या करोगे?

शिष्य—गुरुदेव! उस वस्त्र को आपकी कुटिया की खिड़की पर धूप से बचाव के लिये टांग दूँगा।

सन्त ने फिर पूछा—जो वस्त्र अभी खिड़की पर लगा है उसका क्या करोगे?

शिष्य—गुरुदेव! उसे आपका भोजन बनाते वक्त गरम भात की हंडिया उतारने के काम में लूँगा।

सन्त—जिस वस्त्र से अभी हंडिया उतार रहे हो उसका क्या होगा?

शिष्य—गुरुदेव! उस वस्त्र को आपकी कुटिया पोंछने के काम में लूँगा।

सन्त—जिस वस्त्र से अभी कुटिया पोंछ रहे हो उसका क्या करोगे?

शिष्य—गुरुदेव! वह वस्त्र बिल्कुल चिथड़े-चिथड़े हो गया है। मैंने उसको धो-धो कर स्वच्छ किया और कपास के तार-तार अलग कर दिये हैं। अब उस कपास से आपकी कुटिया में रात के वक्त दीया जलाता हूँ।

शिष्य के उत्तर से सन्त बहुत प्रसन्न हुये और हृदय से आशीर्वाद देते हुये कहा—साधक को जो कुछ प्राप्त है उसका पूर्णरूप से सदुपयोग करना ही चाहिये। तुमने बहुत ठीक किया।

उपर्युक्त दृष्टान्त सुनाकर बाबा ने श्रीबंकाजी से कहा—जेल में तुम्हारे पास कुछ भी नहीं था। तुम पूरी तरह विवश-लाचार-निरुपाय थे परन्तु एक वस्तु थी तुम्हारे पास और वो है समय। उस कठिन काल में तुमने समय नष्ट नहीं किया बल्कि समय का भरपूर सदुपयोग नाम-जप में किया इसकी मुझे बहुत प्रसन्नता है। नाम-जप से ऊँचा कुछ भी नहीं है, यह बात मैं अपने अनुभव के आधार पर कह रहा हूँ। साधक का एक-एक पल कीमती होता है परन्तु आज का समाज साधक को सहने के लिये तैयार नहीं है। अगर तुम साधना करना चाहते हो तो स्वयं कमाओ, अपने शरीर की रक्षा करो, और साधना करो। वर्तमान युग में अध्यापन कार्य धनोपार्जन का श्रेष्ठ साधन है। भगवद्प्राप्ति मार्ग के पथिक के लिये जीविका की अभिपूर्ति सात्त्विक धन से होना अत्यन्त आवश्यक है। मानस तभी शुद्ध हो सकता है जब भोजन शुद्ध हो और शुद्ध भोजन के लिये परम शुद्ध धन की आवश्यकता होगी। अध्यापनकार्य विद्या का दान है, परम पुण्य कार्य है, इससे उपार्जित अर्थ कभी अनर्थ नहीं करेगा।

श्रीबंकाजी को पूज्य श्रीराधाबाबा के सत्संग से बहुत प्रोत्साहन मिला और अध्यापन कार्य करने का उनका सुझाव तो बेहद पसन्द आया परन्तु मन में कुछ दुविधा भी थी। अध्यापन कार्य उनकी रुचि के सर्वथा अनुरूप था लेकिन आज के पहले बंका खानदान में किसी ने भी यह कार्य नहीं किया था। अध्यापन की तो छोड़ो, उनके परिवार में किसी के पास डिग्री तक नहीं थी। भाई रामनिवास की असमय मृत्यु के कारण अब घरवाले उनका विवाह करवाना चाहते थे। बड़ी मुश्किलों से तो पहले वे विवाह के झंझट से स्वयं को बचा पाये थे परन्तु पुनः वही प्रकरण प्रबल रूप से प्रारम्भ हो गया था। अब ऐसी स्थिति में पिताजी को अध्यापनकार्य के लिये राजी कर पाना टेढ़ी

खीर थी। वे मन-ही-मन सोचते रहे कि किस प्रकार पिताजी को मनाया जाय पर उन्हें कोई समाधान नहीं मिला।

****

प्रथम अध्यापन कार्य

कुछ दिनों गीतावाटिका में सत्संग लाभ करके श्रीबंकाजी पडरौना लौट आये। अवसर पाकर उन्होंने पिताजी से कहा—आप मुझे कुछ रुपये प्रदान करें, मैं पढ़ाना चाहता हूँ।

पिताजी—पढ़ा कर क्या करोगे?

श्रीबंकाजी—अध्यापन कार्य करना चाहता हूँ। शिक्षक बनना चाहता हूँ।

पिताजी—कितना वेतन मिलेगा?

श्रीबंकाजी—करीब सवा सौ रुपये प्रति माह।

पिताजी ने क्रोध में भरकर भर्त्सना करते हुये कहा—धिक्कार है, धिक्कार है! मेरी दुकान पर मुनीम 400-500 रुपये प्रति माह वेतन पाते हैं और मेरा पुत्र होकर तू मात्र सवा सौ रुपयों की नौकरी करेगा? जा, नहीं दूँगा। एक भी पैसा नहीं दूँगा।

श्रीबंकाजी निराश होकर रिक्तहस्त कक्ष से बाहर निकल आये। उन्हें अनुमान था कि पिताजी राजी नहीं होंगे और ठीक वैसा ही हुआ। पिताजी के क्षोभ की परवाह न करते हुये वे अपने स्वीकृत पथ पर हठता पूर्वक चलते रहे। इन्हीं दिनों अखबार में एक विज्ञापन निकला। बड़ौत के विश्वविद्यालय में अध्यापक का स्थान रिक्त था। श्रीबंकाजी ने अर्जी भेज दी, साक्षात्कार के लिये बुलाया गया और उन्हें नौकरी मिल गयी। वे अगस्त 1952 में बड़ौत चले आये और जीवन के पहले अध्यापन कार्य का श्रीगणेश किया।

श्रीबंकाजी ने अगस्त 1952 से अप्रैल 1953 तक बड़ौत के विश्वविद्यालय में अध्यापन कार्य किया। बड़ौत जीवन अति साधारण था। वेतन मात्र 132 रुपये प्रति माह था परन्तु श्रीबंकाजी को संतोष था कि कम-से-कम उन्हें दूसरों के सामने हाथ तो नहीं फैलाने पड़ते हैं। प्रसन्नता का दूसरा कारण यह था कि पडरौना में अक्सर लोग उनके विवाह की चर्चा छेड़ देते थे जो उन्हें

नितान्त अप्रिय थी। अब दूर होने के कारण वे घर की झंझटों से सर्वथा पृथक थे और इच्छानुसार साधना कर सकते थे।

जिनकी लगन भगवान में लग जाती है उनका मन फिर संसार में नहीं लगता। उनके जीवन का लक्ष्य धन-सम्पत्ति न होकर भगवान की भक्ति प्राप्त करना होता है। श्रीबंकाजी नियमित रूप से अध्यापन करते और इनके छात्र इनका बहुत आदर-सम्मान करते। शेष समय में ये नाम-जप और कृष्णभक्ति करते हुये सादगीपूर्ण जीवन व्यतीत करते। इस काल में इनके जीवन का मूलमन्त्र था—**जो व्यक्ति दाम-काम-नाम से उपराम है वही साधना कर सकता है** अर्थात् जिसे धनसंग्रह का लोभ न हो, जो स्त्री लोलुप न हो और जिसे सांसारिक कीर्ति की कामना न हो, वही अध्यात्म पथ का पथिक बन सकता है। श्रीबंकाजी का जीवन पूर्णरूपेण अपने इसी मूलमन्त्र पर आधारित था। बड़ौत के आठ महीनों में उन्होंने साधना के पृथक-पृथक प्रयोग किये। कभी वे अनाज छोड़ देते और केवल शाक-भाजी पर गुजारा करते, कभी उपवास करते, कभी फलाहार तो कभी केवल दुग्ध आहार लेते। जब जिस सद्ग्रन्थ से प्रभावित होते, उसमें बतायी रीति अनुसार चलने का प्रयास करते। लक्ष्य एकमात्र शीघ्रातिशीघ्र भगवद्प्राप्ति था।

एक दिन श्रीबंकाजी नाम-जप करते हुये पैदल चलकर विश्वविद्यालय से अपने आवास की ओर आ रहे थे। दोपहर का समय था। सुनसान सड़क थी। तभी अचानक आकाश से कुछ उतरा। एक अतिशय तीव्र कृपाधारा थी, उन्हें स्पष्ट सुनाई दिया—**तेरा मंगल निश्चित है। तेरा मंगल निश्चित है। तेरा मंगल निश्चित है।**

श्रीबंकाजी जड़वत् बहुत देरतक वहीं खड़े-के-खड़े रह गये। उनका सारा शरीर आनन्द से विभोर हो रहा था। उन क्षणों को वाणी से व्यक्त नहीं किया जा सकता है। 90 वर्ष की आयु में भी श्रीबंकाजी कहा करते थे—वह कृपाधारा ऐसी तीव्र थी कि इतने साल बीत गये, मैं युवा से वृद्ध हो गया परन्तु अभी भी वह दिन ऐसा लगता है मानो मेरे नेत्रों के सामने हो। आज भी कठिन समय में वही दृश्य याद आता है और मन को बहुत बल मिलता है।

बड़ौत काल की डायरी में श्रीबंकाजी द्वारा लिखित रचना—

बढ़ता चल

अभी तो बहुत दूर चलना है। अवसाद प्रमाद न कर। कठिन पथ है राही! बढ़ता चल।

सांध्य गगन की अरुणिमा, सुरसरिता गंगा का विस्तृत तट, किनारे की शान्त हरित भूमि, निस्तब्ध कानन, हाँ शब्द था तो उस अनन्त गगन में, जहाँ पक्षीगण लौट रहे थे अपने नीड़ को।

कितना मनोरम दृष्य था? बालकों के करों का कन्दुक इव रवि, उसकी रश्मियों का विनोद, वह भी लहरों से। कमल-पत्र से निर्मित हरित पावड़े के नीचे सरिता का जल-तल लहरा रहा था। झूम-झूम कर उत्पलों का आह्वान था—''आवो राही! एक क्षण विनोद-विश्राम कर लो।"

किन्तु चपल लहरियों का सतत गान था-

"कठिन पथ है राही! तू बढ़ता चल।"

अरे राही! वह देख। उस वृक्ष के नीचे एक कृषक कुमार। नग्न वदन, केवल थी धोती शरीर पर, निर्मल नेत्र, और थी कर में केवल एक बाँसुरी। बाँस की बाँसुरी। क्यों री बाँसुरी! तूने यह स्वर कहाँ से चुराया, जो तू हर किसी का मन चुरा लेती है? आह! कैसी स्वर लहरी थी? सम्पूर्ण तट वन उस स्वर से आप्लावित था। क्या राही रुकोगे? किन्तु वंशी का मृदुल स्वर रह-रह कर उत्साहित कर रहा था—''कठिन पथ है राही! तू बढ़ता चल।"

****

श्रीकृष्णानन्दजी से आकस्मिक मिलन

श्रीबंकाजी को बचपन से ही उच्च शिक्षा प्राप्त करने की आन्तरिक अभिलाषा थी। इन्होंने 1945 में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में बी.ए. आर्टस में प्रवेश लिया था और 1947 में प्रथम श्रेणी से बी.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण भी कर ली थी। आज़ादी के बाद घटना-चक्र कुछ इस प्रकार चला कि बहुत कोशिशों के बाद भी ये एम.ए. नहीं कर पाये। आर.एस.एस. और जेलयात्रा के कष्टपूर्ण दिन व्यतीत करने के बाद जब पुनः एम.ए. करना चाहते थे तब पिताजी ने सहायता करने से साफ इनकार कर दिया और अब तो बी.ए. पास किये हुये इन्हें सात साल व्यतीत हो चुके थे। इस लम्बी अवधि में इन्होंने पिताजी, बड़े भाई, बुआजी आदि किस-किस से रुपयों के लिये मिन्नत नहीं की, पढ़ाई के लिये उधार माँगा परन्तु सदा असफलता ही हाथ लगी। ये निराश-हताश हो गये थे और लाचारी में 1952 में बड़ौत आकर नौकरी करने लगे थे।

बड़ौत अध्यापन काल में एक दिन अचानक श्रीबंकाजी की भेंट संस्कृत के मूर्धन्य विद्वान एवं महान सन्त पण्डित श्रीराजारामजी से हो गई। श्रीबंकाजी का बाल्यकाल से ही इनसे अतिशय स्नेह सम्बन्ध रहा है। कुछ काल पूर्व इन्होंने वृन्दावन में सन्यास की दीक्षा ले ली थी और इनका नाम श्रीकृष्णानन्दजी हो गया था। अब ये वृन्दावन में ही रहा करते थे।

मुलाकात के दौरान श्रीकृष्णानन्दजी ने कहा—कुछ वर्ष पूर्व मेरे बड़े भाई की मृत्यु हो गयी। उनकी दो विवाह योग्य कन्या है जिनका दायित्व अब मुझ पर ही आ गया है। मैं तो संयासी हो गया हूँ, आकाश वृत्ति से जीवन यापन करता हूँ। किसी से कभी कुछ माँगता नहीं। प्रभु भरोसे ही मेरा जीवन व्यतीत होता है। अब ऐसी परिस्थिति में विवाह का खर्च किस प्रकार किया जायेगा यही सोचनीय विषय है। मुझे हर वक्त यही चिन्ता बनी रहती है।

श्रीकृष्णानन्दनजी की बातें सुनकर श्रीबंकाजी ने अपनी विवशता जताते हुये कहा—मेरी भी आर्थित स्थिति अच्छी नहीं है। मैं हृदय से आपकी सहायता तो करना चाहता हूँ परन्तु मेरा वेतन मात्र 132 रुपये प्रति माह है। इतनी कम आय में मेरा स्वयं का ही गुज़ारा कठिनाई से होता है। मैं तो एम.ए. करना चाहता था परन्तु पिताजी ने फीस के पैसे देने से इनकार कर दिया। बहुत लोगों से रुपये उधार माँगे परन्तु निराशा ही हाथ लगी। मन मारकर यहाँ बड़ौत में पड़ा हूँ, अब आप ही कहिये क्या किया जा सकता है?

कुछ काल सोचने के बाद श्रीकृष्णानन्दनजी ने एक सुझाव दिया—मुझे एक योजना सूझ रही है। अगर प्रभु कृपा करें और तुम स्वीकार करो तो हम दोनों का काम बन सकता है।

श्रीबंकाजी ने उत्सुकता व्यक्त करते हुये कहा—एम.ए. की पढ़ाई करने के लिये मैं कुछ भी कर सकता हूँ परन्तु वह मार्ग गलत नहीं होना चाहिये।

श्रीकृष्णानन्दनजी ने कहा—मेरे कुछ परिचित व्यक्ति हैं जो मुझे रुपये उधार दे सकते हैं लेकिन ब्याज समेत रुपये चुकाने होंगे। अगर मैं उनसे इतने रुपये उधार ले लूँ कि तुम एम.ए. की फीस भर सको और दोनों पुत्रियों का विवाह हो जाय तो हम दोनों का काम बन जायेगा। जब एम.ए. करने के बाद तुम्हारी नौकरी लग जायेगी तब तुम्हारा वेतन 250 या 300 रुपये प्रति माह होगा। उसमें से बचाकर तुम ब्याज और मूल दोनों चुका देना। कुछ वर्ष तो लगेंगे परन्तु तुम्हें डिग्री मिल जायेगी और मेरे भाई की धरोहर दोनों पुत्रियों का कन्यादान हो जायेगा।

श्रीकृष्णानन्दनजी की बातें सुनकर श्रीबंकाजी गम्भीर सोच-विचार में निमग्न हो गये। इस प्रस्ताव को स्वीकार करने का अर्थ था कि पहले तो तीन साल तक जी-तोड़ मेहनत करके पढ़ाई करना। एम.ए. की डिग्री प्राप्त करना और उसके बाद 6-7 साल तक परिश्रम पूर्वक नौकरी करके कर्ज़ और ब्याज को चुकाना। कुल मिलाकर जीवन के अगले दस वर्ष दाव पर लगाने का प्रश्न था। अक्सर विद्यार्थी सिर्फ अपनी पढ़ाई के लिये कर्ज़ लेते हैं और उसे ही चुकाने में उनकी कमर टूट जाती है वहीं श्रीबंकाजी को अपनी पढ़ाई का कर्ज और साथ में दो कन्याओं के विवाह का कर्ज़ भी अपनी खटनी की कमाई से, ब्याज सहित चुकाना था। शायद इसीलिये श्रीबंकाजी बाद में कहा करते थे—मेरे एम.ए. की पढ़ाई भी एक प्रकार से भजन ही था जिसमें परोपकार की भावना को प्राथमिकता दी गयी थी।

उनके हृदय में परोपकार करने की और डिग्री प्राप्ति की ललक इतनी प्रबल थी कि उन्होंने अपने जीवन के अगले दस वर्षों को दाव पर लगाते हुये इस दुष्कर प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। श्रीकृष्णानन्दनजी बहुत प्रसन्न हुये। वे जानते थे कि इस नवयुवक की बात पर पूर्ण भरोसा किया जा सकता है। अगर इसने कह दिया है कि यह सारा कर्ज चुकायेगा तो संशय के लिये कोई स्थान नहीं है। समय चाहे जितना लगे यह येन-केन-प्रकारेण कर्ज चुका ही

देगा। उन्होंने प्रसन्न मन से श्रीबंकाजी को विपुल आशीर्वाद दिये और उनसे श्रीगोपाल मन्त्र जपने को कहा। श्रीकृष्णानन्दजी की आज्ञानुसार श्रीबंकाजी श्रीगोपाल मन्त्र का जप करने लगे और सुनहरे-रुपहले सपने देखने लगे उस वक्त के जब वे अध्यापक से विद्यार्थी बनकर पुनः कॉलेज की कक्षा में बैठ सकेंगे।

****

मेरठ कॉलेज, एम॰ए॰

सच ही कहा गया है, **जेहि के जेहि पर सत्य सनेहू। सो तेहि मिलइ न कछु संदेहू॥** 1952 में बड़ौत में श्रीकृष्णानन्दजी से अकस्मात मुलाकात एक वरदान ही सिद्ध हुआ। अपनी योजना के अनुसार श्रीकृष्णानन्दजी ने वृन्दावन जाकर शीघ्र ही छः हजार रुपये अपने स्वजनों से उधार ले लिये। चार हजार रुपये तो उन्होंने अपनी भाई की पुत्रियों के विवाह में खर्च किये और दो हजार रुपये श्रीबंकाजी को एम.ए. की दो साल की फीस भरने के लिये भेज दिये।

श्रीकृष्णानन्दजी के सहयोग से अतिशय आनन्दित श्रीबंकाजी ने अपने बी.ए. काल के परम मित्र, मुजफ्फरनगर निवासी श्रीब्रह्मस्वरूपजी अग्रवाल को पत्र लिखा और सारी वस्तुस्थिति से अवगत कराया। श्रीब्रह्मस्वरूपजी का पत्र आया जिसमें उन्होंने प्रसन्नता व्यक्त करते हुये सुझाव दिया था कि बेहतर होगा अगर श्रीबंकाजी मेरठ कॉलेज से एम.ए. करें, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से नहीं। मेरठ से एम.ए. करने के कई लाभ थे। सर्वप्रथम मेरठ कॉलेज की पढ़ाई अच्छी थी, मेरठ कॉलेज की फीस काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से कम थी और मेरठ में आजकल श्रीब्रह्मस्वरूपजी की बहन श्रीचन्द्रावती देवी निवास कर रही थीं। उनके घर की छत पर एक कमरा था जहाँ श्रीबंकाजी को आवास मिल सकता था। इस प्रकार से मेरठ में एम.ए. करने से होस्टल का खर्च बच सकता था।

श्रीब्रह्मस्वरूपजी का पत्र पाकर श्रीबंकाजी का हृदय प्रसन्नता-कृतज्ञता से गद्-गद् हो गया। मित्र हो तो ऐसा हो जो अपने साथी की मजबूरी-

लाचारी को समझे, सही परामर्श दे और सहायता करने के लिये भी प्रस्तुत हो। श्रीब्रह्मस्वरूपजी ने बखूबी समझ लिया था कि मात्र दो हजार रुपयों में होस्टल का खर्च सम्भालना असम्भव होगा अत: उन्होंने मेरठ में अपनी बहन के घर पर रहने का सुझाव दिया था।

श्रीबंकाजी को अपने मित्र का समयानुकूल प्रस्ताव पसन्द आया। वे अक्सर कहा करते थे कि मुश्किल वक्त में घरवालों से अधिक मित्रों ने ही उन्हें सम्भाला है। आर्थिक सहयोग तो दिया ही साथ ही सही परामर्श भी दिया जो उनकी सफलता में बहुत सहायक हुआ। कहना न होगा कि ऐसे मित्रों के मंगल के लिये, अपने कक्ष के एकान्त में श्रीबंकाजी सजल नयन प्रभु से कितनी प्रार्थना किया करते थे।

1953 में श्रीबंकाजी ने बड़ौत के विश्वविद्यालय में त्यागपत्र दे दिया और मेरठ कॉलेज में, एम.ए. हिन्दी में दाखिला ले लिया। उनका विद्यार्थी जीवन भी एक आदर्श जीवन था। मेरठ कॉलेज में आज़ाद भारत के स्नातकोत्तर सहशिक्षा का परिवेश श्रीबंकाजी के लिये सर्वथा नवीन था। श्रीबंकाजी की कक्षा में लगभग बीस छात्र और आठ छात्राएँ थी। जहाँ कॉलेज के छात्र-छात्राओं में अच्छी पोशाक और अच्छी प्रस्तुति की एक अलिखित प्रतिद्वंदिता रहती थी वहीं श्रीबंकाजी सबसे निराले थे।

उनकी वेशभूषा और व्यक्तित्व स्नातकोत्तर कक्षा के लिये अनूठा था। गौर वर्ण, छरहरे शरीर में व्याप्त ओजस्विता, हंस जैसे श्वेत खादी के वस्त्र, धोती-कुरता-चप्पलें पहने, बांयी माँग निकाल कर काढ़े हुये बाल, हाथ में नोटबुक, अधरों पर मन्द मुसकान लिए वे शान्त-गम्भीर प्रतीत होते थे। उम्र में ये अपनी कक्षा में सबसे वरिष्ठ थे।

प्रथम परिचय में सहपाठियों को श्रीबंकाजी की अलग-थलग वेशभूषा देखकर ऐसा लगता मानो कोई सीधे 'बापू' के आश्रम से चरखा चलात-चलाते उठकर पढ़ने आ गये हैं परन्तु उनके उठने-बैठने-बोलने-चलने में शील-संयम ऐसा साकार हो उठता कि सबके मन में उनके प्रति एक विशेष प्रकार का आदर-भाव जागृत हो गया। उनकी गंभीर मुखमुद्रा अतीत के

अनुभवों का लंबा इतिहास समेटे थी। धीरे-धीरे सहपाठियों के साथ-साथ अध्यापक वर्ग भी उनका सम्मान करने लगे। जहाँ एक ओर परिवार से सम्पर्क टूटा वहीं नये साथी और अध्यापकों से घनिष्टता बढने लगी।

एम.ए. की कक्षाएँ प्रारम्भ हुई। पुन: विद्यार्थी जीवन आरम्भ होने की खुशी में श्रीबंकाजी का मन बाँसों उछल रहा था। हृदय में अध्ययन की अतिशय उमंग लेकर ये प्रथम दिन कक्षा में बैठे। अध्यापकों और सहपाठियों से परिचय हुआ लेकिन इनकी आशा के सर्वथा विपरीत इनका उल्लसित मन एकदम हताश-निराश हो गया।

श्रीबंकाजी ने पडरौना में दसवीं कक्षा तक ही हिन्दी पढ़ी थी। बारहवीं कक्षा और बी.ए. में राजनीति की ओर अधिक झुकाव होने के कारण इन्होंने Politics को मुख्य विषय के रूप में अपनाया था और हिन्दी छोड़ दी थी। अब राजनीति से उपराम होने के बाद Politics पढ़ना अनावश्यक था और Economics इन्हें सदा से ही अरुचिकर थी अत: इन्होंने हिन्दी एम.ए. में प्रवेश ले लिया था। हिन्दी के प्रति इनका सहज झुकाव सदा से था ही। श्रीमीराबाई, श्रीसूरदास आदि की रचनाएँ अतिशय प्रिय बचपन से थी परन्तु एम.ए. की कक्षाओं में हिन्दी के उत्कृष्ट स्तर को देखकर ये एकदम दंग रह गये। जिन सहपाठियों ने बी.ए. में हिन्दी पढ़ी थी उनका व्याकरण और भाषा पर अच्छा अधिकार था और यहाँ श्रीबंकाजी की हालत ऐसा थी कि इन्हें यह भी पता नहीं था कि 'अलंकार' किसे कहते हैं और काव्य में इसका प्रयोग कैसे किया जाता है। इन्हें संधि-समास-अलंकार आदि एकदम नवीन से प्रतीत हो रहे थे और दसवीं कक्षा में इन शब्दों की रटी हुई सरल परिभाषा से अब कुछ काम चलने वाला नहीं था।

एक-दो दिन कक्षा में बैठते ही श्रीबंकाजी ने अपना सिर पकड़ लिया। गाल पर हाथ रखकर ये सोचने लगे कि बच्चू! सारे सहपाठियों से चौगुनी मेहनत करनी पड़ेगी यदि पास होना चाहते हो तो! इन्हें ज्ञात हो गया कि अब दिन-रात कमर कस के परिश्रम करने के सिवा अन्य कोई चारा नहीं है। इन्होंने स्वयं को पुस्तकालय में झोंक दिया। कक्षाओं में प्रध्यापकों को

ध्यानपूर्वक सुनना और एकदम मौन बैठे रहना। किसी सहपाठी को यह भनक भी न पड़ जाये कि इसे व्याकरण का ककहरा भी नहीं ज्ञात है। शेष समय पुस्तकालय में जाकर पूर्ण एकाग्रता और मनोयोग से प्रारम्भिक व्याकरण का अध्ययन करना। एक नहीं अनेकानेक पुस्तकों से संधि-समास-अलंकार, इनके भेद-प्रभेद और प्रयोग आदि पर विशद मनन-चिन्तन करना और अपने नोट्स बना लेना। साहित्य साधना में निरन्तर विकास होने लगा। परिणाम यह हुआ कि कुछ ही महीनों के कठिन परिश्रम से इन्होंने व्याकरण पर वह पकड़ हासिल कर ली कि कभी-कभी कक्षा में अध्यापकों की चूक भी बता देते थे। अपनी प्रखर प्रतिभा-बुद्धिमत्ता के बल पर ये प्रोफेसरों की नज़र में चढ़ने लगे और श्रेष्ठ विद्यार्थियों में इनकी गणना होने लगी।

****

प्रभु की अयाचित कृपा

जहाँ एक ओर श्रीबंकाजी अपने विद्यार्थी जीवन की प्रगति से अत्यन्त प्रसन्न और संतुष्ट थे, वहीं दूसरी ओर एम॰ए॰ काल में इन्हें अर्थ का बेहद अभाव रहता था। इस कठिन समय में जब घरवालों ने हर तरफ से मुँह मोड़ लिया था, मित्रों ने ही इनकी सम्भाल की। अपने मित्रों के प्रति श्रीबंकाजी आजीवन कृतज्ञ रहे। कॉलेज फीस का प्रबन्ध तो श्रीकृष्णानन्दजी के द्वारा हो गया था परन्तु स्वयं के खाने-पीने का खर्च ये बड़ी मुश्किल से चलाते थे।

आवास की व्यवस्था इनके परम मित्र श्रीब्रह्मस्वरूपजी की बहन श्रीचन्द्रावती देवी के घर पर हो गई थी। बहन चन्द्रावती देवी, मातृ स्वरूपा थी और उनसे बहुत सम्मान और प्रेम मिला करता था श्रीबंकाजी को। उनके घर की छत पर एक कमरा था, उसी में ये रहा करते थे। घर में एक कुँआ था और कुँए के पास एक शिवालय। श्रीबंकाजी प्रतिदिन अपने वस्त्र, बाल्टी और रस्सी लेकर छत से नीचे उतरते। शौच, स्नानादि से निवृत्त होकर शिवालय में जल चढ़ाते और तब स्वाध्याय और जप-पाठ करते। अत्यन्त शुचिता से स्वयं भोजन बनाते, बर्तन माँजते और कपड़े धोते। सवारी का तो प्रश्न ही नहीं, जहाँ भी जाना होता था, पैदल ही जाते और पुस्तक भी प्रायः कॉलेज की लाइब्रेरी से या मित्रों से लेकर ही पढ़ते और अपने नोट्स तैयार कर लेते थे।

अर्थ के अभाव में एम॰ए॰ की एक भी पुस्तक ये नहीं खरीद पाये थे। बड़ौत अध्यापन काल के वेतन में से जो कुछ बचा पाये थे उससे कुछ महीनों का खर्च तो किसी प्रकार चल गया। अब हालत ऐसी थी कि ये एक-एक पैसे को तरसने लगे। कल तक जो विद्यार्थी अपने मित्रों को हर प्रकार से सहयोग करता था, आर्थिक सहायता प्रदान करता था, विधि का विधान तो देखो, आज वही व्यक्ति कौड़ी-कौड़ी को मोहताज हो गया था। कल क्या होगा इसका कुछ पता नहीं!

इस काल में जब भी श्रीबंकाजी को कहीं से दो-पाँच रुपये मिल जाते तो ये सर्वप्रथम कोयला, आटा एवं नमक खरीद कर रख लिया करते थे। इसके पीछे भावना यह थी कि बुरे-से-बुरे वक्त में भी कम-से-कम सूखी रोटी बनाकर नमक के साथ तो खा ही लूँगा। एक बार ऐसी ही लाचार-मजबूर परिस्थिति आ गयी। सात दिनों तक केवल एक वक्त की नमक-रोटी पर गुजारा करना पड़ा। इनके पास रुपये थे नहीं और इन्होंने किसी से माँगे नहीं। माँगने में इन्हें बहुत संकोच होता था परन्तु एक सप्ताह तक नमक-रोटी खाते-खाते ये एकदम ऊब चुके थे। शरीर में कमजोरी भी आ गयी थी।

प्रातः का समय था। हाथ में रस्सी-बाल्टी-धोती लेकर श्रीबंकाजी सीढ़ी से नीचे उतर रहे थे कि अचानक कमजोरी के कारण चक्कर आने लगे। सिर घूमने लगा, इन्हें लगा कि ये गिर जायेंगे। सीढ़ी की रेलिंग को झट से पकड़कर स्वयं को सम्भाला। नीचे शिवालय था। शिवजी को देखकर मन-ही-मन कहने लगे—मैं यह तो मानता हूँ कि यह कठिन परिस्थिति आपकी दी हुई है परन्तु इतनी कठिनाई मत देना कि मैं बिखर जाऊँ! मेरा जीवन एक इलास्टिक रबर-बैंड की तरह है। इतना मत खींचना कि रबर ही टूट जाये!

करुणामय प्रभु से मन-ही-मन विनती करके श्रीबंकाजी ने स्नान किया और कॉलेज गये। कुछ समय बाद किसी ने सूचित किया कि इन्हें प्रिन्सिपल साहब ने बुलाया है। ये तुरन्त प्रिन्सिपल साहब की ऑफिस में गये। बाहर प्रतीक्षा करने के लिये कहा गया। करीब 15 मिनट बाद भीतर बुलाया गया।

प्रिन्सिपल साहब ने कहा—तुम्हारे नाम से 200 रुपय का चेक आया है। क्या करना है ?

पचास के दशक में 200 रुपये बहुत बड़ी रकम थी। श्रीबंकाजी को परम आश्चर्य हो रहा था कि जहाँ कोई उन्हें 5-10 रुपये देने वाला नहीं था वहाँ 200 रुपयों का चेक भला कौन भेजेगा ? उनके मन में विचारों का तूफान उठ खड़ा हुआ पर प्रत्यक्ष में उन्होंने प्रिन्सिपल साहब से इतना ही कहा—आप जैसा उचित समझे वही करें।

प्रिन्सिपल साहब—इन कैश करा दूँ क्या ?

श्रीबंकाजी—जी, करा दीजिये।

श्रीबंकाजी प्रिन्सिपल साहब की ऑफिस से बाहर चले आये। हृदय को भावनाओं की आँधी आन्दोलित कर रही थी। नयनों से अश्रुधार बह चली।

श्रीबंकाजी मन ही मन कहने लगे—आज प्रात: ही तो प्रभु से प्रार्थना की थी, क्या ये उनका चमत्कार है... ? आखिर किसे तरस आई मुझ गरीब पर... ! कौन भेज सकता है इतने सारे रुपये ? क्या पिताजी ने भेजे हैं.....परन्तु वे तो अत्यन्त रुष्ट हैं, तो क्या किसी मित्र ने..... ? परन्तु 200 रुपये तो बहुत बड़ी रकम है।

श्रीबंकाजी तीन दिनों तक इसी उधेड़-बुन में लगे रहे। कोई समाधान न मिला। जब नहीं रहा गया तब साहस करके तीसरे दिन प्रिन्सिपल साहब की ऑफिस में जाकर उनसे रुपये भेजने वाले का नाम-पता पूछा। प्रिन्सिपल साहब ने कहा—साफ लिखा है कि राधेश्याम को न बताया जाय कि कौन रुपये भेज रहा है।

श्रीबंकाजी चुपचाप लौट आये और मन-ही मन यह विश्वास दृढ़ हो गया कि यह करुणामय प्रभु का ही चमत्कार है। या तो स्वयं उन्होंने रुपये भेजे हैं या फिर किसी निज जन को प्रेरणा करके भिजवाये हैं। इस अयाचित कृपा पर उनका मन बलिहार था।

****

छात्राओं के विश्वसनीय अग्रज

एम॰ए॰ प्रथम वर्ष की कक्षाएँ आरम्भ हुए कई माह बीत चुके थे और सभी छात्र-छात्राएँ एक दूसरे से पूरी तरह परिचित हो चुके थे। उन दिनों कक्षा में एक ओर कुछ सीटें छात्राओं के लिये ही नियत रहती थीं। उन पर छात्रों का बैठना एक तरह से निषिद्ध ही था। हर कक्षा में कुछ-न-कुछ शरारती तत्त्व भी होते ही हैं। श्रीबंकाजी की कक्षा में भी एक महानुभाव थे श्रीशर्माजी, जो मेरठ के स्थानीय प्रसिद्ध वैद्य के पुत्र थे। उन्हें अपनी पारिवारिक पृष्ठभूमि, ख्याति एवं धनी पिता की सन्तान होने की अपूर्व श्रेष्ठता-ग्रन्थि थी। कुछ-न-कुछ चुहल, लड़कियों को छेड़ने की प्रवृत्ति गुरुजनों के आदेशों की उपेक्षा-अवहेलना आदि उन्हें नये-नये करतबों को करने के लिये प्रेरित करते रहते थे।

एक दिन की बात है, हिन्दी की कक्षा थी। श्रीबंकाजी तथा अन्य कुछ छात्र कक्षा में पहुँच चुके थे तथा यत्र-तत्र, अपनी-अपनी सीटों पर बैठे हुये थे। उसी वक्त छात्राओं ने कक्षा में प्रवेश किया और देखा कि लड़कियों के लिये आरक्षित सीटों में से बीच वाली सीट पर, शर्माजी हाथ-पैर फैलाकर विराजमान थे। सभी छात्राएँ सकपका गयीं। अब क्या करें ? कहाँ बैठे ? अपने सहज संकोचवशात् वे सभी एक ओर खड़ी हो गयी।

श्रीबंकाजी की दृष्टि उन छात्राओं के समूह पर पड़ी। वे अपनी सीट से खड़े हो गये और उन खुराफ़ाती महोदय से मुखातिब हुये—अरे शर्माजी ! आज आप कहाँ भटक गये ? या अटक गये ? इधर आईये न, इधर सारी सीटें खाली पड़ी हैं।

शर्माजी को यह हस्तक्षेप पसन्द नहीं आया। दूसरी बात यह भी थी कि 'भटक गये—अटक गये' की तुकबन्दी पर छात्र-छात्राओं की दबी हँसी ने उन्हें चोट पहुँचाई थी। वे बड़ी बेफ़िक्री दिखाते हुये बोले—यह सहशिक्षा है और हर किसी को पूरा अधिकार है कि कक्षा में कहीं भी बैठ सकता है। आज हम यहीं बैठेंगे।

श्रीबंकाजी न तो हतप्रभ हुये और न ही निरुत्तर। कक्षा की सबसे सामने वाली सीटों पर दो-चार छात्र बैठे हुये थे। श्रीबंकाजी ने नयनों के इशारे से उन छोत्रों को पीछे जाकर बैठने का संकेत किया। सभी छात्र उनका सम्मान करते थे। स्थिति स्पष्ट थी ही अतः वे छात्र उठकर पीछे चले गये। अब श्रीबंकाजी ने बड़ी ही हल्की मुस्कान होठों पर लाते हुए सभी छात्राओं से कहा—तो फिर बहनें आज यहाँ प्रथम पंक्ति में विराजें।

सभी छात्राएँ चुपचाप आकर प्रथम पंक्ति में लगी कुर्सियों पर बैठ गयीं। बाद में जब प्रॉफेसर महोदय आयें तो उन्होंने इस परिवर्तन को लक्षित किया और अभियुक्ति करना भी नहीं भूले—नारी के नवोन्मेष की बात साहित्य में पढ़ते-पढते छात्राओं ने उस पर क्रियान्वयन भी आरम्भ कर दिया है! अच्छी बात है! वे पार्श्व से निकलकर प्रथम पंक्ति में आ बैठी हैं! मेरी ओर से शुभकामनाएँ।

उस दिन दो महत्त्वपूर्ण घटनाएँ एक साथ घटित हुई। प्रथमः कक्षा में प्रथम पंक्ति पर छात्राओं का कब्जा स्थायी हो गया और द्वितीय श्रीबंकाजी छात्राओं के अभिभावक के रूप में सर्व स्वीकृत हो गये। सभी छात्राएँ एक विश्वसनीय अग्रज के रूप में उनका सम्मान करते हुए उन पर निर्भर हो गयीं और वे सर्वसम्मति से बंका भैया कहलाने लगे।

****

श्रीराधाबाबा द्वारा सम्भाल

श्रीबंकाजी जब मेरठ में पढ़ रहे थे तब उनके मित्र श्रीब्रह्मस्वरूपजी मिलने के लिय अक्सर मुजफ्फरनगर से आ जाते थे। छुट्टियों में श्रीबंकाजी पडरौना न जा कर मुजफ्फरनगर, श्रीब्रह्मस्वरूपजी के घर पर ही रहते। इस कारण श्रीब्रह्मस्वरूपजी के अनेक मित्रों से श्रीबंकाजी का घनिष्ट सम्पर्क हो गया था। इनमें प्रमुख है श्रीरमेश गोयल, श्रीसत्यपालजी, श्रीबी.एल. अग्रवाल और श्रीपरमेश्वर प्रसाद अग्रवाल।

मेरठ निवासी श्रीपरमेश्वर प्रसाद अग्रवाल बड़े ही सरस हृदय, साधु स्वभाव और आध्यात्म पथ के सच्चे पथिक थे। ईश्वर अनुरक्ति और जग विरक्ति वाले दो युवक अगर मिल जाये तो उनकी परस्पर मित्रता होना स्वाभाविक ही है। श्रीबंकाजी के साथ इनकी खूब सत्संग-वेदान्त-भक्ति की चर्चा होने लगी। दोस्ती इतनी बढ़ गयी कि प्रायः प्रतिदिन ही दोनों मिलने लगे।

श्रीपरमेश्वर प्रसादजी ग्रीष्म ऋतु में पूज्य श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार और सेठजी श्रीजयदयालजी गोयन्दका के सत्संग हेतु स्वर्गाश्रम, ऋषिकेश जाया करते थे। वहाँ उनको पूज्य श्रीराधाबाबा के भी दर्शन-सत्संग का सुअवसर प्राप्त होता था। एक बार की बात है, वे बाबा के पास बैठे हुये थे। सहज चर्चा चल रही थी।

बाबा ने इनसे पूछा—तुम मेरठ में रहते हो न? वहाँ राधेश्याम बंका नामक युवक भी विद्यार्जन कर रहा है। उसे जानते हो क्या?

श्रीपरमेश्वर प्रसादजी ने तुरन्त उत्तर दिया—हाँ, वे तो मेरे परम मित्र हैं। प्रतिदिन ही प्रायः साथ-साथ उठना-बैठना होता है।

यह सुनकर बाबा बड़े प्रसन्न हुए और कहा—देखो, उसके पास आजकल द्रव्य का बड़ा अभाव है। उसका ध्यान रखना। समय-समय पर यथा सम्भव सम्भालते रहना।

श्रीपरमेश्वर प्रसादजी ने बाबा की बात को आज्ञावत् स्वीकार किया परन्तु उन्हें मन-ही-मन बड़ा आश्चर्य हो रहा था कि मित्र राधेश्याम का सौभाग्य तो देखो! वह ऋषिकेश आता भी नहीं है, बाबा को उसने कभी अपने आर्थिक कष्ट के बारे में बताया भी नहीं फिर भी बाबा किस प्रकार उसकी सम्भाल कर रहे हैं? उसकी अनुपस्थिति में भी उसके लिये बाबा सचिन्त हैं! जिसके ऊपर सन्तों की इतनी कृपादृष्टि हो, वह साधारण-सा दिखने वाला व्यक्ति वास्तव में कुछ खास गुणों से विभूषित अवश्य होगा। **राउर जा पर अस अनुरागू।**

श्रीपरमेश्वर प्रसादजी ने मेरठ लौटने पर बाबा से हुई सारी बातें श्रीबंकाजी को बतला दी और उनके भाग्य की भूरि-भूरि सराहना करने लगे। बाबा का ऐसा प्रेम और अपनापन देखकर श्रीबंकाजी के नेत्र सजल हो गये, हृदय कृतज्ञता से भर गया और वे मन-ही-मन बाबा के श्रीचरणों में लोट गये। इस प्रसंग के बाद श्रीपरमेश्वर प्रसादजी अक्सर श्रीबंकाजी की आर्थिक सहायता

किया करते थे, दुखः-सुख की बातें पूछा करते थे और यथासम्भव सम्भालते रहते थे। दोनों की मित्रता और घनिष्ट हो गई।

जहाँ एक ओर श्रीबंकाजी अपनी गरीबी, लाचारी से अत्यन्त परेशान थे वहीं बाबा जैसे सन्त की कृपा पाकर उनमें एक नया जोश भर गया। वे गुरु गोविन्द के चरणों में बार-बार बलिहारी जा रहे थे। उनका मानस सुनहरे भविष्य के स्वप्निल गीत गाने लगा।

मानस-मुरली के स्वप्निल गीत

ले हृदय में स्वप्न सुन्दर
मन मुरली के बज निरन्तर।
श्याम वन्दन कर निरन्तर
स्वप्न निर्मित हो निरन्तर॥

सर्वदा लुटते रहे हैं स्वप्न के संसार सुन्दर
सर्वदा मिटते रहे कटु सत्य के खिलवाड़ बनकर।
पर निरन्तन सत्य यह भी जगत को उत्थान पथ पर
सर्वदा नव स्फूर्ति देते स्वप्न ही आर्दश बनकर॥

गीत स्वप्निल गा निरन्तर
मन मुरली के बज निरन्तर।
श्याम वन्दन कर निरन्तर॥

स्वर्ण सपने सत्य बनकर सर्वदा हैं जगमगाये,
स्वप्न को साकार करने प्राण जिनने बलि चढ़ाये।
कष्ट कंटक हो अनेकों पर सदा है पग बढ़ाये,
साध जिनकी एक ही थी साधना साकार पाये॥

साधना तू कर निरन्तर
मन मुरली के बज निरन्तर।
श्याम वन्दन कर निरन्तर॥

हो भले उत्थान पथ पर वात झंझानिल भयंकर,
या लुभाये विमल निर्झर गीत गा-गा मधुर मनहर।
भय प्रलोभन कठिनता यदि घेर ले प्रत्येक पग पर
किन्तु राही सर्वदा आर्दश हो चलना निरन्तर॥

स्वप्न सनमुख हो निरन्तर,
मन मुरली के बज निरन्तर।
श्याम वन्दन कर निरन्तर॥

****

Rainy day holiday

एक दिन की बात है। मेरठ शहर में मूसलाधार वर्षा हुई। जगह-जगह सड़कों पर पानी भर गया। यातायात ठप्प हो गया। ऐसी स्थिति में कॉलेज ने Rainy day holiday घोषित कर दिया। इस बात की जानकारी किसी भी छात्र को नहीं थी कि अवकाश घोषित कर दिया गया है। उस ज़माने में आज की तरह मोबाईल आदि की सुविधा तो थी नहीं अतः सम्पर्क स्थापित करना असंभव था। अत्याधिक वर्षा के कारण ऐसे ही छात्र घर से नही निकलेंगे यही उम्मीद की गयी थी।

अगले दिन मौसम सामान्य हो गया। कक्षा की लड़कियाँ घेरा बनाकर कॉलेज के बाहर खड़ी थीं। आपस में पारस्परिक चर्चा हो रही थी कि कल कौन-कौन कॉलेज आया होगा और फिर अवकाश देखकर, अपना सा मुँह लेकर लौटा होगा। एक लड़की ने कहा—और कोई आये या न आये, बंका भैया अवश्य ही आये होंगे।

संयोग की बात है उसी समय श्रीबंकाजी सामने से आते हुए नज़र आये। लड़कियों के मध्य हुई इस चर्चा का उन्हें कुछ भी पता नहीं था। लड़कियों ने देखते ही उन्हें रोक लिया और घेरकर खड़ी हो गई। अपनी हँसी को दबाते हुये विनोदयुक्त वाणी में एक छात्रा ने पूछा—बंका भैया! क्या आप कल कॉलेज आये थे?

श्रीबंकाजी—हाँ, आया था। क्यों पूछ रही हो?

इतना सुनते ही सब लड़कीयाँ एक साथ खूब जोरों से हँस पड़ी। श्रीबंकाजी ने पूछा—क्या बात है ? अरी ! हँस क्यों रही हो तुम सब ?

तब लड़कियों ने हंसते-हंसते पारस्परिक चर्चा की सारी बातें बताई और कहा—हमें पूरा विश्वास था कि चाहे अन्य कोई भी छात्र न आया हो पर आप तो अवश्य आये ही होंगे।

इस बात को सुनकर श्रीबंकाजी समेत सारी लड़कियाँ पुन: एक साथ हंस पड़ी। श्रीबंकाजी की कर्मठता, परिश्रम आदि की जानकारी सभी को थी और उन्हें अग्रज की भाँति मानने वाली सहपाठी छात्राएँ जहाँ एक ओर उनका अत्यन्त सम्मान करती थी वहीं दूसरी ओर सहज विनोद भी कर लिया करती थीं।

****

प्रोफेसर श्रीरामप्रकाश अग्रवाल

मेरठ कॉलेज हिन्दी विभाग के प्रमुख थे श्रीकृष्णानन्द पंत। श्रीरामेश्वरलाल खण्डेलवाल एम.ए. के छात्रों को कविता पढ़ा रहे थे और श्रीराज किशोर कक्कड़ का विषय था साहित्य। सभी अपने-अपने विषय के बड़े योग्य प्राध्यापक थे। श्रीरामप्रकाश अग्रवाल छात्रों के सर्वाधिक प्रिय प्रवक्ता थे। छात्रों के प्रति असीम अनुराग था उन्हें। ये एम.ए. के छात्रों को मध्यकालीन काव्य पढ़ा रहे थे। श्रीबंकाजी उनके परम प्रिय शिष्य थे। अपने कॉलेज के सुनहरे दिनों को याद करते हुए श्रीबंकाजी अक्सर श्रीरामप्रकाशजी अग्रवाल की कक्षा के मधुर प्रसंग, उत्साह में भरकर सुनाया करते थे।

एक दिन की बात है, प्रॉफेसर साहब कक्षा पूर्ण होने के बाद साईकिल पर बैठकर अपने घर की ओर जा रहे थे। उनका आवास मेरठ कॉलेज के निकट ही था। साईकिल धीमी गति से चल रही थी। श्रीबंकाजी साईकिल के बगल में, साथ-साथ पैदल चल रहे थे।

सहज भाव से श्रीरामप्रकाशजी अग्रवाल ने कहा—बंका, कुछ सुनाओ।

श्रीबंकाजी को अनेकों शेरो-शायरी, कविता आदि कंठस्थ रहते हैं इस बात की जानकारी प्रोफेसर साहब को थी। श्रीबंकाजी ने कुछ पंक्तियाँ सुनाई।

प्रोत्साहित करते हुए प्रोफेसर साहब ने कहा—कुछ नया सुनाओ। स्वरचित सुनाओ।

श्रीबंकाजी ने तुरन्त दसवीं कक्षा में गुलाब पर लिखी अपनी स्वरचित कविता सुनानी प्रारम्भ की—**गुलाब न यहाँ निखर...., गुलाब न यहाँ बिखर...., ये गुलाम देश है........**

कविता सुनकर प्रोफेसर साहब मन्त्रमुग्ध हो उठे। उन्हें यह कविता बेहद पसन्द आई। साईकिल तुरन्त किनारे रोकी और उतर पड़े। प्रशंसा के स्वर में उन्होंने कहा—वाह वाह ! तुम कहाँ से चुन-चुन कर ऐसे विलक्षण भाव उठा लाते हो ! उत्तम ! अतिउत्तम !!

अगले दिन कॉलेज के विद्यार्थियों की मीटिंग में इस कविता का पाठ किया गया और सभी अध्यापकों और छात्रों के द्वारा श्रीबंकाजी को विपुल सराहना और साधुवाद प्राप्त हुआ।

****

कवि विद्यापति

एक दिन कक्षा में प्रॉफेसर श्रीरामप्रकाशजी अग्रवाल ने विद्यार्थियों को कवि विद्यापति पर लेख तैयार करने को कहा। प्रचलित वार्ता के अनुसार सभी विद्यार्थियों ने श्रीविद्यापतिजी को श्रृंगारीकवि माना और इसी रूप में उनकी व्याख्या की। श्रीबंकाजी ने लोकप्रचलित धारा के विपरीत उन्हें भक्तकवि माना और तदनुरूप अपना लेख लिखा।

श्रीबंकाजी का लेख पढ़कर प्रध्यापक श्रीरामप्रकाशजी आश्चर्यचकित रह गये और अगली कक्षा में उन्होंने सबके सामने कहा—राधेश्याम ! तुम वर्षों से प्रचलित प्रणाली को चुनौती दे रहे हो ! किस बल पर तुम विद्यापति को भक्तकवि कहते हो ?

श्रीबंकाजी अपनी कुर्सी से उठे। चेहरे पर आत्मविश्वास लिये, विनम्र वाणी में सबके समक्ष उन्होंने कहना प्रारम्भ किया—श्रीविद्यापति भारतीय साहित्य की भक्ति परम्परा के प्रमुख स्तंभों में से एक हैं और मैथिली के

सर्वोपरि कवि हैं। वे राजकवि थे। उन्हें राज्याश्रय प्राप्त था। दरबारी कवि होने के कारण राजाओं को प्रसन्न करने के लिये भले ही उनके द्वारा शृंगार का वर्णन हो परन्तु उनका हृदय भक्ति से पूर्ण था। वे शिव के अनन्य उपासक थे और यह दन्तकथा प्रचलित है कि 'उगना नौकर' के नाम से स्वयं शिव ही विद्यापति के यहाँ नौकरी करते थे। इस बात का उल्लेख श्रीनाभादासजी ने अपने भक्तमाल ग्रन्थ में किया है। उनके शिव-पार्वती के पक्ष को आप भक्ति कहते हैं और दूसरे पक्ष को शृंगार, यह अनुचित है। क्या एक व्यक्ति दो नाव पर सवार हो सकता है? क्या एक म्यान में दो तलवार रह सकती है? नहीं, कदापि नहीं! कवि जयदेव के गीतगोविन्द की भाँति इनकी पदावली में भी श्रीराधाकृष्ण की प्रेममय मूर्ति की झाँकी दृष्टिगोचर होती है। माना कि इस अपूर्व चित्रण में शृंगार पक्ष की प्रधानता है, पर इससे सहृदय के चित्त में विकार उत्पन्न नहीं होते हैं। श्रीचैतन्य महाप्रभु ने भी इन पदों को धार्मिक मान्यता प्रदान की है। इन्हें वैष्णव और शैव भक्ति के सेतु के रूप में स्वीकार किया गया है।

इतना कहने के बाद श्रीबंकाजी ने श्रीराधाकृष्ण के मधुर भाव के सूत्रों का और भक्तकवि के स्वरूप का वर्णन किया। श्रीजयदेवजी के ग्रन्थ गीतगोविन्द से श्रीविद्यापतिजी की पदावली का तुलनात्मक विवेचन किया और अपने विशद अध्ययन के आधार पर अपनी बात को प्रतिपादित किया।

सारे विवरण को सुनकर सहपाठी तो आश्चर्यचकित थे ही प्रध्यापक महोदय को भी परम विस्मय हुआ। श्रीबंकाजी के विस्तृत अध्ययन, शब्द संयोजन एवं सटीक प्रतिपादन शैली को देखकर प्रॉफेसर साहब बहुत प्रभावित हुए और उन्होंने कहा—कोई विरला ही विद्यार्थी होता है जो केवल अंक प्राप्ति के लिये नहीं बल्कि विशुद्ध ज्ञान प्राप्ति के लिये अध्ययन करता है। प्रचलित विचार-धारा के विरुद्ध बोलने के लिये उस विषय पर पूर्ण अधिकार का होना परम आवश्यक है जो सबके बस की बात नहीं है। तुम्हारा अतिगहन अध्ययन, तुम्हारी लगन और प्रखर बुद्धिमत्ता का परिचायक है।

कहना न होगा कि इस बात की चर्चा भी विद्यार्थियों और प्रध्यापकों के मध्य कई दिनों तक कॉलेज में चली।

****

सहपाठी श्रीसुरेश सेठ

श्रीबंकाजी के एम॰ए॰ काल के सहपाठी श्रीसुरेश सेठ का व्यक्तित्व बहुमुखी प्रतिभाओं से सम्पन्न था। लेखक, कवि, वक्ता, चित्रकार, गायक, सभा-संयोजक आदि अनेक गुणों से समन्वित होकर भी आध्यात्मिक विषयों में इनकी बहुत रुचि थी। कक्षा में इनकी श्रीबंकाजी से विशेष प्रतिस्पर्धा रहा करती थी। दोनों में घनिष्ट मित्रता थी। प्रध्यापकों की दृष्टि में दोनों अतिशय योग्य और श्रेष्ठ विद्यार्थी थे। श्रीबंकाजी और श्रीसुरेशजी, दोनों ही हिन्दी के प्रोफेसर श्रीरामप्रकाश अग्रवाल के प्रिय शिष्य थे।

एक बार की बात है। श्रीबंकाजी और श्रीसुरेशजी कक्षा के बाद, बाहर उद्यान में टहल रहे थे। श्रीबंकाजी ने कहा—सुरेश! हिन्दी के प्रोफेसर श्रीरामप्रकाशजी अग्रवाल तुम्हें बहुत प्यार करते हैं।

सुरेश—क्या कहते हो? नहीं नहीं! वे तुम्हें मुझसे भी बहुत अधिक प्यार करते हैं।

संयोग की बात है तभी प्रोफेसर श्रीरामप्रकाशजी अग्रवाल सामने से आते हुए दिखाई दिये। सहपाठी सुरेश तुरन्त उनके समीप पहुँच गये और मुहलगा छात्र होने के नाते उनसे पूछ ही लिया कि आप किसे अधिक प्यार करते हैं, राधेश्याम को या मुझे?

प्रोफेसर अग्रवाल ने स्नेहयुक्त दृष्टि से दोनों प्रिय छात्रों की ओर देखकर मुसकराते हुये उत्तर दिया—I have great affection for you and great regard for Banka.

इस उत्तर को सुनकर श्रीबंकाजी को बहुत प्रसन्नता हुई और श्रीसुरेशजी ने सात्त्विक इर्ष्या दर्शाते हुये कहा—मित्र, तुम फिर बाजी मार गये!

श्रीबंकाजी से श्रीसुरेशजी का मधुर सम्बन्ध आजीवन बना रहा। जब भी अवसर मिलता श्रीसुरेशजी सत्संग के लिये ग्रीष्मावकाश में स्वार्गश्रम आ जाते

थे। स्वार्गश्रम में आते रहने के कारण माँ और बाबूजी से भी इनका परिचय हो गया था जिसका वर्णन आगे आयेगा।

****

प्राध्यापकों का भरोसा

दिन जैसे पंख लगाकर उड़े चले जा रहे थे। श्रीबंकाजी पूर्ण मनोयोग से साहित्यिक चर्चा करते, नोट्स तैयार करते, पुस्तकालय से संदर्भ ग्रन्थ एकत्रित करते और फिर कवि-लेखकों पर महत्त्वपूर्ण प्रश्नों के उत्तर तैयार करते। एम॰ए॰ काल के दौरान उनकी आर्थिक स्थिति इतनी कष्टदायी थी कि वे एम॰ए॰ की एक भी पुस्तक स्वयं खरीद नहीं पाये थे। मित्रों से पुस्तकें लेना और समय पर उन्हें पुन: लौटाना उनके प्रतिदिन का क्रम था।

जनवरी मास प्रारम्भ होते ही प्राध्यापक वर्ग को पाठ्यक्रम पूर्ण कराने की शीघ्रता होती। पाठ्यक्रम पूर्ण होने के पश्चात् पुनरावृत्ति(रिविजन) और छात्र-छात्राओं की कठिनाईयों-समस्याओं-शंकाओं का निवारण भी प्रध्यापकों का नैतिक दायित्व था जिसे वे पूरी मुस्तैदी से निभाते थे। हिन्दी के प्रोफेसर श्रीरामप्रकाशजी अग्रवाल ने कुछ अतिरिक्त कक्षाएँ ली और कहा—आपलोगों को जब भी, जो कुछ भी पूछना हो, शंका हो, उलझन हो, नि:संकोच पूछ लें। मैं सदा आपकी सहायता के लिये प्रस्तुत हूँ।

इसी क्रम में कुछ अतिरिक्त कक्षाएँ उनके आवास पर हुई। कक्षा के सभी छात्र-छात्रा तो वहाँ उपस्थित नहीं रहते थे किन्तु प्राय: दस-पंद्रह छात्र-छात्राओं का दल पहुँच ही जाता था। श्रीबंकाजी तो ऐसे अवसर की टोह में ही रहा करते थे। प्रोफेसर अग्रवाल प्राय: कहा करते—आज के युग में, एम॰ए॰ हिन्दी में ऐसे जिज्ञासु, मेधावी और लग्नशील छात्र-छात्राएँ हैं कि उन्हें पढ़ाने में आनन्द आता है। सच कहूँ तो उन्हें पढ़ाने के लिये मुझे भी पूर्व तैयारी करनी पड़ती है। इस 'बैच' से मुझे बहुत आशाएँ हैं।

इस प्रकार की अतिरिक्त कक्षाओं से श्रीबंकाजी की बहुत प्रगति हुई। कई-कई बार अतिरिक्त कक्षाओं में अध्ययन इतना रोचक होता था कि कब संध्या के 7-8 बज जाते थे, कुछ पता ही नहीं चलता था। उस वक्त प्रोफेसर अग्रवालजी की धर्मपत्नी श्रीसुशीलादेवी समय का परिज्ञान कराती थीं। कुछ छात्राऐं बहुत दूर से भी पढ़ने आया करती थी। अब रात के 8 बजे उसका अकेले घर लौटना उचित न जानकर प्रोफेसर श्रीरामप्रकाशजी श्रीबंकाजी से अनुरोध करते—राधेश्याम! रात बहुत हो गयी है। तुम मेरी साइकिल ले जाओ और अमुक छात्रा को उसके घर तक छोड़ आओ।

श्रीबंकाजी पर इतना विश्वास था अध्यापकों को कि यह विद्यार्थी जिम्मेदारी से अपने सहपाठी को उसके घर तक पहुँचा देगा। ऐसा एक नहीं अनेकों बार हुआ।

****

श्रीसुशीला देवी

श्रीरामप्रकाशजी अग्रवाल की घर्मपत्नी का नाम था सौभाग्यवती श्रीसुशीला देवी। श्रीबंकाजी हिन्दी की अतिरिक्त कक्षाओं में सदैव जाया करते थे जो प्रोफेसर साहब के घर पर हुआ करती थी। इसी कारण से श्रीसुशीला देवी से उनका पारिवारिक सम्पर्क स्थापित हो गया था और श्रीबंकाजी उन्हें 'भाभीजी' कहकर सम्बोधित किया करते थे। जब भी उनके घर पर श्रीरामचरितमानस का अखण्ड पाठ होता तो श्रीबंकाजी उसमें अवश्य भाग लेते और यथासम्भव सेवा भी करते थे।

जब मैंने जीवनी लिखने के पहले, श्रीसुशीला देवी से सम्पर्क किया तो उन्होंने भाव में भरकर, गदगद् कण्ठ से अपने जीवन की एक अविस्मरणीय मधुर स्मृति सुनायी। यह प्रसंग 1962 के बाद का है जब श्रीबंकाजी गीतावाटिका में स्थायी रूप से रहने लगे थे।

एक बार की बात हैं श्रीरामप्रकाशजी अग्रवाल और श्रीसुशीला देवी सतसंग हेतु ऋषिकेश में परमार्थ निकेतन गये हुए थे। अनन्त श्रीसम्पन्न परम पून्य सन्त श्रीनारायणदास भक्तमाली, जिन्हें लोग बक्सर वाले मामाजी के नाम से जानते हैं, उनकी भक्तमाल कथा हो रही थी। कथा के उपरान्त कभी-कभी

श्रीमामाजी श्रद्धालु भक्तों से कक्ष में भी मिला करते थे। ऐसी ही एक बैठक में कई सत्संगियों के बीच श्रीरामप्रकाशजी और श्रीसुशीला देवी भी बैठे हुये थे। चर्चा के मध्य श्रीमामाजी के मुख से यह बात निकली कि गीतावाटिका गोरखपुर में श्रीराधेश्यामजी बंका रहते हैं जिन्होंने भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार के श्रीचरणों में अपना सम्पूर्ण जीवन समर्पित कर दिया है।

यह सुनकर श्रीरामप्रकाशजी अग्रवाल तो प्रसन्नता से खिल उठे और कहने लगे—राधेश्याम बंका तो हमारा परम प्रिय शिष्य है।

इतना सुनते ही पूज्य श्रीमामाजी ने परम श्रद्धा से भरकर कहा—श्रीराधेश्यामजी बंका तो मेरे गुरु हैं। वे तुरन्त अपने आसन से उठ खड़े हुए और अनेक सत्संगी भाइयों के बीच में ही श्रीरामप्रकाशजी अग्रवाल के चरणों में गिर पड़े और दण्डवत् प्रणाम करते हुए कहने लगे—आप तो मेरे गुरु के भी गुरु हैं, अतः परम पूज्यनीय हैं। मैं आपको बारम्बार प्रणाम करता हूँ।

श्रीरामप्रकाशजी अग्रवाल तो अवाक् रह गये! विश्व विख्यात सन्तों द्वारा पूजित, मूर्धन्य विद्वान, प्रेमिल भक्त, नेह निधि, सिया अनुज कथाव्यास परम पूज्य श्रीभक्तमालीजी, अचानक उनके चरणों में प्रणाम करेंगे ऐसी तो कभी उन्होंने स्वप्न में भी कल्पना नहीं की थी! श्रीरामप्रकाशजी ने तुरन्त उनको उठाया और दीन वाणी में कहा—अरे! आप तो हमारे परम पूज्य हैं, गुरुतुल्य हैं, आप ये क्या कर रहे हैं?

दैन्य की साकार प्रतिमा श्रीमामाजी भला कहाँ मानने वाले थे! सम्मानपूर्वक वे श्रीरामप्रकाशजी और श्रीसुशीला देवी को अपने निवास पर ले गये, अपना साहित्य उन्हें भेंट किया तथा भाव विह्वल होकर बहुत देर तक श्रीबंकाजी का स्मरण करते रहे।

रात्रि के एकान्त में श्रीरामप्रकाशजी ने अपनी पत्नी श्रीसुशीला देवी से कहा—मेरठ से एम॰ए॰ पास करने के बाद जब राधेश्याम ने पी.एच.डी नहीं की और न ही किसी उच्च पद पर प्रतिष्ठित हुआ तो मुझे कुछ निराशा हुई थी कि इतने मेधावी छात्र ने, जो जीवन में बहुत उन्नति कर सकता था, किसी

महाविद्यालय का प्रधानाचार्य बन सकता था या किसी उच्च सरकारी पद पर नियुक्त हो सकता था, उसने यह विरक्ति का कैसा मार्ग चयन कर लिया है! आधुनिक उच्चतम शिक्षा प्राप्त करने वाले सुयोग्य नवयुवक का यह वैरागी निर्णय अपूर्व ही था। परन्तु आज भारत के उच्चकोटि के सन्तों में उसका इतना आदर-सम्मान देखकर मैं दंग रह गया। महान प्रतिभा सम्पन्न होने पर भी वह लोकरंजन और प्रतिष्ठा से सदैव दूर रहा। गर्व है मुझे ऐसे शिष्य पर! मेरा हृदय से आशिर्वाद है कि असाधारण साधन-पथ पर अविराम चलता हुआ वह मानव जीवन के परम-चरम लक्ष्य, भगवत्प्राप्ति, को प्राप्तकर कृतकृत्य हो जाये।

यह घटना श्रीबंकाजी के साधनामय सादगीपूर्ण जीवन और सन्त समाज में उनकी प्रतिष्ठा को सिद्ध करने के लिये पर्याप्त है।

****

श्रीसुधा गुप्ता

परम विदुषी, मृदुभाषिणी, गौरवर्णा श्रीसुधा गुप्ताजी श्रीबंकाजी की एम॰ए॰ काल की सहपाठी और मुँहबोली बहन हैं। श्रीबंकाजी का इनसे घनिष्ठ पारिवारिक सम्बन्ध स्थापित हुआ जो आजीवन बना रहा। इन्होंने मेरठ में श्रीबंकाजी को छोटी बहन का प्यार प्रदान किया। जब मैं इनसे मिलने मेरठ गयी तो अत्यधिक प्रसन्नतापूर्वक उन्होंने कॉलेज के कई मधुर प्रसंग सुनायें।

रक्षाबन्धन के अवसर पर श्रीबंकाजी इनके घर जाते और ये अतिशय प्रेमपूर्वक मंगल कामना करते हुये उनके मस्तक पर तिलक लगाकर राखी बाँधती और रुचि अनुसार स्वादिष्ट भोजन कराती थी। प्रथम मिलन में ही सुधाजी की माँ ने श्रीबंकाजी को अपनी वत्सल-परिधि में समेट लिया था। श्रीबंकाजी भी उन्हें सादर प्रणाम करते और 'माताजी' कहकर सम्बोधित करते।

एक बार रक्षाबन्धन के पर्व पर सुधाजी ने श्रीबंकाजी को अपने घर निमंत्रित किया। रोली-पुष्प-मौली-राखी-मिष्टान्न-फल आदि सब कुछ रखकर बड़ी सावधानी पूर्वक सुधाजी ने पूजा की थाली सजाई। श्रीबंकाजी

नियत समय पर पधारे। उन्हें सादर बैठाया गया। सुधाजी हर्षित मन से राखी बाँधने बैठी।

श्रीबंकाजी ने थाली को गौर से देखा। तुरन्त बोल उठे—सुधा! तुम्हारी थाली में सब कुछ है पर अक्षत तो है ही नहीं! भाई की मंगल कामना के लिये तिलक करते समय अक्षत न लगे तो तिलक पूरा नहीं होता। थोड़े अक्षत नहीं रखोगी क्या?

सुधाजी जहाँ खड़ी थी, शर्म से वहीं जैसे गड़-सी गईं। फिर जल्दी से जाकर अक्षत ले आई किन्तु उनका मन अपनी अल्पज्ञता पर इतना कुण्ठित हो गया था कि इस घटना को जीवन भर नहीं भुला पाईं। श्रीबंकाजी हर छोटी-से-छोटी बात का भी पूरा ख्याल रखते थे।

****

एक दिन श्रीबंकाजी बिना किसी पूर्व-सूचना के सुधाजी के निवास पर आ गये। सुधाजी ने खड़े होकर उनका स्वागत किया। इधर-उधर की सामान्य बातें होने लगी। उस दिन श्रीबंकाजी की कमर में 'चनक' आ गया थी। उन्हें बैठने में तकलीफ हो रही थी। सुधाजी ने एक तकिया कुर्सी की पीठ पर लगाने की चेष्टा करते हुए श्रीबंकाजी से कहा कि इस तरह शायद कुछ आराम मिलेगा!

श्रीबंकाजी ने तकिया हाथ में ले लिया। तकिये के ऊपर लगी खोली तो धुली थी, साफ-सुथरी थी, लेकिन उसके अन्दर का खोल, जिसमें रूई भरी जाती है, चिकनाहट लिये हुए था। श्रीबंकाजी अपने चनक का दर्द भूल गये, बस खोली के भीतर से झाँकता वह चिकनाहट भरा मैला खोल उन्हें याद रह गया। उसे दिखा कर बोले—यह कितना मैला है! क्यों? धोकर स्वच्छ किया जाना चाहिये था न? देखो, शुचिता भीतर से आरम्भ होनी चाहिये। भीतर यदि मैला है, तो केवल बाहर की दिखावटी स्वच्छता से काम चलने वाला नहीं है। यही सूत्र मनुष्य जीवन पर भी लागू होता है। सदैव मन को भीतर से स्वच्छ रखना।

****

किसी भी मांगलिक कार्य, तीज-त्यौहार या उत्सव पर यदि श्रीबंकाजी को भोजन करने का आग्रह किया जाता तो वे अवश्य पूछते—सुधा, तुम्हारे यहाँ पीली पूरियाँ नहीं बनाई जाती हैं क्या? एक बार सुधाजी ने अपनी माँ को यही बात बतलाई। तब माँ ने हँसकर कहा कि श्रीबंकाजी के राजस्थान में हर माँगलिक अवसर पर आटे में हल्दी-घी का मोयन मिलाकर पीली पूरियाँ बनाई जाती हैं और ठाकुर-भोग उन्हीं से आरम्भ होता है। यहाँ उन्हें कुछ अजीब-सा लगता है, इसीलिये पूछते हैं। फिर उनकी माताजी पीली पूरियाँ बनाकर श्रीबंकाजी को प्रेमपूर्वक भोजन कराती।

****

श्रीसुधाजी के घर में वैष्णव संस्कार थे। श्रीकृष्ण जन्माष्टमी पर उनके घर में सुन्दर झूलन सजाया जाता, सभी व्रत रखते और भजन कीर्तन का आयोजन होता जिसमें श्रीबंकाजी भी पधारते। एक बार ऐसे ही अवसर पर श्रीमीराबाई के पदों का गायन हो रहा था। परिवार के सदस्य ही पदों को गा रहे थे। श्रीबंकाजी पदों की सरस व्याख्या करके अर्थ समझाने लगे और साथ ही मीराबाई की कृष्णभक्ति और समर्पण की रसमयी कथा कहने लगे।

सजे हुये मन्दिर में बैठकर उस दिन जो आध्यात्म चर्चा हुई, मीराबाई के श्रीकृष्णभक्ति और समर्पण की जैसी रसमयी कथा श्रीबंकाजी के मुख से सुनी उसका अमृतोपम-अनूठा स्वाद कोई भूल नहीं पाया। मीराबाई के निज जीवन की अनेक अन्तर्कथाएँ उनके द्वारा रचित पदों में गुँथी हुई हैं जिन्हें बिना जाने-समझे मीराबाई के जीवन की कठिनाईयों का अनुमान भी नहीं किया जा सकता। श्रीबंकाजी पदों की व्याख्या के साथ-साथ मीराबाई के जीवन की अंतरंग कथाओं को भी कहते जा रहे थे। उनका गद्-गद् स्वर और छलछलाई आँखें सबके मानस-पटल पर सदा के लिए अंकित हो गयी।

श्रीसुधाजी से मिलने पर उन्होंने स्वयं मुझसे कहा था—श्रीमीराबाई के पदों को तो मैंने बचपन से पढ़ा, सुना, गाया परन्तु उन पदों में छिपे भावों को, दर्द को और श्रीकृष्णप्रेम को श्रीबंका भैया के सम्पर्क में आने के बाद ही समझ सकी। श्रीबंका भैया का आध्यात्मिक साहित्य का अध्ययन बहुत विशद था और उसका चिन्तन नवनीत बेहद विलक्षण था।

****

एक दिन कॉलेज में सभी सहपाठी मिलकर बैठे थे। बातचीत के मध्य श्रीकृष्ण-लीला का प्रसंग आ गया। अब ये तो श्रीबंकाजी का पसन्दीदा विषय था। वे एक से एक मधुर कथाएँ सुनाने लगे। आरम्भ हुआ गोपिकाओं के साथ श्रीराधाजी का बरसाने से गोकुल आना दधि-माखन बेचने के लिये। 'दही लो, माखन लो..., दही लो, माखन लो...' कहते-कहते तन्मयता की वह स्थिति आ गई कि श्रीराधाजी बेसुध-सी पुकार उठीं—'मोहन लो... कन्हाई लो... नन्दलाल लो... बंसीवाले लो... गोपाल लो...'।

श्रीबंकाजी का सुनाने का ढंग इतना भाव-विभोर कर देने वाला था कि सभी छात्र-छात्राएँ रोमांचित हो उठे। कथा आगे बढ़ी। बरसाने की साँकरी गली में श्रीराधाजी का सामना हो गया अचानक भुवनमोहन कन्हैया से। अपनी ही धुन में मगन श्रीराधाजी चली जा रही थी कि सामने आ खड़े हुये पीताम्बर लहराते, हाथ में वंशी लिये नन्द के लाला—'ए गोपी, हमें दही नहीं खिलाओगी क्या?' कन्हैया के पीछे खड़ी थी पूरी बाल-मण्डली खिल-खिला कर हँसती हुई! गली इतनी साँकरी थी कि उस अचानक हुई मुठभेड़ से श्रीराधाजी हतप्रभ हो उठीं। न पीछे लौटा जा सकता था, न आगे बढ़ा जा सकता था......।

इस प्रसंग पर श्रीबंकाजी श्रीराधाजी की भाव-दशा का ऐसा वर्णन कर रहे थे मानो वे वहीं खड़े होकर यह लीला देख रहे हों। सभी सहपाठियों ने श्रीबंकाजी की हृदय से प्रशंसा की और कई दिनों तक यह रसमयी चर्चा चलती रही। मित्रों के आग्रह पर श्रीबंकाजी अक्सर श्रीराधा-कृष्ण की विभिन्न लीलाओं का मधुर वर्णन किया करते थे और अपनी डायरी से स्वरचित कविता भी सुनाते थे।

क्या किसी ने श्याम देखे

यदि पथिक आता कभी तो, घेर लेती गोपियाँ थी।
सजल नयना पूछती थी, क्या कभी घनश्याम देखे?
क्या किसी ने श्याम देखे?

शून्य रहता पथ सदा ही, नहीं कोई उधर आता।
गोपियों के प्रश्न आतुर, क्या कभी घनश्याम देखे?
क्या किसी ने श्याम देखे?

तृषित नेत्रा राधिका को, अग्निवत लगता सकल जग।
चातकी सी नभ निरखती, क्या कभी घनश्याम देखे?
क्या किसी ने श्याम देखे?

भाव भग्ना व्यथित अन्तर, छिन्न लतिका सी किसोरी।
पूछती खग! नभ विहारी, क्या कभी घनश्याम देखे?
क्या किसी ने श्याम देखे?

नील यमुने! पिय सन्देशा, क्या सुनाती मृदु स्वरों में?
वन नगर सखी! देखती तू , क्या कभी घनश्याम देखे?
क्या किसी ने श्याम देखे?

धार नयनों से बही जो, कह रही मानस व्यथा को।
चेतना अवशिष्ट इतनी, क्या कभी घनश्याम देखे?
क्या किसी ने श्याम देखे?

शीर्ण वस्त्रा जीर्ण काया, शुष्क कलिका सम पड़ी थी।
कौन उसको आ बताये, क्या कभी घनश्याम देखे?
क्या किसी ने श्याम देखे?

पवन उतरा स्वर्ग से था, पुष्प गिरि वन द्रुम लताएँ।
सभी पूछे एक स्वर से, क्या कभी घनश्याम देखे?
क्या किसी ने श्याम देखे?

थकित यमुना व्यथित जलकण, कूल कानन पूछते थे।
चाँद पूनम का कहाँ है, क्या कभी घनश्याम देखे?
क्या किसी ने श्याम देखे?

क्लान्त मुख मण्डल सभी का, शोक सागर ब्रज बना था।
एक अभिलाषा यही थी, क्या कभी घनश्याम देखे ?
क्या किसी ने श्याम देखे ?

अरुण भावापन्न कण-कण, धेनु खग कुल सकल गोकुल।
आज वंशीरव नहीं है, क्या कभी घनश्याम देखे ?
क्या किसी ने श्याम देखे ?

****

एक बार श्रीबंकाजी को सुधाजी ने अपने घर निमन्त्रित किया प्रसाद पाने के लिये। जमीन पर दरी बिछा कर पंगत लग रही थी। घर के लोग परोस रहे थे। श्रीबंकाजी प्रसाद पाने के लिये बैठ गये।

उन्होंने धीरे से सुधाजी से कहा—सुधा, थोड़ा नमक अलग से दे देना।

सुधाजी नमक ले आईं और अलग से परोस दिया। ये एक साधारण सी बात है परन्तु सुधाजी को आश्चर्य हुआ क्योंकि वे श्रीबंकाजी की जीवन शैली से परिचित थीं और उन्हें मालूम था कि वे बहुत सादगीपूर्ण भोजन करते हैं जिसमें नमक-मिर्च का कम-से-कम प्रयोग होता है। उन्हें स्मरण हुआ कि नमक अलग से लेने का यह पहला अवसर नहीं है। पहले भी उनके घर भोजन करते वक्त श्रीबंकाजी ने अतिरिक्त नमक लिया था।

भोजन के बाद सुधाजी ने श्रीबंकाजी ने पूछा—भईया! हमारे घर साग-भाजी में आपको नमक कम लगता है क्या? आप तो अधिक नमक खाते नहीं हैं, इसलिये जिज्ञासा हो रही है कि आपने अलग से नमक क्यों लिया?

श्रीबंकाजी इस बात का उत्तर देना नहीं चाहते थे पर बार-बार पूछने पर उन्होंने बताया—सुधा, मेरा स्वभाव रोटी कम और भाजी अधिक खाने का है। जहाँ भी बड़ी पंगत होती है, बहुत लोगों का भोजन होता है, वहाँ मैं दूसरी बार साग-भाजी नहीं माँगता कि कहीं और लोगों के लिये कम न पड़ जाये। बड़े समारोह में मैं दोबारा भाजी न लेकर नमक से रोटी खा लेता हूँ इसलिये अतिरिक्त नमक माँगा था।

सुधाजी तो अपने बंका भईया के इस संकोची स्वाभाव पर मुग्ध थी, बलिहार थी और उन्हें मन में दुख भी हुआ कि अगर पहले पता होता तो वे स्वयं दो-तीन बार साग-भाजी परोस देतीं। आगे से उन्होंने हमेशा ध्यान रखा। वे जब भी उन्हें राखी या जन्माष्टमी पर बुलातीं तो बड़े कटोरे में साग-भाजी परोसती थीं।

****

श्रीरमेश गोयल

श्रीबंकाजी के एक और परम मित्र थे श्रीरमेश गोयल। इनका जीवन भारतीय संस्कृति से ओत-प्रोत, शील-सदाचार से युक्त था। विनम्र व्यवहार और मधुर वाणी सभी को प्रभावित करने वाली थी। विद्यालय की उपाधि-क्षेत्र में तो दोनों साथ थे ही परन्तु श्रीबंकाजी उनके सरल व्यक्तित्व व सात्विक जीवन से आकर्षित होने के कारण, उन्हें भी अपने साथ परमार्थ पथ का पथिक बनाना चाहते थे।

एक दिन श्रीबंकाजी ने श्रीरमेशजी से कहा—संयम, सदाचार, स्वाध्याय तथा प्रभु भक्ति के बिना यह अमूल्य मानव जीवन सार्थक नहीं हो सकता। जीवन के चरम लक्ष्य की प्राप्ति में गृहस्थ के चक्र से मुक्त रहना बहुत सहायक है। क्या इस सद्परामर्श को स्वीकार करने का साहस रखते हो?

जहाँ एक ओर श्रीरमेशजी श्रीबंकाजी के परम मित्र थे, उन्हें अपने आदर्श के रूप में देखा करते थे तो भी विरक्त जीवन स्वीकार करने का साहस न जुटा पाये। उन्होंने विनीत भाव से कहा—तुम मुझे भक्ति पथ का सहयात्री बनाना चाहते हो। मैं इसे अपना दुर्भाग्य कहूँ या प्रारब्ध का विधान, मैं तुम्हारे सुझाये हुये मार्ग पर नहीं चल सकता। मैं एक अति साधारण व्यक्ति हूँ। विरक्ति का जीवन कोई शूरवीर ही जी सकता है। पर तुम जहाँ भी रहो मुझे भुलाना नहीं। समय-समय पर सम्भालते रहना।

श्रीबंकाजी से श्रीरामेशजी का सख्य आजीवन बना रहा। श्रीरमेशजी श्रीराधाबाबा के जन्मोत्सव पर अकसर गोरखपुर आया करते थे और श्रीबंकाजी उनको सदैव अपनी लिखी पुस्तक भेजते रहे जिसे वे बेहद भावपूर्ण मन से

पढ़ा करते थे और एक सन्त-चरणाश्रित को मित्र के रूप में पाकर अपने सौभाग्य की प्रशंसा किया करते थे।

****

एम॰ए॰ परीक्षा फल और एल॰टी॰

दो साल 1954-55 मेरठ कॉलेज में जी-तोड़ परिश्रम के बाद श्रीबंकाजी ने एम.ए. की फाईनल परीक्षा दी। परीक्षा के बाद 1955 के ग्रीष्म ऋतु में कॉलेज बन्द होने वाला था तभी उन्हें समाचार मिला कि उनके पूज्य दादाजी श्रीजयनारायणजी का देहावसान हो गया है। इस दुःखद समाचार के प्राप्त होते ही श्रीबंकाजी अविलम्ब पडरौना आ गये।

कुछ समय बाद एम.ए. की फाईनल परीक्षा का परिणाम-पत्र निकला। श्रीबंकाजी की प्रतिभा को देखते हुए मेरठ कॉलेज में सभी को यही आशा थी कि श्रीबंकाजी की तो एम.ए. में फर्स्ट डिवीजन आयेगी ही। किसी-किसी का तो यह भी कहना था कि ये तो डिस्टिंक्शन के साथ प्रथम श्रेणी में एम.ए. पास करेंगे। सभी प्रवक्ताओं के मन्तव्य भी कुछ इसी प्रकार के थे परन्तु जब परीक्षा फल आया तो सबको बहुत आश्चर्य हुआ। श्रीबंकाजी ने एम.ए. की परीक्षा द्वितीय श्रेणी से उत्तीर्ण की थी। मात्र कुछ अंकों से उनकी फर्स्ट डिवीजन रह गई थी। अत्यधिक परिश्रम करने के बाद भी द्वितीय श्रेणी देखकर श्रीबंकाजी को बेहद निराशा हुई। उनका मन एकदम उदास हो गया।

कुछ दिनों बाद श्रीबंकाजी को प्रोफेसर श्रीरामप्रकाशजी अग्रवाल का एक पत्र प्राप्त हुआ जिसमें उन्होंने लिखा था—सच मानो तुम्हारे सेकेन्ड डिवीजन के रिजल्ट को देखकर तुमसे अधिक दुःख मुझे हो रहा है। मैंने सदा से तुम्हें अत्यन्त मेधावी छात्र माना है और तुम अपनी विलक्षण प्रज्ञा से सदा अद्वितीय प्रमाणित हुए हो। तुम्हारे रिजल्ट को देखकर यह विश्वास सुदृढ हो गया है कि परीक्षा-फल मानव की प्रतिभा का सही आँकलन नहीं होता है। समझ नहीं आ रहा है कि ऐसे अवसर पर मैं तुम्हें सहानुभूति दूँ या तुमसे सहानुभूति लूँ!

अपने परम प्रिय अध्यापक के ऐसे प्रेम भरे पत्र को पढ़कर श्रीबंकाजी के नेत्र सजल हो गये। एक नहीं अनेकों बार इस पत्र को उन्होंने पढ़ा और हर बार यही लगा कि इन शब्दों की मधुरता उनके हृदय के घावों पर शीतल मरहम का काम कर रही है।

इन्हीं दिनों स्वामी श्रीकृष्णानन्दजी सरस्वती का पडरौना में आगमन हुआ। श्रीबंकाजी को उनसे मिलकर बड़ी प्रसन्नता हुई। कुशल प्रश्न के उपरान्त श्रीकृष्णानन्दजी ने श्रीबंकाजी का परीक्षा फल देखा और उन्हें अत्यन्त निराश-हताश देखकर, एक सुझाव देते हुये कहा—एम.ए. की डिग्री तो तुमको मिल ही गयी है, अध्यापक की नौकरी भी मिल जायेगी। परन्तु अध्यापक की नौकरी में वेतन कम मिलेगा। अगर तुम प्रोफेसर बन जाते हो तो वेतन भी अधिक मिलेगा और सम्मान भी। प्रोफेसर बनने के लिये एल.टी. की डिग्री होनी आवश्यक है। मेरे विचार से तुम एक साल और मेहनत करके एल.टी. की डिग्री हासिल कर लो। मैं कर्ज लेकर तुम्हें 2000 रुपये फीस के लिये भेज दूँगा। इस प्रकार से तुम्हारे ऊपर 4000 रुपयों का कर्ज पढ़ाई का हो जायेगा और 4000 मेरे पुत्रियों के विवाह का। एक वर्ष बाद तुम्हारी प्रोफेसर की नौकरी लग जायेगी, तब सारा कर्ज धीरे-धीरे चुका देना। इस बार अधिक मेहनत करके प्रथम डिवीजन से पास होना तो तुम्हारी सेकेन्ड डिवीजन से पास होने की निराशा भी जाती रहेगी। सोच कर निर्णय करो।

जिसे आजकल बी.एड. की डिग्री कहते हैं उस जमाने में उसे एल.टी. (शिक्षा-स्नातक, Licentiate Teacher) कहा जाता था। एल.टी. की डिग्री के बिना प्राथमिक स्कूल का अध्यापक तो बना जा सकता था परन्तु कॉलेज का प्रोफेसर नहीं बन सकते थे।

श्रीबंकाजी के निराश मन में श्रीकृष्णानन्दजी की वार्तालाप से आनन्द की लहर दौड़ गयी और उन्होंने कृतज्ञता दर्शाते हुए तुरन्त अपनी स्वीकृति दे दी। उनके दादाजी का श्राद्ध कार्य पूर्ण होने पर वे मेरठ लौट आये और एल.टी. के लिये अपना नाम मेरठ कॉलेज में दर्ज करवाया, फीस के रुपये जमा करवा दिये और स्वयं जी जान से मेहनत करने लगे।

साल भर की एल.टी. की अवधि पूर्ण हुइ। अनेकानेक अविस्मरणीय प्रसंगों से भरे मेरठ कॉलेज के काल ने श्रीबंकाजी की प्रतिभा को और भी निखार दिया था और उनकी साधना में भी अच्छी उन्नति हुई थी। पूज्य श्रीराधाबाबा की कृपा से उनकी गोपी भाव की साधना बहुत अच्छी चल रही थी। उनकी डायरी की एक कविता उनके गोपी भाव की ललक को स्पष्ट दर्शाती है।

पा न सकी दर्शन अब तक मैं

पा न सकी दर्शन अब तक मैं!
सखी! उघारे नयन निरन्तर, रहूँ देखती पथ कब तक मैं ?
व्यथा हो रही दारुण भीतर, कैसे पहुँचाऊँ उन तक मैं
सजनी! कुछ उपचार करो तुम, रखती चरणों पर मस्तक मैं ॥

अथक परिश्रम युक्त अध्ययन और साधना से भरे एक वर्ष के बाद उन्होंने 55-56 में मेरठ कॉलेज से एल.टी. की परीक्षा दी। 21-6-56 को एल.टी. का परीक्षा फल निकला। श्रीबंकाजी ने पूर्ण सफलता से एल.टी. की परीक्षा उत्तीर्ण की थी। उन्हें Practical में प्रथम श्रेणी, Community Project में प्रथम श्रेणी और Theory में द्वितीय श्रेणी प्राप्त हुई। कक्षा के 97 छात्रों में से ऐसा उत्तम परीक्षा फल केवल श्रीबंकाजी का तथा एक और छात्र का था। पूरे मेरठ कॉलेज में उनका खूब यश फैला और सभी अध्यापकों ने उनकी खूब प्रशंसा की।

****

अग्रवाल इन्टर कॉलेज सिकन्द्राबाद

एल.टी. की परीक्षा उत्तम अंको से उत्तीर्ण करते ही, मन में अत्यधिक उत्साह लिये हुये श्रीबंकाजी ने अनेक कॉलेजों में प्रोफेसर के पद पर नियुक्ति के लिये आवेदन पत्र भेजे। लगभग सभी जगह से यही उत्तर प्राप्त हुआ कि अभी कोई स्थान रिक्त नहीं है, आवश्यकता होने पर सूचित किया जायेगा। केवल अग्रवाल इन्टर कॉलेज, सिकन्दराबाद से अध्यापक के पद पर तत्क्षण

नियुक्ति का पत्र आ गया। हालाकि यहाँ वे अध्यापक के रूप में नियुक्त हुये थे, प्रोफेसर के पद पर नहीं, तो भी श्रीबंकाजी ने इसे स्वीकार कर लिया क्योंकि वे खाली बैठना नहीं चाहते थे और घर उन्हें जाना नहीं था।

5-7-56 को अग्रवाल इन्टर कॉलेज सिकन्दराबाद, बुलन्दशहर में श्रीबंकाजी की अध्यापक के रूप में नियुक्ति हो गई। वे ग्यारहवीं-बारहवीं कक्षा के विद्यार्थियों को हिन्दी पढ़ाने लगे। बुलन्दशहर में श्रीबंकाजी केवल दो महीने ही रहे। इन दो महीनों में उनका छात्रों से इतना घनिष्ट सम्बन्ध स्थापित हो गया था कि श्रीबंकाजी के त्याग-पत्र देने की बात सुनते ही सारे छात्र बहुत दुःखी हुए। उन्हें पहली बार हिन्दी का ऐसा अध्यापक मिला था जो अपने विषय का योग्य ज्ञाता था और हँसमुख-मिलनसार स्वाभाव का था। श्रीबंकाजी अपने विद्यार्थी जीवन की परेशानियों से भली प्रकार परिचित थे इसलिये उनके स्वभाव में छात्रों के लिये सहज अनुराग और सहानुभूति होती थी। कक्षा में वे कभी-कभी मनोरंजन के लिये अपनी स्वरचित कविता भी सुना दिया करते थे जिन्हें छात्र बहुत ही प्रेम से सुनते थे।

दो महीने बुलन्दशहर में पढ़ाने के बाद श्रीबंकाजी के पास 14-9-56 को टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज, गाँधी विद्या मन्दिर, सरदारशहर, राजस्थान से प्रोफेसर के पद पर नियुक्ति का पत्र आया और अविलम्ब कार्यग्रहण करने को कहा गया। इस नियुक्ति पत्र को देखकर श्रीबंकाजी को अति प्रसन्नता हुई। वे तो सदा से प्रोफेसर ही बनना चाहते थे। टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज, गाँधी विद्यामन्दिर, एक अच्छी संस्था थी जिसका नाम भी बहुत था और वेतन भी अधिक था। अतः श्रीबंकाजी ने अग्रवाल इन्टर कॉलेज से तत्काल त्यागपत्र दे दिया।

20-9-56 को छात्रों के द्वारा आश्चर्य में डालने वाला विदाई का कार्यक्रम, Farewell आयोजित हुआ। प्रधानाचार्य के विरोध करने पर भी छात्रों के द्वारा विदाई दी गयी। प्रधानाचार्य का कहना था कि जो अध्यापक एक साल से पहले ही त्यागपत्र देता है उसका Farewell स्कूल की तरफ

से नहीं होगा। इस आदेश की कुछ भी परवाह न करते हुये छात्रों ने अपनी ओर से अपने प्रिय अध्यापक के Farewell का आयोजन किया। उस दिन श्रीबंकाजी को ज्ञात हुआ कि छात्र केवल स्नेह के भूखे होते हैं। छात्रों का प्रेम और अपनापन देखकर श्रीबंकाजी के नेत्र छलछलाने लगे।

मैंने बाद में एक दिन श्रीबंकाजी से पूछा—दादाजी! सिर्फ दो महीनों में छात्र आपको इतना प्यार करने लगे कि अपने प्रधानाचार्य की इच्छा के विरुद्ध आपके लिये Farewell आयोजित किया, इसका क्या कारण था?

श्रीबंकाजी सदा आत्मप्रशंसा से कोसों दूर, आत्मसंगोपन स्वाभाव के रहे हैं। बार-बार आग्रह करने पर बहुत झिझकते हुये उन्होंने बताया—लाली! उस ज़माने में अक्सर अध्यापक छात्रों से मित्रवत् व्यवहार नहीं किया करते थे। विद्यार्थियों पर अत्यधिक अनुशासन करना चाहते थे। उनकी कॉपी और फाईल्स को चेक करते वक्त लाल कलम से संशोधन करके कभी-कभी पूरी कॉपी ही लाल कर दिया करते थे जिससे विद्यार्थी का सारा श्रम व्यर्थ हो जाता था और उसे दोबारा कार्य करना पड़ता था। और भी ऐसी कई बातें थी।

मैंने हँसते हुये पूछा—और आप क्या करते थे?

श्रीबंकाजी ने कुछ सकुचाते हुए कहा—लाली! मैं उनकी कॉपी चेक करते वक्त अलग से एक कागज़ पर संशोधित वाक्य लिखता जिससे सारी कॉपी लाल नहीं होती थी। मुझे अनेकों शेरों-शायरी याद थी, छात्रों के अनुरोध पर मैं कभी-कभी कक्षा में कुछ पंक्तियाँ सुना देता। स्वलिखित कविता भी सुनाता जिससे विद्यार्थीगण बहुत प्रसन्न होते। उनसे मित्रवत् व्यवहार करता। छात्रों को प्रेम और सम्मान देता, उनकी बात सुनता। बस, इन्हीं सब कारणों से वे मुझे पसन्द करते थे।

****

सरदारशहर

श्रीबंकाजी सरदारशहर चले आये। टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज, गाँधी विद्या मन्दिर में प्रोफेसर के पद पर उनकी नियुक्ति हो गई। शहर से दो मील की

दूरी पर रेत के टीलों के बीच यह महाविद्यालय स्थित था। यह संस्था बापू की बुनियादी शिक्षा पद्धति के सिद्धान्तों पर अटल विश्वास रखकर अग्रसर हो रही थी। महात्मा गाँधी के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य था—छात्रों के शरीर, मन और आत्मा का उत्तमोत्तम विकास करना। इन्हीं विचारों के अनुरूप गाँधी विद्या मन्दिर में शरीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक दृष्टि से विकसित चरित्रवान नागरिक तैयार करने का लक्ष्य रखा गया था।

इसकी स्थापना सन् 1953 में राजस्थान के एक दानी और शिक्षाप्रेमी व्यक्ति श्रीकन्हैयालाल दूगगड़जी ने की थी। आजकल जिसे बी.एड. कहा जाता है उस जमाने में उसे शिक्षा-स्नातक (एल.टी., Licentiate Teacher) की उपाधि कहते थे। इसमें विद्यार्थियों को विद्यालय में अध्यापक के रूप में शिक्षण कार्य करने हेतु तैयार किया जाता था।

गाँधी विद्या मन्दिर का वातावरण अन्य स्थानों से एकदम भिन्न था। छात्रों के रहने के लिए चार छात्रावास बने हुये थे जिनके नाम थे रेड होस्टल, वाईट होस्टल आदि। जो भी अध्यापक यहाँ आते उनको इन्हीं में से किसी होस्टल में आवास दिया जाता था और छात्रावास की सारी समयसूची उसपर भी लागू होती थी।

श्रमदान—अपना काम स्वत: करना, कमरे की स्वच्छता, कपड़े धोना, बर्तन माँजना, दोनों समय ईश्वर प्रार्थना, गुरु सम्मान, सूत कातना और खादी पहनना, सदाचार व शिष्टाचारपूर्ण रहनी यहाँ के जीवन के मुख्य अंग थे। इसके अतिरिक्त गाँधीजी की प्रार्थना पद्धति के आधार पर सब धर्मों की मिश्रित प्रार्थनाओं को लेकर ईश्वर प्रार्थना व सत्संग का नियमित कार्यक्रम चलता था।

श्रीबंकाजी को वाईट होस्टल में कमरा मिला। होस्टल में मेस का भोजन करना पड़ता था और उनके प्रार्थना आदि सभी कार्यक्रमों में यथासमय जाना पड़ता था। कॉलेज की प्याऊ पर हरिजन पानी पिलाता था इस कारण कई ब्राह्मण विद्यार्थियों को यह बात अनुचित लगती थी परन्तु कड़ाई इतनी अधिक थी कि कोई भी प्रतिकूल स्वर नहीं उठा पाता था। कुछ दिन तो श्रीबंकाजी

वाईट होस्टल में रहे परन्तु यहाँ का राजोगुणी वातावरण इन्हें रुचा नहीं। उनकी श्रीराधाकृष्ण की रसमयी साधना यहाँ के धर्म निरपेक्ष वातावरण में नहीं हो पा रही थी।

जल्द ही श्रीबंकाजी ने गाँधी विद्या मन्दिर से दूर, शहर में एक हवेली की दूसरी मंज़िल पर एक कमरा किराये पर ले लिया जिसकी लम्बाई करीब 30 फुट और चैड़ाई 15 फुट होगी। आगामी सात वर्षों तक श्रीबंकाजी यहीं रहे। उनकी रहनी 'सादा जीवन उच्च विचार' के सिद्धान्त का साकार रूप थी। प्रवेश द्वार के पास एक छोटा बरामदा था जिसमें एक तुलसी का गमला था और पानी के पाँच बड़े घड़े वे भली प्रकार भरकर रखते थे। कमरे में पहले भाग में चटाई बिछाते थे। कोई भी अतिथि आये, वह इसी चटाई पर बैठा करता था। पास में पूजा की अलमारी के सामने चौकी रखी थी। चौकी के पास कुशा व कम्बल का आसन था। यहाँ वे अपनी नित्य की पूजा-जप और स्वाध्याय किया करते थे।

कमरे के दूसरे भाग में पाक-सामग्री व स्वच्छ बर्तन की व्यवस्था थी। श्रीबंकाजी स्वयं भोजन बनाते थे। चूल्हा, अँगीठी व स्टोव तीनों की व्यवस्था रखते थे। कमरे के तीसरे भाग में अलमारी में बहुत सारी पुस्तकें लगी थीं तथा एक कोने में कल्याण के विशेषांक एवं मासिक अंक क्रमशः रखे थे। एक चारपाई पर साधारण बिस्तर व्यवस्थित रखे थे। एक ओर खुली अलमारी में कुछ आयुर्वैदिक दवाएँ थी। काठ की बनी अलमारी में खादी के कुर्ता-धोती, स्वयं साफ किए हुए, तह बनाकर रखते थे। फर्नीचर के नाम पर न कोई मेज थी और न कोई कुर्सी। लेखन-कार्य जमीन पर ही बैठकर कम ऊँचाई की डैस्क पर करते थे।

होस्टल से दूर यहाँ का शान्त वातावरण श्रीबंकाजी के मनोनुकूल था। यहाँ वे स्वतन्त्रता पूर्वक अपने साधन-भजन में लग सकते थे। न यहाँ कोई विद्यार्थी आता और न ही ये किसी से अधिक मेलजोल रखते। कॉलेज में अध्यापन कार्य के बाद पूरा समय नाम जप और मानसिक मधुर भाव की साधना में लगाते। यहाँ इनका भाव पुष्ट हुआ और भजन में भी अच्छी प्रगति

हुई। सात वर्षों तक ये विरक्ति के साथ प्रबल साधना में कटिबद्ध रहे। इन सात वर्षों में इन्होंने अनेकों शेरो-शायरी-गज़ल-कविता-प्रार्थना आदि लिखे।

****

श्रीबंकाजी के प्रिय छात्र श्रीशिवराज

मथुरा निवासी श्रीशिवराज, श्रीबंकाजी के अति प्रिय छात्र थे। मुझे इनसे मिलने का सौभागय प्राप्त हुआ और सरदारशहर के अधिकतर प्रसंग इन्होंने ही प्रसन्न मन से मुझे सुनाये और कुछ लिखकर भी दिये।

ब्रजवासी होने के कारण श्रीशिवराज में स्वाभाव से ही वैष्णव संस्कार थे। इन्होंने टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज, गाँधी विद्यामन्दिर में प्रवेश पाने के लिये आवेदन पत्र दिया और उन्हें साक्षात्कार के लिये बुलवाया गया। श्रीप्रधानाचार्यजी श्रीवौराय साहब और श्रीराधेश्यामजी बंका साक्षात्कारकर्ता के रूप में विराजमान थे। शैक्षिक योग्यता पूछकर साक्षात्कार की औपचारिकता पूर्ण होने पर साक्षात्कारकर्ता श्रीमान वौराय साहब ने शिवराज से कहा—गले में बँधी तुलसी कण्ठी-वण्ठी को यहाँ पहनने की आवश्यकता नहीं है। ये तुम्हारा मथुरा नहीं है।

साक्षात्कारकर्ता के मुख से करारे-तीखे शब्द सुनकर श्रीशिवराज हतप्रभ हो गये। उनके पूज्य दीक्षा-गुरु की बाँधी हुई तुलसी की कण्ठी को गले से उतारने की बात को सुनकर किंकर्त्तव्यमूढ़ की स्थिति में वे छटपटा कर इधर-उधर देखने लगे। तभी प्रधानाचार्यजी के दाहिनी ओर विराजमान धवल वस्त्रधारी, भव्य महापुरुष श्रीबंकाजी के मन्द स्मित चेहरे की झाँकी हुई।

सहानुभूतिमयी अन्तः प्रेरणा पाकर श्रीशिवराज ने साहस बटोरकर निवेदन किया—श्रीमान, यह कण्ठी तो अबतक मेरे अध्ययन में अवरोध नहीं अपितु अबलम्ब ही सिद्ध हुई है। अतः बी॰एड॰ में प्रवेश देना तो आपकी कृपा पर निर्भर है परन्तु क्षमा करें, मैं पूज्य दीक्षा-गुरु की बाँधी हुई यह तुलसीजी की कण्ठी नहीं छोड़ पाऊँगा।

इस विनम्र निवेदन को सुनकर उदारमना प्रधानाचार्यजी ने कहा—प्रवेश

तो तुम्हें दे रहे हैं, कण्ठी छोड़ना या न छोड़ना तुम्हारी इच्छा पर निर्भर है। हम तुम्हारी भावना को ठेस पहुँचाना नहीं चाहते हैं।

श्रीशिवराज को प्रवेश मिलने से बहुत प्रसन्नता हुई और उन्होंने बाद में श्रीबंकाजी को बताया था कि तुलसी कंठी उतारने की बात सुनते ही उनके वैष्णव हृदय को ऐसा आघात लगा कि वे एकदम सकपका गये थे। उस कठिन पल में एकमात्र श्रीबंकाजी के श्रीमुख को देखकर, उनकी मन्द मुस्कान के मूक प्रोत्साहन से ही उनको अपने विचार व्यक्त करने का साहस मिला था। श्रीबंकाजी की उस कृपा वर्षिणी दृष्टि और मुसकान को वे आजीवन भुला नहीं पाये।

इस तरह परम पूज्य आचार्य श्रीराधेश्यामजी बंका की सहृदयता वृष्टि की बौछार पर श्रीशिवराज प्रथम दर्शन पर ही न्यौछावर हो गये।

****

कल्याण की प्राप्ति

गाँधी विद्यामन्दिर में श्रीशिवराज को प्रवेश मिल गया था। वे अगले दिन प्रात: कॉलेज गये। कॉलेज का वाचनालय (Reading room) बहुत विशाल था। यहाँ भाँति-भाँति की पत्रिकाएँ एवं विभिन्न भाषाओं के समाचार पत्र थे। उनकी गीताप्रेस से प्रकाशित कल्याण पत्रिका पढ़ने में विशेष रुचि थी परन्तु कल्याण मासिक पत्रिका का वहाँ नामो निशान भी नहीं था। वे अपने अल्हड़पन में बरामदे में ऐसे बड़-बड़ाते हुए घूम रहे थे—यह कैसा कॉलेज और कैसा इसका वाचनालय जिसमें कल्याण भी पढ़ने को नहीं मिल रही है!

वाचनालय के साथ वाला बड़ा कक्ष ही शिक्षक-कक्ष था। आचार्य श्रीबंकाजी ने उन्हें देख लिया और अपने पास बुलाकर स्नेहयुक्त वाणी में कहा—शिवराज, खिन्न होने की आवश्यक्ता नहीं है। तुम्हें कल्याण पढ़ना है तो मेरे निवास पर आना।

यह कहकर उन्होंने शहर में स्थित अपने निवास का पता लिख दिया। उनका निवास कॉलेज से दो मील की दूरी पर शहर के बीच स्थित था।

तब से नियमित रूप से श्रीशिवराज संध्या समय उनके निवास पर जाते रहे और कल्याण के साथ-साथ अन्य ग्रन्थ और सत्साहित्य भी उनसे प्राप्त कर पढ़ते रहे।

उन दिनों श्रीबंकाजी का जीवन, वृन्दावन के बाल सन्त श्रीओम प्रकाशजी से बहुत प्रभावित था। उन्होंने शिवराज को, 'क्रान्तिकारी भक्त ओम प्रकाश' नामक पुस्तक दी, जिसमें इण्टरमिडिएट के छात्र, सोलह वर्षीय बालक ओम प्रकाश का वृन्दावन में तपस्या करके सदेह गोलोक जाने का विवरण था। उन्होंन श्रीशिवराज को अपनी दिनचर्या को श्रीओम प्रकाशजी की तरह सात्विक और शुद्ध बनाने की प्रेरणा भी दी।

कुछ दिनों के बाद उन्होंने श्रीशिवराज को उच्च कोटि के सन्त श्रीराधाबाबा द्वारा लिखित सत्संग-सुधा नामक पुस्तक पढ़ने के लिये दी जो बाद में प्रेम-सत्संग-सुधा-माला के नाम से गीताप्रेस, गोरखपुर से प्रकाशित हुई। ये दोनों पुस्तक श्रीशिवराज के लिये बहुत उपयोगी सिद्ध हुई।

****

अनोखी पाठन कला

गाँधी विद्या मन्दिर एक टीचर्स टेनिंग कॉलेज था इसलिए सब छात्राध्यापक उम्र में पर्याप्त बड़े थे। कोई एम॰ए॰ पास था तो कोई पी॰एच॰डी कर रहा था। अध्यापकों और छात्रों की उम्र में अधिक अन्तर नहीं था। श्रीबंकाजी बी॰एड॰ की कक्षा में 'शिक्षा मनोविज्ञान' और 'शिक्षण प्रणाली' पढ़ाया करते थे। इनके वार्तालाप का स्तर दूसरे प्राचार्यों से भिन्न होता। इनकी कक्षा में सभी छात्राध्यापक संयमित रहकर दत्तचित, शान्तिपूर्वक पढ़ते थे जबकी दूसरे प्राचार्यों की कक्षा में विनोद व तर्क-वितर्क भी चलता था। श्रीबंकाजी की सहज गम्भीरता छात्रों को हलकी-फुलकी बातें करने से रोकती। उनके द्वारा प्रकट किया गया आदर भाव स्वयमेव सामने वाले से आदर वसूल लेता था।

एक दिन कक्षा समाप्त होने पर कक्षा से बाहर निकलकर श्रीबंकाजी ने अपने प्रिय छात्र शिवराज से पूछा—तुम लोगों को मेरा पढ़ाया हुआ समझ आ जाता है न?

शिवराज ने कहा—आपका पढ़ाना ही सब छात्रों को सबसे अधिक अच्छा लगता है।

श्रीबंकाजी ने कहा—भैया! मैं सब छात्रों में भगवद् भाव रखकर पूरे मनोयोग से पढ़ाने की चेष्टा करता हूँ।

शिवराजने निवेदन किया—मैं भी आप में 'कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम्' की भावना रखता हूँ।

यह सुन कर श्रीबंकाजी मन्द-मन्द मुस्कराने लगे।

****

अपरिग्रह की प्रबल भावना

एक दिन शिवराज के साथ व्हाइट होस्टल में रहने वाले चार साथी उनसे बोले— शिवराज! तुम्हारा तो श्रीबंकाजी से निकट का सम्पर्क है, तुम अक्सर उनके घर आया-जाया करते हो। उनके निवास पर हमें भी ले चलो।

शिवराज ने कहा—चले चलो, परन्तु श्रीबंकाजी बाजार की मिठाई नहीं खाते हैं, इसलिए मिठाई लेकर नहीं जाना है।

वे चारों साथी अपने साथ सूखा मेवा-किसमिस तथा सेव आदि फल ले गये। निवास पर पहुँचकर सबने प्रणाम किया तथा फल-मेवा श्रीबंकाजी की सेवा में अर्पित किया। श्रीबंकाजी ने बड़े स्नेह से कहा—अरे भैया! यहाँ यह सब कुछ लाने की आवश्यकता नहीं है। अपने अध्ययन का ध्यान रखें, उसी में मेरी खुशी है।

ऐसा कहते हुए किसमिस के दो दाने अपने मुख में लेकर शेष फल-मेवा वहाँ बैठे हुए सबको खाने को दे दिया जबकि ट्रेनिंग कॉलिजों में तो प्रचलित प्रथा ऐसी थी कि छात्राध्यापकों से प्राचार्य महानुभाव कह-कहकर वांछित वस्तुएँ भेंट स्वरूप मँगवाया करते थे। श्रीबंकाजी की पकंज जैसी निर्मलता-निरीहता को देखकर सभी छात्राध्यापक श्रद्धावनत थे।

****

गोपनीय उपासना

श्रीबंकाजी नाम-जप, कल्याण और धार्मिक ग्रन्थों का अध्ययन, श्रीरामचरितमानस का पाठ आदि तो हमेशा से ही करते थे पर सरदारशहर में उन्होंने एक और कार्य प्रारम्भ किया। वे अपने वेतन की शुद्ध कमाई से कुछ पैसे बचाकर बाज़ार से कपास ले आते। प्रतिदिन संध्या समय अपने कक्ष का द्वार बन्द करके, चरखे पर कपास को कातते और श्रीरासपंचाध्यायी का अर्थानुसंधान पूर्वक, सस्वर पाठ करते थे। पाठ के वक्त, भावों के प्रवाह में उनके नयनों से अविरल अश्रुधारा बहती रहती थी। कभी कण्ठ अवरुद्ध हो जाता, कभी चरखे पर हाथ रुक जाता तो कभी हृदय कातर प्रार्थना करने लगता।

इस पाठ में उन्हें कम-से-कम 45 मिनट लगते थे परन्तु किसी-किसी दिन तो भावों के प्रगाढ़ होने पर उससे कहीं अधिक समय लग जाता था। जगत की दृष्टि से अपनी साधना-आराधना को बचाते हुए एकान्त कक्ष में उनकी ये साधना केवल श्रीप्रिया-प्रियतम की प्रीति प्राप्ति के लिये होती थी। समाज और संसार की नजरों से ओझल होकर ये गोपी भाव की उपासना उनका प्ररम गोपनीय धन था।

उनकी डायरी में लिखी कविता उनकी स्थिति का यर्थाथ वर्णन करती है।

छिपे रहें ये अश्रु-अनर्गल

छिपे रहें ये अश्रु-अनर्गल।
भले बहें एकान्त देश में, युगल नयन ये गल-गल छल-छल॥
मेरे शूल रहें मेरे पर, उन्हें समर्पित सुमन सुकोमल।
अपने जीवन के सौरभ से, रहूँ हँसाती उनको अविरल॥

चरखा कातने का सारा श्रम श्रीबंकाजी परम सात्त्विक उद्देश्य से किया करते हैं। इस कार्य के पीछे उनकी भावना यह थी कि इस स्वकर निर्मित, शुद्ध कपास के सूत का कपड़ा बनवा लिया जाये और उस वस्त्र को गेरुआ रंग में

रंगा जाये और परम पूज्य श्रीराधाबाबा को इसे समर्पित कर दिया जाये। कृपा करके पूज्य राधाबाबा उसे स्वीकार करें और अपने शरीर पर धारण करें। प्रतिदिन चरखा कातना और रासपंचाध्यायी का पाठ उनकी एकान्त साधना का मुख्य अंग बन गया था।

यह सूत काठने का क्रम 1955 से 1962 तक, सात साल लगातार चला। एक बड़ा सन्दूक भर के सूत तैयार हो गया पर संकोचवश् श्रीबंकाजी ने यह बात किसी को बताई नहीं। यहाँ तक कि पूज्य राधाबाबा को भी बताने का साहस न जुटा पाये। यह सूत सन्दूक में रखा ही रहा। बहुत बाद में इस सूत को भगवद्प्रेरणा से कैसे बाबा ने स्वीकार किया यह सारा प्रसंग आगे आयेगा।

****

शरद पूर्णिमा खीर प्रसाद

श्रीरासपंचाध्यायी का पाठ करने के कारण श्रीबंकाजी की शरदपूर्णिमा में बहुत अधिक श्रद्धा हो गयी थी। यह श्रद्धा होना स्वाभाविक भी है क्योंकि इसी दिन वृन्दावन में महारास हुआ था और इनकी गोपी भाव की उपासना की आधारशिला रास पूर्णिमा ही है।

शरद पूर्णिमा के दिन श्रीबंकाजी दूनी मात्रा में गौशाला से दूध मँगवाते थे। चन्द्रोदय से पूर्व कढाई में मेवा मिष्ठान्न डालकर स्वकरों से रबड़ी जैसी खीर बनाते। चन्द्रोदय होने पर बड़ी थाली में खीर परोस कर, उसमें गौ-घृत डालकर बड़े प्रेम से मिलाते। छत पर ले जाकर पाटे के ऊपर रखकर चन्द्र-ज्योत्स्ना की सुधा का सिंचन किया करते। आधे घण्टे बाद भगवान का भोग लगाकर प्रसाद स्वयं पाते और श्रीशिवराज को भी देते। यह क्रम प्रतिवर्ष का था। श्रीबंकाजी अपने छात्र से इतना प्रेम करते थे कि खीर-प्रसाद खाते समय शिवराजजी के मानस में माँ के लाड की बाढ़ जैसी हिलोरें उठा करती रही थीं।

****

आगवन का स्वतः आभास

रासपंचाध्यायी की साधना के समय श्रीबंकाजी बाहर का दरवाज़ा बन्द कर लिया करते थे। वे नहीं चाहते थे कि किसी को भी उनकी इस गुप्त साधना का पता लगे। एक दिन जब श्रीशिवराज उनके घर पहुँचे तो बन्द दरवाजा देखकर तुलसी के गमले के पास, बाहर ही बैठ गये। करीब दो घण्टें बाद श्रीबंकाजी तेजी से आए और दरवाज़े की कुण्डी खोली। शिवराज ने प्रणाम किया तो वे वोले—भैया शिवराज! आज मुझे तेरे आने का ध्यान नहीं रहा। तू दो घण्टे से प्रतीक्षा कर रहा है। आगे से कुण्डी लगाने की भूल नहीं होगी। अगले दिन से दरवाजे में कुण्डी नहीं लगाते थे। अनूठी पर-दुःख कातरता थी श्रीबंकाजी में।

****

नारी मात्र में श्रीराधाजी की भावना

एक रविवार को श्रीशिवराज अचानक श्रीबंकाजी के निवास पर जा पहुँचे। श्रीबंकाजी शय्या पर लेटे थे, तेज बुखार की तपन से कराह रहे थे, सिर-दर्द से बेचैनी अधिक हो रही थी। शिवराज ने साफी को घड़े के ठण्डे पानी में भिगोकर उनके सिर पर रक्खा। 15-20 मिनट बाद कुछ राहत मिली। वे बार-बार पलट कर भीगी पट्टी मस्तक पर रखते रहे।

श्रीबंकाजी ने करवट ली, थोड़ी नींद सी आने लगी। शिवराज ने कम्बल ऊपर ओढ़ा दिया। करवट लेते समय, सिरहाने रखे तकिया के खिसकने से श्रीबंकाजी की छोटी डायरी (दैनन्दिनी) खाट से नीचे गिर गई। शिवराज ने उसे सिर से लगाकर यथास्थान रखना चाहा तो उसके खुले पृष्ठ पर उनकी दृष्टि चली गई, उसमें लिखा था—

—चरित्र मनुष्य की सर्वोत्कृष्ट सर्वोच्च सम्पत्ति है। यत्लपूर्वक उसकी सुरक्षा करनी चाहिये।

—मैं नर में नारायण भाव रखने का प्रयास करूँगा।

—मैं नारी मात्र में श्री राधाजी की भावना रखूँगा।

आगे बहुत कुछ लिखा था, परन्तु संकोचवश शिवराज ने पढ़ा नहीं और यथास्थान डायरी को सम्हाल कर रख दिया। जिन दो-तीन पंक्तियों पर उनकी दृष्टि पड़ गयी थी वे वाक्य उनके मन मस्तिष्क पर सदा छाये रहे। श्रीबंकाजी की अभी युवावस्था ही थी और ऐसी उम्र में इतने उच्च भाव का होना बहुत बड़े सदगुरु की कृपा का ही द्योतक था।

****

शादी न कराने का रहस्योद्घाटन

एक दिन की बात है श्रीबंकाजी के कक्षा के छात्र आपस में बात कर रहे थे कि श्रीबंका गुरुजी पढ़ाते इतना अच्छा है, विद्वान हैं, स्वभाव और स्वरूप भी सुन्दर है फिर क्या कारण है कि इन्होंने अब तक शादी नहीं की?

किसी एक छात्र ने कहा—अवश्य ही इनका love reject हुआ है कहीं। यही कारण हो सकता है कि इन्होंने अब तक शादी नहीं की है।

दूसरे छात्र ने कहा—ज़रूर किसी लड़की ने इन्हें धोखा दिया होगा!

तीसरे छात्र ने कहा—शायद इसीलिए ये इतनी शेरो-शायरी-गज़ल-कविता लिखते हैं! कक्षा में यदा-कदा दर्द भरी कविता सुनाते हैं, विरह के गीत गाते हैं।

धीरे-धीरे यह चर्चा सारे होस्टल में फैल गई। उन सबने मिलकर श्रीबंकाजी के प्रिय छात्र शिवराज से पूछा तो उसने नकारात्मक उत्तर दे दिया कि उसे इस बात की कोई जानकारी नहीं है।

एक दिन शाम के समय शिवराज श्रीबंकाजी के निवास की ओर जा रहा था कि दो अध्यापकों ने उन्हें अपने पास बुलाकर कहा—शिवराज! बंकाजी से पूछना—गुरूजी! आपने शादी क्यों नहीं की?

आदरणीय आचार्यों की आज्ञा शिरोधार्य कर शिवराज सहज-भाव से श्रीबंकाजी को शादी न करने का कारण पूछ बैठे।

श्रीबंकाजी थोड़े मुस्कराये और बोले—शिवराज! तू बहुत भोला है। आजतक मुझसे किसी ने ऐसा नहीं पूछा है।

शिवराज ने सकुचाते हुए कहा—यह प्रश्न मेरा नहीं है। आपके पड़ोसी, प्रोफेसर गुप्ताजी और प्रोफेसर कौशलजी का है।

श्रीबंकाजी ने कहा— उनसे ही कह देता कि ''आप ही पूछ लो।''

सहमे-सहमे छात्र की जिज्ञासा की आतुरता को समझकर आशुतोष स्वभावी श्रीबंकाजी ने बताना शुरू किया—

दुर्लभ मानव जीवन केवल और केवल भगवद्प्राप्ति के लिये मिला है। मनुष्य देह की असली सफलता परमात्मा के मिलने में ही है। परमात्मा की प्राप्ति प्रेम से होती है। प्रेम के लिये एकान्त में करुण भाव से भगवान की शरण होकर स्तुति-प्रार्थना करनी चाहिये। संसार से वैराग्य और भगवान में प्रेम होने के सम्बन्ध में जो शास्त्र हैं, उनका अध्ययन करना चाहिये। भगवान के भक्तों का संग करना तथा उनके बताये अनुसार साधन करना चाहिये। अब अगर विवाह किया तो उसके साथ आई जिम्मेदारियों को निभाना होगा। पत्नी, पुत्र, परिवार, सम्पत्ति, कारोबार आदि की चिन्ता करके मैं मूल्यवान समय को नष्ट नहीं कर सकता। जहाँ घर-संसार में मन लग जाता है वहाँ संसार ही मुख्य हो जाता है और भगवान गौण। मैं तो इन आँखों से श्रीयुगल सरकार को देखने के सपने देख रहा हूँ, फिर भला मुझे विवाह करने का अवकाश कहाँ से मिलेगा?

श्रीबंकाजी के विशुद्ध साधनामय उज्जवल जीवन और अनूठे व्यक्तित्व को देखकर और उनकी वाणी को सुनकर शिवराज के सभी सवालों का पूर्ण रूप से समाधान हो गया। उसने जान लिया था कि श्रीबंकाजी के जैसे उच्च विचार, आधुनिक उच्चतम शिक्षा प्राप्त करने वाले उनके समवयस्क और समकालीन व्यक्ति में, सुदुर्लभ ही थे।

****

एक अग्रगणी छात्र

गाँधी विद्या मन्दिर में श्रीबंकाजी की कक्षा में राजस्थान का एक छात्र था। वह दिमाग से तेज और बड़ा घमण्डी लड़का था। फूटबॉल चैम्पियन,

भाषण देने में अग्रगणी, Student union head, शरीर से भी बहुत लम्बा-तगड़ा था।

श्रीबंकाजी ने मन-ही-मन सोचा कि इससे बचकर रहो, इससे टकराना नहीं है। यह बहुत forward advance है, कहीं कुछ अटपटा कह देगा तो व्यर्थ में हँसी हो जायेगी। ऐसा विचारकर श्रीबंकाजी उससे दूर ही रहते। वह कुछ गलत भी करता तो नज़र अंदाज कर जाते, कुछ कहते नहीं। 8-9 महीने गुज़र गये। एक रात वह लड़का श्रीबंकाजी के निवास पर आया और फूट-फूट कर रोने लगा। श्रीबंकाजी को बहुत आश्चर्य हुआ।

उसने कहा—मैं मन से बहुत भयभीत हूँ। सबके सामने तो मैं बहुत साहसी प्रतीत होता हूँ पर गुरुजी सच मानिये मैं हृदय से कायर हूँ। आपकी सादगी, सरलता, विद्वत्ता पर मैं मन-ही-मन मुग्ध हूँ। मैंने आज तक किसी के सामने अपना सर नहीं झुकाया है, सबको अपने तर्क से मौन कर देता, किसी को कुछ नहीं समझता परन्तु मैं हृदय से आपकी बहुत इज़्ज़त करता हूँ और आपके जैसा बनना चाहता हूँ। मैं जानता हूँ कि मेरा बाहरी आडम्बर किसी काम आने वाला नहीं है और आपसे करुण प्रार्थना करता हूँ कि आप मुझे अपना लीजिये और मुझे दीक्षा दे दीजिये।

श्रीबंकाजी ने उसे सान्त्वना देते हुये कहा—अरे! मैं तो स्वयं ही दीक्षित नहीं हूँ, तुम्हें क्या दीक्षा दूँगा!

उस दिन श्रीबंकाजी को ज्ञात हुआ कि जिस तेज़ लड़के को वे बहुत forward advance समझ रहे थे उसकी सारी बड़ी-बड़ी बातें मात्र आडम्बर थीं। जो बल सादगी और सरलता में है वहीं सर्वश्रेष्ठ है। वे अपने चुने हुए साधन-पथ पर और भी अधिक कटिबद्धता से चल पड़े।

****

स्वावलम्बन व स्वाभिमान

जब बी.एड. की प्रयोगात्मक परीक्षाएँ चल रही थीं तब छात्राध्यापक अपने-अपने सेवित आचार्य महानुभावों से प्रयोगात्मक परीक्षकों के लिए सबल संस्तुति (recommendation) कराने के प्रयास कर रहे थे जिससे कि उन्हें उच्च श्रेणी के अंक प्राप्त हो सके।

शिवराज से श्रीबंकाजी ने कहा—मैं तेरे विषय में किसी प्रयोगात्मक परीक्षक से कुछ नहीं कह सकूँगा। अपने बल पर ही प्रयोगात्मक परीक्षा देनी है।

इस तरह श्रीबंकाजी ने शिवराज को स्वावलम्बन की शिक्षा देकर अपनी स्वाभिमानता-सुरभि से मँहका दिया।

****

सहृदयता

एक दिन की बात है। वार्षिक परीक्षा का समय निकट था। एक छात्र श्रीबंकाजी के निवास पर आया। वह बेहद उदास और दुःखी था। उसने रोते-रोते श्रीबंकाजी से निवेदन किया—मैं तुरन्त घर जाना चाहता हूँ। परम आवश्यक कार्य है। छुट्टी के लिये अर्जी दी थी परन्तु छुट्टी मिली नहीं। अब केवल आप ही मुझे छुट्टी दिला सकते हैं। बड़ी आशा लेकर आपके पास आया हूँ। मुझे निराश मत कीजियेगा।

श्रीबंकाजी ने कहा—सामने वार्षिक परीक्षा है। यदि अभी छुट्टी लोगे तो पूरा साल बरबाद हो जायेगा। क्यों जाना चाहते हो घर? ऐसा क्या आवश्यक कार्य है?

छात्र—अगर अत्यधिक आवश्यक नहीं होता तो मैं कदापि न जाता।

श्रीबंकाजी ने पुनः कारण पूछा। कुछ सकुचाते हुए छात्र ने कहा—मैं एक लड़की से प्रेम करता हूँ और वह बहुत बीमार है। मैं उसे देखने के लिये जाना चाहता हूँ। मेरा जाना बहुत आवश्यक है।

श्रीबंकाजी ने सहानुभूति जताते हुए उससे बातों-ही-बातों में उस लड़की का नाम-पता आदि सब कुछ पूछ लिया और प्रेमपूर्वक समझाते हुए कहा—मेरा मन कहता है कि उस लड़की को कुछ नहीं होगा। तुम एकदम चिन्ता

मत करो। मन लगाकर पढ़ो और 15-20 दिन बाद परीक्षा देकर आराम से घर चले जाना।

श्रीबंकाजी की सान्त्वनापूर्ण वाणी और प्रेमयुक्त व्यवहार का उस छात्र पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि उसने उनकी बात मान ली। घर जाने के आग्रह को त्याग दिया और श्रीबंकाजी को सत्परामर्श के लिये धन्यवाद देता हुआ होस्टल लौट आया।

उसके चले जाने के बाद श्रीबंकाजी ने उस लड़की को पत्र लिखा और अपना परिचय देते हुए अपने छात्र की सारी मानसिक पीड़ा को समझाया। उस लड़की से अनुरोध किया कि इश्क का तकादा यह है कि अब वह उसे पत्र लिखे कि उसकी तबीयत अब ठीक है। उसे घर आने की शीघ्रता नहीं करनी चाहिये और परीक्षा पूर्ण करके ही लौटना उचित होगा।

उस लड़की का पत्र यथासमय उसके प्रेमी के पास आ गया जिसमें उसने एकदम वही बात लिखी थी जो श्रीबंकाजी ने कही थी। उस पत्र को पढ़कर उस छात्र को बहुत संतोष हुआ और वह सत्परामर्श के लिये धन्यवाद देता श्रीबंकाजी के चरणों में आकर गिर पड़ा।

****

पूज्या माँ का वात्सल्य

सरदारशहर का महाविद्यालय ग्रीष्म-ऋतु के आरम्भ होते ही दो मास के लिये बन्द हो गया था, अतः अध्यापन कार्य से प्राप्त अवकाश को, पूज्य बाबूजी की स्नेहिल सन्निधि में व्यतीत करने के लिये श्रीबंकाजी सरदारशहर से स्वर्गाश्रम चले आये थे। हिमगिरि के चरण-प्रान्त में ऋषिकेश से लगभग दो मील दूर स्वर्गाश्रम की पुण्य स्थली सिद्धों-साधुओं-साधकों की ऐसी प्रेरणा-प्रदायिनी पवित्र भूमि है, जिसका दिव्य वातावरण अपने आध्यात्मिक आलोक के लिये दूर-दूर तक विख्यात है। स्वर्गाश्रम में भगवती गंगा के तट पर ही गीताभवन निर्मित है, जो गोरखपुर के गीताप्रेस की एक सह-संस्था है। गीताभवन में सत्संग की बड़ी सुविधा है और आने वाले व्यक्तियों के लिये

आवास की सुन्दर व्यवस्था है। भारत के कोने-कोने से आध्यात्मिकता के पिपासु और जिज्ञासु सन्त-समागम के लिये ग्रीष्म-ऋतु में यहाँ आया करते हैं। श्रीबंकाजी भी पूज्य बाबूजी के चुम्बकीय व्यक्तित्व, साधु जीवन एवं रसमय सत्संग से आकृष्ट होकर आये हुए थे। सदा ही वे आया करते थे।

स्वर्गाश्रम में, गंगाजी के सामने, गीताभवन के पास ही डालमिया कोठी है। डालमिया कोठी के बाहरी बरामदे में लगभग दो माह श्रीबंकाजी का बिस्तर रहता था। पूज्य बाबूजी के चौके में ही खाते थे और बाबूजी के ही आगे-पीछे डोलते रहते थे। दोनों वक्त भगवती गंगा की पावन धारा में स्नान करना, नाम-जप और सुबह-शाम पूज्य बाबूजी का प्रेरणादायक प्रवचन सुनना, यही दिनचर्या थी।

पूज्य बाबूजी के निकटवर्ती सेवा परायण भाइयों को श्रीबंकाजी का वहाँ रहना एकदम पसन्द नहीं था। वे हमेशा इस शैली में बोलते थे मानो ताना मार रहे हों। वे कहा करते थे—पोद्दारजी का घर कोई सर्वालय है क्या कि जो आता है वह अपना डेरा यहीं डाल देता है? इस घर को सराय समझ रखा है क्या? पता नहीं कहाँ-कहाँ से चले आते हैं?

यह सब वे कहते थे श्रीबंकाजी को लक्ष्य करके, किन्तु कभी भी उनका नाम नहीं लेते थे। उनकी बातें श्रीबंकाजी के मन में बहुत चुभती थी, किन्तु संकोचवशात् वे कुछ बोल नहीं पाते थे। श्रीबंकाजी के मन में बहुत उथल-पुथल मची हुई थी। विचार होने लगा—ये लोग ठीक ही तो कहते हैं। उनका कहना कुछ गलत नहीं है। मैं कमाने लगा हूँ। मुझे यहाँ प्रतिदिन प्रसाद नहीं पाना चाहिये। जब मैं विद्यार्थी था और यहाँ आता था तब तक तो सब ठीक था परन्तु अब मुझे वेतन मिलता है। यहाँ प्रतिदिन दोनों समय प्रसाद पाना सर्वथा अनुचित है।

जब तानेबाजी से श्रीबंकाजी का मन अत्यन्त खिन्न हो उठा, तब श्रीबंकाजी ने मन-ही-मन ऐसा निश्चय किया कि अब पूज्य बाबूजी के भोजनालय में भोजन नहीं करना चाहिये और गीताभवन में जो एक मारवाड़ी

बासा (भोजनालय) चलता है, उसी में भोजन करना उचित होगा। ऐसा सोचकर दिन के लगभग ग्यारह बजे श्रीबंकाजी बाबूजी के चौके में चले गये। एक मारवाड़ी रसोइया महाराज भोजन बनाया करते थे। उनसे श्रीबंकाजी ने कहा—महाराजजी! आज से मैं गीताभवन के बासे में भोजन किया करूँगा।

महाराज ने कहा—ठीक है बाबू।

उसे भला क्या मतलब कि कौन यहाँ भोजन करता है और कौन नहीं करता है। उसका काम बाबूजी के चौके में भोजन बनाना था और वह वेतन भोगी रसोइया अपना काम कर रहा था। इतना कहने के बाद दोपहर के समय श्रीबंकाजी गीताभवन के बासे में भोजन कर आये और भोजन का मूल्य बासे के प्रबन्धक महोदय को चुका दिया।

दिन के साढ़े बारह या एक बजे पूज्या माँ चौके में आयीं और रसोइया महाराज से एक-एक व्यक्ति का नाम लेकर सभी के बारे में पूछने लगी कि किस-किस ने भोजन कर लिया है। पूछते-पूछते पूज्या माँ ने श्रीबंकाजी के बारे में पूछा, तब उन्होंने बतला दिया कि आज से बंका बाबू ने गीताभवन के बासे में भोजन करना आरम्भ कर दिया है।

माँ ने सारी बात चुपचाप सुन ली और मन-ही-मन परिस्थिति का चिन्तन और विश्लेषण करने लगी। उनको अनुमान लगा लेने में देर न लगी। वे स्वजनों के स्वभाव से भली प्रकार परिचित थीं और उन्होंने सोच लिया कि जरूर किसी ने कुछ अटपटे शब्दों का प्रयोग राधेश्याम के प्रति किया होगा, जिसको उसका कोमल हृदय सह नहीं पाया तथा उसके फलस्वरूप उसने गीताभवन के बासे में भोजन करने का निश्चय कर लिया। इन सब बातों को सोच-समझ करके भी माँ मौन रहीं।

माँ इस टोह में थी कि कब कुछ एकान्त का क्षण मिले और वे श्रीबंकाजी से बात कर सके। उधर माँ इस प्रकार सोच रही थी और इधर श्रीबंकाजी का प्रयास यह था कि माँ के सामने पड़ने का अवसर आये नहीं। माँ का प्रयास अपने ढंग का था और आत्म बचाव का श्रीबंकाजी का प्रयास उनके ढंग का था। अन्त में वही हो गया, जिससे श्रीबंकाजी बचना चाहते थे।

संध्या समय श्रीबंकाजी किसी कार्य से बाहर जा रहे थे। ठीक उसी समय माँ सामने आयी। माँ सब बात जानती और समझती थीं, फिर भी नितान्त भोलेपन के साथ प्रश्न किया मानो वह कुछ जानती ही न हों। उन्होंने पूछा—आज तू जीमने कोनि आयो ? (आज तुम भोजन करने नहीं आये ?) श्रीबंकाजी सिर झुकाये खड़े थे। एकदम मौन।

पूज्या माँ—तबियत तो ठीक है न ? (शरीर तो स्वस्थ्य है न ?)

श्रीबंकाजी ने कहा—तबियत तो ठीक है।

माँ ने फिर पूछा—कोई कुछ बोल दियो के ? जीमियो कि कोनि ? (किसी ने कुछ कह दिया क्या ? तुमने भोजन किया या नहीं ?)

श्रीबंकाजी कुछ बोल नहीं पा रहा थे। अधर-से-अधर चिपके हुये थे। दृष्टि भूमि पर गड़ी हुई थी। आँखों को उठाने की हिम्मत नहीं हो रही थी। मन में भीषण भावात्मक उथल-पुथल मची हुई थी। वास्तविक बात को कहना उचित था नहीं और माँ को क्या उत्तर दिया जाय, इसी सोच में श्रीबंकाजी डूबे हुये थे। श्रीबंकाजी अपने भावों में खोये हुये थे और उधर माँ वात्सल्यवशात् भोजन न करने का कारण बार-बार पूछ रही थी।

अन्त में श्रीबंकाजी लड़खड़ाती आवाज में, दृष्टि नीचे किये हुये, मन्द-मन्द स्वर में केवल इतना ही कहने का साहस कर पाये—मैं बासा म जीम लियो। (मैंने बासे में भोजन कर लिया है।)

इतना सुनते ही माँ ने चट कहा—तू ऐकलो क्यूँ गयो ? सागे म भी तो थी न, म भी जीम लेती। (तुम अकेले क्यों गये ? साथ में मैं भी तो थी, मैं भी तुम्हारे साथ भोजन कर लेती।)

इतना सुनना था कि श्रीबंकाजी अपने भावों के प्रबल वेग को रोक न सके और फूट-फूट कर रोने लगे। हिचकियाँ बँध गयी और मात्र इतना सा कह सके—अब कोनि जाऊँ। कदै भी कोनि जाऊँ। (अब नहीं जाऊँगा। कभी भी नहीं जाऊँगा।)

अब माँ के उद्गारों की गहराई में उतरने का पाठकगण प्रयास करें।

उन्होंने बातचीत के मध्य यह समझाने का प्रयत्न नहीं किया कि श्रीबंकाजी को यहीं भोजन करना चाहिये था, अपितु वास्तविकता यह है कि माँ वात्सल्य की सीमा को ही पार कर गयी। परम वत्सला माँ की ऐसी आत्मीयता की वेदी पर व्यक्ति अपने जीवन की आहुति देता है और वह अपने सर्वस्व का समर्पण करके स्वयं को धन्यातिधन्य मानता है। यह श्रीबंकाजी का परम सौभाग्य था कि उन्हें महामहिमामयी, वात्सल्य प्रतिमा, ममता मूर्ति माँ के आँचल की छाया मिली। उनका प्रेमविह्वल हृदय बार-बार यही कह रहा था—**देबि न हम पर छाड़ब छोहू॥**

इसी क्षण से श्रीबंकाजी ने मन-ही-मन निश्चय कर लिया कि अब कभी भी पूज्य बाबूजी के चौके को छोड़ कर अन्य कहीं पर भोजन नहीं करना है। चाहे कोई कुछ भी कहे, किसी भी प्रकार की टिप्पणी करें, परन्तु माँ के आँचल की छाँव को नहीं छोड़ना है। बाद में भी जब श्रीबंकाजी गीतावाटिका में स्थायी रूप से रहने लगे, तब भी वे पूज्य बाबूजी के चौके में ही भोजन करते थे। जब पूज्य बाबा ने उन्हें स्वयं रसोई बनाकर प्रसाद पाने के लिये कहा, तब से वे वाटिका के अपने कक्ष में स्वयं प्रसाद बनाने लगे। परन्तु तब तक तो पूज्य बाबूजी का चौका ही उनका अपना चौका था।

****

श्रीबंकाजी की पहली राधाष्टमी

श्रीबंकाजी ने अपने जीवन का पहला श्रीराधाष्टमी महोत्सव पूज्य बाबूजी-बाबा के साथ रतनगढ में 1956 में मनाया। उस जमाने में आज की तरह श्रीराधाष्टमी, बहुत प्रचारित और प्रख्यात उत्सव नहीं था। सामान्य लोग श्रीकृष्ण जन्माष्टमी तो मनाते थे परन्तु श्रीराधाष्टमी बहुत ही कम लोग जानते थे और बहुत कम ही इसका उत्सव मनाया जाता था। बाबूजी ने श्रीबंकाजी को पहले से ही सूचित कर दिया था कि इस साल उन्हें श्रीराधाष्टमी उत्सव में रतनगढ आना है। श्रीबंकाजी यथासमय सरदारशहर से उत्सव में सम्मिलित होने के लिये रतनगढ़, बाबूजी की हवेली में पहुँच गये।

सन् 1956 की शरद पूर्णिमा को पूज्य श्रीराधाबाबा ने प्रथम बार काष्ठ मौन व्रत लिया। बाबा ने अन्तिम रात्रि जागरण और अन्तिम उद्दाम नाम-संकीर्तन सन् 1956 की श्रीराधाष्टमी को किया था। शरद पूर्णिमा के पहले जो श्रीराधाष्टमी पड़ी उसी राधाष्टमी की बात है। इस साल भाद्र मास में घनघोर वर्षा हुई। इतनी अधिक वर्षा हुई कि कुएँ के मुँह तक पानी भर आया। रस्सी की आवश्यकता नहीं, हाथ डालकर लोटे में पानी भर लो, ऐसी घनी वर्षा हुई। स्नान के बाद भीगे कपड़ों को सुखाना बड़ा कठिन हो गया था परन्तु जितनी घनी वर्षा, उतना ही घना आनन्द। जैसे आकाश में बादल घुमड़ रहे थे वैसे ही, बल्कि उससे भी अधिक, उत्सव में आनन्द उमड़ रहा था। दोपहर में बारह बजे श्रीराधाजी के जन्म की आरती हुई और उसके बाद राधा नाम का उद्दाम संकीर्तन हुआ। श्रीराधाबाबा स्वयं घण्टा बजा रहे थे। वे लगातार दो-ढाई घण्टे तक घण्टा बजाते रहे। सब लोग बाबा के स्वर-से-स्वर मिलाकर बोल रहे थे और ताल-से-ताल मिलाकर वाद्य बजा रहे थे। कहीं भी तनिक थी विस्वरता नहीं, धक्का-मुक्की नहीं और उद्दामता के नाम पर उच्छृंखलता नहीं। उस संकीर्तन में श्रीबंकाजी समेत सभी भक्तों को बड़ा सुख मिला।

बाबा ने श्रीराधाष्टमी उत्सव में रात्रि जागरण भी किया। बाबा का कहना था कि प्रत्येक वैष्णव को श्रीकृष्ण जन्माष्टमी, श्रीराधाष्टमी, शरद पूर्णिमा और शिवरात्रि पर तो रात्रि जागरण करना ही चाहिये। ऐसा करने से साधक पर भाव-

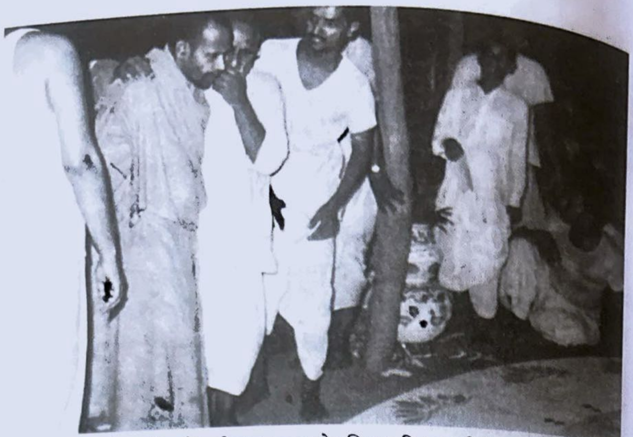

पूज्य पोद्दारजी और श्रीराधा बाबा के प्रिय परिकर श्रीबंकाजी

परम पूज्य बाबूजी के परिवार के सदस्य की भाँति श्रीबंकाजी सदा उनके प्रत्येक उत्सव-महोत्सव में सेवा करते थे

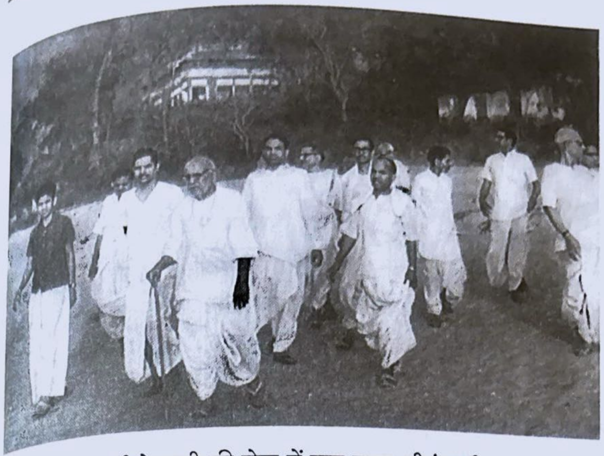

श्रीपोद्दारजी की सेवा में सदा तत्पर श्रीबंकाजी

पूज्य बाबूजी के पद चिन्हों पर चलनेवाले परिकर श्रीबंकाजी

राज्य से विशेष कृपा अवतरित होती है। रात्रि जागरण में श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी, ठाकुर श्रीघनश्यामजी, श्रीबंकाजी तथा अन्य पाँच-छः व्यक्ति ही रहे होंगे। रतनगढ के स्थानीय लोग तो चले गये थे, बस जो लोग बाबूजी के घर में थे, वे ही लोग रात्रि जागरण में रुके हुये थे। रात के बारह बजे तक तो उत्सव चलता रहा। बारह बजे के बाद रात्रि जागरण के निमित्त से कुछ लोग बाबा के पास आकर बैठ गये। बाबा ने एक पद की पंक्ति गायी। वह स्वरचित पंक्ति थी—**कालिन्दी! धीरे बहो, मेरे प्रियतम उतरेंगे पार।**

बाबा इस स्वरचित पंक्ति को बहुत ही मधुर पीलू राग में गा रहे थे। कृष्णप्रिया श्रीराधारानी का कालिन्दी तट की ओर अग्रसर होना, तट की सारी भूमि का दूर्वादल से आच्छादित रहना, दूर्वादल पर पद-कमल रखते हुये प्रीति-भरिता श्रीराधाजी का अभिगमन करना, पद-कमल के स्पर्श की प्राप्ति से दूर्वादल का अत्यधिक आह्लादित होना, कालिन्दी की निर्मल धारा का बहना, श्यामल धारा से श्रीराधाजी का अनुरोध करना...., इन सबके वर्णन में समय का ज्ञान रहा ही नहीं। आधे लेटे-लेटे हुए, भाव-भरित मन से बाबा यह सब सुना रहे थे और सब लोग विभोर-चित्त सुन रहे थे। बाबा की वर्णन-शैली ऐसी थी मानो सब कुछ उनकी आँखों के सामने घटित हो रहा हो। श्रीबंकाजी बाबा को एकटक देख रहे थे और उनका हृदय बार-बार उनसे यही कह रहा था—**लोचन लाहु लेहु छन एहीं॥** वर्णन के कहने-सुनने में कब चार घण्टे बीत गये और कब प्रात:काल के चार बज गये, किसी को कुछ पता ही नहीं चला।

श्रीराधाष्टमी महोत्सव का और विशेष करके रात्रि जागरण का आनन्द-उन्माद कई दिनों तक श्रीबंकाजी के मन-मस्तिष्क पर छाया रहा। उत्सव पूर्ण होने पर श्रीबंकाजी बाबूजी-बाबा के मंगल आशीर्वाद सहित सरदारशहर वापस लौट तो आये परन्तु अपना हृदय बाबूजी-बाबा के पास ही छोड़ आये। उन्होंने मन-ही-मन एक महत्त्वपूर्ण निश्चय किया कि अबसे हर साल प्रत्येक राधाष्टमी, बाबूजी-बाबा के साथ ही मनानी है। इस व्रत को उन्होंने आजीवन निभाया। आरम्भ के दिनों में वे श्रीराधाष्टमी महोत्सव मनाने के लिये प्रतिवर्ष

सरदारशहर से रतनगढ़ या गोरखपुर जाते। 1962 के बाद से तो वे आजीवन गीतावाटिका में ही रहे और हर श्रीराधाष्टमी सोत्साह मनाई।

****

पूज्य बाबूजी के श्रीचरणों में सर्वसमर्पण

सन् 1958 की बात है। टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज के अधिकारीगण महाविद्यालय के कार्य से श्रीबंकाजी को जहाँ भी भेजते थे, उन्हें जाना पड़ता था, अन्यथा जब भी अवकाश होता, औसतन पक्ष में एक बार वे पूज्य बाबूजी के पास सत्संग के लिये रतनगढ़ चले जाया करते थे। इन छोटी-छोटी मुलाकातों में श्रीबंकाजी को बाबूजी के भगवत्सम्बन्धी प्रौढ़ विचारों एवं अनुभवों को जानने तथा उनके भगवन्मय जीवन को, अत्यन्त निकट से देखने का अवसर प्राप्त हुआ।

बाबूजी में इतने अधिक गुण थे कि जो भी उनके सम्पर्क में आता उनके भगवद्दीय गुणों द्वारा आकर्षित हो जाता। उनके व्यक्तित्व में एक चुम्बकीय आकर्षण था। वे अपने विशुद्ध प्रेम से सबको अपना बना लेते। उनके नेत्रों से सबके लिये स्नेह की वर्षा होती थी। बाबूजी की मुस्कान में एक विचित्र आकर्षण था और उनके नेत्रों में एक विचित्र आभा थी। ऐसा आकर्षण और ऐसी आभा श्रीबंकाजी को किसी भी व्यक्ति में आज तक देखने को नहीं मिली थी। ढलती आयु वाले पूज्य बाबूजी की आँखों की, अधरों की उस छवि पर उनका मन बलिहार था। श्रीबंकाजी बाबूजी को जानते तो किशोरावस्था से ही थे परन्तु इन दिनों उनको पूज्य बाबूजी का सम्पर्क अत्यधिक प्रिय हो गया था।

रतनगढ़ में जब बाबूजी रह रहे थे उस वक्त पूज्य श्रीराधाबाबा का काष्ठ मौन व्रत चल रहा था। बाबा ने 1956 में काष्ठ मौन व्रत ग्रहण किया था। बाबूजी की हवेली में ऊपरी मंज़िल पर बाबा रहते थे और उनके दर्शन किसी भी बाहरी आदमी को दुर्लभ थे। बाबूजी इस बात का पूरा ख्याल रखते कि बाबा की साधना में कोई भी व्यक्ति व्यवधान उत्पन्न न करे। इसलिये बाबा से तो मिलने का सवाल ही नहीं था और बाबूजी भी कल्याण और प्रेस के

कार्य में इतने व्यस्त रहते थे कि उन्हें एक पल की भी फुर्सत नहीं होती थी। इसलिये श्रीबंकाजी की बाबूजी से भी अधिक बातचीत नहीं होती थी, केवल सान्निध्य और दर्शन ही होता था परन्तु उनका पत्राचार बाबूजी से हमेशा चलता रहा। वे प्रति सप्ताह पत्र लिखा करते थे और बाबूजी का प्रेरणादायक उत्तर भी प्राय: आता रहता था।

कहते हैं न कि एक विशुद्ध सन्त का संग-दर्शन परम लाभकारी होता है। श्रीबंकाजी के साथ भी कुछ ऐसा ही हुआ। वे कई सालों से बाबूजी-बाबा का संग कर रहे थे और उनकी सात्विक जीवन शैली, संतोचित व्यक्तित्व और मधुर स्वभाव पर बलिहार थे। श्रीबंकाजी की भक्ति भावना अपने उत्कर्ष की ओर अग्रसर थी। सन्तों की शरण में रहकर श्रीबंकाजी भी उसी रंग में पूर्णत: रंग गये। बाबूजी के लोकोत्तर व्यक्तित्व का उनके मन पर ऐसा प्रभाव पड़ा, और उनके प्रति श्रीबंकाजी का प्रेम और समर्पण इतना बढ़ गया कि 6 जून 1958 को स्वार्गाश्रम में, परम पावनी गंगा की धारा में खड़े होकर, गंगाजल हाथ में लेकर, श्रीबंकाजी ने बाबूजी को अपना जीवन-सर्वस्व मानते हुये उनके श्रीचरणों में स्वयं को पूर्णरूप से समर्पित कर दिया और खुद को बिना मोल के बाबूजी के हाथों बेच दिया। उन्होंने यह दृढ निश्चय किया कि अब से जीवन की धारा को उसी दिशा में बहाना है जैसा बाबूजी चाहें, वहीं करना है जिसमें बाबूजी की प्रसन्नता हो। पुलकित मन से बाबूजी के श्रीचरणें का ध्यान किया और प्रणाम करते हुये उन्होंने केवल इतना माँगा—**अब करि कृपा देहु बर एहू। निज पद सरसिज सहज सनेहू ॥**

जब श्रीबंकाजी मुझे यह प्रसंग सुना रहे थे तब अज्ञानतावश मैंने उनसे अपनी एक जिज्ञासा व्यक्त की—दादाजी! पूर्णरूपेण आत्मसमर्पण-सर्वसमर्पण का अर्थ क्या होता है और इसका स्वरूप क्या है?

मेरे प्रश्न के उत्तर में श्रीबंकाजी ने प्रेमपूर्वक समझाना शुरु किया—लाली! अतिशय प्रीति या सर्वसमर्पण, आत्माहुति की एक ऐसी अनोखी उमंग होती है, एक ऐसी उत्सर्गमयी लालसा होती है, जिसमें प्रेमी के मन में प्रेमास्पद के प्रसादन-भाव का एकमात्र अस्तित्व रह जाता है। प्रेमी का मन पल-पल

ललकता रहता है प्रेमास्पद के अन्तर को आह्लादित कर देने के लिये। प्रेमी प्रेमास्पद के प्यार में गलता रहता है, प्रेमास्पद की दिशा में बहता रहता है और प्रेमास्पद के साँचे में ढलता रहता है। प्रेमास्पद की रुचि ही प्रेमी का जीवन होता चला जाता है। (यहाँ प्रेमी श्रीबंकाजी है और प्रेमास्पद उनके गुरु पूज्य बाबूजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार हैं)

फिर श्रीबंकाजी राधाबाबा की पुस्तक जय जय प्रियतम से एक उदाहरण देकर समझाने लगे—प्रियतम काव्य में श्रीकृष्ण ने स्वयं, काव्य के एक चरण की पूर्ति की थी। बाबा के द्वारा छन्द के तीन चरणों की रचना हो गयी, पर चैथा चरण उभरकर सामने नहीं आया। जब पर्याप्त विलम्ब होने लगा तो चौथे चरण को पूर्ण करते हुये प्रियतम श्रीकृष्ण ने कहा— **''प्राणों का सौदा होता है क्षण में कुछ ऐसे ही प्रियतम "**। प्रियतम काव्य के चौथे शतक में यह चरण-पूर्ति है। एक बार बाबा ने बतलाया था—यह पंक्ति कोई साधारण वाक्य नहीं है, अपितु मन्त्र है।

श्रीबंकाजी बताते चले गये—ठीक इसी प्रकार से मेरे प्राणों का सौदा भी एक क्षण में ही हुआ। मैंने अपना सर्वस्व अपर्ण कर दिया अपने प्रेमास्पद, अपने गुरुदेव, अपने बाबूजी को। मुझे जीवन में जो कुछ भी मिला है वह पूज्य बाबूजी-बाबा की कृपा से ही मिला है।

धन्य थी बंका कुल को पावन करने वाली वह घड़ी! **जे गुर पद अंबुज अनुरागी। ते लोकहुँ बेदहुँ बड़भागी ॥**

श्रीबंकाजी की डायरी में लिखित उस काल की यह रचना पूज्य बाबूजीको समर्पित है—

उस उज्ज्वल को शत-शत वन्दन

उस उज्ज्वल को शत-शत वन्दन।
जिसकी छाया में रवि भी है बन जाता शीतलतम चन्दन॥

जिसके आश्रय से मरुथल, बन जाता मधुमय नन्दन वन।
जिसके विस्तृत हो जाते ही, सब सम्भव हो जाता तत्क्षण॥

जिसके धागों से झरता है, जीवन-रस जीवन का जीवन।
उसी छोर का एकाश्रय है, वही एक बस अनुपमेय धन॥

पूज्य बाबूजी के श्रीचरणों में सर्वसमर्पण के उपरान्त श्रीबंकाजी ने आजीवन बाबूजी को अपना गुरु माना और सदैव उनके बताये मार्ग पर चलते हुए उनकी कही हर बात को जीवन में उतारते चले गये। बाबूजी के नित्य-लीला-लीन होने के बाद, बाबूजी के अभिन्न स्वरूप पूज्य श्रीराधाबाबा के आश्रय में रहे और अपने जीवन के अन्तिम श्वास तक बाबूजी-बाबा की समाधि स्थली, गीतावाटिका में ही वास किया।

****

दिव्य पुष्प

ग्रीष्म कालीन अवकाश में, विद्यामन्दिर टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज की छुट्टी हो जाने पर श्रीबंकाजी पूज्य बाबूजी के पास, स्वर्गाश्रम चले जाते थे। प्रतिवर्ष की भाँति सन् 1958 की ग्रीष्म-ऋतु में भी आए थे और अब ग्रीष्मावकाश की समाप्ति पर सरदारशहर वापस जा रहे थे। जुलाई का महीना था।

भगवती गंगा का सुरम्य तट, शीतल पवन का मन्द संचार, अपराह्न काल का ढलता सूर्य, गीताभवन का स्वच्छ घाट, इसी समय श्रीबंकाजी घाट पर खड़े थे और उनके पास ही खड़े थे पूज्य बाबूजी। श्रीबंकाजी खड़े थे नौका की प्रतीक्षा में श्रीगंगाजी के उस पार जाने के लिये और पूज्य बाबूजी खड़े थे नौका पर चढ़ाकर विदाई देने के लिये। अनेक व्यक्ति श्रीगंगाजी के पार जाने के लिये नौका की प्रतीक्षा कर रहे थे। गंगा-पार करके श्रीबंकाजी को हरिद्वार स्टेशन से सरदारशहर वापस पहुँचने के लिये ट्रेन पकड़नी थी।

घाट पर ही निर्मित गीताभवन के बगल में बूबना भवन है और बूबना भवन के बगल में डालमिया कोठी है, जहाँ पूज्य बाबूजी गोरखपुर से सत्संग हेतु आकर ठहरा करते थे। प्रस्थान करने के पूर्व श्रीबंकाजी डालमिया कोठी गये पूज्या माँ एवं पूज्य बाबूजी को प्रणाम करने के लिये। पूज्या माँ ने उन्हें तिलक करके हाथ में फल दिया और इसके उपरान्त उनके मना करने के बाद भी पूज्य बाबूजी विदाई देने के लिये घाट तक उनके साथ चले आये। बाबूजी का डालमिया कोठी से गीताभवन तक चलकर आना और घाट की बीस-तीस सीढ़ियों से उतर कर गंगा तट पर खड़े होना, यह सब सोच कर श्रीबंकाजी को बड़ा संकोच हो रहा था, परंतु बाबूजी के उमड़ते वात्सल्य के समक्ष श्रीबंकाजी का संकोच पूर्णतः मूक था, सर्वथा विजड़ित था। बस, घाट पर नौका की प्रतीक्षा में श्रीबंकाजी खड़े थे और उनके पास खड़े थे उन्हें विदाई देने के लिये पूज्य बाबूजी।

उन लोगों को खड़े-खड़े पन्द्रह-बीस मिनट बीत गये, पर नौका नहीं आयी। अधिक विलम्ब की सम्भावना देखकर पूज्य बाबूजी ने श्रीबंकाजी से कहा—राधेश्याम! ऐसा लगता है कि नाव देर से आयेगी। मैं अब जाता हूँ। तुम ये फूल ले लो।

श्रीबंकाजी भी तो यही चाहते थे कि पूज्य बाबूजी लौट जायें। उनका एक-एक क्षण मात्र मूल्यवान ही नहीं, महामूल्यवान है। उनको घाट पर खड़े देखकर श्रीबंकाजी संकोच में अधिकाधिक डूबे जा रहा थे, पर वे कहते क्या? श्रीबंकाजी ने पूज्य बाबूजी को प्रणाम किया। बाबूजी ने श्रीबंकाजी के हाथ में चार-पाँच छोटे-छोटे अति सुगन्धित फूल दिये और वे चले गये।

पूज्य बाबूजी घाट की बीस-तीस सीढ़ियाँ चढ़कर ऊपर गये और शायद वे डालमिया कोठी के समीप पहुँच गये होंगे कि वे फिर वापस लौट पड़े। उन्होंने मन-ही-मन अनुमान लगा लिया कि राधेश्याम इन फूलों के महत्त्व को समझ नहीं पाया है। फूलों के महत्त्व को बतलाने के लिये पूज्य बाबूजी वापस लौटे। डालमिया कोठी से गीताभवन आकर और फिर घाट की बीस-तीस सीढ़ियाँ उतरकर वे श्रीबंकाजी के पास आये। उनके पुनः आने से श्रीबंकाजी को बड़ा आश्चर्य हो रहा था। आकर उन्होंने श्रीबंकाजी के कंधे पर हाथ रखा और एक एकान्त किनारे ले जाकर वे कहने लगे—ये फूल साधारण नहीं हैं, अपितु **भगवान श्रीकृष्ण के हाथ के फूल हैं**। बस, यही बात बतलाने के लिये मैं वापस आया।

जिस समय पूज्य बाबूजी के शब्द श्रीबंकाजी के कान में पड़े, उनके मन की दशा विचित्र ही गई। अपार आश्चर्य, अचिन्त्य सौभाग्य, अगाध श्रद्धा, अनोखा दैन्य, अनवरत वन्दन, अनुक्षण प्रणति, अमाप्य कृतज्ञता जैसे अनेक भावों की उत्ताल तरंगें उनके भीतर-ही-भीतर उमड़ रही थीं। वे सर्वथा अवाक् थे। उनकी वाणी सर्वथा कुण्ठित थी। वे सजल दृष्टि से पूज्य बाबूजी की ओर एकटक देखने लगे।

श्रीबंकाजी से इतना कहकर पूज्य बाबूजी गीताभवन की ओर जाते हुये घाट की सीढ़ियों पर चढ़ने लगे। वे पाषाणवत् खड़े-खड़े एकटक उनको देखते रहे। श्रीबंकाजी टकटकी बाँध कर देखते रहे और तब तक देखते रहे, जब तक वे दिखलायी देते रहे। जब पूज्य बाबूजी का दिखलायी देना बन्द हो गया, तब श्रीबंकाजी ने स्वयं को सँभाला और समेटा। मुट्ठी में बन्द उन दिव्य फूलों को सहेज कर सुरक्षित रखा।

श्रीबंकाजी के नेत्रों से आनन्दाश्रुओं की अजस्र धारा बह रही थी। वे सोचने लगे—अभी मात्र एक महीने पहले ही तो मैंने पूज्य बाबूजी के श्रीचरणों में अपना सर्वस्व अपर्ण किया था और आज देखो, उन्होंने श्रीकृष्ण के हाथ के फूल देकर मुझ अकिंचन को निहाल कर दिया। अरे! अभी तो उनको बताया भी नहीं था पर उन दयामय से भला क्या छिप सकता है, वे तो मेरे रोम-रोम की खबर जानते हैं, उनकी कृपा की सीमा नहीं। मेरी शरणागति आज सफल हो गई। **आजु सफल तपु तीरथ त्यागू , आजु सुफल जप जोग बिरागू ॥** श्रीबंकाजी इन्हीं भावों की लहरियों में लहरा रहे थे कि तभी घाट पर आकर नौका एक किनारे लगी। इन्हीं दिव्य भावों के आवर्त में निमग्न श्रीबंकाजी ने अपनी आगे की यात्रा की।

जब-जब श्रीबंकाजी को इस प्रसंग की स्मृति आती थी, तब-तब वे विस्मय की लहरों में खो जाते थे अपने सौभाग्य को देखकर। वे अक्सर कहते थे—वास्तविकता के धरातल पर सच बात यह है कि मेरा जीवन ऐसा नहीं है, जो इस सौभाग्य का अधिकारी समझा जा सके परन्तु भगवदीयता के साकार

स्वरूप परम भागवत बाबूजी की उस महान अहैतुक वत्सलता का बखान किस प्रकार करूँ, जो अपात्र पर भी वात्सल्य की वर्षा करने के लिये अकुला रही हो। सचमुच उनका अनुग्रह, पात्रता-सापेक्ष है ही नहीं। उन्होंने अपात्र को भी अपने अनुग्रह का भाजन मान लिया, यह उनके परम भागवत हृदय की अतुलनीय अद्भुतता ही तो है।

वे दिव्य पुष्प बहुत काल तक श्रीबंकाजी की पूजा में विराजित रहे। जिस प्रकार श्रीबंकाजी को ये दिव्य पुष्प पूज्य बाबूजी के कर-पल्लव से प्राप्त हुये थे, उसी प्रकार उन्हें प्राप्त हुई थी एक दिव्य पुष्प-माला भी। ये दिव्य पुष्प एवं दिव्य पुष्प-माला श्रीबंकाजी के जीवन की दिव्य निधि थी जिन्हें वे अत्यन्त सम्हाल कर, अपनी पूजा की अलमारी में रखते थे।

प्रसंगानुकूल कुछ तथ्य यहाँ प्रस्तुत करना उचित लग रहा है। 1937 में पूज्य राधाबाबा ने अपने बड़े भाई श्रीदेवदत्तजी मिश्र को एक पत्र लिखा था जिसमें उन्होंने भगवान के श्रीचरणों के दिव्य चिन्हों की व्याख्या की थी। उसमें लिखा था कि भगवान श्रीकृष्ण के बायें चरण में, परम चिन्मय पुष्प का चिह्न है। गुरु जब अपने शिष्य-साधक पर परम प्रसन्न होते हैं, तो उन्हें एक पुष्प दिया करते हैं। यह दिव्य पुष्प जैसे ही शिष्य प्राप्त करता है उसको समग्र साधना की सिद्धिरूप फल की प्राप्ति हो गयी, ऐसा ही मानना चाहिये।

एक अन्य अवसर पर पूज्य राधाबाबा ने श्रीबंकाजी से कहा था कि अगर भगवान या गुरुदेव किसी को प्रसन्न होकर पुष्प प्रदान करें तो यह उसके परम मंगल का सूचक होता है। जिसे पुष्प मिले उसकी सफलता सुनिश्चित होती है। वह परम भाग्यशाली साधक अब गुरुदेव का परम अंतरंग निज जन हो जाता है और परम समर्थ गुरुदेव, जिस भगवदीय कार्य के लिये उसका उपयोग करना चाहते हैं, वह स्वयं प्रेरित करके उससे करवा लेते हैं। श्रीबंकाजी के साथ भी कुछ ऐसा ही समझना चाहिये। बाबूजी द्वारा पुष्प प्राप्ति, श्रीबंकाजी के लिये चरम सीमा की आध्यात्मिक उन्नत्ति का पूर्व सूचक ही थी।

****

बाबूजी का सरदारशहर आगमन

पूज्य बाबूजी के श्रीचरणों में अपना सर्वस्व अर्पण करने और दिव्य-पुष्प प्राप्ति के प्रसंग के बाद श्रीबंकाजी का पूज्य बाबूजी के प्रति प्रेम और समर्पण कुछ ऐसा हो गया था कि उनसे मिले बिना, उन्हें देखे बिना इन्हें चैन ही न पड़ता। 1958 जुलाई महीने में ऋषिकेश में इन्हें दिव्य पुष्प प्राप्ति हुई और 1958 की जन्माष्टमी मथुरा में और राधाष्टमी गोरखपुर में, दोनों महोत्सव श्रीबंकाजी ने बाबूजी के साथ ही मनाए। दोनों बहुत ही प्रेरणदायक कार्यक्रम रहे।

संयोग से 1958 के शीतकाल में किसी कार्यवश पूज्य बाबूजी का सरदारशहर आगमन हुआ। श्रीबंकाजी उनसे मिलने गये और आग्रह करके उनको अपने निवास स्थान पर ले आये। श्रीबंकाजी के घर का शुद्ध सात्विक वातावरण पूज्य बाबूजी को बहुत अच्छा लगा। श्रीबंकाजी ने कुछ जलपान की व्यवस्था कर रखी थी परन्तु बाबूजी ने यह कहकर अस्वीकार कर दिया कि इस समय उनकी शुगर बहुत बढ़ी हुई है। तब श्रीबंकाजी ने उन्हें बड़े प्रेम से ताजे टमाटर परोसे जिसे बाबूजी ने रुचिपूर्वक ग्रहण किया। **अति रुचि राम मूल फल खाए॥**

बाबूजी के साथ एकान्त अनुकूल अवसर पाकर आज श्रीबंकाजी अत्यन्त आनन्दित हो रहे थे। उन्हें लग रहा था जैसे विदुर के घर श्रीकृष्ण पधारे हैं। उनके मन की स्थिति ऐसी थी मानो—**जनम रंक जनु पारस पावा॥** एक पिता की भाँति पूज्य बाबूजी ने श्रीबंकाजी से उनके परिवार, काम-काज और भजन-साधन की सब बातें पूछी। श्रीबंकाजी ने निष्कपटता पूर्वक अपने जीवन की एक-एक बात बताई कि कैसे कठिन जेल यात्रा के बाद उन्होंने आर०एस०एस का जीवन छोड़ा। पिताजी के सर्वथा प्रतिकूल जाकर 8000 रुपये का ऋण लेकर एम०ए० में दाखिला लिया। अत्यधिक कठिनाई से पढ़ाई पूरी की और अब वे सरदारशहर में प्राध्यापन कार्य करके ऋण चुका रहे हैं और यतकिंचित् साधन-भजन करने का प्रयास कर रहे हैं। बातों के मध्य में श्रीबंकाजी ने बाबूजी को श्रीकृष्णानन्दजी सरस्वती का परिचय भी दिया और यह भी बताया कि वे अधिकांश वेतन अपने ऋण के भुगतान के रूप में प्रति मास उन्हें भेजते हैं। श्रीबंकाजी के सभी उत्तर से पूज्य बाबूजी को बहुत संतोष हुआ।

श्रीबंकाजी ने बाबूजी से बहुत सकुचाते हुये, अत्यन्त विनीत भाव से अपनी अभिलाषा व्यक्त करते हुये कहा—जिस दिन से मैंने घर छोड़ा है, उसी दिन से मैं सन्त एवं सद्गुरु की तलाश कर रहा हूँ। अनेकों तीर्थों में गया, बहुत से मठाधीश्वर-पीठाधीश्वर-साधु-सन्त-महंत से मिला परन्तु जब उनकी तुलना आप से करता हूँ तो **अब न आँखि तर आवत कोऊ** वाली स्थिति हो जाती है। आपकी रहनी, हँसनी, बोलनी, कथनी, कहनी, किसी भी बात की अन्य किसी भी सन्त से समानता हो ही नहीं सकती है। मैं स्वयं को बिना मोल के आपके हाथों बेच चुका हूँ। मेरी अभिलाषा तो बहुत बड़ी है पर अपने भाग्य पर मुझे जरा भी भरोसा नहीं है। **भाग छोट अभिलाषु बड़॥** आप सहज दयालु हैं, मुझ गरीब स्वल्पमति बालक पर कृपा करके मुझे अपनी शरण में ले लीजिये। अपनी निज सेवा का सौभाग्य मुझे प्रदान कीजिये। मैं सदैव आपकी आज्ञा में रहूँगा।

सारी बातों को भली प्रकार सुनकर पूज्य बाबूजी ने कहा—तुमने अभी बताया कि तुम पर 4000 रूपये का ऋण है और श्रीकृष्णानन्द सरस्वतीजी का 4000 रूपये का ऋण भी तुम शोध कर रहे हो, फिर इसका ब्याज भी देना है। जिन्होंने कठिन परिस्थिति में तुम्हारी इतनी सहायता की है पहले उनका ऋण तो पूरा करो। जब तुम उनके नहीं हो सके तो मेरे क्या होओगे? केवल भावुक होने से काम नहीं चलता है। इतनी बड़ी जिम्मेदारी जो तुमने ली है पहले उसे तो पूर्ण करो।

पूज्य बाबूजी के उत्तर को सुनकर श्रीबंकाजी को अपार दु:ख हुआ और वे एकदम हताश-निराश हो गये। उनके भावुक मन ने बाबूजी की सेवा करने के जो सुनहरे-रुपहले सपने सजाये थे, वे सब-के-सब एक क्षण में बिखर गये। उनका उदास-लाचार मन बारम्बार यही कहने लगा—**काहु न कोउ**

सुख दुख कर दाता। निज कृत करम भोग सबु भ्राता॥

श्रीबंकाजी को निराशा तो बहुत हुई परन्तु उन्होंने उम्मीद नहीं छोड़ी और पूज्य बाबूजी की यह बात गाँठ बाँध ली। वे मन-ही-मन सोचने लगे कि ऐसे निर्णय को क्रियान्वित करना कठिन तो होगा ही पर दृढ़ रहने से भगवत्कृपा अवश्य सहायता करेगी। उन्होंने यह निश्चय किया कि जब तक ऋण की पाई-पाई पूरी नहीं हो जाती वे नौकरी छोड़कर कहीं नहीं जायेंगे और जैसे ही यह ऋण पूरा होगा, वे अपने अध्यापन कार्य से त्यागपत्र देकर पूर्णरूप से बाबूजी के श्रीचरणों का आश्रय प्राप्त कर लेंगे।

****

राधा सहचरी भाव

एक दिन मैंने अपने दादाजी, श्रीबंकाजी से जिज्ञासावश प्रश्न किया— दादाजी! आपकी आध्यात्मिक उन्नति कब हुई?

आत्मगोपन भाव से भावित दादाजी ने अति सकुचाते हुए बहुत ही संक्षिप्त उत्तर दिया—क्रमशः हुई।

मुझे इस उत्तर से संतुष्टि नहीं हुई, मैंने दुबारा पूछने का प्रयास किया पर उन्होंने बात को टालते हुये अन्य प्रसंग सुनाना आरम्भ कर दिया। कुछ वर्षों बाद जब मुझे उनकी कविताओं की डायरी को पढ़ने का सौभाग्य मिला, जिसे वे बहुत छिपा कर रखते थे, तब उस डायरी को एक नहीं, अनेक बार पढ़ा। अधिकतर पृष्ठ पर कविताओं के नीचे तारीख लिखी हुई थी और कही-कहीं केवल सन् लिखा हुआ था। जब मैंने उनके पृष्ठों पर लिखी तारीख को उनके जीवन-क्रम से मिलाया तब मुझे उनके उत्तर 'क्रमशः' का अर्थ कुछ-कुछ समझ में आने लगा।

पूज्य बाबूजी से दिव्य पुष्प प्राप्ति और बाबूजी के श्रीचरणों में पूर्ण समर्पण के बाद श्रीबंकाजी की मधुर उपासना में बहुत उन्नति हुई। जब श्रीबंकाजी बी०ए० के छात्र थे तब पूज्य श्रीराधाबाबा ने उनकी एक कविता को सुनकर, उनके लिये चार व्यक्तियों द्वारा अनुष्ठान करवाया था और स्वयं भी चार साल 1944-47 तक श्रीबंकाजी के लिये अनुष्ठान किया था कि इन पर भगवती सरस्वती की कृपा बरसे, इस बालक को श्रीकृष्णभक्ति प्राप्त हो और इसकी लेखनी में अद्भुत लेखन क्षमता का अवतरण हो। उस अनुष्ठान की सफलता के बाद श्रीबंकाजी की डायरी में लिखी कविताओं की शैली बदल गयी थी।

1947 के पहले तक श्रीबंकाजी अपनी कविता में प्रभु, मुरारी, कृष्ण, श्याम, मोहन, मुरली मनोहर, घनश्याम, नन्दलाल, मुरलीधर, भगवान, गोपाल, आदि शब्दों का सम्बोधन करते थे। 1947 के पश्चात् अर्थात् पूज्य बाबा के अनुष्ठानपूर्ति के बाद दो महत्तवपूर्ण परिवर्तन हुये। प्रथम श्रीकृष्ण, गोपाल आदि नामों का सम्बोधन करना उन्होंने एकदम बन्द कर दिया। दूसरा उन्होंने स्वयं के लिये स्त्रीलिंग शब्दों का प्रयोग प्रारम्भ कर दिया और वे स्वयं को एक ब्रज गोपी-सहचरी-सखी रूप में देखने लगे।

बाबूजी की कृपा प्राप्ति के बाद अर्थात 1958 के बाद श्रीबंकाजी की कविताओं में फिर से एक नया भाव देखने को मिला जो पहले कभी नहीं देखा गया था। 1958 के बाद उनका एकमात्र समर्पण रासेश्वरी श्रीराधा के श्रीचरणों में हो गया। 1958 के बाद की किसी भी कविता में श्रीकृष्ण का नाम उन्होंने नहीं लिया है। उनकी सारी प्रार्थना भगवती माँदुर्गा—माँपार्वती—माँजगदम्बे से होती थी।

श्रीबंकाजी के हृदय का अंतरंग भाव यह था कि श्रीप्रिया-प्रियतम तो रस के खिलौने हैं जो नित्य निकुंज में निरन्तर खेल रहे हैं। परम रसिक सन्त नित्य उनका लाड लडाते हैं और उनपर बलिहार सखियाँ, मंजरियाँ पल-पल, स्वसुख-वांछा-विहीन सेवा करती हैं। ऐसी स्थिति में उनसे कुछ कहना, प्रार्थना करना उनके आनंद में रोक लगाने जैसा होगा, इसलिये जीवन भर श्रीबंकाजी ने कभी श्रीप्रिया-प्रियतम से कोई प्रार्थना-माँग-फरियाद कुछ नहीं किया। श्रीयुगल सरकार की तो उन्होंने मधुर लीला का गायन किया अपनी पुस्तकों में और एकांत में सारी प्रार्थना भगवती माँ जगदम्बे से की। ऐसी एक नहीं उनकी अनेकों रचनाएँ डायरी में हैं।

मेरा दूसरा नाम राधा-पद-रजकण हो

जिस तरह हरिश्चन्द्र का दूसरा नाम सत्य और
पाणिनि का दूसरा नाम व्याकरण है,
जिस तरह सावित्री का दूसरा नाम पातिव्रत्य और
रति का दूसरा नाम सौन्दर्य है,
जिस तरह विष्णुप्रिया का दूसरा नाम क्रन्दन और
मीरा का दूसरा नाम पीड़ा है,

उसी तरह हे कृपामयि जगदम्बिके!
तुम यही विधान करो,
मेरा दूसरा नाम
राधा-पद-रजकण हो।

मेरा जीवन व्रत राधा-पद-चिन्तन हो

जिस तरह सूर्य का एक व्रत प्रकाश फैलाना और
चाँद का एक व्रत शीतलता बाँटना है,
जिस तरह सरिता का एक व्रत बहते रहना और
सागर का एक व्रत हिलोर लेना है,
जिस तरह वृक्ष का एक व्रत आश्रय देना और
वसुधा का एक व्रत क्षमा है,

उसी तरह हे कृपामयि जगदम्बिके!
तुम यही विधान करो
मेरा जीवन व्रत
राधा-पद-चिन्तन हो।

मेरी अश्रु शोभा राधा-पद-सिंचन हो

जिस तरह गागर की शोभा आराध्य के चरणों पर रीतने में और
सरोवर की शोभा कमल के चरणों पर लहराने में है,

जिस तरह बादल की शोभा वसुधा के चरणों को भिगोने में और
सरिता की शोभा सागर के चरणों में समाने में है
जिस तरह निर्झर की शोभा पर्वत के चरणों को पखारने में और
ओस की शोभा लतिका के चरणों से लिपटने में है,
उसी तरह हे कृपामयि जगदम्बिके!
तुम यही विधान करो
मेरी अश्रु शोभा
राधा-पद-सिंचन हो।

****

फटकार और दुलार

प्रसंग सन् 1960 या 61 का है। श्रीबंकाजी सर्दी की छुट्टियों में कॉलेज बन्द होने पर सरदारशहर से गोरखपुर आ जाया करते थे। बाबूजी अपने स्वरचित पद प्रायः किसी को नहीं देते थे, यहाँ तक कि दिखलाने में भी हिचकिचाते थे। श्रीबंकाजी पर विश्वास करके उन्हें अपने पद देते हुए कहा— इन पदों की नकल साफ-साफ एक कागज पर उतार लो। न किसी को दिखाना है और न किसी को बताना है।

सर्दी की छुट्टी थी। इस दुर्लभ सेवावसर को पाकर श्रीबंकाजी अपने भाग्य की सराहना करने लगे। बाबूजी के पदों की, यहाँ तक कि निकुंज लीला के निगूढ़तम पदों की नकल भी उतारने का उन्हें सौभाग्य मिला।

श्रीबजरंगलालजी बजाज बाबूजी के घनिष्ठ मित्र थे। बाबूजी के पदों में उनकी बड़ी रुचि रहती थी। श्रीबजरंगलालजी के जबलपुर से आने पर गीतावाटिका में रासपंचाध्यायी, कीर्तन, पद-गायन की सरिता बहने लगती। रात्रि में पदों का कार्यक्रम होता। श्रीबजरंगलालजी प्रेरणा करके बाबूजी को पदों के कार्यक्रम में ले आते। पूज्य श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी को भी बुला लेते। रात को नौ-दस बजे से चलने वाला पदों का यह कार्यक्रम, दो-तीन घंटे तक चलता। कभी-कभी तो रात के दो-तीन भी बज जाते।

एक रात की बात है। पदों के गायन का कार्यक्रम चल रहा था। कोठी

के हाल-कमरे में वाटिका के कतिपय स्वजन उपस्थित थे। सभी अपने ही लोग थे। बाबूजी तकिये के सहारे लेटे हुये थे। कभी कोई, कभी कोई अपनी रुचि का पद बताता, उस पद को पूज्य श्रीगोस्वामीजी गाते, किन्तु अधिकांश बार बाबूजी के ही द्वारा बताया हुआ पद गाया जाता।

श्रीबंकाजी ने भी उस समय रस के प्रवाह से प्रभावित होकर, एक पद पूज्य श्रीगोस्वामीजी से गाने के लिये अनुरोध किया। पद में निकुंज की निगूढ़ लीला का चित्रण था। बाबूजी के पदों की कुछ-कुछ जानकारी तो थी ही। पूज्य श्रीगोस्वामीजी ने गाना आरम्भ किया। पद की भाव-धारा में सभी का मन डूब गया।

पद का गान समाप्त होते ही बाबूजी तकिये का सिरहाना छोड़कर उठ बैठे। उनके उठने से श्रीबंकाजी ने यह अनुमान लगाया कि वे इस निकुंज लीला के पद से मेल खाने वाले किसी दूसरे पद को गाने के लिये बतायेंगे, पर बात तो दूसरी ही थी। किसे पता था कि बाबूजी के अन्तर में रोष है। बाबूजी के अन्तर का रोष उनकी आँखों में उतर आया। वही रोष वाणी में उतर आया। श्रीबंकाजी की ओर उन्मुख होकर क्षोभ भरी वाणी में उन्होंने कहा—यह पद गाने के लिये क्यों कहा? यह चीज क्या सबके सामने गाने की है?

बाबूजी की वाणी में क्षोभ बहुत अधिक था। श्रीबंकाजी का भावुक हृदय इस रोष की कल्पना भी नहीं कर सकता था। श्रीबंकाजी के तो पैरों के नीचे से मानो जमीन ही खिसक गयी। श्रीबंकाजी के चहरे का रंग बदल गया।

बाबूजी का डाँटना जारी था—क्या निकुंज के भाव दुनिया को बताने की वस्तु है? कल से पदों की नकल करना बन्द। इसको सुनने के कितने लोग अधिकारी हैं? कितने पात्र हैं, जो इसको सही रूप में ग्रहण कर पायेंगे?

श्रीबंकाजी के आँखों के सामने अँधेरा छा गया। थोड़ी देर बाद बाबूजी ने पूछा—क्या तुमने किसी पद की नकल अपने लिये की है?

श्रीबंकाजी चाहते थे बोलना, परन्तु बोल नहीं पाये। तालू से जीभ चिपक गयी। बड़ी कठिनाई के बाद वे इतना ही कह पाये—नहीं।

बाबूजी ने फिर पूछा—क्या किसी को किसी पद की नकल करके दी है?

श्रीबंकाजी ने फिर कहा—नहीं।

बाबूजी ने रोष में कहा—बस, कल से नकल करना बन्द। मेरे लिखे पद तथा सारी सामग्री मुझको कल वापस कर दो। सारे श्रोता गुम-सुम हो गये। श्रीबजरंगलालजी ने परिस्थिति को सँभाला। पद-गान का कार्यक्रम समाप्त हुआ। सभी अपने-अपने घर पधारे। श्रीबंकाजी भी अपने कमरे में आ गये, पर आँखों में नींद नहीं। मन पीड़ा से व्यथित था। **मिटा मोदु मन भए मलीने**॥

कमरे के एकान्त में पड़े श्रीबंकाजी सोचने लगे—बाबूजी ने ठीक ही तो कहा कि निकुंज-रहस्य की यह निगूढ़ चर्चा क्या जगत् में प्रकट करने के योग्य है और मुझे क्या अधिकार है कि किसी के जीवन के सौरभ को, ऐसे गुह्य सौरभ को इस प्रकार बिखेरने का प्रयास करूँ? विश्वास करके बाबूजी ने मुझको सेवा सौंपी, पर मैं न सेवा ठीक से कर सका और न विश्वास पूरा निभा पाया।

दूसरे दिन सवेरे भी बिस्तर से दुःख के मारे श्रीबंकाजी से उठा नहीं गया। वे गुमसुम से होकर बस पड़े रहे। तभी क्या देखते है कि करीब आठ-नौ बजे उनके कमरे के द्वार पर पूज्या माँ खड़ी हैं। पता नहीं माँ को किसने यह सब बातें बता दी। माँ के आने का उन्हें अनुमान नहीं था, खिन्नता के मारे उन्हें अनुमान लगाने का अवकाश ही कहाँ था? माँ उनकी स्थिति को न जाने कैसे जान गयीं। माँ के ओठों पर थी मधुर मुस्कान, मुख पर अपार आत्मीयता और आँखों में अमित वात्सल्य। माँ ने कहा—पगले! अभी तक उठे नहीं।

माँ को देखते ही श्रीबंकाजी सकपकाकर झट से उठ खड़े हुये। उनके मलिन मुख को देखकर माँ ने कहा—उनके कहने का विचार नहीं करना चाहिये। उनका रोष तो पानी पर की लकीर है। उनको खुद अपने कहने पर दुःख है। उठो, नहाओ-धोओ।

श्रीबंकाजी रो पड़े......, आँसुओं में बह पड़े। बाबूजी के अन्तरंग निधि

को सबके सामने कर देने का परम खेद तो था ही, माँ के वात्सल्य ने उनके बाँध को तोड़ दिया। माँ के अतिरिक्त और कौन है जो आश्रित को सँभाले, जो घावों को सहलाये। माँ के वात्सल्य ने उनके मन के भार को बहुत कुछ हल्का कर दिया और वस्तुतः बाबूजी का वह रोष पानी पर की लकीर ही था। इसका प्रमाण यही है कि पदों के नकल करने का कार्य पूर्ववत् चालू रहा। शीतकालीन अवकाश पूर्ण होने पर वे गोरखपुर से सरदारशहर लौट आये।

****

''मरु-ज्योति" के सम्पादक

गाँधी विद्यामन्दिर ट्रेनिंग कॉलेज की वार्षिक पत्रिका ''मरु-ज्योति" के श्रीबंकाजी कुशल सम्पादक रहे। वे शैक्षिक, आध्यात्मिक, सामाजिक, पौराणिक विषयों पर प्रेरक व कल्याणकारी लेखों का सुन्दर संकलन करते थे। पत्रिका में कॉलेज में हुए सांस्कृतिक कार्यक्रमों व प्रतियोगिताओं का विधिवत् विवरण दिया करते थे। सभी छात्राध्यापकों के स्थायी पते देते थे। यथास्थान प्रबन्धक व प्रशिक्षक वर्ग एवं प्रतियोगिताओं में पुरस्कृत छात्राध्यापकों के विवरण, चित्र सहित देते थे।

इस तरह जिन्होंने आगे चलकर गीता-प्रेस गोरखपुर में, परम यशस्वी आदि सम्पादक पूज्य श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारजी के निर्देशन में सुविख्यात कल्याण पत्रिका के सम्पादकीय विभाग में काम किया, उनकी सम्पादन कुशलता की प्रथम झलक को उनके छात्रों को पढ़ने का सौभाग्य मिला।

****

श्रेष्ठतम शिक्षक

विद्यामन्दिर टीचर्स टेनिंग कॉलेज सरदार शहर में प्रचलित प्रथा थी कि वार्षिक परीक्षा पूर्ण होने पर प्रशिक्षक एवं शिक्षार्थी सभी की मिलकर कॉलेज-हॉल में विशाल सभा होती थी। कॉलेज हाल छात्रों और अध्यापकों से भरा था। इस सभा में भी यही आयोजन किया गया।

सभाध्यक्ष प्रधानाचार्यजी ने घोषणा की—अबतक प्रशिक्षक वर्ग ने

छात्राध्यापकों की समीक्षा की है। आज छात्राध्यापक कॉलेज प्रबंधन तथा शिक्षकवर्ग की समीक्षा करेंगे।

अनेकों कुशल वक्तओं ने अपने अनुभूत राहत और आहत के भावों को खुलकर व्यक्त किया। जिनसे क्षुब्ध थे उनके प्रति क्षोभ प्रदर्शित किया। सभी वक्ताओं ने श्रीबंकाजी के प्रति विशेष आभार व्यक्त किया। जयपुर मण्डल में आयोजित वाद-विवाद-प्रतियोगिता में प्रथम पुरस्कार प्राप्तकर्ता श्रीओमप्रकाश कुलश्रेष्ठ ने अपने भावों को इस तरह व्यक्त किया—''परम पूज्य नित्यवन्दनीय श्रीराधेश्यामजी बंका की दक्षता, सहृदयता, सरलता तथा वात्सल्यता से हम सभी कृतज्ञ है। इनकी सतत मन्द-स्मित-चहरे की छवि हमारे चित्त पर सदा छाई रहती है। ''श्रेष्ठतम प्रशिक्षक" की उपाधि से विभूषित कर हम सभी श्रद्धापूर्वक इन्हें शत्-शत् नमन करते हैं।" सभी श्रोताओं ने भाव-विभोर होकर जोरदार तालियों की गड़गड़ाहट से श्रीबंकाजी का अभिनन्दन किया।

****

श्रीशिवराजजी की गुरु वन्दना

2008 में जब मैं आदरणीय श्रीशिवराजजी से मिली तब उन्होंने अपने गुरुजी श्रीबंकाजी के लिये भावपूरित मन से कुछ पंक्तियाँ लिख कर दी। वह यहाँ ज्यों की त्यों दी जा रही है।

श्यामावदातं महाभावार्द्र नेत्रं, प्रसन्न वक्तं स्वजनैक जीवनम्।
सत्साहित्य-सृजकं, सततं नाम-जपन्तं, बंका श्रीराधेश्याम!
श्रद्धया त्वां नमाम्यहम्॥

भगवान् की मंगलमयी अहैतुकी कृपा से सन् 1959-60 में गाँधी विद्या मन्दिर टीचर्स टेनिंग कॉलेज से मैंने बी०एड० की थी। उस समय परम पूज्य श्रीराधेश्यामजी बंका उस कॉलेज में प्राचार्य पद पर सुशोभित थे। उस अवधि में पूज्य श्रीबंकाजी का जो सराहनीय सान्निध्य व स्नेह मुझे मिला उससे वे मेरे लिये चिर अभिनन्दनीय बन गये। उसकी अभिव्यक्ति मुझ स्वल्पमति की क्षमता से परे है, फिर भी दिव्य सन्त-चरित-माला में स्वान्तः सुखाय यतकिंचित् शब्द सुमन पिरोना अपना धर्म समझ रहा हूँ।

परम पूज्य श्रीराधेश्यामजी बंका आध्यात्मिकता के आधार-स्वरूप आचार्य थे। शहद में मधुरता, वसंत में सहृदयता सहज सुलभ होती है। इसी प्रकार श्रीबंकाजी विद्वान लेखक एवं भावुक कवि थे। वे सदा सेवा तत्पर रहे। उनमें पर दु:ख कातरता कूट-कूटकर भरी थी। मेरा मन एक महान व्यक्तित्व के सानिध्य की अनुभूति से आज तक आह्लादित है। श्रीबंकाजी की अनेक रचनाएँ उनकी विलक्षण प्रतिभा और मेधा के परिचायक हैं। मेरा रोम-रोम उनके श्रीचरणों की वंदना करता है।

वन्दहुँ चरण सरोज तिहारे।
सुन्दर श्याम मोहन श्रीबंका! राधेजू के प्यारे॥

छ: बरस प्रशिक्षण-जीवन में, हम से जन उद्धारे।
गीतावाटिका मम पुण्य तीर्थ स्थली, जब से आप पधारे॥

दुलारे माँ, बाबूजी, बाबा के बन गये सदा बहारे।
सचल वृन्दावन बाबूजी के उर आँगन रीझन हारे॥

राधा ही राधा बाबा के भाव-छलकन-परखन हारे।
साधना-गोपन-दक्ष, रसिक प्रिय-प्रिया चरनन चित धारे॥

वृन्दा-अर्चक, कन्या-पूजक, प्रणाम-वल्लरी सृजन हारे।
गीतावाटिका आध्यात्मिक आकाश के, बने हुए ध्रुवतारे॥

जागत, न्हावत, खावत, धावत प्रति-पल नाम उच्चारे।
शिवराज सेवक के धन्य भाग्य, नित सेवा में चित धारे।

यदाकदा श्रीबंकाजी प्रसंगवश जो कुछ सुनाया करते थे वे मेरे लिये सूक्ति-सुधा-बिन्दु रूप में परम हितकारी सिद्ध हुये-

● जगत से मोह घटाए और जगदीश से नेह बढ़ाये।

● सुख में गरवाए नहीं और दु:ख में घबराए नहीं।

● श्रीराम के चरित्र का अनुकरण करे और श्रीकृष्ण के लीलामय चरित्र का चिन्तन करे।

● गीता पाठ में गोविन्द के मन्द मुस्कान युक्त मुखारविन्द का ध्यान करे।

● नयन निरखै सब थल भगवान , कृष्ण कौ कीर्तन नित कीजै।

● न हमने हँस के सीखा है, न हमने रो के सीखा है।
जो कुछ भी हमने सीखा है, किसी का होके सीखा है।

सरदार शहर की सरहद में जैसा मैंने समझा—दैवी सम्पदा, स्थिति-प्रज्ञा, गुणातीतता, ध्यान, प्रेमाभक्ति आदि साधुता के सम्पूर्ण सुलक्षण पूज्य श्रीबंकाजी के स्वभाव में ऐसे समाए रहे जैसे श्यामा गाय के दूध में मक्खन।

****

दो शब्द—'मैं मुक्त'

श्रीबंकाजी को कृपामूर्ति श्रीकृष्णानन्द सरस्वतीजी ने, अपने प्रति आस्थावान् सेठजी से ऋण लेकर, एल०टी० करवाई थी। उनके ऊपर मूल 8000 रुपये और ब्याज का कुल ऋण था। मासिक वेतन से ऋण का भुगतान किया जा रहा था। सात साल तक समय-समय पर वे अपने वेतन से पर्याप्त पूंजी बचाकर पूज्य श्रीकृष्णानन्दजी के पास धन-राशि भेजते रहे।

पूज्य बाबूजी के भावपूर्ण सत्संग और संतोचित व्यक्तित्व से श्रीबंकाजी इतने प्रभावित थे कि सरदारशहर में एक-एक दिन रहना उनको भारी हो रहा था। वे तो अपने को पूज्य बाबूजी के चरणों में पूर्णरूप से समर्पित कर चुके थे और वे शीघ्राति-शीघ्र उनके पास पहुँच कर उनकी निज सेवा में लग जाना चाहते थे परन्तु इतना बड़ा ऋण उनके कदम रोके था।

सरदारशहर के 1955 से 1962 तक का उनका वेतन कर्ज़ चुकाने में गया। स्वयं के लिये वे कम-से-कम उपयोग करके सारा पैसा बचाया करते थे। कुछ अति गरीब छात्र भी थे जिनकी सहायता वे करते थे परन्तु इसके सिवा उन्होंने कोई फिज़ूल खर्ची नहीं की और पूरी ज़िम्मेदारी से सात वर्षों तक खट कर ऋण का भुगतान किया।

उन्होंने शिवराज से कहा—ऋण के पूर्ण भुगतान तक ही मैं सरदारशहर में सेवारत हूँ। श्रीकृष्णानन्दजी के द्वारा लिखे पत्र में जब यह लिखा हुआ आ जायेगा कि 'मैं मुक्त' तब ही सेवा से त्यागपत्र देकर, गीतावाटिका गोरखपुर, पूज्य बाबूजी सन्त प्रवर श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार की सेवा में पहुँच जाऊँगा।

यह सुन कर श्रीशिवराज ने जिज्ञासा की—गुरुजी, यदि भविष्य में आपसे सम्पर्क करना हो तो आप कहाँ मिलेंगे?

श्रीबंकाजी ने उत्तर दिया—मेरे चार गन्तव्य स्थान है। सेवा-रत स्थान सरदारशहर, गीतावाटिका गोरखपुर, तीर्थ स्थल या पूज्य बाबूजी तथा पूज्य राधाबाबा जहाँ कहीं भेजे वहाँ।

पूज्य श्रीकृष्णानन्द सरस्वतीजी श्रीधाम वृन्दावन में श्रीजमुनाजी के पावन तट पर स्थित साधु-आश्रम की एक छोटी-सी कुटिया में रहते थे। श्रीशिवराज मथुरा के ही थे अत: वे जब भी घर जाते तब श्रीबंकाजी एक लिफाफे में रुपये या बैंक ड्राफ्ट रखकर उसे दे दिया करते और अन्य समय money order से रुपय भेजा करते।

अंत में वह दिन भी आ गया जब पूज्य श्रीकृष्णानन्द सरस्वतीजी का पत्र आया जिसमें लिखा था—

आज मैं ऋण मुक्त हो गया। एक विरक्त व्यक्ति को ऋण लेना ही नहीं चाहिये जो मुझे लेना पड़ा, अपने भाई की असमय मृत्यु के कारण। उनकी दो पुत्रियों के विवाह का दायित्व मुझ पर आ गया था। विवाह के लिये 4000 रुपये का ऋण लेना मेरी पहली भूल थी। ऋणी व्यक्ति को सन्यास नहीं लेना चाहिये। ऋण शोध किये बिना सन्यास लेना मेरी दूसरी भूल थी। मैंने किस-किस के आगे ऋण चुका देने के लिये हाथ नहीं फैलाया। धनी सेठ, बड़े कारोबारी, सन्त-महन्त आदि आदि सब जगह प्रयास किया परन्तु कहीं से भी रुपये का जुगाड़ नहीं कर पाया। फिर तुमने मेरी सहायता की। तुम्हारे पास स्वयं रुपये नहीं थे उसके बाद भी तुम्हारी नीयत सच्ची थी। तुम अत्यधिक उदार हो। तुम्हारे सतप्रयासों से आज मैं ऋण मुक्त हो गया। 4000 रुपये मेरी पुत्रियों के विवाह का और 4000 रुपये तुम्हारी पढ़ाई का सारा ऋण ब्याज समेत चुकता हो गया है। तुमने एक सन्यासी को ऋण मुक्त किया है, मेरा रोम रोम तुम्हें आशीर्वाद देता है, तुम्हें हर क्षेत्र में सफलता प्राप्त हो। प्रभु की असीम कृपा तुम पर बनी रहे। **सुफल मनोरथु होहु तुम्हारे।।**

श्रीबंकाजी तो मानो इस पत्र की वर्षों से प्रतीक्षा कर रहे थे। इस पत्र को पढ़ कर उन्हें कितनी प्रसन्नती हुई होगी ये शब्दों में लिखा नहीं जा सकता। **सो मुख लाख जाइ नहिं बरनी ।।** उनकी मेहनत सफल हो गयी। उनकी डिग्री प्राप्ति की ललक और सन्त सेवा की इच्छा दोनों, सात साल के कठिन परिश्रम की कमाई से पूर्ण हुई। इस पत्र को पढकर और गुरुतुल्य श्रीकृष्णानन्दजी के आशीर्वाद को प्राप्त कर उनका हृदय मयूर नृत्य करने लगा और नयन आनन्दाश्रुओं से भीग गये।

श्रीबंकाजी अक्सर कहा करते थे कि आशीर्वाद माँगा नहीं जाता है, न ही आशीर्वाद दिया जाता है। आशीर्वाद तो सेवा के मोल छीन लिया जाता है। कुछ ऐसा करो कि देनेवाला आशीर्वाद देने के लिये ललक पड़े। यही उन्होंने अपने जीवन में स्वयं करके दिखाया।

****

टीचर्स ट्रेनिंक कॉलेज से त्यागपत्र

श्रीकृष्णानन्दजी के पत्र को प्राप्त करते ही श्रीबंकाजी ने पूज्य बाबूजी को पत्र द्वारा सूचित किया कि अब मैं ऋण मुक्त हो गया हूँ और सरदारशहर के प्रध्यापन कार्य से त्यागपत्र देकर पूर्ण रूप से आपकी सेवा में रहकर जीवन बिताना चाहता हूँ। मेरी अंतरग अभिलाषा को तो आप जानते ही है। **मोर मनोरथु जानहु नीकें।** अब आप कृपा करके मुझ अबोध बालक को अपनी शरण में लेकर अपनी निज सेवा का सौभाग्य प्रदान कीजिये। मुझे शीघ्र-से-शीघ्र बुला लीजिये।

बाबूजी का अविलम्ब उत्तर श्रीबंकाजी को मिला जिसमें उन्होंने लिखा था—अब किस बात की देरी है! जब चाहो गीतावाटिका आ सकते हो।

इस पत्र को पढ़कर श्रीबंकाजी को इतनी प्रसन्नता हुई मानो भरतजी को राम मिल गये हो! उन्होंने गीतावाटिका गोरखपुर आने के लिये, जुलाई 1962 को टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज में त्याग पत्र दे दिया।

महाविद्यालय के संस्थापक थे पूज्य श्रीकन्हैयालालजी दुगड़। जब श्रीबंकाजी ने त्यागपत्र दिया, तब महाविद्यालय के कार्याधिकारियों ने उसे स्वीकार नहीं किया। उनका अनुमान था कि श्रीराधेश्याम बंका अधिक वेतन के लोभ में, अन्य किसी महाविद्यालय में कार्य करने जा रहे हैं। वे ऐसा सोच रहे थे कि इनकी सात साल पुरानी नौकरी है और इनके जैसे सुयोग्य अध्यापक का महाविद्यालय से चला जाना उचित नहीं है। यही कारण था कि महाविद्यालय के अधिकारीजन श्रीबंकाजी के त्यागपत्र को स्वीकार नही कर रहे थे। इस परिस्थिति को देखकर श्रीबंकाजी श्रीदुग्गड़जी से मिले और उनसे निवेदन किया—मैं किसी अन्य महाविद्यालय में नहीं जा रहा हूँ अपितु साधनात्मक भावनाओं से प्रेरित होकर, पूज्य श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार के पास गीतावाटिका जा रहा हूँ। आप तो जानते ही हैं कि **प्रथम भगति संतन्ह कर संगा॥** यही मेरा प्रयास है, आप कृपा करके मुझे अपने चयन किये हुए साधन-पथ पर चलने की अनुमति प्रदान कीजिये।

पूज्य श्रीदुग्गड़जी स्वयं एक सन्त व्यक्ति थे और पूज्य स्वामी श्रीशरणानन्दजी के प्रति उनकी अगाध श्रद्धा थी। इसी के साथ उनकी अगाध श्रद्धा पूज्य बाबूजी के प्रति भी थी। जब उन्होंने श्रीबंकाजी की बात सुनी तो बहुत प्रसन्न हुये और उन्होंने तुरन्त कहा—फिर तो आपको अवश्य जाना चाहिये। वही मनुष्य सराहनीय है जो साधनात्मक जीवन व्यतीत करना चाहता है। **सखा परम परमारथु एहू। मन क्रम बचन राम पद नेहू॥**

इधर तो पूज्य श्रीदुग्गड़जी ने श्रीबंकाजी से ऐसा कहा और उधर महाविद्यालय के कार्याधिकारियों से कहा—श्रीबंकाजी का त्यागपत्र स्वीकार करके 24 घण्टे के भीतर उनका सारा हिसाब शीघ-से-शीघ्र चुका देना चहिये।

पूज्य श्रीदुग्गड़जी के निर्देशानुसार महाविद्यालय के कार्याधिकारियों ने श्रीबंकाजी का त्यागपत्र स्वीकार कर लिया और वहाँ से विदाई लेकर श्रीबंकाजी गीतावाटिका चले आये। विदाई का दृश्य भी बड़ा भावपूर्ण था।

****

वात्सल्य वैभवा पूज्या माँ

सन् 1962 में श्रीबंकाजी सरदार शहर के महाविद्यालय से त्यागपत्र देकर गीतावाटिका स्थायी रूप से चले आये थे, पूज्य बाबूजी और बाबा की आध्यात्मिक छत्र-छाया में रहने के लिये। उन दिनों उनकी भोली और भावुक दृष्टि को वाटिका के वृक्ष, निकुंज के वृक्ष लगते थे। वृक्षों पर चहकते पक्षी, निकुंज के पक्षी लगते थे। हरी-भरी लताओं से घिरे हुये वृक्ष, अत्यधिक नयनाभिराम लगते थे। वे अपने भावों के प्रवाह के साथ बहते रहते थे।

जब श्रीबंकाजी गीतावाटिका आये उस वक्त पूज्य बाबूजी की व्यस्तता सीमातीत थी और बाबा का मौन-व्रत चल रहा था। हर संस्था में कुछ व्यक्ति ऐसे होते ही हैं जिन्हें नवीन आदमी का सेवा में नियुक्त होना पसन्द नहीं होता है। उन्हें यह भय होता है कि अगर यह नया आदमी सुयोग्य साबित हो जाये, अधिक सेवा करने लगे तो वह गुरुदेव की अधिक निकटता प्राप्त कर लेगा और उसकी दूरी बढ़ जायेगी या उसे सेवा से हटा दिया जायेगा। उन दिनों गीतावाटिका का वातावरण भी कुछ ऐसा ही था। वहाँ के लोग श्रीबंकाजी को कभी कुछ उलट-पलट कह देते, कभी ताना मारते तो कभी उनकी हँसी उड़ाते। श्रीबंकाजी यह सब देख-समझकर भी कुछ बोलते नहीं थे। उन्होंने अपने जीवन को उन लोगों के अनुकूल बनाने के लिये कई बदलाव भी किये परन्तु ऐसा जीवन बनाने से श्रीबंकाजी स्वयं अप्रसन्न रहने लगे और उनका मन वाटिका से उचट गया।

अपने नयनों में जिन आध्यात्मिक सपनों को लेकर श्रीबंकाजी गीतावाटिका आये थे, उनके वे सपने मात्र सपने ही रह गये थे। न उन्हें बाबूजी की सेवा का अवसर मिल रहा था और न ही उन्हें अपनी भजन-साधना ठीक प्रकार से होती दिखाई दे रही थी। उन्होंने अपने मन की बात पूज्य बाबूजी से कही—मैं

अब आपके पास काम करना चाह रहा हूँ। आप मुझे काम बतलाइये। अब से मैं आपका कार्य किया करूँगा।

श्रीबंकाजी के कथन को सुनकर बाबूजी कुछ क्षण मौन रहे। पूज्य बाबूजी श्रीबंकाजी को निराश नहीं करना चाह रहे थे। कुछ सोचकर उन्होंने कहा—तीन-चार दिन ठहरो। परिस्थिति में 'जमावट' आने दो।

यह उत्तर सुनकर श्रीबंकाजी वापस चले आये। 'जमावट' शब्द महत्त्वपूर्ण है। तीन चार दिनों में जाँच हो जायेगी कि राधेश्याम का झुकाव किधर है और वह अपने निर्णय पर कितना दृढ है। जब तीन-चार दिन बीत गये और पूज्य बाबूजी ने देख लिया कि राधेश्याम अपने निश्चय का पक्का है तब काम बतलाने लगे। 'कल्याण पत्रिका' के लिये आने वाले लेखों को सम्भाल करके रखना, उन्हें रजिस्टर में श्रृंखलाबद्ध करना और बाबूजी के पास आये सम्पादकीय विभाग के पत्रों का तथा अर्ध-वैयक्तिक पत्रों का उत्तर देना श्रीबंकाजी का कार्य था। वे अपने केबिन में बैठकर कार्य किया करते थे।

केबिन अर्थात पावन कक्ष की सीढ़ियाँ जहाँ समाप्त होती है, वहाँ एक छोटा सा छज्जा था। अब इसका रूप बदल गया है। उस छज्जे को घेरकर एक छोटा सा कमरा बना लिया गया था और उसे केबिन कहते थे। यही केबिन श्रीबंकाजी के बैठने का स्थान था जहाँ बैठकर वे बाबूजी का कार्य किया करते थे। आजकल इस केबिन में बाबूजी के द्वारा सम्पादित कल्याण विशेषांकों के चित्र सुसज्जित हैं।

धीरे-धीरे समय बीतता चला गया। ऐसा कदापि नहीं सोचना चाहिये कि श्रीबंकाजी को गीतावाटिका में रहने का स्थान मिल गया तो उनकी सब समस्या दूर हो गयी और वे अपने सपने को साकार रूप में घटित होता देख रहे थे। उन्हें हर कदम पर विपरीत परिस्थिति का सामना करना पड़ता था। बाबूजी और माँ का उन पर पूर्ण विश्वास था परन्तु कुछ लोगों की आँख में वे काँटे की भाँति चुभा करते थे। लगभग 1965 के आस-पास की बात है। कुछ बातें ऐसी हैं जिनकी अभिव्यक्ति सर्वथा उनुचित है परन्तु परिस्थितिवशात् कहना पड़ रहा है। घटनाओं का क्रम कुछ ऐसा घूमा कि श्रीबंकाजी का मन गीतावाटिका से पूर्णत: उचट गया और वे वापस सरदारशहर पढ़ाने के लिये जाने की बात सोचने लगे।

जब वे अत्यन्त दु:खी हो जाते तब उनके शब्द, कविता का रूप लेकर उनकी डायरी में झरने लगते और भगवती जगदम्बा से कातर प्रार्थना होने लगती—

कबहुँक अम्ब अवसर पाई।
मेरिऔ सुधि द्याइबी कछु करुन कथा चलाई॥

आज मुझे सहारा दो

आज मुझे सहारा दो।
तेरे सहारे के बिना मेरा जीवन
न अंकुरित होगा न पल्लवित होगा
तुम अपना सहारा दो।

प्रकृति के प्रांगण में
सरिता की धारा बढ़ती है तो तट के करों का सहारा लेकर
रवि का प्रकाश उतरता है तो रश्मि के करों का सहारा लेकर
लतिका की हरियाली फैलती है तो वृक्ष के करों का सहारा लेकर
आज अपने करों का सहारा दो।
अपने करों के कोमल संस्पर्श से
मेरे सपनों को साकार कर दो।
तुम अपना सहारा दो।

जगती के प्रांगण में
पहिये में गति आती है तो केवल धुरी के स्नेह का सहारा पाकर
मथानी में गरिमा आती है तो केवल दधि के स्नेह का सहारा पाकर

दीपक की शिखा उठती है तो वर्तिका के स्नेह का सहारा पाकर
आज अपने स्नेह का सहारा दो।
अपने स्नेह के कोमल संश्लेष से
मेरे सपनों को सुरक्षित कर दो।
तुम अपना सहारा दो।

श्रीबंकाजी के जाने की बात सुनकर पूज्य बाबूजी ने उनसे कहा—जाने के पहले कल्याण पत्रिका के लेखों की फाइल, बाहर से आये हुये पत्र जिनका उत्तर लिखने के लिये मैंने दिया था, सभी पत्र तथा अन्य जितने कागज है सब श्रीगुलाबचन्द्र बोथरा को सँभला दो।

बाबूजी के इस कथन के बाद श्रीबंकाजी ने श्रीबोथराजी को सभी कागज सँभला दिया। यह बात बिजली की तरह गीतावाटिका वासियों के मध्य फैल गयी। इस बात की जानकारी पूज्या माँ को मिली। वे मन-ही-मन कहने लगीं—यह तो बड़ा अनुचित हो रहा है।

एक-दो दिन बाद की बात है। सूर्यास्त के समय पूज्या माँ छत पर रखी पलंग पर बैठी हुई थी। वहीं सामने एक पलंग और पड़ी थी। कार्य करते-करते थक करके कुछ विश्राम करने की भावना से पूज्य बाबूजी अपने कमरे से बाहर आये। वे माँ के सामने वाली पलंग पर बैठ गये। उनके बैठने के बाद माँ ने उनसे कहा—मेरे कान में यह बात आई है कि राधेश्याम वापस जाने वाला है। क्या यह बात सच है?

बाबूजी ने कहा—उसके चले जाने की बात सही है।

माँ ने पुन: मीठे-मीठे उपालम्भ भरे स्वर में कहना आरम्भ किया—आज यह अनहोनी बात कैसे हो रही है? क्या आश्रित को वापस जाने के लिये कह देना उचित है? आपके व्यक्तित्व के द्वारा यह क्या हो रहा है? आपके मुख से कैसे निकल गया कि जाना चाहते हो तो जा सकते हो? क्या आपके लिये यह शोभनीय बात है? आपने उसको आश्रय दिया है फिर से सोचिये कि क्या करना उचित है।

पूज्या माँ की बातों को सुनकर बाबूजी सोच में पड़ गये। उसी समय उन्होंने किसी व्यक्ति को भेजकर श्रीबंकाजी को बुलाया और उनसे कहने लगे—अब तुमको नहीं जाना है।

पूज्य बाबूजी के इस आदेश को सुनकर पूज्या माँ को बड़ी प्रसन्नता हुई, परन्तु श्रीबंकाजी के मन में उथल-पुथल थी कि यह भावात्मक परिवर्तन अचानक कैसे हो गया?

दो दिन बाद रहस्य खुल गया कि पूज्य बाबूजी और पूज्या माँ के मध्य क्या बात-चीत हुई थी। भगवती जगदम्बा ने श्रीबंकाजी की करुण प्रार्थना स्वीकार कर ली और पूज्या माँ को प्रेरित करके सब बिगड़ी बात को ठीक कर दिया। श्रीगुलाबचन्द्रजी बोथरा को कागज-पत्र आदि वापस करने का क्रम समाप्त हो गया और श्रीबंकाजी पुनः अपनी केबिन में बैठकर कार्य करने लगे।

अब पूज्य बाबूजी ने महाविद्यालय के कार्याधिकारी को पत्र लिखा कि मेरे कार्य के लिये राधेश्याम का मेरे पास रहना आवश्यक है। बाबूजी ने पत्र में श्रीबंकाजी की अतिशय सराहना की। कार्याधिकारी महोदय का उत्तर आया—आपका कार्य महान है। यह उत्तम बात है कि श्रीबंकाजी आपके लिये सहयोगी सिद्ध हो रहे हैं। आप उन्हें अपने पास ही रखें।

श्रीबंकाजी पूज्या माँ के वात्सल्य के बारे में सोचने लगे। माँ की वत्सलता की सीमा नहीं थी। प्रत्येक आश्रित के लिये अनके अंतर में अनुमानातीत अपनापन था। किस प्रकार से उन्होंने सारी बात बिगड़ते-बिगड़ते बना ली। श्रीबंकाजी विह्वल हृदय से माँ को अपने कमरे के एकान्त में बारम्बार प्रणाम करते रहे। उनके नयनों से अश्रु झरते रहते और उनका हृदय माँ की ममता के गीत गाता रहता। **कहँ अस पुरुष कहाँ असि नारी॥**

****

केबिन की घण्टी

धीरे-धीरे श्रीबंकाजी को बाबूजी की कृपा से गीतावाटिका में अनुकूलता मिलती चली गयी और वे सुचारु रूप से बाबूजी का काम करने लगे। वे एक घर के सदस्य की भाँति बाबूजी के साथ रहते, एक सचिव की भाँति उनका बताया हर कार्य करते, उनके साथ-साथ गीताप्रेस या जहाँ बाबूजी जाते वहाँ जाते, उनके चौके में भोजन करते और उनकी आज्ञानुसार जीवन यापन करते।

गीतावाटिका में पूज्य बाबूजी के कमरे के एकदम पास और सीढ़ी के ठीक ऊपर एक छोटा-सा केबिन था, जिसमें श्रीबंकाजी बैठकर अपना काम किया करते थे। सन् 1962 से 1971 तक श्रीबंकाजी ने इसी केबिन में बैठकर बाबूजी के निजी सचिव (Personal secretary) के रूप में कार्य किया। इस केबिन में सम्पादकीय विभाग के पत्र, बाबूजी के निजी पत्र, कल्याण के प्रूफ, कागज, फाइल, रजिस्टर आदि रखे रहते थे। जब कभी किसी काम के लिए बाबूजी को बुलाना पड़ता था तो वे श्रीबंकाजी को आवाज देकर बुला लेते थे। कई स्वजनों ने सोचा कि एक बिजली की घण्टी बाबूजी के पास लगा दी जाए, जिससे उनको सुविधा हो जाए और जब आवश्यक हो, वे घण्टी का बटन दबाकर श्रीबंकाजी को बुला लें।

स्वजनों का मन रखने के लिए बाबूजी ने अपनी ओर से स्वीकृति दे दी और फिर उनके कमरे में बिजली की घण्टी लग गई, पर उसका कभी उपयोग नहीं हुआ। हाँ, अपवाद स्वरूप उसका उपयोग हुआ, मात्र दो बार। एक बार तो यह देखने के लिए कि—देखें, श्रीबंकाजी आतें हैं या नहीं।

बाबूजी के पास श्रीचन्द्रकांतजी फोगला बैठे थे। उन्होंने बटन को दबाया और घण्टी बज गई। श्रीबंकाजी तत्काल बाबूजी के पास गये। उनको देखकर श्रीचन्द्रकांतजी ने कहा—हमने तो यों ही यह देखने के लिए घण्टी बजा दी थी कि देखें, आप आते हैं या नहीं।

यह सुनकर श्रीबंकाजी विहसते हुए अपने केबिन में वापस चले गये। दूसरी बार घण्टी बजी एक विशेष परिस्थिति में। एक बार श्रीचन्द्रकांतजी तथा बाबूजी कमरे में बैठे हुए थे। किसी बालक ने खेल-खेल में दरवाजे का कुण्डा बाहर से बन्द कर दिया। बाबूजी को बाहर आना था पर दरवाजा तो बन्द था। कुण्डा खुलवाने के लिए श्रीचन्द्रकांतजी ने बटन दबाकर घण्टी बजाई और फिर श्रीबंकाजी ने जाकर कुण्डा खोला।

घण्टी बजने के केवल यह दो प्रसंग उल्लेखनीय हैं। बाबूजी ने अपने हाथ से कभी उसको काम में नहीं लिया। बाबूजी का श्रीबंकाजी के प्रति ऐसा प्रेम था कि वे उनको अपने घर का एक सदस्य मानते थे और अपने घर के सदस्य को घण्टी बजाकर बुलाना उन्हें नितान्त अप्रिय था। घण्टी के लग जाने के बाद भी उनको जब भी आवश्यकता होती वे वहीं से बैठे-बैठे आवाज लगाकर श्रीबंकाजी को बुला लेते अथवा वे स्वयं उठकर केबिन के दरवाजे पर खड़े होते अथवा किसी व्यक्ति को भेजकर श्रीबंकाजी को बुलवा लेते पर उन्होंने कभी घण्टी का प्रयोग नहीं किया।

****

पूज्य बाबूजी द्वारा प्रदत्त श्रीशालिग्राम भगवान

सन् 1968 का प्रसंग है। दक्षिण भारत के एक भाई गीतावाटिका आये। वे सन्यासी थे। आयु लगभग 30 वर्ष की होगी। ऐसा लगता था कि उन्होंने सर्वसमर्थ श्रीरामदासजी महाराज की शिष्य परम्परा में सन्यास लिया है। उनके साथ उनकी सगी बहन भी थी। उन सन्यासी भाई को उनके श्रीगुरुजी महाराज ने आज्ञा दी कि उत्तर में हिमालय पर्वत पर जाओ और शालिग्रामजी की बटिया ले आओ।

सन्यासी भाई के श्रीगुरुजी महाराज को श्रीशालिग्राम पूजन करने का भगवदादेश हुआ था। वे मन-ही-मन सोचने लगे कि हिन्दू धर्म की प्राचीन पद्धति के अनुसार जिसे शालिग्राम-पूजन करना हो वह नेपाल की गण्डकी नदी के किनारे जाकर स्नान-पूजन करे और गण्डकी नदी से ही शालिग्रामजी प्राप्त करे। यही शास्त्र-आज्ञा है। उनकी उम्र बहुत अधिक थी अतः उन्होंने अपने एक शिष्य को नेपाल भेजने का निश्चय किया।

जो सन्यासी भाई गीतावाटिका आये वे तत्स्थानीय मातृभाषा जानते थे, पर उत्तर भारत में हिन्दी भाषा की प्रमुखता है। उनकी बहन स्थानीय प्रचलित मातृभाषा तो जानती ही थी, इसके अतिरिक्त अंग्रेजी भी जानती थी। भाई ने अपनी कठिनाई को अपनी बहन से कहा—उत्तर भारत जाना है, वहाँ की भाषा मैं जानता नहीं और पूज्य गुरुजी महाराज की आज्ञा है कि हिमालय पर्वत पर जाकर शालिग्राम बटिया ले आवो। यह सब कैसे हो पायेगा समझ नहीं आ रहा है।

बहन ने कहा—चल, मैं तेरे साथ चलती हूँ। भाषा की कठिनाई नहीं रहेगी, साथ ही दो व्यक्ति के रहने से यात्रा सही प्रकार से हो जायेगी।

वे दोनों भाई-बहन दक्षिण भारत से चलकर गोरखपुर आये और गीताप्रेस गये। उन्होंने सोचा कि वहाँ जाने से शायद सही स्थान पर जाने का मार्ग और उचित परामर्श मिल जायेगा। गीताप्रेस के मैनेजर ने उनको गीतावाटिका भेज दिया। गीताप्रेस के प्रथम यशश्वी सम्पादक होने के नाते पूरे भारत में पूज्य बाबूजी की बहुत ख्याति थी। वे दोनों पूज्य बाबूजी से मिले। उनकी सम्भाल-सत्कार का दायित्व बाबूजी ने श्रीबंकाजी को सौंपते हुए कहा—ये दोनों दक्षिण भारत से पधारे हैं और शालिग्रामजी प्राप्ति हेतु नेपाल जायेंगे। इन्हें अंग्रेजी आती है हिन्दी नहीं, अत: तुमसे ये खुलकर बात कर सकेंगे। तुम इनके आवास-भोजन की सारी व्यवस्था करो और यात्रा का प्रबन्ध भी कर दो।

श्रीबंकाजी ने बाबूजी की आज्ञानुसार दोनों अतिथियों का खूब सत्कार किया और उनकी यात्रा की सारी व्यवस्था यथावत रूप से कर दी। पूज्य बाबूजी ने उनको कुछ सुझाव दिये और हिमालय पर्वत पर, नेपाल की गण्डकी नदी के किनारे जाने के लिये कहा, साथ ही अपने आराध्य और अपने श्रीगुरुजी महाराज को मन-ही-मन प्रणाम करके यात्रा आरम्भ करने का निर्देश दिया।

वे दोनों भाई-बहन प्रसन्न मन से यात्रा पर निकले। पर्वत पर चढ़ते-चढ़ते दुर्भाग्य से वे उस स्थान पर पहुँच गये जहाँ नरभक्षी प्राणी रहते थे। प्रभुकृपा से वे उस स्थान से किसी प्रकार बच करके निकल आये। एक कठिनाई और

हुई कि भाई-बहन में से किसी एक के पैर में कोई बहुत बड़ा काँटा धँस गया। चल सकना कठिन था। जिसके पैर में काँटा नहीं था, उसने दूसरे व्यक्ति को अपनी पीठ पर लाद करके आगे की यात्रा की। जहाँ कुछ प्रकाश मिला वहाँ उस काटे को किसी प्रकार निकाला। फिर उन लोगों ने शालिग्राम बटिया की तलाश की, परन्तु सफलता नहीं मिली।

दुर्भाग्यवश उन्हें गण्डकी नदी में एक भी वैसी शालिग्राम-शिला नहीं मिली जैसी उनके गुरुजी को चाहिये थी। उनके गुरुजी ने उनको शंख, चक्र अंकित शुभ लक्षणों से युक्त शालिग्राम शिला लाने का आदेश दिया था पर बहुत खोजने के बाद भी उन्हें एक भी चक्रांकित शिला प्राप्त न हुई। दोनों उदास मन से असफल होकर गीतावाटिका वापस लौट आये और अपनी आपबीती पूज्य बाबूजी को सुनायी। बहुत निराशापूर्वक उन्होंने कहा—हमलोग गुरु सेवा करने की आशा लेकर घर से निकले थे। हमारा मनोरथ अधूरा रह गया। इतनी लम्बी यात्रा करके भी हाथ कुछ नहीं लगा। अब हम दोनों वापस लौटकर गुरुदेव को क्या मुँह दिखलायेंगे?

बाबूजी को उनकी बात सुनकर बड़ा खेद हुआ। उनकी निराशाजनक वाणी सुनकर पर-दु:ख-कातर बाबूजी का हृदय पसीज गया। उन्होंने अति मनुहारयुक्त कोमल वाणी में उनसे कहा—यह कहाँ तक उचित है कि आपलोग खाली हाथ पूज्य श्रीगुरुजी के पास जायें। अगर आपलोग मेरी बात पर विश्वास करें तो आपलोगों को एक बार दोबारा नेपाल यात्रा करनी चाहिये और चतुर्भुज रूप नारायण भगवान का ध्यान करते हुए उनसे सच्चे मन से करुण प्रार्थना करनी चाहिये कि—हे दीनानाथ! हे दयामय! यदि तुम मिलना न चाहो तो इस संसार में तुम्हें कौन ढूँढ़ सकता है भला! हम गुरु आज्ञा से इतनी दूर तुम्हारी खोज में आये हैं, हमें निराश मत करो। इस प्रकार से यदि तन-मन से प्रयास किया जाय तो भगवदेच्छा और भगवत्कृपा से आपका कार्य बन सकता है।

पूज्य बाबूजी से प्रोत्साहन प्राप्त करके उन दोनों शिष्यों के मन में बहुत उम्मीद जगी और उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक बाबूजी की बात स्वीकार कर ली।

बाबूजी ने पुनः श्रीबंकाजी को बुलवाया और उन दोनों अतिथियों की सम्भाल का संकेत दे दिया। श्रीबंकाजी उन्हें सप्रेम बाबूजी के चौके में ले गये और मनुहारपूर्वक भोजन कराया। उनकी दोबारा यात्रा की व्यवस्था की और भोजन-शयन-दवा आदि का प्रबन्ध किया। इन दो-चार दिनों में श्रीबंकाजी के नम्र स्वभाव और सहायता समुत्सुक व्यक्तित्व को देखकर वे दोनों भाई-बहन बहुत प्रभावित हुए और उनकी आपस में घनिष्ट मित्रता हो गयी। सारे कागज-टिकट आदि पूर्ण होने पर उन्होंने दोबारा नेपाल यात्रा के लिये प्रस्थान किया। जब वे जाने लगे तो श्रीबंकाजी ने उनको 'मुक्तिनाथ की यात्रा' नामक पुस्तक दी जो सफर में उनको बहुत सहायक सिद्ध हुई।

अबकी बार बाबूजी ने अपनी 'दिव्य शक्ति' का संचार किया। इस बार की यात्रा में उन्हें भगवदेच्छा और बाबूजीकी कृपा से पूर्ण सफलता प्राप्त हुई और उन्हें उम्मीद से अधिक सुलक्षणों से युक्त शालिग्रामजी प्राप्त हुये। भगवती गण्डकी नदी के प्रवाह में उन दोनों ने कमण्डल भर के सुन्दर-सुन्दर शालिग्रामजी एकत्रित कर लिये और प्रसन्न मन से गोरखपुर लौट आये। इस समय श्रीबंकाजी गोरखपुर में नहीं थे। बाबूजी ने एक काम से उन्हें वाराणसी भेज रखा था।

दोनों शिष्य बाबूजी से मिले और अति आनन्दित हो उन्होंने अपनी यात्रा का वर्णन सुनाया। उन्होंने यह भी कहा—आपकी कृपा से हमारा मनोरथ पूर्ण हुआ। हमें पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है। अब हम कल दक्षिण भारत लौट जायेंगे। आपके परिकर श्रीबंकाजी ने हमारी बहुत सहायता और सम्भाल की है तथा 'मुक्तिनाथ की यात्रा' नामक पुस्तक भी दी थी जो सफर में हमको बहुत सहायक सिद्ध हुई। इस कारण से हम उनके प्रति अति कृतज्ञ हैं। हम प्रसन्न मन से उनको एक शालिग्रामजी उपहार स्वरूप देना चाहते हैं।

इतना कहकर उन्होंने एक अति सुन्दर श्यामवर्ण-चक्रांकित-गोल शालिग्रामजी की बटिया बाबूजी के समीप बैठे पूज्य श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी को दे दी। अगले दिन दोनों शिष्य दक्षिण भारत चले गये। कुछ दिन बीत गये। जब श्रीबंकाजी वाराणसी से वापस आये तो सात-आठ दिन के बाद

श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी ने शालिग्रामजी की ओर इंगित करते हुए उनसे कहा—तुम अपनी शालिग्राम बटिया ले जाओ।

श्रीबंकाजी ने आश्चर्यचकित होते हुए पूछा—मेरी कौन सी शालिग्राम बटिया ?

श्रीबंकाजी को चकित-अचम्भित जान श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी ने मन्द मुस्कुराते हुये शालिग्रामजी प्राप्ति की सारी कथा सुना दी और यह भी बताया कि—तुम तो यहाँ थे नहीं, तुम्हारी अनुपस्थिति में तुम्हारे दक्षिण भारत के मित्र आये थे। एक शालिग्रामजी तुम्हारे लिये छोड़ गये हैं। अब तुम आ गये हो। इन्हें अपने कक्ष में ले जाओ। अब इनकी सेवा-पूजा तुम्हें ही करनी है।

श्रीबंकाजी को बड़ा विस्मय हुआ। उन्होंने कहा—न तो मैंने शालिग्रामजी की कामना की थी और न मेरी कोई इच्छा थी ? अब मैं क्या करूँ ?

श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी—तुम ले लो और फिर भाईजी से पूछो कि क्या किया जाय।

शालिग्रामजी की बटिया लेकर श्रीबंकाजी पूज्य बाबूजी के पास गये और सारी बात बताई। तब बाबूजी ने कहा—भगवान चाहते हैं कि तुम्हारे द्वारा शालिग्राम भगवान की पूजा हो। तभी तुम्हारे न चाहने पर भी वे तुम्हारे पास आ गये हैं। वृन्दावन के लाडले ठाकुर श्रीराधारमणलाल भी शालिग्राम ही हैं। इन्हें भी तुम उन्हीं का स्वरूप समझो। तुम इनकी अर्चना करो। अब इन्हें अपने कक्ष में ले जाओ। तुम्हारा मंगल होगा।

श्रीबंकाजी ने कहा—बाबूजी ! इसकी पहली पूजा आप कर दें।

मार्गशीष शुक्ल द्वितीय, 22-11-68 को, पूज्य बाबूजी ने पूजा करके एक सफेद रेशमी रुमाल के ऊपर शालीग्रामजी को पधराया और अपने मंगल आशिर्वाद के साथ श्रीबंकाजी के कर-कमलों में शालीग्रामजी को प्रदान किया। साथ में एक सफेद पुष्पों की माला भी दी। श्रीबंकाजी ने अपने गुरु-रूप बाबूजी के श्रीचरणों में मस्तक रखकर प्रणाम किया और अपने ठाकुरजी

को लेकर अपने कक्ष में आ गये। उनके नेत्रों से आनन्दाश्रुओं की धार बह रही थी। **सजल बिलोचन पुलक सरीरा॥** ऐसे ही एक अन्य अवसर पर बाबूजी के कर-कमलों से श्रीबंकाजी को एक लकड़ी के पट्टे पर लिखा हुआ महामन्त्र—'**हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे**' प्राप्त हुआ था। वह भी उन्होंने अपनी नित्य पूजा में शालीग्रामजी के साथ ही स्थापित कर लिया था।

बाबूजी के कर-कमलों से शालीग्राम प्राप्ति के बाद श्रीबंकाजी पूज्य बाबा के पास गये। उनको सारी बात बताई और फिर पूछा—बाबा! मुझे बाबूजी के काम से सदा बाहर जाना पड़ता है। मेरा एक पैर गीतावाटिका में और एक पैर ट्रेन में रहता है। बाबूजी के कार्य से मैं पूरे भारत में घूमता फिरता हूँ, फिर भला इनकी पूजा कैसे होगी? इनकी तो पूजा विधि बहुत बड़ी है। अत्यधिक शौचाचार है, मैं भला इसका पालन कैसे कर सकूँगा?

श्रीबंकाजी की बात पर गौर करते हुए कुछ सोचकर राधाबाबा ने कहा—तुम एक काम करो, शालिग्राम पूजा है तो बड़ी विस्तृत पर यह केवल तुम्हारे लिये मैं कह सकता हूँ कि तुम केवल प्रतिदिन इन्हें गंगाजल से स्नान कराकर तुलसी दल अर्पण कर देना और मानसिक आरती-भोग समर्पित करना। इतना नियम तो यात्रा में भी निभ जायेगा। ये तुम्हारे लिये ही आये हैं, श्रीपोद्दार महाराज ने इनकी पूजा की है, अब तुम नित्य इनकी पूजा करना। तुम्हारा मंगल होगा।

उस दिन के बाद से श्रीबंकाजी निरन्तर अपने शालीग्रामजी की खूब प्रेमपूर्वक सेवा-पूजा करते थे। उन्होंने अपने कक्ष के बाहर कई तुलसीजी के गमले लगा लिये जिनका वे स्वयं सिंचन-सम्भाल करते और प्रतिदिन नव तुलसी दल-मंजरी से अपने आराध्य का पूजन करते। गंगाजल से स्नान, तुलसी अपर्ण, मानसिक धूप-दीप-आरती-भोग और प्रार्थना का नियम बहुत वर्षों तक चला। यात्रा के समय भी वे उन्हें साथ रखते और नियमित पूजन किया करते।

श्रीबंकाजी द्वारा 12 वर्षों तक लगातार पूजन होने के बाद, 1980 में एक बार वृन्दावन के परम पूज्य श्रीबालकृष्णदासजी महाराज को इन शालीग्रामजी के बड़े विलक्षण दर्शन हुए थे। उसका वर्णन आगे आयेगा। वृद्धावस्था में, 2015 में जब श्रीबंकाजी के कुल्हे की हड्डी टूट गयी और वे बिस्तर पर पड़ गये, तब इन दिव्य शालीग्रामजी की सेवा का सौभाग्य पूज्य श्रीयोगेन्द्रनाथजी बंका और उनकी धर्मपत्नी श्रीमति उमादेवी बंका को प्राप्त हुआ।

जब 94 वर्ष की उम्र में श्रीबंकाजी अतिशय रुग्ण हो गये तब बाबूजी द्वारा प्राप्त शालीग्रामजी, महामन्त्र और दिव्य पुष्प को उन्होंने श्रीराधाकृष्णसाधना मन्दिर, गीतावाटिका में विराजमान कर दिया।

****

श्रीगायत्री मंत्र दीक्षा

गीतावाटिका आने के बाद श्रीबंकाजी जितना सजग बाबूजी के प्रति अपने दायित्वों को निभाने में रहते थे उतने ही सजग वे अपनी साधना-उपासना में भी थे। बाबूजी से प्राप्त श्रीशालीग्रामजी की वे नित्य अत्यन्त भावपूर्वक पूजा किया करते थे। बाबूजी ने श्रीशालीग्रामजी प्रदान करते समय श्रीबंकाजी से कहा था कि—इन शालीग्रामजी को वृन्दावन के लाडले ठाकुर श्रीराधारमणजी जैसा ही समझो। यही कारण था कि श्रीबंकाजी हमेशा अपने शालीग्रामजी में युगल सरकार की भावना किया करते थे।

गीतावाटिका में इस बात को फैलते देर न लगी कि पूज्य बाबूजी ने स्वयं पूजा करके श्रीबंकाजी को शालीग्रामजी प्रदान किये हैं। श्रीशालीग्रामजी का दर्शन करने के लिय वाटिका-वासी और बाबूजी के परिकर, उनके कक्ष में आने लगे।

इस बात की चर्चा परम पूज्य श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी के कानों में भी पड़ी। ये हिन्दी, अंग्रज़ी और संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान और बाबूजी के अत्यन्त कृपा-पात्र रहे हैं। इनकी बाबूजी के प्रति अनोखी निष्ठा और सेवा भावना थी। ये कल्याण कल्पतरु के सम्पादक और कल्याण के सह-

सम्पादक थे। गोस्वामीजी श्रीबंकाजी की प्रतिभा, बुद्धिमत्ता, वाकपटुता, सेवातत्परता, सत्यवादिता, सात्विकता आदि गुणों से बहुत प्रभावित थे। एक दिन श्रीगोस्वामीजी ने श्रीबंकाजी से कहा—राधेश्याम! शास्त्रों के अनुसार तुलसी-कण्ठी-धारी वैष्णव को ही श्रीशालीग्रामजी की सेवा-पूजा का अधिकार है। शिखा-सूत्र रहित व्यक्ति को श्रीशालीग्रामजी का स्पर्श वर्जित है।

श्रीबंकाजी श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी का अत्यधिक सम्मान करते थे। उनके शास्त्र अनुमोदित वचन सुनकर श्रीबंकाजी ने विनयपूर्वक कहा—गोस्वामीजी! आपकी बात सर्वथा उचित है। आप तो जानते ही हैं कि मैं मन से बाबूजी को अपना गुरु मानता हूँ परन्तु यह भी सच है कि बाबूजी किसी को दीक्षा देते नहीं हैं। कोई भी व्यक्ति, यह जानते हुए कि मेरा समर्पण बाबूजी के प्रति है, मुझे दीक्षा देगा नहीं। अब आप ही बताइये, इस परिस्थिति में मैं क्या कर सकता हूँ? क्या आप मुझे गायत्री मन्त्र की दीक्षा प्रदान करेंगे?

श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी ने श्रीबंकाजी की सरलता, स्पष्ट-वादिता और बाबूजी के प्रति समर्पण का सम्मान किया और प्रसन्न मन से शुभ मुहुर्त में उन्होंने श्रीबंकाजी को विधिपूर्वक गायत्री मन्त्र की दीक्षा प्रदान कर दी। श्रीबंकाजी ने कृतज्ञतापूर्वक उनके श्रीचरणों में दण्डवत् प्रणाम करते हुए कहा—**सीता राम चरन रति मोरें। अनुदिन बढ़उ अनुग्रह तोरें॥** दीक्षा के बाद श्रीबंकाजी बाबूजी-बाबा के साथ-साथ श्रीगोस्वामीजी में भी गुरुभाव रखने लगे।

****

दैनिक साधना

श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी से दीक्षा लेने के बाद श्रीबंकाजी पूर्ण वैष्णव के स्वरूप में सुसज्जित हुए। भक्ति का तेज और लावण्य उनके मुख पर झलक रहा था। उन्होंने यज्ञोपवीत धारण किया और उनके शीश पर शिखा शोभायमान हुई। गले में तुलसी की कण्ठी और भाल पर ब्रजरज का तिलक सुशोभित हुआ। गौरवर्ण वाले, छरहरे शरीर में व्याप्त ओजस्विता-तेजस्विता-

निर्भयता-सुदृढ़ता आदि गुणों से सुशोभित, सफेद धोती कुर्ते में उनका वैष्णव वेष प्रत्येक व्यक्ति से स्वयमेव आदर-सम्मान वसूल लेता था।

श्रीबंकाजी प्रतिदिन ब्रह्म मुहुर्त में उठा करते थे और शौच स्नानादि के उपरान्त वे अपने शालीग्रामजी को गंगाजल से स्नान कराकर तुलसी अर्पण करते और मानसिक पूजा करते थे। दीक्षा के बाद के दिनों में वे सोलह माला महामन्त्र की और कुछ माला गायत्री मन्त्र की जपा करते थे।

श्रीरामचरितमानस के पाठ के प्रति श्रीबंकाजी की विशेष श्रद्धा थी। वे प्रतिदिन नवाह्न पारायण करते थे, अर्थात नौ दिन में एक रामायण पूरी हो जाये, इस विधि से पाठ करते थे। उन्होंने श्रीरामचरितमानस के एक सौ आठ पाठ, चार बार किए, अर्थात नवाह्न परायण करते हुए एक सौ आठ पाठ करना और उसके बाद, इसी रीति से तीन बार और एक सौ आठ पाठ करना। कुल मिलाकर चार सौ बत्तीस पाठ। जब वे यात्रा पर जाते थे तो अपनी मानस की पोथी साथ ले जाते थे और अगर विशेष परिस्थिति में किसी दिन पाठ नहीं हो पाता था, तो अगले दिन दुगुना पाठ करते थे। श्रीरामचरितमानस का प्रत्येक पाठ वे श्रीहनुमानजी को सुनाते हुए किया करते थे।

एक बार श्रीबंकाजी ने बताया था कि मानस पाठ से उनको विशेष अनुभूतियाँ हुईं। जब उनके चार सौ बत्तीस पाठ पूरे हो गये तब वे अर्थ समेत पाठ करने लगे। वे मानस की एक चैपाई पढ़ते, फिर हिन्दी अर्थ पढ़ते थे और उस चौपाई को दिनभर गुनगुनाते रहते, उसी का दिनभर चिन्तन करते। इस रीति से वे कम ही दोहे पाठ कर पाते परन्तु सारे दिन उन्हीं चौपाई का गायन-मनन होता रहता, जिससे श्रीबंकाजी अति आनन्दित रहते। एक ही चौपाई के नये-नये अर्थ उनके सामने आने लगते। श्रीबंकाजी ने बताया कि नये-नये अर्थ जानकर बहुत आनन्द मिलता था। ऐसा पाठ वे जीवन के अन्तिम दिन तक करते रहे। उनका कहना था कि अगर जीवन में श्रीसीताराम की मर्यादा नहीं होगी तो श्रीराधाकृष्ण ठहर नहीं पायेंगे। उनके जीवन में उपासना श्रीराधाकृष्ण की थी और मर्यादा श्रीसीतारामजी की।

श्रीबंकाजी श्रीतुलसीजी की नित्य अर्चना करते थे। प्रातः तुलसी के पौधे

में जल देना और जल देने के बाद तुलसीजी के पत्तों का स्पर्श करते हुए कुछ देर तक खड़े रहा करते थे। खड़े-खड़े वे क्या करते थे यह तो वे ही जानें परन्तु इतना अनुमान अवश्य किया जा सकता है कि वे स्तवन-निवेदन-गुण गायन करते होंगे। सन्ध्या समय धूप और देसी घी का दीपक जलाकर दीपदान करते थे। तुलसी पूजन का यह क्रम अखण्ड रूप से लगातार बरसों चला। श्यामा तुलसी के बहुत से पौधे उन्होंने अपने कमरे के बाहर लगा रखे थे और बड़ी यत्न से उनका सिंचन करते करवाते थे। शीतकाल में अधिक ठण्ड से बचाने के लिये कपड़े से ढककर रखते थे। श्रीवृन्दा महारानी के प्रति उनकी अनोखी श्रद्धा थी।

श्रीबंकाजी ने बाबा के कहने पर, 26-6-66 से प्रत्येक सोमवार को शिवजी का स्वरूप मानकर, ब्राह्मण भोजन कराना प्रारम्भ किया। पहले तो वे ब्राह्मण देवता को बासा में भोजन कराकर दक्षिणा प्रदान कर देते थे। बाद में बाबा की आज्ञा से जब वे स्वयं रसोई बनाने लगे तब वे स्वकरों से रसोई बनाकर ब्राह्मण देवता को जिमाते थे।

इन सब पूजन अर्चन के साथ-साथ श्रीबंकाजी की साधना का मुख्य अंग था बाबूजी की आज्ञा का पालन करना। परमपूज्य बाबूजी की सेवा में रहकर श्रीबंकाजी के तीन लक्ष्य मुख्य हो गये—

- **प्रथम—**श्रीराधाकृष्ण की मानसिक सेवा-पूजा, नाम जप, मानस पाठ।
- **द्वितीय—**परम पूज्य बाबूजी के निर्देशन में कल्याण-सम्पादन का कार्य करना।
- **तृतीय—**सन्त-परायण होकर सन्त-सेवा एवं सन्त-चरित्र लेखन।

साधनामय जीवन के साथ-साथ श्रीबंकाजी सुन्दर चरित्र के निर्माण पर भी खूब सावधानीपूर्वक ध्यान दिया करते थे। उनकी डायरी में लिखे कुछ वाक्य उनके चरित्र-निर्माण-भावना को दर्शाते हैं।

- कंचन-कामिनी-कीर्ति, इन एषणा-त्रय से जो अतीत हो पाता है, वही मधुर रस की निकुंजोपासना कर पाता है।

- मिट्टी का तन, मस्ती का मन (अर्थात् युगल सरकार की रसमई उपासना) रसमय जीवन
- प्रतिष्ठा-कूकरी विष्ठा, मानम-सुरा पानम, गौरवम्-रौरवम्
- ईश्वर अनुरक्ति, जग विरक्ति, दैवी सम्पत्ति
- सात्विक जीवन जीना, सत्य वचन बोलना, पर हित करना
- Always be in the company of good people through good books

श्रीबंकाजी प्रतिदिन अपनी डायरी में लिखें इन वाक्यों को पढ़ते थे और विचार करते थे कि उनके जीवन में इन सबका पालन दृढ़तापूर्वक हो रहा है कि नहीं, कहीं कोई चूक तो नहीं हो रही है ? उन्होंने आजीवन इन नियमों का निष्ठापूर्वक पालन किया।

****

श्रीसुरेशजी का आगमन

श्रीबंकाजी के एम॰ए॰ काल के, मेरठ के सहपाठी थे श्रीसुरेश सेठ। जब भी उन्हें अवकाश मिलता था, वे सत्संग के लिये ग्रीष्मकाल में स्वार्गश्रम आ जाते थे। स्वार्गश्रम में आते रहने के कारण और श्रीबंकाजी के मित्र होने के कारण, माँ और बाबूजी से इनका अच्छा परिचय हो गया था। श्रीबंकाजी बाबूजी के परिवार में ऐसे घुल-मिल गये थे कि श्रीबंकाजी के मित्र और परिवार के सदस्य बाबूजी के स्वजन बन गये थे। इस आपसी निकटता को दर्शाता हुआ यह प्रसंग बहुत सुंदर है।

सन् 1966 के मई मास में एक सप्ताह के लिये श्रीसुरेशजी स्वार्गश्रम आये। एक कमरे में सामान रखकर तुरन्त ही माँ और बाबूजी को प्रणाम करने के लिये चल पड़े। साथ में श्रीबंकाजी भी थे। पूज्य बाबूजी डालमिया कोठी के अपने कमरे में बैठे थे और वे पैड पर कुछ लिख रहे थे।

कमरे में प्रवेश करते ही श्रीसुरेशजी ने प्रणाम किया। बाबूजी ने कुशल-क्षेम पूछी—अच्छे तो हैं ?

श्रीसुरेशजी ने प्रसन्न वाणी में कहा—जी, आपकी कृपा है।

बाबूजी ने फिर पूछा—कब आये ?

श्रीसुरेशजी ने विनम्र उत्तर था—अभी-अभी सीधे ही चला आ रहा हूँ।

श्रीबंकाजी भी वहाँ बैठे थे। बाबूजी ने उनसे पूछा—अपने मित्र को कुछ जलपान करवाया या नहीं ?

श्रीबंकाजी के द्वारा नकारात्मक उत्तर पाकर तुरन्त आदेश हुआ—जाओ, पहले इन्हें जलपान कराओ।

बाबूजी के इस कथन से श्रीबंकाजी को कोई आश्चर्य नहीं हुआ, क्योंकि श्रीबंकाजी तो साथ रहते-रहते इस प्रकार के आदेश से अभ्यस्त हो गये थे, पर श्रीसुरेशजी की आँखों में आश्चर्य उभर आया था। बाद में उन्होंने अपनी भावनाएँ व्यक्त करते हुये श्रीबंकाजी से पूछा—जहाँ अनेकानेक व्यक्ति नित्य मिलने के लिये आते हैं, वहाँ यह क्रम कैसे चलता और निभता है ? मुझे तो यही देखकर आश्चर्य हो रहा है कि एक निरासक्त व्यक्ति, अतिथि-सत्कार में इतना सजग और सचेष्ट कैसे रह पाता है ?

श्रीबंकाजी— बाबूजी के लिये प्रत्येक व्यक्ति स्वजन ही है।

वहाँ से उठकर श्रीसुरेशजी माँ के पास गये। बरामदे में ही बैठी माँ कुछ महिलाओं से बातें कर रही थीं। चरण-स्पर्श करके सुरेशाजी ने माँ को प्रणाम किया। माँ के अधरों पर मुसकराहट दौड़ गयी। नेत्रों से मातृत्व झरने लगा। माँ ने पूछा—क्यों राजी हो न ?

श्रीसुरेशजी ने कहा—जी, आपकी कृपा है।

माँ ने पूछा—कब आये ?

श्रीबंकाजी ने कहा—ये अभी-अभी तो आकर खड़े हुए हैं।

फिर माँ ने पूछा—कुछ खाया-पिया कि नहीं ?

श्रीसुरेशजी के लिये तुरन्त जलपान की व्यवस्था हो गयी। वे स्वार्गश्रम में एक सप्ताह ठहरे और श्रीबंकाजी के साथ-साथ सप्ताह भर तक उनका भोजन भी बाबूजी के चौके में होता रहा, परिवार के एक सदस्य की भाँति। गंगाजी का स्नान, सन्तों का समागम, बाबूजी का प्रवचन, परस्पर में सञ्चर्चा आदि में एक सप्ताह कैसे निकल गया, कुछ पता ही नहीं चला। अब वापस जाने का दिन आ पहुँचा। स्वार्गश्रम से प्रस्थान करने के पूर्व श्रीसुरेशजी माँ, बाबूजी और बाबा से विदाई लेने के लिये गये। पूज्य बाबा मौन थे, अत: श्रीसुरेशजी ने कुटीर के द्वार को ही प्रणाम कर लिया। फिर बाबूजी के पास गये और उनको श्रद्धापूर्वक प्रणाम किया। बाबूजी ने पूछा—क्यों, आज जा रहे हैं क्या ?

श्रीसुरेशजी ने कहा—जी, इच्छा तो अभी नहीं थी, पर कुछ आवश्यक कार्य से जाना पड़ रहा है।

हाथ को जोड़ते हुए और मन्द-मन्द मुसकराते हुए बाबूजी ने कहा—अच्छा, कृपा दृष्टि बनाये रखियेगा।

इन विनम्र शब्दों को सुनते ही श्रीसुरेशजी भीतर-ही-भीतर गड़ गये। मन-ही-मन कहने लगे कि जो शब्द मुझे कहने चाहिये थे, वे शब्द बाबूजी कह रहे हैं और मुझ साधारण व्यक्ति से कह रहे हैं, यह क्या विचित्रता है ? वे पुन: सोचने लगे कि सन्त के जिन लक्षणों की तथा विनम्रता की चर्चा प्रवचन में सुनने को मिलती थी, उसकी प्रत्यक्ष झाँकी बाबूजी के जीवन में देखने को मिल रही है। इतने में श्रीबंकाजी को आदेश मिला—जाओ, इन्हें पहुँचा आओ।

आशीर्वाद पाकर श्रीसुरेशजी वहाँ से उठ खड़े हुये। बाबूजी से विदाई लेकर श्रीसुरेशजी माँ के पास आये। माँ आँगन में ही किसी कार्य से खड़ी थी। माँ के सामने श्रीसुरेशजी हाथ जोड़कर खड़े हुए और उन्होंने विनम्र शब्दों में निवेदन किया—माँ, चलने के लिये आज्ञा दीजिये।

माँ ने पूछा—अरे, अभी जा रहे हैं क्या ?

श्रीसुरेशजी ने संक्षिप्त उत्तर दिया—जी, कुछ आवश्यक कार्य है, इसी से अभी जाना है।

माँ ने पूछा—आपकी माताजी कहाँ है ?

श्रीसुरेशजी क्या उत्तर देते ? उनकी अपनी माँ का देहान्त तो बहुत पहले शिशु अवस्था में ही हो चुका था, परन्तु उन्हीं में माँ का वात्सल्य देखकर

उन्होंने तुरन्त कहा—आप मेरी माँ है न! मेरे मित्र राधेश्याम की माँ भी तो आप ही हैं, आज से मेरी भी माँ आप ही हैं।

उनके इस उत्तर से माँ ने सारी वस्तुस्थिति को समझ लिया और करुणा से उनका हृदय गद्गद् हो गया। इतने में माँ ने एक महिला को रोली-चावल-फल लाने का संकेत किया, पर इस संकेत को श्रीसुरेशजी समझ नहीं सके। श्रीसुरेशजी को क्या पता था कि माँ उन्हें उसी प्रकार विदाई देने वाली हैं, जैसे परिवार के एक सदस्य को दी जाती है।

श्रीसुरेशजी के भाल पर माँ ने रोली का तिलक किया, चावल लगाया और हाथ में दो बढ़िया पके आम दिये। श्रीसुरेशजी की विदाई एक अतिथि के रूप में नहीं, एक आत्मीय के रूप में हुई। श्रीसुरेशजी ने माँ के चरण-स्पर्श किये, पर हृदय रह-रहकर मातृत्व की जय-जयकार कर रहा था। माँ ने शीश और पीठ पर हाथ रखकर आशीर्वाद दिया। उस समय श्रीबंकाजी ने देखा था कि उनके मित्र श्रीसुरेशजी के नेत्र छलछलाये हुए थे।

****

भगवती श्रीविष्णुप्रिया जन्मोत्सव

वसन्त पंचमी, 19 जनवरी 1964 के दिन श्रीराधाबाबा ने नदियाविहारी शचीनन्दन श्रीनिमाई पण्डित की प्राणनिधि, भगवती श्रीविष्णुप्रियाजी का जन्मोत्सव बड़े भावपूर्वक मनाया था। भगवती श्रीविष्णुप्रियाजी के प्रति श्रीजयदयालजी डालमिया का अत्यधिक भक्तिभाव था।

प्रभुपाद श्रीहरिदासजी गोस्वामी ने श्रीचैतन्य महाप्रभु पर प्रभूत साहित्य की रचना की है। इन्ही की बंगला भाषा में एक श्रेष्ठ रचना 'श्रीविष्णुप्रिया नाटक' है। इस नाटक के हिन्दी अनुवाद की पाण्डुलिपि का पूजन भी इसी वसन्त पंचमी को होना था। हिन्दी पाण्डुलिपि के तैयार होते ही बाबा ने यह निश्चय कर लिया था कि वे इस ग्रन्थ का पूजन श्रीडालमियाजी से करवायेंगे।

वसन्त पंचमी तो आगे दस-ग्यारह महीने बाद आने वाली थी परन्तु बाबा की ओर से अग्रिम तैयारी पहले से ही आरम्भ हो गयी। उन्होंने श्रीबंकाजी को

बुलवाया और कहा—आपको एक कविता लिखनी है। उसकी वर्णनीय वस्तु तथा कथा प्रवाह क्या होगा, वह मैं आपको अभी बताऊँगा। मेरे बतलाते समय आप न कोई प्रश्न पूछियेगा और न कोई जिज्ञासा करियेगा। मेरी बतलायी हुई बातों में से जितना आपको स्मरण रह जाये, उतना पर्याप्त है। मेरे वर्णन के आधार पर जो कविता आप लिखें, उसे वसन्त पंचमी के पूर्व तक कभी भी मुझे दिखलाइयेगा मत और यदि कविता की रचना आपके द्वारा नहीं हो सके तो मन में ग्लानि भी मत करियेगा। यदि आपने कविता की रचना कर ली तो वसन्त पंचमी के दिन अपनी कुटिया के एकान्त में श्रीजलदयालजी डालमिया को सुनवाऊँगा।

इस प्रकार अनेक प्रतिबन्ध लगाकर पूज्य बाबा लगभग एक-डेढ़ घण्टे तक लगातार बोलते रहे। श्रीबंकाजी दत्त-चित्त होकर सुन रहे थे, पर कितना स्मरण रख पाते। सुनी हुई बातों में से जितना उन्हें स्मरण रह सका वह भी दो-तीन मास में विस्मृति के गर्भ में चला गया। अभी तो बहुत समय है, ऐसा सोचकर उन्होंने तुरन्त रचना नहीं की थी और समय के व्यतीत होने के साथ-साथ स्मृति का अधिकाधिक धूमिल होते चले जाना स्वाभाविक ही था।

छ-सात मास बाद तो उन्हें कुछ भी याद ही नहीं रहा। पूज्य बाबा द्वारा वर्णित सम्पूर्ण कथा प्रवाह ही पूर्णतः विस्मृत हो चुका था। उनका मन बड़ा खिन्न हो गया। निराश और निर्बल का आधार प्रार्थना ही है। वे मन-ही-मन भगवती श्रीविष्णुप्रियाजी से बार-बार वन्दना-प्रार्थना करने लगे। चार-पाँच सप्ताह की सतत् वन्दना-प्रार्थना के उपरान्त जो भाव उनके मन में उभरे, वे ही कविता की पंक्तियों में ढल गये। अपने प्रमाद और विस्मृति पर श्रीबंकाजी को बड़ी शर्म आ रही थी परन्तु अब उन्हें इस बात का संतोष था कि साधारण स्तर की कविता की रचना के हो जाने से पूज्य बाबा के सामने कम-से-कम रिक्तहस्त तो नहीं जाना पड़ेगा।

पूज्य बाबा के मन में एक बहुत बड़ी समस्या थी श्रीविष्णुप्रियाजी के समक्ष निवेदित किये जाने वाले नैवेद्य के सम्बन्ध में। सब जानते हैं कि भगवती श्रीविष्णुप्रियाजी प्रातः कालीन दैनिक पूजा के उपरान्त एक पात्र में

कुछ चावल अपने सामने रखकर बैठती थीं और सोलह नाम वाले मन्त्र को एक बार जपकर एक चावल का दाना दूसरे पात्र में डाल देती थीं। चावल के दानों के साथ उनका यह जप अपराह्न काल तक चलता रहता। इस रीति से दूसरे पात्र में जितने चावल संचित हो जाते, उसका ही रन्धन होता और फिर वे अपने प्राणनाथ श्रीचैतन्य देव को भोग लगाती थीं। प्रसादी भोग में से भक्तों को प्रसाद बाँटा जाता और थोड़ा सा प्रसाद वे स्वयं पाती थीं।

जिन भगवती श्रीविष्णुप्रियाजी का समर्पित जीवन कठोर तप का, महान उत्सर्ग का, दिव्य भाव का मूर्तिमान स्वरूप था, उनके समक्ष निवेदित किया जाने वाला नैवेद्य भी तो परमातिपरम शुद्ध, सात्त्विक होना चाहिये। इसके लिये बाबा को आवश्यकता थी परम पवित्र धन की, जिससे नैवेद्य निर्माण के लिये सामग्री खरीदी जा सके।

बाबा ने अपने निकट आने वाले प्रत्येक धनपति से कमाये गये धन की शुद्धता के बारे में पूछा तो उन्हें बड़ी निराशा मिली। सभी धनपतियों ने स्पष्ट रूप से स्वीकार किया कि द्रव्यार्जन में असत्य अथवा असद्भाव का किन्चित् भी आश्रय लिया ही नहीं गया, ऐसा नहीं कहा जा सकता। जो व्यापारी आयकर की चोरी नहीं करते, उनके द्वारा भी अपने कर्मचारियों के प्रति कभी अन्यथा व्यवहार नहीं हुआ हो, यह स्वीकार करना सर्वथा असम्भव था। बाबा की इस कसौटी को देखकर सारे धनपतियों ने अपनी-अपनी विवशता व्यक्त कर दी। जो सरकारी कार्यालय में साधु कर्मचारी थे अथवा नगर के सुयोग्य प्रध्यापक थे, उन्होंने भी बाबा से अनुरोध किया कि उनका धन स्वीकार किया जाय। उन सभी से बाबा का प्रश्न था कि क्या वे लोग डटकर-खटकर-जमकर पूरे समय अपना कार्य सदा करते रहे हैं? बाबा के प्रश्नों की झड़ी के सामने कोई भी वर्ग टिक ही नहीं पा रहा था।

बाबा की परेशानी को देखकर श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी ने कहा—बाबा, क्या आप मेरा वेतन इस पवित्र काम में ले सकते हैं?

श्रीगोस्वामीजी की बात सुनकर बाबा कुछ देर मौन रहे और फिर बोले—आपके धन की शुद्धता और पवित्रता के बार में संदेह करने के लिये

स्थान ही नहीं है। कल्याण कल्पतरु पत्रिका का सम्पादन कार्य स्वरूपत: परम श्रेष्ठ कार्य है। आपके जीवन में असत्य का अंश भी नहीं है। आप छ: घण्टे के स्थान पर तेरह-चौदह घण्टे कार्य प्रतिदिन करते हैं, यहाँ तक कि आप रविवार को भी अवकाश नहीं लेते हैं। अब तक मैंने जितने भी व्यक्तियों से बात की है, उन सभी में आप का स्थान सर्वोपरि है। इतना होकर भी यहाँ मेरे लिये एक तथ्य विचारणीय है। पत्रिका के सम्पादन कार्य के द्वारा आप समाज में ज्ञान का वितरण कर रहे हैं और इस कार्य के लिये आपको बदले में मासिक वेतन मिलता है। अब विचारणीय तथ्य यह है कि किसी ब्राह्मण के द्वारा ऐसा किया जाना क्या अनुमोदनीय है? अपने भारतवर्ष के हिन्दू धर्म के अनुसार समाज को ज्ञान का दान करने वाला ऋषि तो आकाश-वृत्ति से जीवन व्यतीत किया करते थे। कुछ देकर बदले में कुछ लेना, यह लेन-देन तो वणिक्-वृत्ति है और अपने ऋषियों का जीवन तो वणिक्-वृत्ति से सर्वथा शून्य रहा है। वे ज्ञानदान निरपेक्ष भाव से करते थे। यदि आप वैश्य होते तो मैं आपका पवित्र धन सहर्ष स्वीकार कर लेता, किन्तु आप ब्राह्मण है अत: अब मुझे सोचना पड़ रहा है कि आप द्वारा उपार्जित धन स्वीकार करूँ अथवा नहीं।

बाबा की बात सुनकर श्रीगोस्वामीजी मौन हो गये। वैश्य के द्वारा उपार्जित धन को स्वीकार किया जा सकता है, यह सुनकर श्रीबंकाजी ने कुछ निवेदन करने का साहस किया। विनम्र शब्दों में श्रीबंकाजी ने बाबा से कहा—बाबा! मैं भी कुछ निवेदन करना चाहता हूँ।

पूज्य बाबा ने कहा—क्या कहना चाहते हैं आप?

श्रीबंकाजी—बाबा! जब में सरदारशहर में पढ़ाया करता था तब कई वर्षों तक मैं अपने हाथ से चरखे के द्वारा सूत कातता रहा हूँ। मैं अपना कमरा बन्द कर लेता था। श्रीरासपंचाध्यायी का पाठ बोल-बोलकर करता रहता और सूत कातता जाता। इसमें प्रतिदिन लगभग 45 मिनट लगते। अभी तक मैंने किसी को बतलाया नहीं पर सूत कातने के पीछे भावना यह थी कि इस कते

हुए सूत का वस्त्र बने और वह वस्त्र आपके धारण करने के काम में आये। वह सारा सूत अभी तक मेरे पास सुरक्षित पड़ा है। यह श्रम तो मैंने किया है और परम सात्त्विक उद्देश्य से किया है। मेरा ऐसा अनुमान है कि इस सूत को बेचकर जो पैसे मिले वह तो इस पूजन के कार्य में आ ही सकना चाहिये।

बाबा ने श्रीबंकाजी से पूछा—जिस कॉलेज में आप पढ़ाते थे, वहाँ नियुक्ति प्राप्ति के लिये क्या आपने किसी से सिफारिश करवायी थी, जिसके फलस्वरूप कॉलेज में कार्य करने का अवसर आपको मिल गया और आपसे अधिक योग्य व्यक्ति निराश होकर चला गया?

श्रीबंकाजी ने पुनः कहा—बाबा! कम-से-कम मैं आपके सामने असत्य नहीं कहूँगा। मैंने किसी से भी सिफारिश नहीं करवायी थी। कॉलेज के प्रबन्धकों द्वारा समाचार पत्र में विज्ञापन था। मैंने अपना प्रार्थना पत्र भेज दिया और मुझे साक्षात्कार के लिये बुलवाया गया। मैं उनके लिये और वे मेरे लिये सर्वथा नवीन व्यक्ति थे। वहाँ और भी कई व्यक्ति आये हुए थे। प्रबन्धकों ने नियुक्ति पत्र अपनी स्वेच्छा से मुझे दिया।

इस विवरण से बाबा का पूर्ण समाधान हो गया। बाबा से अनुमति मिलते ही वह सारा सूत एक स्वजन को बेच दिया गया। बेचने से जितने रुपये मिले, उसमें से रूई का मूल्य निकाल दिया गया। शेष पाँच-छः रुपये बचे। इन्हीं रुपयों से नैवेद्य निर्माण के लिये चावल, बेसन, दही, नमक, हल्दी, जीरा, घी, कोयला आदि खरीदा गया और पूजन के लिये नैवेद्य निर्माण की तैयारी होने लगी। पूज्य बाबा की आज्ञा से श्रीडालमिया-दम्पत्ती ने चावल के एक-एक दाने को सोलह नाम वाले मन्त्र से अभिमन्त्रित किया। कुछ लोगों ने बाबा से निवेदन किया—श्रीजयदयालजी और उनकी जीवनसंगिनी, ये दोनों मिलकर एक दिन में चावल के कितने दाने अभिमन्त्रित कर पायेंगे?

बाबा ने तत्काल उत्तर दिया—इस रीति से भले सौ दाने ही अभिमन्त्रित किये जा सके, पर मुझे तो केवल ये ही सौ दाने चाहिये।

बाबा के उत्तर से सभी के अधर मौन हो गये। परमादरणीय श्रीजयदयालजी

की पत्नी तथा डालमियाजी, दोनों ने स्नान करके शुद्ध देशी वस्त्र धारण किये और पवित्र आसन पर बैठ करके '**हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे**' का जप करते हुए वे चावल के एक-एक दाने को अभिमन्त्रित करने लगे। प्रातःकाल से लेकर दोपहर के लगभग एक-दो बजे तक जप करने से जितने दाने अभिमन्त्रित किये जा सके, उनको ही सिद्ध किया गया। जहाँ रन्धन किया गया, उस स्थान की शुचिता के बारे में भी बाबा बड़े सावधान थे। सारी भूमि को गाय के गोबर से लीपा गया था। रन्धन का कार्य सम्पन्न हुआ था गोस्वामीजीकी धर्मपत्नी के द्वारा। आज बाबा पद-पद पर सावधान थे, जिससे कठोर-व्रती, महा-साध्वी भगवती श्रीविष्णुप्रियाजी के भावों के अनुरूप कार्य हो सके।

दो नयी चौकी पर विश्वपावनी भगवती श्रीविष्णुप्रियाजी का और विश्वप्रेरक श्रीविष्णुप्रिया नाटक का सविधि पूजन हुआ। एक ब्राह्मण दम्पति का बड़े भावपूर्वक पूजन किया गया और भोजन कराकर उन्हें पर्याप्त वस्त्र एवं द्रव्य दिया गया। बाबा ने यह सारी पूजा श्रीडालमियाजी के द्वारा करवायी। पूजन के बाद भगवती श्रीविष्णुप्रियाजी एवं महाप्रभु श्रीचैतन्यदेव के नाम का बहुत देर तक तुमुल कीर्तन होता रहा। इसके बाद वह परम दिव्य प्रसाद सबके मध्य वितरित किया गया। मात्र कुछ कण ही सभी को मिल पाये। वह प्रसाद था अति दुर्लभ और परम प्रभावकारी। कुटिया के आस-पास का वातावरण बड़ा भावमय हो रहा था। बाबा आज विशेष रूप से भावाविष्ट थे। बाबा ने पहले भी कई बार कहा है और पूजन के समय भी कहा—क्रन्दन ही मेरा जीवन है। सच पूछा जाय तो आज 'क्रन्दन' का उत्सव था। श्रीविष्णुप्रियाजी तो क्रन्दन की साक्षात् प्रतीक हैं।

रात्रि के समय बाबा ने वह कविता श्रीडालमिया को सुनवाई। जाड़े के दिन थे और कुटिया के बाहर धूनी जल रही थी। वहीं पर बाबा ने श्रीडालमिया को बैठाया। कुछ और स्वजन स्वेच्छा से आ गये और उनको भी बाबा ने बैठने का अवसर दिया। बाबा की चाह तो पूर्ण एकान्त की थी पर वैसी बात बन नहीं पायी। सभी के सामने यह कविता पढ़ी गयी। श्रीबंकाजी धीरे-धीरे

स्पष्ट वाणी में अपनी कविता को सुनाने लगे। पूर्ण नीरवता चारों ओर व्याप्त थी। एकमात्र श्रीबंकाजी की भाव भरी वाणी चहुँ ओर स्पन्दित थी।

19 जनवरी 1964, वसंत पंचमी के दिन गीतावाटिका गोरखपुर में पढ़ा गया, श्रीबंकाजी द्वारा रचित, श्रीश्रीविष्णुप्रिया स्तवन—

नीरव दिशि-दिशि नीरव निशीथ, नीरव था नभका तारक दल।
नीरव नभ-गंगाके कण-कण, नीरव था नभका नीलाञ्चल॥
उस नीरवतामें था स्पन्दित, नीरव संलाप मृदुल अविरल।
निशिका निशीशका नेह छके, दो हृदयोंका अतिशय निश्छल॥

दो अधर हिले चुपचाप खुले, नभ-गंगाके नव पनघटपर।
दो हृदय इधर उन्मुक्त खिले, नवद्वीप-पार्श्विनीके पार्श्विनी तटपर॥
था सजा शयन गृह, शय्यापर विकसित पुष्पोंको नव चादर।
शय्यापर पुष्पोंका वितान, शय्यापर पुष्पोंकी झालर॥

धूप-गंधसे शुचि शोभासे, मुखरित था शयनागार सकल।
शोभाकी शोभा बढ़ी और पर विमल स्नेहकी सुरभि विमल॥
दो स्नेही हृदयोंसे विकसित जो स्नेह लहरियाँ थीं निर्मल।
उनकी सुषमासे शयन-कक्षकी शोभा थी बोझिल प्रतिपल॥

उस शयन-कक्षकी शय्यापर थे परम सुशोभित नित्य युगल।
श्रीविष्णुप्रिया चैतन्य गौर, प्रेमी-प्रेमास्पद नित्य नवल॥
दोनों ही दोनोंमें डूबे, दोनों ही सुखदाता अविरल।
थीं पैर दबाती विष्णुप्रिया, चैतन्य हृदय पुलकित पल-पल॥

कुछ कौतूहल, कुछ उत्सुकता, कुछ जिज्ञासाकी मधुर लहर।
उभरी धीरे-से मन्द-मन्द श्रीविष्णुप्रिया-मुख-मण्डलपर॥
उस नीरवतामें छलक पड़ा भीना-भीना-सा नीरव स्वर।
प्राणोंने पूछा मौन-मौन—'क्या मैं ही राधा हूँ? प्रियवर'॥

प्राणोंका नीरव प्रश्न सुना—नवद्वीप-पार्श्विनी सुरसरिने।
उस शयन-कक्षके कण-कणने चैतन्य गौरके अन्तरने॥
मौन प्रश्नका दिया मौन उत्तर था अधर-अरुणिमाने।
चैतन्य गौरके अधर-विहारी, नित्य विलासी मधु स्मितने॥

'प्रियतमे! भूल क्या गयी स्वयंको, मुझको, इतनी भोली तुम?
हम नित्य संग, सम्बन्ध नित्य, मैं माधव हूँ , हो राधा तुम'॥
प्राणोंने पूछा पुनः प्रश्न—'फिर कहाँ तरणिजा-धार परम?
त्यागी क्यों वह स्नेहिल यमुना? सुरसरिता-तीर बसे क्यों हम'?

मूक प्रश्नका मूकोत्तर था तुरत दिया फिर मधु स्मितने।
'पायी मुक्ति परम दुर्लभतम, सुरतरंगिणीसे जगने॥
उस मुक्तिदायिनी सत्ताके कण-कणमें आये हैं भरने।
क्रन्दन-ज्वाला, जिसमें जल-जल नित ज्वलित ज्वालके स्नेह सने'॥

'तो क्या मुझको जलना होगा क्रन्दनकी ज्वालामें? प्रियतम!
क्या मुझको अब बहना होगा, आँसूकी धारामें हरदम'?
'हम तुम एक, अतः प्राणाधिक प्रियतमे! जलो क्यों केवल तुम?
क्रन्दन ज्वालामें साथ-साथ अनवरत जलेंगे दोनों हम'॥

शब्दातीत सरल जिज्ञासा व्यक्त हुई जो बिना शब्द ही।
सरस गरलमय समाधान भी प्राप्त हुआ जो अनायास ही॥
सुना शयनगृहने, शय्याने, सुरसरिने अन्दर-अन्दर ही।
निशि-निशीश, नभ-गंगा, नभके नीलांचलने मौन-मौन ही॥

जाने कितने तारे टूटे नभके विस्तृत नीलांचल से।
जाने कितने अश्रु बह गये, सुरतरंगिणीके कपोलसे॥
जाने क्यों कहता फिरता है, व्यथित समीरण अपने मुखसे।
व्यथा-तप्त करुणार्द्र कहानी, दो विरही हृदयोंकी जगसे॥

नीलांचलमें नील उदधिके नील तीर पर व्यथित विराजित।
सुध-बुध सभी गौर सुन्दरकी, नील-धारमें बही अपरिमित॥
नीलकृष्णके एक चरणपर, सुख-दुख सब हो गया समर्पित।
'कृष्ण', 'कृष्ण' के करुण रुदनसे दिशा-दिशा हो गयी निनादित॥

रुदन कण्ठमें, रुदन रोममें, रुदन नयनकी हर हलचलमें।
धधक उठी क्रन्दनकी ज्वाला गौर-हृदयके प्रति स्पन्दनमें॥
कृष्णान्वेषण दिनमें, निशिमें, जलमें, नभमें, जड़-चेतनमें।
कृष्ण-विरहकी चिता जल गयी व्यथित गौरके अंग-अंगमें॥

एक बह चला सजा चिताको, नीलांचलकी नील धारमें।
एक गयी सम्पूर्ण डूब, अपने आँसूके गहन उदधिमें॥
गौर-हृदयकी नितविहारिणी, जली गौरके विरह-ज्वालमें।
जल-जल बुझना, बुझ-बुझ जलना, शेष यही था उस जीवनमें॥

कितने आँसू हुए प्रवाहित विष्णुप्रियाके तृषित नयन से?
कितनी भीगी साड़ी उतरी, गौर-विरहमें दग्ध बदनसे?
कबसे हो रहा संगमन, सुरतरंगिणीकी धारासे?
सरस्वती-यमुनाका अविरल, निकल-निकलकर शून्य नयनसे?

कैसी चाह मिलनकी भीषण, जली प्रियाके हृदय सदनमें?
कैसा हाहाकार मचा था, तनमें, मनमें और नयनमें?
'हा-हा' भीतर 'हा-हा' बाहर, भीतर-बाहरके कण-कणमें।
'हा-हा' का रव व्याप्त हो गया, जलमें, थलमें और गगनमें॥

हाहाकार भरे घरमें था कहीं न कुछ भी स्वरका स्पन्दन।
सूनी, आँखें, सूना जीवन, सूना घरका सारा आँगन॥
नीरव प्रांगणमें बैठी थी, विष्णुप्रिया अति ही नीरव मन।
नमित नयनकी व्यथित अश्रु-धाराने पूछ—'हे जीवन-धन'॥

तुरत गौर सुन्दरकी मनहर गौर कान्ति से नित संस्पर्शित।
नील लहरियोंसे ध्वनि आयी—'कहो प्रियतमे! क्या अभिवांछित?'
स्वप्न देशके वीणा-रव-सी, नीरव ध्वनि सुन हुई विकम्पित।
अश्रु-धारकी परमाकुलता मौन-मौन ही हुई निवेदित॥

'कब तक मुझको बहना होगा? क्या सत्य एक यह क्रन्दन है?
जलना-बुझना, बुझना-जलना, क्या यही एक बस जीवन है?
कब तक ये गीले नयन गलें? क्यों दूर हृदयका चन्दन है?
क्या आशा करूँ न दर्शनकी? क्या दासी पूर्ण अभागिन है'?

नील लहरियोंकी नीरव ध्वनि हुई ध्वनित नीरव प्रांगणमें।
'हम तुम एक, सदा संगी हैं दुसह विरहके भी प्रसंगमें॥
विरह मिलनका पोषक, हम-तुम जलें और भी, प्राणप्रियतमे॥
क्रन्दन और हास्यसे ऊपर पुनः मिलन होगा निकुंजमें'॥

आशा छूटी, बिजली टूटी कलित बेल पर गौर मिलनके।
सम्बल छूटा, तारा टूटे पूर्ण तिमिरमय नीलाम्बरके॥
धीरज छूटा, बन्धन टूटे भग्न हृदयके, नयन-कोषके।
टूट-टूटकर आँसू बिखरे, आँगनमें सम्पूर्ण विश्वके॥

डूब गया वसुधाका आँगन, डूब गया नभका नीलांचल।
डूब गया नवद्वीप-पार्श्विनी सुरतरंगिणीका भी आँचल॥
आँचलकी सारी सत्ता भी डूब गयी आँसूमें गल-गल।
बची समयके दो कपोल पर शुभ्र अश्रुकी धार अनर्गल॥

वही समय साक्षी है जगमें, शुभ्र अश्रुकी शुभ धाराका।
वही समय साक्षी है अब भी, नव निकुंजकी शुभ शोभाका॥
जहाँ छिटकता शुभ प्रकाश है, पीली-नीली ललित शिखाका।
जिसके शुभ्रालोक-पुंजमें, डूबा कण-कण है अग-जगका॥

कविता को सुनकर बाबा ने श्रीबंकाजी को बड़ा साधुवाद दिया और कहने लगे—श्रीगंगाजी में पापी-तापी-शापी को मुक्ति प्रदान करने की जो

क्षमता है, उस क्षमता में और गंगाजी की सम्पूर्ण सत्ता में प्रेम की प्रतिष्ठा करने के लिये, इतना ही नहीं, उस मुक्ति-प्रदायिनी सत्ता के कण-कण में प्रेमोद्भूत क्रन्दन की ज्वाला भरने के लिये श्रीराधा-कृष्ण ने ब्रज का यमुना तट छोड़कर नवद्वीप में गंगा तट पर अवतार लिया, इस तथ्य की अभिव्यक्ति बड़ी सुन्दर रीति से हुई है। मैं सही-सही कह रहा हूँ कि मेरा भावराज्य, रुपये में बारह आना इस कविता में उतर आया है।

श्रीबंकाजी ने विनम्र शब्दों में कहा—आठ-नौ मास पहले आपने जो बताया था वह मैं सर्वथा भूल गया। मैंने रचना करने में बड़ी देर कर दी। जब कविता लिखने के लिये बैठा तो कुछ भी याद नहीं आ रहा था। फिर मैं भगवती श्रीविष्णुप्रियाजी से मन-ही-मन प्रार्थना करने लगा। उनकी कृपा से जो स्फुरित हुआ, वही इस कविता में लिखा गया है।

बाबा ने कहा—जो लिखा गया है, वह एक अद्भुत वस्तु है।

फिर बाबा ने श्रीडालमियाजी से कहा—आप इस कविता को छपवा दें।

श्रीडालमियाजी तो छपवाने की बात सोच ही रहे थे। अब तो बाबा ने भी निर्देश दे दिया था अत: उन्हें बहुत प्रसन्नता हुई।

उस कते हुये सूत के सम्बन्ध में भी एक तथ्य को इस विवरण-क्रम में लिख देने की स्फूरणा मन में हो रही है। जिनको वह कता हुआ सूत बेचा गया था, वे अपने ही एक आत्मीय जन थे और वह सूत उनके पास पूर्ण रूपेण सुरक्षित रखा हुआ था। उस कते हुये सूत का वस्त्र गोरखपुर के खादी भण्डार में बनवाया गया और क्या ही सुन्दर बात बन गयी कि ठीक श्रीराधाष्टमी के दिन बाबा ने उस वस्त्र को धारण किया। जैसा श्रीबंकाजी वस्तुत: चाह रहे थे, वैसा घटना-क्रम के अनुसार क्रमश: अपने आप ही हो गया। श्रीबंकाजी अपने संकोची स्वभाव के कारण कुछ भी कहने या करने का साहस नहीं कर पा रहे थे परन्तु परम कृपालु भगवान ने स्वत: वह ढंग बैठा दिया, जिससे उनकी यह सुन्दर अभिलाषा पूर्ण हो सकी।

****

दिल्ली में गीताप्रेस की शाखा

प्रसंग सम्भवत: 1963 या 1964 का होना चाहिये। उन दिनों गीताप्रेस श्रीरामचरितमानस और श्रीमद्भगवद्गीता की प्रतियों को इतनी अधिक संख्या में नहीं छाप पाती थी, जिससे समाज के श्रद्धालु भक्तों की आवश्यकता की अभिपूर्ति हो सके। अत: ऐसा सोचा जाने लगा कि गीताप्रेस की एक शाखा दिल्ली में खोल दी जाये और वहाँ पर आफसेट मशीन से आवश्यक पुस्तकों का मुद्रण विपुल संख्या में हो सके।

गीताप्रेस ट्रस्ट बोर्ड के महामंत्री थे श्रीबिहारीलालजी झुनझुनवाला। सारी योजना बन गयी। इस योजना के प्रति पूज्य श्रीजयदयालजी डालमिया की पूर्ण सहमति थी। जब सब बात पूर्णता की ओर बढ़ने लगी, तब प्रश्न यह उठा कि उस शाखा का कोई ऐसा योग्य व्यवस्थापक और प्रबन्धक हो जिससे कार्य सुचारु रूप से हो सके। विचार करते-करते सभी प्रधान लोगों की दृष्टि श्रीबंकाजी पर गयी। श्रीबिहारीलालजी पूज्य बाबूजी के पास आये और कहने लगे—दिल्ली स्थित गीताप्रेस की शाखा के संचालन एवं प्रबन्ध के लिए मुझे बंकाजी को दे दीजिये।

पूज्य बाबूजी ने श्रीबिहारीलालजी से कहा—ठीक है, आपका सुझाव सुन्दर है। राधेश्याम सब प्रकार से योग्य है और कर्मठ भी है। काम सम्भाल लेगा। उसको ले जाइये।

इस उत्तर से सभी प्रमुख जनों को प्रसन्नता हुई। पूज्य बाबूजी ने अपना संदेश भाई श्रीकृष्णचन्द्रजी अग्रवाल के द्वारा श्रीबंकाजी के पास भेजा। बूबना भवन के एक कमरे में बैठे श्रीबंकाजी अपना काम कर रहे थे। भाई श्रीकृष्णजी आये और उन्होंने सारी बात बता दी जो गीताप्रेस के प्रमुख जनों एवं पूज्य बाबूजी के मध्य हुयी थी। सारी बात सुनकर श्रीबंकाजी ने हँसते हुए भाई श्रीकृष्णजी से कहा—मैं अपने जीवन में पण्डित श्रीदेवधरजी शर्मा की आवृत्ति नहीं चाहता।

श्रीकृष्णजी ने पूछा—आपके कथन का अर्थ मैं नहीं समझा।

श्रीबंकाजी ने कहना आरम्भ किया—श्रीदेवधरजी कल्याण सम्पादकीय विभाग में काम करते थे। फिर क्रम ऐसा बना कि पूज्य मालवीयजी एवं पूज्य श्रीजुगलकिशोर बिरला के अनुरोध पर देवधरजी पहले तीन मास के लिये, फिर तीन मास के लिये, पुनः तीन मास के लिये श्रीकृष्ण जन्मभूमि पर काम करने के लिये मथुरा गये और अन्त में पूज्य बिरलाजी ने श्रीदेवधरजी को श्रीकृष्ण जन्मभूमि के लिए सदा के लिये ही माँग लिया और श्रीदेवधरजी सदा के लिये चले भी गये। मैं कल्याण के सम्पादकीय विभाग का सदस्य अवश्य हूँ , परन्तु भीतर से न मैं कल्याण का हूँ और न गीताप्रेस का हूँ। सरदारशहर के महाविद्यालय से त्यागपत्र देकर यहाँ आने का उद्देश्य कुछ और ही है। मैं सिर्फ बाबूजी का हूँ और उनको छोड़कर कहीं जाने वाला नहीं। अतः समझ लो कि श्रीदेवधरजी वाली कहानी की आवृत्ति मेरे जीवन में कभी भी होने वाली नहीं है।

श्रीबंकाजी के उत्तर को सुनकर श्रीकृष्णजी पूज्य बाबूजी के पास गये और उनसे सारी बात बता दी। पूज्य बाबूजी ने श्रीबंकाजी की भावना का आदर किया तथा श्रीकृष्णजी से कहा—जाओ, राधेश्याम से कह दो, ठीक है उस कार्य के लिये दिल्ली न जाये पर बड़े लोगों का मन रखने के लिए उनके साथ दिल्ली घूम आये और वे लोग जो-जो आफसेट मशीनें देखें, उनको देख आये।

श्रीबंकाजी ने पूज्य बाबूजी की आज्ञा माथे पर रखी और गुरुजनों के साथ अनेक आफसेट मशीनें देखकर स्वर्गाश्रम वापस लौटकर आ गये।

****

प्रलोभन और बचाव

सन् 1962 से 1971 तक श्रीबंकाजी ने पूज्य बाबूजी के निजी सचिव के रूप में कार्य किया और एक परिवार के सदस्य की भाँति उनके घर में रहे। वे गीताप्रेस के सम्पादकीय विभाग के एक सदस्य थे और अतिशय सामान्य वेतन पर बाबूजी के सेक्रेटरी का सारा काम किया करते थे। उनके जीवन में

अधिक वेतन और गरिमामय उच्च पद-प्रतिष्ठा का प्रलोभन कभी भी नहीं रहा। कीर्ति-कंचन के प्रबल आकर्षण से वे सदा दूर रहे।

श्रीबंकाजी जैसे ब्रह्मचारी, निष्ठावान, कर्मठ, सात्विक, सत्यवादी, परिश्रमी व्यक्ति को कौन अपना शिष्य-सहयोगी बनाना नहीं चाहेगा ? उनके जीवन में भी कई बड़े-बड़े भौतिक और आध्यात्मिक प्रलोभन समय-समय पर आये परन्तु प्रभु की असीम कृपा से श्रीबंकाजी हमेशा वैसे ही बच गये जैसे पंक के स्पर्श से कमल पुष्प बच जाता है।

यह पहले बताया जा चुका है कि श्रीबंकाजी अपनी नवयुवावस्था में आर०एस०एस० के कुशल कार्यकर्ता थे। जेल यात्रा के बाद उन्होंने आर०एस०एस० छोड़ दिया था परन्तु आर०एस०एस० के उच्च नेता सदा उनसे सम्पर्क रखते थे और उन लोगों का श्रीबंकाजी से नियमित पत्राचार भी होता था। श्रीबंकाजी प्रतिदिन अखबार पढ़ते थे और पूरे देश की राजनीति की सम्पूर्ण जानकारी रखा करते थे। एक बार आर०एस०एस० के एक वरिष्ठ नेता का बाबूजी के पास पत्र आया जिसमें श्रीबंकाजी को उच्च पद का प्रलोभन देते हुए उन्होंने बाबूजी से प्रार्थना की थी कि वे श्रीबंकाजी को आर०एस०एस० का कार्य करने की अनुमति प्रदान करें। इसी प्रकार से एक बार विश्व हिन्दू परिषद ने भी श्रीबंकाजी की योग्यता को देखते हुए राष्ट्र-धर्म सेवा के नाम पर उनसे प्रार्थना की थी कि वे विश्व हिन्दू परिषद के सदस्य हो जायें परन्तु श्रीबंकाजी ने दोनों ही प्रस्ताव को अपनी अस्वीकृति प्रदान कर दी थी।

भारत के जाने माने उद्योगपति श्रीजयदयालजी डालमिया बाबूजी के विशेष स्वजन और परम कृपापात्र थे। उनकी बाबूजी से बहुत पुरानी, बम्बई काल की जान पहचान थी और वे बाबूजी को अपना बड़ा भाई मानते थे और प्रेमपूर्वक 'भाईजी' कहा करते थे। वे अक्सर गीतावाटिका आते थे और श्रीबंकाजी को कई साल से निष्ठापूर्वक बाबूजी की सेवा करते देख रहे थे। श्रीबंकाजी भी श्रीडालमियाजी का बहुत आदर करते थे और उन्हें चाचाजी कह कर पुकारते थे।

एक बार की बात है परम आदरणीय श्रीजयदयालजी डालमिया, नई

पीढ़ी में हिन्दू धर्म का प्रचार करने के उद्देश्य से, भारत के नवयुवकों-छात्र-छात्राओं के लिये गीता-रामायण की शिक्षा का पत्राचार पाठ्यक्रम (correspondence course) प्रारम्भ करना चाहते थे। अखिल भारतीय Geeta Ramayan Open University जैसी शिक्षण प्रणाली के लिये उन्हें विद्वान, मेहनती और दक्ष कार्यकर्ता की आवश्यकता थी। श्रीबंकाजी की योग्यता को देखते हुए उन्होंने इस कार्य के लिय उनका चयन किया और पूज्य बाबूजी से उन्हें दे देने की माँग की।

श्रीरामचरितमानस और श्रीगीताजी का अखिल भारतीय स्तर पर प्रचार हो, नवयुवक हिन्दू संस्कृति से जुड़ें और हिन्दू सनातन धर्म की उज्ज्वल ध्वजा सम्पूर्ण भारत में फैले, यह तो बाबूजी की भी आन्तरिक चाह थी अत: उन्होंने श्रीबंकाजी से कहा—आपको इस कार्य के लिये अपना अनुमोदन प्रदान कर देना चाहिये। श्रीजयदयालजी डालमिया मेरे छोटे भाई जैसे हैं। आप उनके साथ बम्बई चले जाइये, वे हर प्रकार से आपका ख्याल रखेंगे। आपको किसी भी बात की कोई तकलीफ नहीं होगी।

इतना सुनना था कि श्रीबंकाजी का मुँह सूख गया। बाबूजी-माँ की छत्र छाया से दूर जाने के नाम से ही उन्हें बेहद दु:ख हुआ। जब श्रीडालमियाजी बुला रहे हैं, बाबूजी स्वयं जाने के लिये कह रहे हैं और कार्य का उद्देश्य भी अति पावन है तो ऐसी परिस्थिति में अब भला अस्वीकार भी कैसे किया जाय? बड़ी विचित्र समस्या थी। एक तरफ था पद-प्रतिष्ठा-सुख-सुविधा-ख्याति तथा आर्थिक लाभ और दूसरी ओर था बाबूजी का चरणाश्रय। वे अपने कमरे में आकर गम्भीर सोच में पड़ गये। हारे को हरिनाम का ही सहारा होता है। उन्होंने कातर मन से भगवती से प्रार्थना प्रारम्भ कर दी कि इतनी मुश्किलों से तो बाबूजी का चरण सान्निध्य प्राप्त हुआ है, अब इस प्रचार-कार्य के चक्कर में कहीं यह छूट न जाय!

संकट के समय जिस सैनिक का जो अतिप्रिय शस्त्र होता है वही उसके बचाव के काम में आता है। श्रीबंकाजी का एकमात्र शस्त्र था उनकी लेखनी,

उनकी कलम। उन्होंने भगवती की प्रेरणा से श्रीडालमियाजी को पत्र लिखा जिसमें उन्होंने सर्वप्रथम उनकी सोच की खूब सराहना की कि कैसे उनका उद्देश्य अत्यधिक महान है और हिन्दू धर्म का प्रचार महानतम् कार्य है और इसके लिये बाबूजी ने भी प्रसन्न मन से अनुमति प्रदान कर दी है परन्तु फिर लिखा—आपका कार्य सर्वप्रकार से सर्वश्रेष्ठ है परन्तु मैं अपने घर से एक सपना लेकर निकला था कि वृन्दावनी साधना के उच्चतम सोपान, श्रीप्रिया-प्रियतम की मधुरोपासना और निकुंज लीला की साधना करूँगा। आप तो जानते ही हैं कि मैं हर प्रकार से इस साधना के अयोग्य हूँ पर एक बात यह भी सच है कि इस साधना की सफलता साधन-सापेक्ष न होकर कृपा-सापेक्ष है। परम समर्थ बाबूजी के श्रीचरणों के सिवा मुझे ऐसा कोई अन्य आश्रय नहीं दिखाई देता जहाँ मेरा यह सपना सच हो सके। आप मेरे शुभचिन्तक हैं, पिता तुल्य है, इसलिये आप कृपापूर्वक आशीर्वाद दें कि मुझ जैसे अल्पज्ञ बालक का यह सपना पूर्ण हो सके।

श्रीडालमियाजी इस पत्र को लेकर बाबूजी के पास गोरखपुर आये और फिर एक बार श्रीबंकाजी को समझाने की प्रार्थना की। बाबूजी ने उनसे कुछ कहा नहीं। एकान्त अवसर मिलने पर बाबूजी ने श्रीबंकाजी की चुटकी लेते हुए कहा—यहाँ मात्र ढ़ाई सौ रुपये की नौकरी कर रहे हो। श्रीजयदयालजी के साथ बम्बई क्यों नहीं चले जाते? क्या रखा है यहाँ?

श्रीबंकाजी ने नेत्रों में जल भर कर दैन्यतापूर्ण उत्तर दिया—बम्बई में और सब कुछ मिलेगा, पर आप नहीं मिलेंगे। इस अबोध-सदोष शिशु को अपने श्रीचरणों से तनिक भी दूर मत कीजिये। यह बालक आपके द्वारा लालित-पालित-पोषित है। इसे अपने श्रीचरणों में ही रहने दीजिये। यह प्रेमपूर्ण उत्तर सुनकर बाबूजी मन्द-मन्द मुसकुराने लगे।

जब श्रीडालमियाजी ने देखा कि श्रीबंकाजी बम्बई जाने के लिये किसी प्रकार भी तैयार नहीं हैं और उन्हें कोई लालच भी नहीं है तब उन्होंने एक नयी युक्ति अपनानी चाही और श्रीकृष्ण जन्मभूमि संस्थान, मथुरा के मुख्य अधिकारी के पद पर कार्य करने का प्रस्ताव श्रीबंकाजी के सम्मुख रखा। इस

प्रस्ताव में ब्रजवास का एक बहुत बड़ा प्रलोभन छिपा था। श्रीडालमियाजी जानते थे कि मन-ही-मन श्रीबंकाजी ब्रजवास करना चाहते हैं। इसी बहाने उनको एक कर्मठ सहयोगी प्राप्त हो जायेगा जो कृष्ण जन्म संस्थान की सारी जिम्मेदारी को भली प्रकार से सम्भाल लेगा परन्तु इस बड़े प्रलोभन को भी श्रीबंकाजी ने यह कहकर ठुकरा दिया कि—अचल-वृन्दावन की अपेक्षा मुझे सचल-वृन्दावन का वास अधिक प्रिय है। सचल-वृन्दावन अर्थात् पूज्य बाबूजी। पूज्य श्रीराधाबाबा कहते थे कि स्वयं श्रीकृष्ण ने उनसे कहा था कि—श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार का पांचभौतिक देह साक्षात वृन्दावन है। अत: श्रीबंकाजी सदैव इन्ही सन्त द्वय की छत्र-छाया में रहना चाहते थे।

इसी प्रकार से एक बार काँची के कामकोटि शंकराचार्यजी महाराज ने भी श्रीबंकाजी को बुलवाना चाहा था। वे श्रीबंकाजी को संयास की दीक्षा देकर अपना प्रधान शिष्य बनाना चाहते थे। उनका भी पत्र बाबूजी के पास आया। बाबूजी ने पुन: श्रीबंकाजी की निष्ठा को टटोला कि कहीं कीर्ति की लालसा तो नहीं है इसके हृदय में? अगर यह श्रीशंकराचार्यजी महाराज के प्रधान शिष्य के पद को स्वीकार कर ले तो सम्भव है कि आगे चलकर अपनी प्रतिभा-विद्वता-संयम-साधुता-सदगुण—भजन-भक्ति के बल पर यह काँची पीठ का पीठाधीश्वर बन सकता है और लाखों लोग शंकराचार्यजी का सम्मान करते ही हैं तो इसे भी खूब मान-सम्मान प्राप्त होगा परन्तु इस प्रकरण से भी श्रीबंकाजी बेदाग निकल गये और उन्होंने बाबूजी से सिर्फ एक ही बात कही—केवल कपड़ा रंगा कर क्या होगा? मन रंगा हुआ होना चाहिये, वह मेरा है नहीं। मैं धर्म-प्रचार के योग्य नहीं हूँ। मुझे तो एकमात्र अपनी सेवा का सौभाग्य ही प्रदान कीजिये। **अब जनि नाथ कहहु गृह जाही॥**

जब भी श्रीबंकाजी वृन्दावन जाते थे तो सभी सम्प्रदाय के महन्त, बाबूजी के निजी परिकर होने के नाते उनका खूब सम्मान करते और उनको अपने सम्प्रदाय में दीक्षित करना चाहते थे। उनके जैसे संयमी, प्रतिभाशाली शिष्य को भला कौन अपनाना नहीं चाहेगा। उनको देखते ही मन्दिर के महन्तजी प्रभु का प्रसादी मेवे का दोना, फल, फूल, इत्र, माला, चन्दन आदि मँगवाते

और सप्रेम पास बैठाकर अपने सम्प्रदाय के महत्त्व को समझाते और उन्हें अपने सम्प्रदाय में खींचना चाहते परन्तु श्रीबंकाजी प्रत्येक स्थान पर प्रणाम करके विनम्रतापूर्वक केवल इतना निवेदन करते कि—मैं भी तो कहीं लालित-पालित-पोषित हूँ, मैं उन्हें कैसे छोड़ दूँ। माना कि उन्होंने मुझे कण्ठी-माला-तिलक नहीं दिया है पर मैं हूँ तो उन्हीं का बालक। उनकी गोद में पला हूँ, उन्हें छोड़कर किसी भी अन्य स्थान में दीक्षा ग्रहण नहीं कर सकता। इस प्रकार का उत्तर सुनकर सब मौन हो जाते और श्रीबंकाजी के लिये काँजू-किसमिस का दोना आना बन्द हो जाता।

यहाँ पाठकों के मन में यह संशय-प्रश्न हो सकता है कि बाबूजी-बाबा अपने निज परिकरों-सेवकों को तिलक-छाप क्यों प्रदान नहीं करते थे? इसका एक बहुत महत्त्वपूर्ण कारण है। पूज्य बाबूजी गीताप्रेस के आदि सम्पादक हैं। गीताप्रेस की पुस्तकें पूरे विश्व में हिन्दू सनातन धर्म का प्रचार कर रही हैं। सभी सम्प्रदाय इन पुस्तकों पर आँख मूँदकर विश्वास करते हैं। ऐसी स्थिति में अगर बाबूजी किसी एक सम्प्रदाय विशेष में दीक्षित हो जाते हैं तो प्रेस की प्रकाशित सारी सामग्री को दूसरे सम्प्रदाय वाले यह कहकर मान्यता प्रदान नहीं करेंगे कि यह तो अमुक सम्प्रदाय का ग्रन्थ है। जिस हिन्दू धर्म संस्थापना के उद्देश्य को लेकर गीताप्रेस चल रही है वह कहीं साम्प्रदायिक आग्रह-दुराग्रह में न फँस जाय और उसके महान उद्देश्य की क्षति न हो इसलिये पूज्य बाबूजी ने स्वयं किसी एक वैष्णव सम्प्रदाय में दीक्षा नहीं ली और इसी कारण से वे अपने परिकरों-सेवकों-सुहृदयों को भी दीक्षा-तिलक-छाप -कण्ठी नहीं देते थे। वे अपने अनुयायिओं को नाम जप, विग्रह सेवा, ध्यान, ग्रन्थ-पाठ, सत्संग, परोपकार और सर्वत्र भगवद् दर्शन ही बताया करते थे।

यह कुछ उदाहरण है मात्र इतना बताने के लिये कि श्रीबंकाजी के जीवन में कैसे-कैसे और कितने बड़े-बड़े प्रलोभन-आकर्षण आये। आज के ज़माने में जहाँ मनुष्य मात्र थोड़े से रुपयों के लिये कुछ भी करने को तैयार हो जाता है वहाँ श्रीबंकाजी कीर्ति-कंचन-कामिनी के भयंकर चंगुल से सदा बचे रहे। एक बार श्रीबंकाजी ने बताया था कि मधुरोपासना का मार्ग ऐसा है कि बहुत

तरह की परीक्षा सामने आयेगी परन्तु स्वकरों से अपना शीश काटकर, स्वयं अपने हाथों में रखकर, गुरु को अर्पित करने का साहस अगर हो, तभी इस मार्ग पर कदम रखना चाहिये।

जब बाबूजी ने सब प्रकार की परीक्षा में, श्रीबंकाजी को पूर्णरूप से उत्तीर्ण देख लिया तब 31-3-66, राम नवमी के दिन उन्होंने प्रसन्न मन से श्रीबंकाजी को अपना निर्णय सुना दिया—अबसे तुम्हें गोरखपुर में मेरे पास ही सदैव रहना है। बाबूजी के श्रीमुख से यह अमृत वचन सुनकर श्रीबंकाजी को कितना आनन्द हुआ होगा, यह वाणी का विषय नहीं है। **बचन अगोचर सुखु अनुभवहीं॥**

****

जीना तेरी गली में

एक दिन ऋषिकेश में डालमिया कोठी के बरामदे में, संध्या समय श्रीबंकाजी एवं भाई श्रीकृष्णचन्द्रजी अग्रवाल साथ-साथ बैठे हुये थे। श्रीकृष्णचन्द्रजी पूज्य बाबूजी के केवल निजी सचिव मात्र नहीं अपितु अत्यन्त घरेलू व्यक्ति थे। परिवार की किसी भी छोटी-बड़ी समस्या में उनके परामर्श का महत्त्वपूर्ण स्थान था।

श्रीकृष्णचन्द्रजी अग्रवाल को भली प्रकार से ज्ञात था कि अनेक महान व्यक्तियों, विख्यात संस्थाओं एवं स्थानों से श्रीबंकाजी की माँग आ रही है। उदाहरण के लिये आर०एस०एस, विश्व हिन्दू परिषद, श्रीकृष्णजन्मभूमि संस्थान मथुरा, काँची के कामकोटि शंकराचार्यजी महाराज, श्रीजयदयालजी डालमिया आदि आदि। सभी इस-या-उस उपाय से, प्रलोभन या राष्ट्र-धर्म सेवा के नाम पर श्रीबंकाजी को अपने साथ जोड़ लेना चाहते थे। श्रीबंकाजी के अनेक सदगुणों से सभी आकृष्ट थे। इस बात की जानकारी श्रीकृष्णचन्द्रजी को थी एवं उनका मन आशंकित भी था कि कहीं श्रीबंकाजी इन ऊँचे पदों के प्रलोभन में आकर बाबूजी के संग का त्याग न कर दें।

एक दिन सहज भाव से जब दोनों साथ बैठे हुए थे तब श्रीकृष्णचन्द्रजी अग्रवाल ने श्रीबंकाजी से पूछा—बंकाजी! आप हम लोगों को छोड़कर कहीं अन्यत्र चले तो नहीं जाइयेगा ?

चाहे प्रलोभन कितने भी बड़े पद का क्यों न हो, श्रीबंकाजी का मन एकदम स्थिर था। उन्होंने एक क्षण के लिये भी कभी बाबूजी का साथ छोड़ देने की बात सोची भी नहीं थी। श्रीकृष्णचन्द्रजी के प्रश्न को सुनकर उन्होंने विनोद के स्वर में, हँसते हुए उनके सामने हिन्दी फिल्म की कुछ पंक्तियाँ उद्धृत कर दीं—

जीना तेरी गली में, मरना तेरी गली में,
मिट जायेगी हमारी, दुनिया तेरी गली में॥

आये है तेरे दर पे, हम जिन्दगी लुटाने,
तू देखे या न देखे, तू जाने या न जाने॥
पूरा करेंगे हम तो, वादा तेरी गली में॥

दिल से तेरी मोहब्बत, कम उम्र भर न होगी,
हम तुझपे मर मिटेंगे, तुझको खबर न होगी॥
मरने के बाद होगा, चर्चा तेरी गली में॥

यह बात उस समय श्रीबंकाजी के द्वारा मात्र विनोद के स्वर में कही गयी थी। आगे उनके जीवन में बड़े विकट उतार-चढ़ाव आये और मन की स्थिरता ने अपना स्थान कई बार छोड़ दिया। कई परिस्थियाँ तो ऐसी भी उपस्थित हुईं जब उनके हृदय में यह विचार आने लगा कि अब उन्हें गोवर्धन-वृन्दावन का वास ले लेना चाहिये परन्तु विधि के विधान ने कभी ऐसा होने नहीं दिया। जो बात विनोद के स्वर में कही गयी थीं, वे पंक्तियाँ उनके जीवन का यथार्थ सत्य बन गयीं। वे अपने जीवन के अन्तिम श्वास तक गीतावाटिका में ही रहे।

****

बाबूजी के प्रवचनों की रिकॉर्डिंग

पूज्य बाबूजी प्रतिवर्ष श्रीजयदयालजी गोयन्दका की आज्ञानुसार, ग्रीष्म

अवकाश में सत्संग प्रदान करने, स्वर्गाश्रम, ऋषिकेश जाया करते थे और दो-तीन मास रहा करते थे। उस समय गीताभवन में बाबूजी का प्रवचन, कभी दिन में एक बार तो कभी दो बार हुआ करता था। उन प्रवचनों को रिकॉर्ड करने का कार्य आदरणीया सावित्रीबाई फोगला ने श्रीबंकाजी को सौंप रखा था।

आदरणीया सावित्रीबाई की सुपुत्री का नाम श्रीपुष्पा भरतिया है। जब पुष्पाजी का विवाह 1962 में हुआ, तब उन्हें दहेज में एक बढ़िया टेप-रिकॉर्डर दिया गया था। किसी पारिवारिक विषमता के कारण पुष्पाजी अपने ससुराल का परित्याग करके, सारे सामान सहित गोरखपुर आ गयी थीं। आदरणीया सावित्रीबाई ने पुष्पाजी का बढ़िया Philips tape recorder श्रीबंकाजी को दे दिया। श्रीबंकाजी उसे अपने साथ गीताभवन ले जाते थे और प्रवचन रिकॉर्ड करने के बाद बाई को टेप रिकॉर्ड वापस दे दिया करते थे।

बाबूजी, सेठजी श्रीजयदयालजी गोयन्दका के, सिद्धांतों का पालन किया करते थे। उनको यह नितान्त अप्रिय था कि सत्संग का और उनका, किसी भी तरह से प्रचार-प्रसार किया जाये। यही कारण है कि वे सदा नवीन तकनीक जैसे TapeRecording-Advertising आदि से दूर ही रहना चाहते थे। उनका मानना था कि जिसको सत्संग की ललक हो वह व्यक्ति स्वयं यहाँ आये और सत्संग लाभ प्राप्त करे। बाबूजी का जो आत्म संगोपन एवं दैन्य भाव था, वह उनके आध्यात्मिक व्यक्तित्व के अनुरूप ही था।

बाबूजी के निकटवर्ती अन्य सभी लोगों के विचार इससे एकदम भिन्न थे। वे सभी लोग यह चाहते थे कि बाबूजी के सभी प्रवचनों की रिकॉर्डिंग हो और उनकी अमूल्य वाणी को सदा के लिये सम्भाल कर सुरक्षित रखा जाये जिससे भविष्य के साधकों-भक्तों को विशेष लाभ मिल सके। किसी के भी समझ नहीं आ रहा था कि बाबूजी से छिपाकर यह काम किया कैसे जाये। सन 1960 के दशक में आज की तरह रिकॉर्डिंग के उपकरण उपलब्ध नहीं थे।

अब समस्या ये थी कि यह काम हो कैसे? यदि बाबूजी को भनक भी

लग जाये कि उनकी अवाज़ को रिकॉर्ड किया जा रहा है, तब तो वे अत्यधिक अप्रसन्न होंगे। सम्भव है कि प्रवचन-सत्संग सब बन्द कर दें। इस विकट समस्या का समाधान श्रीबंकाजी ने सुझाया। वे पूज्या बाई के पास गये और एकान्त अवसर पाकर उनसे कहा—बाई, यदि आपको मुझ पर भरोसा हो तो बाबूजी के सत्संग की रिकॉर्डिंग का काम मैं कर सकता हूँ।

अत्यधिक आश्चर्यचकित होते हुए बाई ने पूछा—और यह काम करोगे कैसे?

उत्तर में श्रीबंकाजी ने कहा—बाई, आप मुझे एक टेप रिकॉर्डर प्रदान करें। मैं प्रतिदिन सत्संग में उस टेप रिकॉर्डर को लेकर जाऊँगा और अपनी गोद में रखकर अपनी चादर से ढक लूँगा। मेरे हाथ चादर के अन्दर-ही-अन्दर रिकॉर्डिंग का काम करते रहेंगे। मैं सबसे आगे परन्तु कुछ किनारे होकर बैठने का प्रयास करूँगा जिससे आवाज़ एकदम साफ रिकॉर्ड हो और बाबूजी को मुझ पर कोई शक भी न हो। अपने कमरे के एकान्त में मैं पहले से ही अभ्यास कर लूँगा कि चादर के नीचे, बिना हिले-डुले कौन-सा बटन कब दबाना है। इस प्रकार से रिकॉर्डिंग का काम हो जायेगा, जो भावी साधक-वर्ग के लिये बहुत उपयोगी होगा।

श्रीबंकाजी की बात बाई को अच्छी लगी। कुछ सोचते हुए उन्होंने पूछा—बात तो तुम्हारी सब ठीक लग रही है पर अगर बाबूजी को पता चल गया तो क्या करोगे?

श्रीबंकाजी ने उत्तर दिया—जहाँ तक मुझे उम्मीद है, मैं इतनी सफाई से यह काम करूँगा कि उन्हें पता चलेगा ही नहीं और अगर कभी पता चला भी तो मैं आपका नाम नहीं लूँगा। मैं सारा दोष स्वयं पर ले लूँगा। बाबूजी अगर रुष्ट भी हुए तो अधिक समय तक रुष्ट रह नहीं सकते। जितनी भी रिकॉर्डिंग हो जायेगी उतना ही हमलोगों का लाभ है।

पूज्या बाई को अब श्रीबंकाजी की बातों पर भरोसा होने लगा। उनके पास इसके अलावा और कोई समाधान-सुझाव था भी नहीं अतः उन्होंने

अपनी पुत्री पुष्पाबाई का नया टेप रिकॉर्डर श्रीबंकाजी को रिकॉर्डिंग करने के लिये दे दिया।

श्रीबंकाजी को टेप-रिकॉर्डर के मिलने से बहुत प्रसन्नता हुई। वे उसे सम्भाल कर और सबकी निगाहों से छिपाकर अपने कक्ष में ले आये और एकान्त में, गोद में रखकर, सूती चादर के नीचे छिपाकर, बिना देखे चलाने का अभ्यास करने लगे। कुछ ही घण्टों के अभ्यास से श्रीबंकाजी इस कार्य में दक्ष हो गये।

अगले दिन से श्रीबंकाजी बाबूजी की सत्संग में जाने के लिये धोती-कुर्ता के ऊपर खद्दर की एक चादर ओढने लगे जिससे टेप-रिकॉर्डर को भली प्रकार से छिपा कर सबके बीच में बैठा जा सके। वे सबसे पहले गीताभवन सत्संग के लिये पहुँच जाते और माइक के सामने कुछ किनारे की तरफ बैठ जाते। जब बाबूजी का प्रवचन आरम्भ होता, वे अपनी अँगुलियों से रिकॉर्ड बटन दबा देते और सावधानी पूर्वक बैठकर सत्संग सुनते। प्रवचन पूर्ण होने पर टेप रिकॉर्डर को चादर के भीतर छिपाये हुए ही डालमिया कोठी जाकर बाई को लौटा देते।

यह रिकॉर्डिंग का क्रम कई सालों तक चला। बाबूजी के आरम्भिक सारे प्रवचन श्रीबंकाजी के ही रिकॉर्ड किये हुए हैं। स्वर्गाश्रम की सफलता के बाद गोरखपुर में भी इसी प्रकार से रिकॉर्डिंग होती रही। धीरे-धीरे बाबूजी के कुछ अति निकटतम व्यक्तियों को भी इस बात की जानकारी हो गयी और सबने श्रीबंकाजी की कुशाग्र बुद्धि और गुप्त सेवा की बहुत प्रशंसा की।

****

बाबूजी के परिवार के अभिन्न अंग

श्रीबंकाजी का, बाबूजी के परिवार के साथ बहुत घनिष्ट सम्बन्ध स्थापित हो गया था। अगर ये कहा जाय कि बाबूजी का परिवार ही श्रीबंकाजी का परिवार हो गया था तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। इस बात को स्पष्ट करने के लिये कुछ छोटे-छोटे प्रसंग, उदाहरण स्वरूप दिये जा रहे हैं।

पहला उदाहरण

पूज्य श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारीका आगमन

पूज्य श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी इस सदी के महान सन्त थे। उन्होंने सतत् नाम संकीर्तन की ज्योति जलाकर सदैव देश और समाज की समृद्धि की कामना की थी। गोरक्षा, गंगा की पवित्रता, हिन्दी भाषा, भारतीय संस्कृति और हिन्दू धर्म की सेवा उनके जीवन के मुख्य लक्ष्य थे। उन्होंने गोरक्षा पर अनशन, आन्दोलन तथा यात्राएँ भी की थी। वे संस्कृत, हिंदी, ब्रजभाषा के प्रकाण्ड विद्वान तथा अध्यात्म के पुरोहित थे। वे समाज सेवा, संस्कृति, साहित्य, स्वाधीनता, साधना, शिक्षा के समर्पित पोषक एवं प्रेरणा स्त्रोत थे।

एक बार सन् 1966, मई मास में सन्त श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी वृन्दावन से गोरखपुर, गीतावाटिका पधारे। उनके साथ कुछ सन्त और भी थे। श्रीबंकाजी ने बाबूजी को तुरन्त सूचित किया। पूज्य बाबूजी उनके आते ही अपने कमरे से बाहर आये। इतने बड़े सन्त को अपने घर आया देख, बाबूजी ने अति आनन्दित होते हुए उनके श्रीचरणों में झुककर प्रणाम किया। श्रीब्रह्मचारीजी मना करते रहे पर बाबूजी झुकते ही जा रहे थे। दोनों सन्तों के परस्पर मिलन का यह दृश्य बहुत ही सुन्दर था। श्रीबंकाजी बाबूजी के बगल में खड़े होकर दोनों सन्तों का दैन्य अपलक नेत्रों से निहार रहे थे। **पाइ नयन फलु होहिं सुखारी॥**

बाबूजी ने श्रीबंकाजी, श्रीदुलीचंदजी, श्रीरामसनेहीजी को शीघ्रतापूर्वक श्रीब्रह्मचारीजी के सुखपूर्वक निवास की और भोजन की व्यवस्था करने को कहा। आज्ञा मिलते ही श्रीबंकाजी सहित अन्य सभी परिकर सन्तों के लिये आसन-आवास-भोजन की व्यवस्था करने में जुट गये।

अगले दिन पूज्य श्रीब्रह्मचारीजी की बाबूजी के घर में भिक्षा थी। बुलाने का काम श्रीबंकाजी को सौंपा गया। श्रीबंकाजी श्रीब्रह्मचारीजी को साथ लेकर आये। बाबूजी के चौके में भोजन के लिये विविध सामग्रियाँ बनायी गयी थीं। आसन पर बैठाने से पहले बाबूजी पूज्य श्रीब्रह्मचारीजी के पैर धोना चाहते थे। ज्यों ही बाबूजी ने हाथ में गंगासागर लेकर ऐसा करना चाहा, श्रीब्रह्मचारीजी ने

बाबूजी के हाथ से गंगासागर छीन लिया। एक का आग्रह पैर धोने का था और एक का आग्रह नहीं धुलवाने का। दो आग्रहों का संघर्ष देखने लायक था। बाबूजी हँसते जा रहे थे, आग्रह करते जा रहे थे और कुछ-कुछ हाथा-पायी भी करते जा रहे थे पर श्रीब्रह्मचारीजी के सामने उनकी एक नहीं चली। फिर श्रीबंकाजी ने श्रीब्रह्मचारीजी के हाथों से गंगासागर को लेते हुए कहा—आप कृपा करके मुझे चरण धोने का अवसर प्रदान करें।

श्रीब्रह्मचारीजी ने यह प्रस्ताव झट से स्वीकार कर लिया। श्रीबंकाजी ने श्रीब्रह्मचारीजी के पैर धोये। इसी अवसर पर पूज्य बाबूजी ने भी उनके पैरों को हाथ लगाया और धोया। भोजन के लिये चौके में श्रीब्रह्मचारीजी का आसन और पाटा लगा था। बाबूजी ने श्रद्धा सहित उनको आसन पर बैठाया। बाबूजी तो स्वयं परोसना चाहते थे परन्तु श्रीब्रह्मचारीजी ने बाबूजी को साथ बैठने और साथ ही प्रसाद पाने का आग्रह किया। बाबूजी श्रीब्रह्मचारीजी के बगल में बैठ गये। परिवार के लोगों के साथ श्रीबंकाजी भी परोसने लगे। बाबूजी चाहते थे कि पहले सन्त भगवान की भिक्षा हो पर श्रीब्रह्मचारीजी के विशेष आग्रह पर दो पाटें एक साथ लगाये गये पर पहले श्रीब्रह्मचारीजी को परोसा गया। कई प्रकार के फल, कई प्रकार के साग, खीर-पूरी और भी कई चीजें थी। तैयार सामग्री की विविधता को देखकर श्रीब्रह्मचारीजी ने कहा—आज तो अन्नकूट हो गया।

माँ स्वयं चौके में बैठी सेवा सम्भाल रही थीं। माँ और बाबूजी की यह सन्त सेवा सराहनीय है। भोजन के बाद श्रीब्रह्मचारीजी ने कुछ देर विश्राम किया, फिर श्रीब्रह्मचारीजी द्वारा लिखित भगवत् चरित्र की कथा हुई। इस उदाहरण से स्पष्ट दिखाई देता है कि श्रीबंकाजी एक पुत्र की भाँति बाबूजी के साथ रहा करते थे।

दूसरा उदाहरण
बाबूजीके विश्वासपात्र

एक बार की बात है। श्रीबंकाजी अपने केबिन में बैठे काम कर रहे थे।

पूज्य बाबूजी उनके पास आये और बुला करके छत पर ले गये। फिर उनके कंधे पर हाथ रख करके मन्द-मन्द स्वर में कहने लगे—आज तुम्हारी माँ की तबीयत कुछ अधिक खराब है। सही दवाई दे दी जायेगी तो आराम मिल जायेगा। अगर उसे पता चला कि डॉक्टर बाबू को उसके लिये मैंने बुलवाया है तो नाराज होगी। तुम डॉक्टर चक्रवर्ती को फोन करके बुला लो। जब उन्हें फोन करो तो कह देना—आपको यह नहीं कहना है कि माँजी मैं आपको देखने के लिए आया हूँ। इसके बदले आप यह कहेंगे कि—मैं श्रीदुलीचंद दुजारी को देखने आया था। जब उनको देखने के लिये आया तो मन में यह बात आई कि आपको भी देख लूँ, इसीलिए माँजी, मैं आपके पास आया हूँ।

एक कुशल सेवक अपने स्वामी के इशारे को भली-भाँति समझ लेता है। श्रीबंकाजी ने भी परिस्थिति को समझते हुए वैसा ही किया।

बाबूजी अपने छोटे-बड़े, गुप्त-प्रकट हर काम श्रीबंकाजी को निसंकोच कहते थे। कोई छुपाने की बात होती थी तो भी वे श्रीबंकाजी को बता देते थे। वे जानते थे कि यह उनकी बात किसी को नहीं कहेगा और कार्य में पर्याप्त सहयोग देगा।

तीसरा उदाहरण
परिवारके अपने

पूज्य बाबूजी का घर मानो श्रीबंकाजी का अपना ही घर था। बाबूजीके परिवार के सदस्यों से श्रीबंकाजी का अति निकट का सम्बन्ध था। बाबूजी के साथ रहने के कारण श्रीबंकाजी सारे दिन उनके घर में ही रहते थे। पूज्य बाबूजी की दौहित्री, पुष्पाबाई भरतिया के दो पुत्र हैं। बड़े पुत्र का नाम है नीलमणि और छोटा है उज्ज्वलमणि। जब उज्ज्वलमणि की आयु एक-डेढ़ साल की थी तब उसके साथ श्रीबंकाजी प्रेमपूर्वक खेला करते थे। वह शिशु बिस्तर पर या पलने में लेटा रहता था और श्रीबंकाजी गुदगुदाकर उसे हँसाया करते थे। उसकी मुखाकृति बड़ी नयनाभिराम थी।

एक बार उज्ज्वलमणि कोठी के बरामदे में पलने में लेटा हुआ था और

श्रीबंकाजी उसे गुदगुदी कर रहे थे। समीप में कई पारिवारिक महिलाएँ थीं। पुष्पाबाई ने देखा कि श्रीबंकाजी नीलमणि की ओर देखते भी नहीं हैं और केवल उज्ज्वलमणि के साथ खेलते रहते हैं। अनेक महिलाओं की उपस्थिति में पुष्पाबाई ने विनोद भरा प्रश्न किया—क्यों बंकाजी! आप मेरे एक ही पुत्र के साथ खेलते हैं। आप मेरे दोनों बेटों में difference (अथार्त अन्तर) करते हैं?

श्रीबंकाजी ने चट उत्तर दिया—पुष्पाबाई! दोनों ही बालक मुझे अत्यधिक प्रिय हैं, पर difference इसलिये है क्योंकि दोनों की उम्र में difference है।

सारी महिलाएँ हँस पड़ी और एक बहिन ने कहा—बंका भैया के पास गढ़े-गढ़ाये उत्तर सदैव तैयार रहते हैं। शब्दों के खेल में इनकी बराबरी कौन कर सकता है भला!

चौथा उदाहरण

'दूसरे' प्रवचनका आरम्भ

7 मई 1967 को स्वर्गाश्रम, गीताभवन के रात्रि के प्रवचन में बाबूजी ने श्रीरवीन्द्रनाथ टैगोर की गीतांजलि के एक गीत को सुनाया और साथ ही अर्थ भी बताया—हे नाथ! विपत्ति के आने पर मेरी यह प्रार्थना नहीं है कि तुम मेरी विपत्ति को दूर कर दो, अपितु वह शक्ति देना, जिससे विपत्ति को सह सकूँ, विपत्ति के पार जा सकूँ।

पद की व्याख्या भी उतनी ही भावपूर्ण और प्रभावपूर्ण थी, जितना कि वह स्वयं पद। कई श्रोता रीझ गये। प्रवचन की समाप्ति पर गीताभवन से बाबूजी अपने निवास स्थान डालमिया कोठी पर आ रहे थे। कोठी में फिर गीतांजलि के भावों की चर्चा चल पड़ी। बाबूजी कमरे के दरवाजे पर खड़े हो गये। खड़े-खड़े ही फिर से गीतांजलि के सबसे पहले पद को सुनाया और उसका अर्थ करने लगे। घर के कुछ सदस्य, परिकर श्रीबंकाजी, श्रीकृष्णजी आदि वहीं खड़े थे।

श्रीरामसनेहीजी ने बाबूजी के भोजन के लिये, कमरे के भीतर पाटा बिछा दिया। इतने में आदरणीया श्रीसावित्रीबाई सेकसरिया भी आ गयी। सावित्रीबाई ने बाबूजी से कहा—रवीन्द्र बाबू का यह पद लिखकर दे दीजिये।

सावित्रीबाई इस पद की व्याख्या प्रवचन में सुन चुकी थीं। बाबूजी ने बड़े स्नेह से कहा—लेकर तुम क्या करोगी? यह तो बँगला भाषा में है।

सावित्रीबाई ने कहा—उसकी हिन्दी भी साथ-साथ लिख दीजियेगा।

बाबूजी ने कहा—इसके भावों को अपने हृदय में लिख लो।

इधर ये सब बातें चल रही थीं, उधर श्रीरामसनेहीजी भोजन की सामग्री ले आये।

कमरे के दरवाजे पर बहुत लोगों का जमघट लगा था। बाबूजी को भोजन परोसने के लिये माँ आयीं, पर भीड़ देखकर वे वापस जाने लगी। श्रीबंकाजी ने कहा—माँ! जाती क्यों हो? हमलोग तो यों ही इकट्ठे हो गये थे। भोजन कराने के लिये जब तक तुम नहीं आयीं, तब तक के लिये हमलोग बाबूजी से उनकी बातें सुन रहे थे।

श्रीबंकाजी के इतना कहने पर सब लोग जाने लगे। उसी समय माँ ने विनोद किया—मैं तो समझी कि यहाँ एक और दूसरा प्रवचन आरम्भ हो गया है। एक तो अभी गीताभवन में समाप्त हुआ ही है। और तुम सब लोग इतना सुनते हो, कभी एक बात तो मन पर असर करे!

माँ के विनोद का मन्द हास्य से अभिनन्दन करते हुए सभी लोग वहाँ से चले आये। श्रीबंकाजी बाबूजी का बताया कार्य करने लगे।

पाँचवा उदाहरण

रुपयोंका हिसाब

पूज्या माँ अपने रुपयों का हिसाब-किताब, बाज़ार का विशेष काम आदि श्रीबंकाजी से करवाया करती थीं। माँ ने सदा श्रीबंकाजी को अपने पुत्र के समान ही माना। श्रीबंकाजी भी माँ की सेवा करना अपना सौभाग्य मानते थे।

एक दिन दोपहर के वक्त बाबूजी भोजन करने के लिये बैठे हुए थे। बिजली नहीं थी और अत्यधिक गर्मी के दिन थे। माँ, बाबूजी के बगल में बैठकर पंखा कर रही थी। अन्य कोई वहाँ नहीं था।

श्रीबंकाजी को किसी काम से माँ ने बाज़ार भेजा था और कुछ सामान मँगवाया था। श्रीबंकाजी उसी समय पहुँचे और माँ को सामान का झोला देते हुए कहा—माँ, सब सामान आ गया है, तुम देख लो। अगर और कुछ चाहिये होगा तो बता देना। कल फिर ले आऊँगा।

इतना कहकर श्रीबंकाजी ने माँ के हाथों में सामान पकड़ा दिया और बाबूजी ने रसीद और रुपये ले लिये। भोजन करते-करते बाबूजी हिसाब की रसीद देखने लगे। बाबूजी ने कहा—सावित्री की माँ, तू बहुत खर्चा करती है, इतना पैसा कहाँ से आयेगा?

माँ ने तपाक से उत्तर दिया—आपके भगत हैं तो क्या मेरे नहीं हैं? आप नहीं देंगे तो उनसे ले लूँगी। अरे, कोई बहू-बेटी मेरे पास आयेगी तो उसे खाली हाथ थोड़े भेजूँगी भला!

बाबूजी और माँ की बातें श्रीबंकाजी सुन रहे थे। उनका मन खेद से भर गया कि माँ ने उन पर विश्वास करके समान लाने के लिये रुपये दिये थे। उन्हें माँ का हिसाब बाबूजी के सामने न देकर अकेले में, माँ को देना चाहिये था। उन्हें अपनी करनी पर बड़ा दुःख हुआ पर अब क्या किया जा सकता था। वे अपने केबिन में लौट आये और काम करने लगे पर काम में मन न लगा। बार-बार यही ख्याल आये कि आज तो उनके कारण माँ को बाबूजी का उलाहना सुनना पड़ गया। अगर उन्होंने बुद्धि लगाई होती और अकेले में माँ को हिसाब दिया होता तो यह सब नहीं होता। अब पछतावे क्या होत जब चिड़िया चुग गयी खेत!

मन में अशान्ति होने के कारण श्रीबंकाजी से कुछ काम नहीं हुआ। बाबूजी को भोजन कराने के बाद माँ अपने कक्ष में चली गयीं। एकान्त अवसर पाकर श्रीबंकाजी माँ के पास गये और क्षमा माँगते हुए कहा—माँ! मुझे क्षमा कर दो, मुझसे भूल हो गयी। बाबूजी के सामने मुझे सामान का

हिसाब नहीं देना चाहिये था। बड़ी गलती हो गयी। मेरे कारण तुम्हें बाबूजी का उलाहना सुनना पड़ गया।

माँ मुसकुराने लगी और प्रेमपूर्वक कहा—अरे! इसमें भूल क्या? उनका और मेरा कुछ अलग थोड़ी ही है। कल भी रुपये वे ही देते थे, आज भी वे ही देंगे।

कुछ आश्चर्यचकित होते हुए श्रीबंकाजी ने पूछा—फिर वो हिसाब की बात सुनकर बाबूजी नाराज़ हो रहे थे और तुमने कहा कि तुम अपने भक्तों से ले लोगी, उसका क्या?

माँ ने हँसते हुए कहा—वह तो विनोद था, आत तक मैंने तेरे बाबूजी के सिवा किसी से पैसे नहीं लिये हैं।

माँ की बातों को सुनकर और उन्हें प्रसन्न देखकर श्रीबंकाजी को शान्ति मिली और वे अपने काम में लग गये।

छठा उदाहरण

गुप्त दान

साठ के दशक में सारे भारत में गौ-रक्षा आन्दोलन चल रहा था। श्रीबंकाजी बाबूजी के साथ दिल्ली में डालमिया कोठी में रुके हुए थे। एक दिन बाबूजी ने उनको बुलाया। उन दिनों भयंकर जाड़ा पड़ रहा था। श्रीबंकाजी ने ऊनी कोट पहन रखा था। बाबूजी ने उनको सौ-सौ वाले लगभग दो-तीन हजार रुपये दिये और कहा—तुम इनको अपने कोट में दोनों ओर पॉकेट में रख लो। तुमको कोई जानता नहीं है। तुम सब के लिये अपरिचित हो। श्रीयमुनाजी के तट पर गौ-रक्षा आन्दोलन में सत्याग्रह करने के लिए अनेक सन्त-महात्मा भारत के कोने-कोने से आये हैं। उनके शिविर लगे हुए हैं। ये शिविर लगभग डेढ़-दो सौ होंगे। तुम घूमते-घूमते शिविरों में जाना। कुछ मिनट बैठना। जैसा जँचे, जो महन्त हों या प्रमुख हों, उसको प्रणाम करना तथा कहीं सौ, कहीं दो सौ, कहीं पाँच सौ रुपये देकर चल देना।

श्रीडालमियाजी की कार श्रीबंकाजी को श्रीयमुनाजी के किनारे छोड़ कर

चली गई। श्रीबंकाजी शिविर-शिविर घूमते हुए रुपयों को देते रहे। जब पॉकेट खाली हो जाता तब वापस चले आते। इस प्रकार से यह क्रम कई दिनों तक चलता रहा। इन दिनों श्रीबंकाजी को पूज्य बाबूजी की उदार भावना के समीप से दर्शन हुए। साठ के दशक में दो-तीन हजार रुपये बहुत होते थे। बाबूजी को श्रीबंकाजी की इमानदारी पर पूरा भरोसा था इसीलिये ऐसे काम वे सदा उनसे करवाया करते थे।

इन कुछ उदाहरणों से यह स्पष्ट हो जाता है की बाबूजी, माँ, बाबूजी का परिवार सब श्रीबंकाजी के लिये अपनों से भी अपने थे। **मोरें तुम्ह प्रभु गुर पितु माता। जाउँ कहाँ तजि पद जलजाता॥**

****

प्रणाम वल्लरी

जब पूज्य बाबूजी ने प्रसन्न मन से श्रीबंकाजी को हमेशा के लिये अपने ही पास, गीतावाटिका में, रहने की अनुमति प्रदान कर दी तो श्रीबंकाजी का अशान्त मन एकदम से शान्त हो गया। पहले उन्हें हर समय, यह डर लगा रहता था कि किसी-न-किसी अप्रिय कारण से उन्हें बाबूजी का चरणाश्रय छोड़कर, गीतावाटिका छोड़कर, कहीं अन्यत्र न भेज दिया जाये। श्रीरामनवमी के दिन बाबूजी के अमोघ आशीर्वाद स्वरूप, निकट रहने की स्वीकृति को पाकर, श्रीबंकाजी का मन अति प्रसन्न और संशय-शून्य रहने लगा।

जो मन आनन्दित होता है वह बार-बार गलता है अपने प्रेमास्पद के प्रति। वह मन बार-बार प्रणाम करता है अपने आराध्य को। एक बार श्रीराधाबाबा ने श्रीबंकाजी को बताया था कि पूज्य बाबूजी और नित्य निकुंजेश्वरी श्रीराधा में अणु-मात्र का भी भेद नहीं है। जो श्रीराधा हैं, वहीं इस धरती पर बाबूजी के कलेवर में व्याप्त हो रही हैं। तबसे श्रीबंकाजी ने श्रीराधा में और बाबूजी में भेद माना ही नहीं। उन्होंने परमाराध्या श्रीराधा के श्रीचरणों में प्रणामों की झड़ी लगा दी। वे अपनी कविता की डायरी में प्रतिदिन श्रीराधा को (पूज्य बाबूजी को) नवीन-नवीन प्रणाम लिखकर अर्पित करने लगे।

श्रीबंकाजी के हृदय में मानसिक सेवा-समर्पण का स्तर कैसा था यह

बता देना उचित लग रहा है। भक्ति मार्ग में साधना के विभिन्न सोपान होते हैं। शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और माधुर्य उसके प्रमुख भेद बताए गये हैं। ये सभी भाव क्रमशः एक दूसरे से गहन होते चले जाते हैं। प्रभु से आत्मीय सम्बन्ध स्थापित होने पर ये सभी भाव, साधक को परम आनन्द की प्राप्ति कराने में समर्थ हैं। इन मुख्य पाँच भाव के अनेक भेद-प्रभेद हैं। भक्ति रूपी आनन्द-रस-सिन्धु में प्रत्येक साधक अपनी पात्रता अनुसार अवगाहन करता है। उदाहरण के लिए—दास्य-रस का एक भक्त श्रीहनुमानजी, श्रीकेवट की कोटि का भी हो सकता है, और एक अति साधारण सेवक भी हो सकता है। उसी प्रकार सख्य-रस का साधक, भगवान के सखा श्रीउद्धव, श्रीअर्जुन, श्रीसुदामा के भाव से उपासना कर सकता है या फिर नन्दलाला के बाल-सखा, श्रीदाम, सुबल, भद्र, तोक, विशाल आदि बनकर उनकी लीला में सम्मिलित हो सकता है। श्रीअर्जुन और श्रीदाम दोनों ही श्रीकृष्ण के परम मित्र हैं पर इनके प्रेम-भाव-स्वरूप-चेष्टा में बड़ा अन्तर है।

इसी प्रकार वात्सल्य रस का साधक श्रीनन्दबाबा-श्रीदशरथजी के भाव से या मैया कौशल्या-मैया यशोदा के भाव से ठाकुरजी को लाड़ लडा सकता है। जनकपुर की, ब्रज-गोकुल की मातृस्थानीय गोपी भी इसी श्रेणी में आती हैं। ये सभी रस परम वन्दनीय और श्रेष्ठ हैं। अपने आप में पूर्ण हैं परन्तु इन सभी रसों से अति-विलक्षण है गोपी भाव की उपासना।

गोपी भाव के अनेक भेद-प्रभेद हैं और सबके स्तरों में अत्यधिक विभिन्नता है। नन्दब्रज और बरसाने की गोपकन्या, श्रीकृष्ण की प्राप्ति के लिए माँ कात्यायनी का व्रत करती हैं। इसका विस्तृत उल्लेख श्रीभागवतजी में मिलता है। ये गोपियाँ श्रीकृष्ण को पति रूप में पाना चाहती हैं परन्तु कुछ ऐसी भी सखियाँ-सहचरियाँ-मंजरियाँ-दासियाँ हैं जो एकमात्र श्रीराधा के प्रति ही पूर्ण समर्पिता हैं। उनका हँसना-बोलना-खाना-पीना-श्वास लेना, सब कुछ एकमात्र अपनी स्वामिनी श्रीराधा के लिए ही है। अगर श्रीराधा की प्रसन्नता हो, तो ही वे श्रीकृष्ण से वास्ता रखें अन्यथा श्रीकृष्ण से भी उनका कोई वास्ता न रहे। ऐसा अनोखा समर्पण है इन सहचरियों का! इनका जीवन है श्रीप्रिया-प्रियतम का सुख। इनकी सेवा है श्रीप्रिया-प्रियतम को प्रतिपल आनन्दित करते

रहना। ब्रज के रसिक सन्तों ने श्रीराधा-पद-समर्पिता इन सखियों को स्वसुख-वांछा-कल्पना-लेश-शून्य माना है। यह स्थिति आत्माहुति की पराकाष्ठा है। इनका तन-मन-प्राण, क्षण-क्षण अपनी स्वामिनी श्रीराधा के चरणों की रज को प्रणाम करता है। कुछ ऐसी ही स्थिति श्रीबंकाजी की भी थी। प्रणाम वल्लरी काव्य-सुधा के सृजन-काल में वे स्वयं को श्रीराधाजी की नित्य सहचरी के रूप में देखा करते थे।

भगवती श्रीराधा एवं भगवान श्रीकृष्ण की लीला सर्वथा सच्चिदानन्दमय है। उनका स्वरस विलास पूर्णतः अप्राकृत है। उनके मन-बुद्धि-इन्द्रिय-अंग-अवयवादि सभी कुछ भगवत्-स्वरूप हैं। उस लीला-राज्य के सभी परिकर, वहाँ के सारे पशु-पक्षी, वहाँ की सम्पूर्ण प्रकृति चिन्मय-स्वरूपा है। वे सभी अहर्निश तत्सुखी भावना से भावित रहते हैं तथा उन सभी का एकमात्र उद्देश्य है लोकोत्तर आनन्द की सिद्धि में प्रतिपद-प्रतिक्षण सहयोग देना।

लीला-स्थली चाहे नित्य चिन्मय धाम हो, सौभाग्यशालिनी ब्रज वसुन्धरा हो या किसी रसिक सन्त का पावन मानस-पटल हो, वहाँ सम्पन्न होने वाली प्रत्येक लीला में महाभावस्वरूपा श्रीराधा का अस्तित्व है ही रसराज श्रीकृष्ण को नित्य सुख प्रदान करने के लिए। श्रीराधा हैं—श्रीकृष्ण का सुख, श्रीकृष्ण के आनन्द का नाम है श्रीराधा। श्रीराधा के कारण ही काम-गन्ध-शून्य, सुन्दर-से-सुन्दर लीलाओं का विस्तार होता रहता है। श्रीकृष्ण को आनन्द प्रदान करने के लिए श्रीराधा की कायव्यूह-स्वरूपा, सखी-मंजरियाँ अनेक प्रकार की सेवा में सदा संलग्न रहती हैं।

भगवान श्रीकृष्ण का सहज स्वरूप आनन्द है, पर उन आनन्द स्वरूप को भी आनन्दित करती रहती है अचिन्त्यानुरागिनी श्रीराधा। यही कारण है कि सभी को अपनी ओर आकर्षित करने वाले श्रीकृष्ण, श्रीराधा के प्रति सदा सर्वदा आकृष्ट रहते हैं। ऐसा होने पर भी सदा समर्पित श्रीराधा की रस-परिचर्या में कभी विराम आता ही नहीं। निरन्तर रस-दान ही उनका स्वाभाविक स्वरूप है। उन्हीं अचिन्त्य अनुरागिनी, सदा समर्पिता, महाभाव स्वरूपा श्रीराधारानी के प्रति भाव-प्लुत प्रणाम श्रीबंकाजी अर्पित करने लगे।

श्रीबंकाजी के मानस का मन्थन, उनके प्रतिक्षण चिन्तन का नवनीत, उनके प्राणों की उमड़न, प्रणाम के मधुर भावों के रूप में परिणत हो जाती। इन प्रणामों में शब्दों का भरपूर श्रृंगार है। उनकी लेखनी मानो घुंघरू बाँधकर नृत्य कर रही हो, ऐसी भावों की छलकन है। प्रणाम में प्रयुक्त ललित शब्द, शब्दों के सटीक विशेषण, विशेषण के विलक्षण भाव—सब मधुर से भी अधिक मधुर हैं।

जब 51 प्रणाम लिखे गये तब श्रीबंकाजी ने इन्हें पूज्य श्रीराधाबाबा को सुनाया। बाबा इन्हें सुनकर अतिशय आनन्दित हुए और श्रीबंकाजी से कहा—मधुर! अत्यधिक मधुर! साधु-साधु! लिखते जाइए। जब 108 हो जाये, तो मुझे फिर दिखाईयेगा।

श्रीबंकाजी का मन तो पहले से ही बाबूजी के चरणों में बारम्बार प्रणाम कर रहा था। वे तो सोचा ही करते थे—**को सुकृति हम सरिस बिसेषी।** अब बाबा का प्रोत्साहन पाकर उनका मन झूम उठा और उनकी लेखनी को और अधिक गतिशीलता प्राप्त हुई। बहुत जल्द ही प्रणाम की 108 संख्या पूर्ण हो गई। श्रीबंकाजी ने एकान्त में पुनः बाबा को सारे प्रणाम सुनाये।

भाव विभोर होकर बाबा ने श्रीबंकाजी से कहा—श्रीराधा के श्रीचरणों में समर्पित यह 108 प्रणाम, पुस्तक रूप में छपेंगे।

श्रीराधाबाबा की यह बात श्रीबंकाजी को एकदम पसन्द नहीं आई और उन्होंने तत्क्षण इसका विरोध करते हुए कहा—यह आप क्या कह रहे हैं बाबा! श्रीराधा के श्रीचरणों में समर्पित यह प्रणाम तो मेरी अन्तरंग निधि हैं, मेरी गुप्त से भी अतिगुप्त उपासना का अंग है। क्या यह सबको दिखाने की वस्तु है? क्या इसका प्रचार उचित है?

बाबा ने मन्द-मन्द मुसकुराते हुए कहा—यह भाव-राज्य की दिव्य धरोहर है, जो आपके माध्यम से धरती पर प्रकाशित हुई है। इससे असंख्य भक्तों-साधकों का मंगल होगा। आप चिन्ता न करें, मेरा आशीर्वाद इस पुस्तक के साथ है। यह पुस्तक हमेशा छपती रहेगी।

पूज्यबाबा की आज्ञा को श्रीबंकाजी ने स्वीकार किया। उन्होंने इस

पुस्तक का नाम रखा प्रणाम वल्लरी। सर्वप्रथम सन् 1966 में प्रणाम वल्लरी का केवल 108 प्रणाम का, प्रथम मुद्रण कलकत्ते में हुआ। यह पुस्तक भक्त समाज में अत्यधिक पसन्द की गई। अनेक साधु-सन्तों ने श्रीबंकाजी को उनकी अपूर्व लिखनी, भाव-प्रवणता, सरस भाषा-शैली और हृदय की मधुरता के लिए साधुवाद दिया। शीघ्र ही श्रीबंकाजी ने 108 प्रणाम और लिखकर प्रणाम वल्लरी की दूसरी माला भी पूर्ण की। प्रणाम वल्लरी का दूसरा संस्करण 216 प्रणाम के साथ प्रकाशित हुआ।

श्रीबंकाजी ने प्रणाम वल्लरी पुस्तिका को समर्पित किया अपने गुरुदेव, परम पूज्य श्रीबाबूजी-बाबा को और समर्पण इस प्रकार लिखा—

जिन्होंने मुझ में भाव का वपन किया, सिंचन किया, पल्लवन किया,
जिन्होंने मुझ सदोष को पाला है, निभाया है, दुलारा है,
जो मेरे तनकी-मनकी-जीवनकी श्री है, सुरभि है, सम्पदा है,
वाटिका की वह कोई युगल विभूति
मेरा समर्पण स्वीकार करे।

अनेक भावुक भक्तों ने इस पुस्तिका के प्रणाम-पुष्पों को अपनी नियमित साधना में सम्मिलित करके, श्रीराधारानी के प्रति उन्हें निवेदित करने का जो नियम अपनाया, आज भी उसे वे मर्यादा से निभा रहे हैं।

प्रणाम वल्लरी के दो प्रणाम यहाँ दिये जा रहे हैं। ऐसे 216 प्रणाम-पुष्प इस प्रणाम वल्लरी पुस्तिका में गुम्फित हैं। ये प्रणाम-पुष्प, रसिक हृदय भक्तगणों को, नित्य-रस-सिक्त, रस-प्लुत करते रहें यही श्रीराधारानी के समर्थ चरणों में विनीत प्रार्थना है।

(1)

जिनकी मुस्कानसे निकुंजमें ज्योत्सनाका उल्लास विलसने लगता है,
जिनकी बोलनसे वातावरणमें वीणा की झंकार लहराने लगती है,
जिनके लावण्यसे काननके आँगनमें सौन्दर्य बिखर जाता है,
उन शोभामयी श्रीराधाके श्रीचरण
मेरा प्रणाम स्वीकार करें।

(2)

जिनकी नृत्य-चर्चामें शुक-पिकको समय ज्ञान भूल जाता है,
जिनके पद-न्याससे यमुनाकी गति स्तब्ध हो जाती है,
जिनके नृत्य-दर्शनसे मयूरके अंगांग स्थिर हो जाते हैं,
उन नृत्य-निपुणा श्रीराधाके श्रीचरण
मेरा प्रणाम स्वीकार करें।

****

सेठ श्रीहरगुलालजी बेरीवाला

वृन्दावन के परम वैष्णव, दानियों के सिरमौर सेठ श्रीहरगुलालजी के नाम से सभी परिचित हैं। इन्होंने श्रीबिहारीजी की, वृन्दावन के सन्त-साधु समाज की, और वृन्दावन धाम की अपने तन-मन-धन से बहुत सेवा की है। प्रणाम वल्लरी पढ़ने के बाद सेठ श्रीहरगुलालजी श्रीबंकाजी से मिलने गीतावाटिका आये। उन्होंने भरे-भरे मन से श्रीबंकाजी की भावपूर्ण लेखनी की खूब प्रशंसा की और सविनय प्रार्थना की कि वे ऐसी ही एक और पुस्तक, एक सौ आठ प्रणाम की, श्रीबिहारीजी के लिये भी लिख दें।

श्रीबंकाजी ने विनीत उत्तर दिया—आप क्षमा करें सेठजी, आपकी आज्ञा पालन करने में मैं सर्वथा असमर्थ हूँ। प्रणाम वल्लरी आपके लिये मात्र एक पुस्तक होगी पर मेरे लिये तो मेरे प्राणों का उत्सर्ग है, मेरे हृदय का उमडता समर्पण भाव है जो विगलित होकर श्रीप्रियाजू के चरणों में बारम्बार प्रणाम करता है और सदैव करता रहेगा। यह कोई कविता या तुकबन्दी नहीं है जो आज एक के लिये और कल दूसरे के लिये लिख दी जाये। अगर मेरा समर्पण श्रीकृष्ण के श्रीचरणों के प्रति होता तो मैं अवश्य लिख देता परन्तु मेरा समर्पण एकमात्र श्रीराधा के प्रति है और मेरा हृदय उनको छोड़कर अन्य किसी को प्रणाम कर ही नहीं सकता। आप मुझे क्षमा करें। मैं चाहूँ तो भी आपकी आज्ञा का पालन नहीं कर सकता।

श्रीहरगुलालजी ने ऐसे उत्तर की अपेक्षा नहीं की थी। उनको कुछ निराशा तो अवश्य हुई पर श्रीबंकाजी के मन के उर्मिल भावों को सुनकर और उनके

अनन्य समर्पण को जानकर हार्दिक प्रसन्नता भी हुई। उन्होंने श्रीबंकाजी से कहा—आप से बात करने के बाद मैं समझ सका कि प्रणामवल्लरी के भावों में इतनी गहराई क्यूँ है कि उसके एक-एक प्रणाम हृदय को छू जाते हैं। यह आपके अनन्य समर्पण और आजीवन साधना का फल है। मैं आपके अनुपम भावों का हृदय से अभिनन्दन करता हूँ।

****

श्रीपरमेश्वर प्रसादजी अग्रवाल

मेरठ निवासी श्रीपरमेश्वर प्रसादजी अग्रवाल श्रीबंकाजी के परम मित्र थे। उनका विवाह युवावस्था के आरम्भ में ही हो गया था। विवाह के पाँच वर्ष बाद ही उनकी धर्मपत्नी का देहान्त हो गया। उन्होंने पुन: विवाह नहीं किया। प्रभु भक्ति का भाव उनके मन में था, वह प्रबल होता चला गया।

भगवान श्रीसीताराम की उपासना से उनकी साधना का शुभारम्भ हुआ। आरम्भ में उनकी अराधना का स्वरूप था श्रीरामचरितमानस का पाठ करना और चित्रकूट निवासी वनवासी भगवान श्रीसीताराम का ध्यान करना। वे स्वयं को वैराग्य-मूर्ति श्रीलक्ष्मण भइया के अनुगत अनुचर मानते थे और उनके आनुगत्य में रहते हुए वे चित्रकूट-लीला का चिन्तन करते थे। धीरे-धीरे उनकी साधना-पद्धति में अन्तर आया। यह परिवर्तन इतना अधिक हुआ कि उपास्य और उपासना का स्वरूप ही सर्वथा बदल गया। श्रीसीताराम उपास्य के स्थान पर अब होने लगा वृन्दावन की अनुरक्ति प्रधान लीला का चिन्तन। वृन्दावनी लीला में भी निभृत-निकुंज-विहारी युगल के एकान्त-विलास का चिन्तन ही उनकी साधना का प्रधान अंग बन गया। उनका लीला-चिन्तन ऐसा एकान्तिक होता था, जहाँ कभी-कभी सखियाँ भी नहीं हैं, केवल किशोरी-किशोर श्रीश्यामाश्याम विराज रहे हैं। इस प्रकार के एकान्त-विलास के चिन्तन में उनका मन रमने लगा।

एक ओर उनका मन एकान्तिक लीला में रमता था, पर साथ ही उनके मन में एक भय भी छाया हुआ था कि कहीं कोई गलत कदम तो नहीं उठाया

जा रहा है। इस सन्देह का निवारण तो मात्र कोई सिद्ध सन्त ही कर सकता है। उनकी नजरों के सामने बार-बार बाबूजी की मानस मूर्ति प्रकट हो रही थी। बाबूजी का लीला राज्य में प्रवेश है, उनको सब बातें बताने से हानि तो होगी नहीं, लाभ ही होगा। संकोच छोड़कर बाबूजी को सब बातें बता कर अपने सन्देह का निवारण करना चाहिये, ऐसा निर्णय उन्होंने अपने मन में कर लिया। श्रीबंकाजी से उनकी पुरानी मित्रता थी ही और अब वे बाबूजी के निजी सचिव के रूप में कार्य कर रहे थे अत: उन्होंने श्रीबंकाजी से सब बातें कही और बाबूजी से मुलाकात करवा देने की इच्छा प्रकट की।

गोरखपुर से बाबूजी स्वर्गाश्रम पधारे। यह घटना सन् 64, 65 के साल की होनी चाहिये। बाबूजी डालमिया कोठी में ठहरे। श्रीपरमेश्वरप्रसादजी भी आये तथा गीताभवन में ठहरे। एक दिन अवसर देखकर श्रीबंकाजी ने उन्हें डालमिया कोठी बुलवा लिया। बाबूजी से उन्होंने कहा—बाबूजी! मुझे अपनी साधना सम्बन्धी कुछ बातें आप से निवेदित करनी हैं। आप जब समय दें, मैं आपके पास आ जाऊँ।

बाबूजी ने उनको अगले दिन बुलवा लिया। तब तक कल्याण के फर्मों को देखने का काम पूरा हो चुका था। श्रीबंकाजी के साथ बाबूजी के कमरे में जाकर उन्होंने प्रणाम किया। बाबूजी ने कहा—कहिये, क्या कहना चाहते हैं?

श्रीपरमेश्वर प्रसादजी ने कहा—बाबूजी! मैं आपके सामने अपनी उपासना-पद्धति की रूपरेखा रखना चाहता हूँ। उसे आप सुन लें। यदि उचित हो तो आप अपना आशीर्वाद दें और यदि कहीं कोई त्रुटि हो तो उसको आप सुधार दें।

इतना कहकर उन्होंने चित्रकूट के भगवान श्रीसीताराम की उपासना से लेकर वे सब बातें बतला दी, जो अबतक घटित हुईं। समय-समय पर जो परिवर्तन हुए, उन सबको बता कर फिर उन्होंने यह निवेदन किया—आजकल श्रीराधाकृष्ण की निकुंज केलि के चिन्तन में मन लगता है। जिन पदों का मनन होता है और जिन पदों के आधार पर लीला चिन्तन होता है, वह सब मैं आपको सुनाता हूँ। आप उन पदों को सुन लें और जहाँ भी कोई गलती हो, उसे सुधार दें।

इतना कहकर वे लीला चिन्तन के लिये चुने गये पदों को क्रमशः सुनाने लगे। एक पद की एक या दो पंक्ति सुनते ही बाबूजी कह देते कि आगे बढ़िये। बाबूजी को तो पदों की जानकारी थी ही। सारे पदों को सुनाने में लगभग पन्द्रह मिनट लग गये होंगे। इसके बाद अन्तिम अनुरोध के रूप में उन्होंने बाबूजी से कहा—आप जैसा उचित समझें, वैसा सुधार कर दें, जिससे मेरी साधना का पथ निर्विघ्न हो जाय।

उनकी सारी बातें सुनकर बाबूजी ने कहा—मैंने आपकी सारी बातें ध्यानपूर्वक सुन ली हैं। इसका उत्तर मैं आपको बाद में दूँगा।

उन्होंने बाबूजी को प्रणाम किया और वे कमरे से बाहर चले आये। अब उनके मन में निरन्तर एक चाव बना रहता कि पूज्य बाबूजी मेरे सन्देह का निवारण कब करेंगे। प्रत्येक दिन मन में यही लगा रहता कि शायद आज बाबूजी मुझे बुला करके कुछ बतायेंगे, पर क्या कहा जाय, एक-एक करके सारे दिन बीत गये और बाबूजी स्वर्गाश्रम से गोरखपुर चले आये। वे भी स्वर्गाश्रम से अपने घर आ गये।

फिर अगले वर्ष ग्रीष्म ऋतु में पूज्य बाबूजी स्वर्गाश्रम गये तथा वे भी आये। उनके मन में दो भाव काम कर रहे थे। शायद इस बार बाबूजी कुछ बतायें, पर इसकी अपेक्षा दूसरा भाव अधिक सबल था कि बाबूजी का जीवन अत्यधिक व्यस्त है, अतः उस व्यस्तता में मेरी बात उनको अब याद थोड़े ही होगी और वे भूल गये होंगे। एक-एक करके दिन बीतने लगे तथा अब पुनः गोरखपुर वापस लौटने के दिन पास आने लगे। वापस जाने की तिथि समीप आ जाने पर एक दिन राह चलते हुए पूज्य बाबूजी से उन्होंने कहा—बाबूजी! मैंने आपसे गत वर्ष एक निवेदन किया था। अभी तक कोई उत्तर या कुछ निराकरण आपकी ओर से नहीं मिला है।

राह चलते-चलते बड़े प्यार से उनके कंधे पर हाथ रख कर पूज्य बाबूजी ने कहा—मैं आपकी बात भूला नहीं हूँ। मुझे सब याद है, पर मैं कुछ आब्जर्व (Observe) कर रहा हूँ।

बाबूजी का यह उत्तर सुनकर उनका मन हल्का हो उठा, मात्र हलका ही नहीं, बहुत विभोर तथा बहुत आश्वस्त हो गया कि पूज्य बाबूजी से अवश्य कभी उचित समाधान मिलेगा। इसके बाद बाबूजी स्वर्गाश्रम से गोरखपुर आ गये तथा वे भी अपने घर चले गये।

बाबूजी ने उनको अपने कमरे में बुलाया और कहा—भइया! मुझे जो देखना था, वह मैंने देख लिया। आप जो कर रहे हैं, ठीक कर रहे हैं। बस, करते जाइये। आप पर श्रीराधारानी की कृपा है। अधिकाधिक कृपा आप पर होगी। मेरा पूर्ण सद्भाव आपके प्रति है।

पूज्य बाबूजी के इस अनुकूल तथा अमोघ आशीर्वाद को सुनकर उनका हृदय श्रद्धा और सम्मान से भर उठा और आँखें छलछला उठीं। उनका विभोर मस्तक पूज्य बाबूजी के गोद में लुढ़क गया। सिर पर हाथ रखकर बाबूजी ने बड़े प्यार से सहलाया। **मधुर बचन कहि कहि परितोषीं॥**

इसके बाद लीला चिन्तन में उनकी अनोखी प्रगति हुई। बाबूजी के आशीर्वाद ने लीला राज्य के द्वार खोल दिये। बाबूजी की कृपा से एक-से-एक बढ़कर सुन्दर अनुभूतियाँ होने लग गयीं। श्रीराधामाधव के निकुंज-विहार की उपासना में जो भी उनकी स्पृहणीय उच्च स्थिति है, यह सब बाबूजी का ही आशीर्वाद है। वे बाबूजी को सद्गुरु स्थानीय मानते हैं और उन्हें वन्दन करके ही वे अपने लीला चिन्तन को आरम्भ करते हैं।

श्रीबंकाजी को आश्चर्य होता कि पूज्य बाबूजी की दृष्टि कितनी पैनी थी। मधुरोपासना का पथ मधुरतम होने के बाद भी खतरे से खाली नहीं है और इस पथ के साधक के लिये सुपात्र होना आवश्यक है। अपात्र और अनधिकारी से अनर्थ की सम्भावना है। बाबूजी लगभग दो-अढ़ाई वर्ष तक अपनी पैनी दृष्टि से उनके जीवन में गहरे पैठ कर उनकी पात्रता का निरीक्षण करते रहे और उनके अन्तर को सुन्दर पात्र के रूप में पाते ही अपने महा मंगलमय आशीर्वाद से उसे परिपूर्ण कर दिया।

इस प्रसंग से श्रीबंकाजी को बहुत प्रेरणा मिली कि मधुरोपासना के

साधक को कितना सावधान होना चाहिये। श्रीपरमेश्वरप्रसादजी से उनकी निकटता और बढ़ गयी और दोनों मित्र आपस में पत्र द्वारा निज अनुभूतियों और जिज्ञासाओं को साझा किया करते थे।

कुछ वर्षों के बाद अत्यधिक रुग्णता के कारण बाबूजी का ऋषिकेश जाना बन्द हो गया। अब जब भी श्रीपरमेश्वरप्रसादजी को कुछ पूछना होता वे श्रीबंकाजी के माध्यम से ही पत्र द्वारा पूछा करते थे। एक बार उनका पत्र आया जिसमें लिखा था—पूज्य बाबूजी से मेरा प्रणाम निवेदित करते हुए यह कहियेगा कि—आजकल मधुर निकुंज उपासना के वक्त मुझे गोपी रूप में स्वयं का शृंगार करने की इच्छा होती है। अभी तक तो मैं मानसिक-सेवा करता था, जिसमें मुझे बहुत आनन्द आता है पर अब शरीर से भी गहने-वस्त्र-आभूषण से सुसज्जित होकर, एक गोपी की भाँति शृंगार करके, सेवा करने की इच्छा हृदय में बार-बार हो रही है। यही मेरी जिज्ञासा है कि क्या ऐसा करना उचित है, या नहीं। मेरा समाधान करें।

श्रीबंकाजी ने यह पत्र बाबूजी को दिखाया तो उन्होंने कहा—पीछे बताऊँगा।

कुछ महीनों बाद दोबारा पूछने पर बाबूजी ने श्रीबंकाजी से कहा—लिख दो कि—आप ऐसा कर सकते हैं। पर ध्यान रहे यह कार्य केवल और केवल अपने श्रीप्रिया-प्रियतम के लिये है, जग को नहीं दिखाना है। उनके वस्त्र, गहने आदि जो कुछ भी वे व्यवहार करें, इसकी जानकारी किसी को भी नहीं हो। सारे कार्य बन्द कमरे के पीछे हों। यदी यह सब गुप्त रखना सम्भव है तो करें, अन्यथा नहीं। जग को दिखाने से हानि होगी।

पत्र में लिखने के लिये इतना बता कर फिर बाबूजी ने श्रीबंकाजी को समझाया—गलती से भी कहीं ऐसा मत मान लेना कि प्रत्येक गोपी भाव के उपासक के लिये यह बात कही गयी है। उनकी पात्रता को देखकर उनके लिये यह छूट दी गयी है। यह बात सब साधक पर लागू नहीं होती है।

श्रीबंकाजी ने अपने मित्र को सभी बातें समझा कर लिख दी और इसके

बाद श्रीपरमेश्वरप्रसादजी की साधना में बहुत उन्नति हुई। उन्होंने कई कीमति बनारसी साड़ी खरीदी, एक डब्बा भर के स्वर्ण के गहने बनवाये, शृंगार की सभी सामग्री जमा की और प्रतिदिन रात में वे अपने एकान्त कक्ष में, द्वार बन्द करके शृंगार करते थे और दिव्य सखी भाव से अपने प्रिया-प्रियतम की सेवा करते थे। बाबूजी की कृपा से उनको दिव्य अनुभव हुए।

****

पिताजी का हृदय परिवर्तन

बम्बई के श्रीभगवानदासजी सिंहानिया की बहन सोहनीबाई का विवाह श्रीबंकाजी के बड़े भाई, पडरौना निवासी, श्रीमन्नालालजी खेतान से हुआ था। श्रीमन्नालालजी एवं श्रीसोहनीबाई का बाबूजी के प्रति अत्यधिक श्रद्धा-भाव था जो उन्हें अपने भाई श्रीभगवानदासजी से महानिधि के रूप में प्राप्त हुआ था। यही कारण था कि श्रीमन्नालालजी जब भी पडरौना से गोरखपुर आते तो पूज्य बाबूजी से मिलने गीतावाटिका चले आते थे।

जैसे ही श्रीमन्नालालजी बाबूजी के कोठी की सीढ़ी चढ़ते, सामने केबिन में बैठे श्रीबंकाजी उन्हें देख लेते और झट से उठकर अपने बड़े भाई को प्रणाम करते और आदर सहित उनको बाबूजी के पास ले जाते थे। किसी ज़माने में श्रीभगवानदासजी सिंहानिया ने, बाबूजी की पुत्री का कठिन समय में बहुत सहयोग किया था अत: पूज्य बाबूजी उनके तथा उनके पूरे परिवार के प्रति, हृदय से कृतज्ञ थे और सबका खूब आदर-सत्कार करते थे।

श्रीमन्नालालजी खेतान का पडरौना में खूब नाम था। जब वे पडरौना लौटते तो अपनी भाई-बिरादरी में अपने भाई राधेश्याम की खूब सराहना करते और उनके सौभाग्य पर बलि-बलि जाते कि उन्हें इतने बड़े सन्त की सेवा-सान्निध्य का सौभाग्य प्राप्त हो रहा है। पडरौना के और भी कई गणमान्य व्यक्ति बाबूजी से मिलने आते। श्रीबंकाजी उन सबको भी प्रणाम करते। वे भी श्रीबंकाजी के सौभाग्य की खूब सराहना करते। धीरे-धीरे पूरे पडरौना में यह खबर फैल गयी कि अगर किसी नवयुवक ने, असली मायने में अपने

जीवन में उन्निति की है तो वह श्रीहरिरामजी बंका के सुपुत्र श्रीराधेश्याम बंका हैं। इतने बड़े सन्त श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार, जिन्हें लोग एक झलक देखने के लिये तरसते हैं, उनके साथ सारे दिन का उठना-बैठना-कार्य करना, उसे प्रतिक्षण सुलभ है।

जब से श्रीबंकाजी ने घर छोड़ कर एम०ए० में दाखिला लिया था, उनके पिताजी श्रीहरिरामजी बंका उनसे अत्यधिक रुष्ट थे और उन्होंने अपने पुत्र से बात करना भी बन्द कर दिया था। 1962 के बाद श्रीबंकाजी स्थायी रूप से गीतावाटिका में पूज्य बाबूजी की सेवा में रहने लगे थे परन्तु पडरौना अति निकट होते हुए भी श्रीबंकाजी कभी घर नहीं जाते थे। इन दिनों घर की आर्थिक स्थिति अत्यन्त दयनीय हो गई थी और दुकान का काम-काज ठप हो गया था। जो पिताजी बढ़िया सफेद कुर्ता पहनते, काला गर्म जाकेट पहनते, सोने की बटन लगाते, सोने की पॉकेट-घड़ी रखते, चाँदी की मूठ लगी छड़ी खड़खड़ाते हुए, शान से मार्ग पर चलते, चार-चार मुनीमों के साथ दुकान पर सुशोभित होते, वे ही आजकल फटी धोती और टूटी चप्पल पहनकर किसी प्रकार अपने परिवार का भरण-पोषण कर रहे थे। गरीबी और वृद्धावस्था यदि एक साथ आ जाये तो इन्सान की कमर तोड़ देती है। पिताजी के साथ भी कुछ ऐसा ही हुआ। वे बीमार रहने लगे।

पहले तो पिताजी के मन में बहुत अधिक क्षोभ था कि पुत्र राधेश्याम उनकी आर्थिक सहायता नहीं करता है, घर की कोई जिम्मेदारी नहीं उठाता है परन्तु जब पडरौना के जाने-माने व्यक्तियों से और विषेश करके श्रीमन्नालालजी खेतान से यह सुना कि राधेश्याम आजकल भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार की सेवा में रहने लगा है, तो उन्हें बेहद खुशी हुई। आए दिन पडरौना वासी आ-आकर पिताजी से श्रीबंकाजी की प्रशंसा करने लगे। अपने पुत्र के शील स्वभाव, विनम्र व्यवहार आदि का बखान सुनकर पिताजी को हार्दिक प्रसन्नता होती थी। पूज्य बाबूजी के बारे में तो वे सदा से ही जानते थे और उनकी छत्र-छाया में अपने पुत्र को देखकर, उनके मन का पुराना मैल धुल गया और धीरे-धीरे पिताजी का क्षोभ शान्त हो गया। इतने वर्षों के बाद अपने पुत्र को देखने की, उससे मिलने की उनकी इच्छा जागृत हुई।

पिताजी मन-ही-मन सोचने लगे कि जिस पुत्र को मैं नालायक-निकम्मा समझता था क्या वह सच में भाईजी, श्रीपोद्दारजी के साथ काम कर रहा है? क्या वह गोरखपुर में रहता है? क्या वह कभी घर आयेगा? क्या वह मुझसे मिलेगा?

वृद्धावस्था के कारण पिताजी शरीर से कमजोर और रुग्ण हो चले थे। 1968 में उन्होंने अपने छोटे पुत्र विनोद द्वारा श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार के नाम एक पत्र लिखवाया जिसका भाव कुछ इस प्रकार था—मेरा पुत्र राधेश्याम बंका आप जैसे परम सिद्ध-समर्थ-सन्त की सेवा में रहता है, यह मेरा परम सौभाग्य है। कुछ वर्षों से मेरे मन में अनेक कारणों से उसके प्रति बहुत क्षोभ था। मैं उसे लापरवाह, परिवार के प्रति उदासीन, गैर-जिम्मेदार समझता था। उसकी आर०एस०एस० गतिविधियों से मैं बहुत अप्रसन्न था। उसके घर छोड़ कर चले जाने के बाद, घर पर विपत्तियों का पहाड़ टूट पड़ा। सबको आर्थिक संकट का सामना करना पड़ रहा है और परस्पर की दूरियाँ बढ़ गई हैं। परन्तु अब ढलती आयु में समझ पाया हूँ कि उसका मार्ग सही है। मानव जीवन का परम-चरम लक्ष्य केवल प्रभु प्राप्ति ही है। मुझे एक पिता होने के नाते अत्यधिक प्रसन्नता है कि वह आपके साथ है और आपके महान कार्य में यत्किंचित सहयोग प्रदान कर रहा है। मेरी आपसे यही प्रार्थना है कि मेरी बूढ़ी आँखें उसे देखना चाहती है। उसे देखने को मन तरस रहा है। वह मुझसे नाराज़ है। घर आयेगा नहीं, यदि आप आज्ञा करें तो एक बूढ़े बाप को अपने पुत्र का दर्शन सुलभ हो सकता है। बड़ी उम्मीद से आपको पत्र लिख रहा हूँ। मेरी तबियत भी आजकल खराब रहती है। यह शरीर तो अब जायेगा ही, न जाने कब आँखें सदा के लिये बन्द हो जायँ। मेरे अन्तिम दिनों में उसको एक बार भेज दीजिये।

इस पत्र के प्राप्त होते ही बाबूजी ने श्रीबंकाजी को अविलम्ब पडरौना जा कर अपने पिताजी से मिलने की आज्ञा दी। अगले दिन प्रातः ही ट्रेन द्वारा श्रीबंकाजी पडरौना पहुँचे। आज सत्रह वर्षों बाद वे घर लौटे थे। वर्षों बाद श्रीबंकाजी का अपने घर में पदार्पण हुआ। उन्होंने सर्वप्रथम घर की चैखट

को प्रणाम किया। उनके पिताजी अस्वस्थ थे और अपने कक्ष में लेटे हुए थे। श्रीबंकाजी ने उनके श्रीचरणों में मस्तक रखकर प्रणाम किया। पिताजी का शरीर अति क्षीण हो चुका था। दोनों के ही नेत्र भावाधिक्य में बरसने लगे। इन आँसुओं की लड़ी में विगत का सारा असन्तोष, क्षोभ, मन-मुटाव एक साथ बह गया। पिताजी ने श्रीबंकाजी को मंगल आशीर्वाद दिया। उनकी माताजी आईं। श्रीबंकाजी ने माँ को प्रणाम किया। माँ के तो नयन भर आए। **जननि जानि सिसु दीन्हि असीसा॥** ऐसे सुयोग्य पुत्र को देखकर माता-पिता को कितनी खुशी हुई होगी यह तो उनका हृदय ही जान सकता है। वे अपलक नयनों से श्रीबंकाजी को निहारने लगे। **पाइ नयन फलु होहिं सुखारी।**

जब श्रीबंकाजी 1951 में घर से दुःखी मन से गये थे तब न तो उनके पास कोई काम-काज था और न ही मान-सम्मान, पर उनकी वर्षों की लगन और कड़ी मेहनत रंग लाई। आज 1968 में जब वे घर लौटे तो घर और पड़ोस के लोग उनको देखने के लिए, उनसे मिलने के लिए, उनसे बात करने के लिये आतुर थे। आज उनके पास विद्या-विनय-शील-सदाचार-मान-सम्मान-पद-प्रतिष्ठा सब कुछ था और इससे भी बड़ी बात यह थी कि बाबूजी जैसे महान सन्त का कर-कमल उनके शीश पर था।

श्रीबंकाजी ने घर के चौके में भोजन किया और अपने पिताजी को अठारह अध्याय गीताजी का पाठ सुनाया। सभी को उनके घर लौट आने से बेहद प्रसन्नता हुई। एकान्त अवसर पाकर पिताजी ने बहुत भावपूर्वक अपने पुत्र से कहा—रधिया! जब तुम आर.एस.एस. में भाग लेते थे, दुकान पर नहीं जाते थे, परिवार के प्रति उदासीन थे, विवाह नहीं किया, घर छोड़कर चले गये, मेरा कहा नहीं मानते थे, मनमानी करते थे तब मुझे तुम पर बहुत क्रोध आता था और मन में बहुत निराशा भी थी कि मेरा सबसे लाडला होनहार बालक अपन जीवन व्यर्थ गँवा रहा है। लेकिन मैं गलत था। अतीत में जो भूल हो गई उसके लिये तो मैं पश्चाताप के सिवा कुछ कर नहीं सकता। मैंने तुम्हारी बात नहीं मानी और तुमको पढ़ाई के लिये रुपये नहीं दिये, इस बात का मुझे आज अफसोस हो रहा है कि तुमको इतने वर्ष, इतना अधिक कष्ट

उठाना पड़ा। पर मुझे प्रसन्नता इस बात की है कि तुम्हारा जीवन बेदाग रहा, पवित्र रहा। तुमने तकलीफें झेल लीं पर गलत मार्ग का चुनाव नहीं किया, यह मेरे लिये गर्व की बात है। आज जब मैं तुमको परम पूज्य, परम समर्थ सन्त श्रीभाईजी के समीप खड़ा देखता हूँ, उनकी सेवा में दाहिने हाथ की तरह सतत तुमको कार्यरत् देखता हूँ तो मेरी छाती गर्व से फूल कर चौड़ी हो जाती है। जिस जीवन पथ को तुमने अपनाया है, साधना का वह मार्ग ही मनुष्य के लिये परम प्राप्तव्य है। मैं हृदय से तुमको आशीर्वाद देता हूँ कि तेरे सारे स्वर्णिम स्वप्न सफल हो जाये। तुझे तेरे परम लक्ष्य की प्राप्ति हो जाँय। जिस प्रभु दर्शन के लिये तूने अपना सांसारिक सुख त्याग दिया, वे प्रभु तुझको मिल जाय। मेरा जीवन अब अधिक वर्षों का नहीं है। अब इस ढलती आयु में मेरी एक ही अभिलाषा है। तुम इसे पूर्ण करना। जब मेरी मृत्यु हो तब मुझे अग्नि तू अपने हाथों से देना। मुझे पूरा-पूरा भरोसा है कि यदि तुम मुझे अग्नि दोगे तो मेरी निश्चित रूप से मुक्ति हो जायेगी। तेरे जैसे सन्त-सेवी सुपुत्र के द्वारा मेरा अन्तिम संस्कार हो जायेगा तो मेरी मुक्ति निश्चित है।

पिताजी की प्रेम भरी बातें और मंगल आशीर्वाद को सुनकर श्रीबंकाजी भाव-विह्वल हो गये। उन्होंने अपने भाव के प्रवाह को संयत करते हुये विनम्र वाणी में कहा—पिताजी! आपकी आज्ञा मेरे सिर माथे है परन्तु आपको दाग देने का अधिकार तो बड़े भाई, श्रीहनुमान भईया का है। उनके रहते मैं कैसे अग्नि संस्कार करूँगा भला?

पिताजी ने कहा—तेरी बात ठीक है। माना कि यह अधिकार हनुमान का है परन्तु मेरी आन्तरिक अन्तिम अभिलाषा यही है कि तू ही मुखाग्नि दे। तेरे जैसे सन्त पुत्र को पाकर मैं धन्य हो गया।

श्रीबंकाजी मौन हो गये और मन-ही-मन अपने प्रभु से कहने लगे—हे नाथ! हे मेरे दयामय ठाकुर! मेरे पिताजी की अभिलाषा पूर्ण हो, ऐसा संयोग बैठाना अब तुम्हारे ही हाथों में है। तुम असम्भव को भी सम्भव कर सकते हो। मैंने जीवन भर पिताजी की नहीं सुनी। अब उनकी आखरी आज्ञा पूरी कर सकूँ, मुझ गरीब पर ऐसी कृपा करना।

श्रीबंकाजी के पडरौना जाने से वर्षों के बिखरे रिश्ते पुन: जुड गये। अपनी मीठी वाणी से घर-परिवार के सब सदस्यों को सन्तुष्ट करके श्रीबंकाजी गोरखपुर लौट आये। उनके छोटे भाई गोविन्द और विनोद उनको स्टेशन पर पहुँचाने आये। गाड़ी छूटने के पहले श्रीबंकाजी ने भाईयों से कहा—पिताजी की सेवा रूपी सारी मलाई तो तुमलोग खा गये, मैं तो वंचित ही रह गया। आजीवन मैं उनकी कुछ भी सेवा नहीं कर पाया। तुम्हारा सौभाग्य है कि तुम्हें पिताजी की सेवा मिली है। खूब पुण्य कमा लो। मुझे सूचना देते रहना।

श्रीबंकाजी लौट आए। उन्होंने सारी बातें गीतावाटिका लौटकर बाबूजी से कह दीं। दाह संस्कार वाली बात सुनकर बाबूजी ने कहा—अधिकार भले ही तुम्हारे बड़े भाई का है पर अगर तुम्हारे पिताजी की तीव्र इच्छा रही तो प्रभुकृपा से कोई-न-कोई संयोग बन जायेगा, तुम चिन्ता मत करो।

पडरौना से लौटने पर श्रीबंकाजी का मन अत्यन्त हल्का हो गया था कि आखिरकार इतने वर्षों के बाद, उनके पिताजी ने उन्हें क्षमा-दान दे ही दिया। उनके मन से एक बहुत भारी बोझ उतर गया। जिस बात की उन्होंने जीवन में कभी कल्पना भी नहीं की थी, प्रभुकृपा और बाबूजी के आशिर्वाद के फलस्वरूप वह अपने आप हो गया। उनका घर लौटना और सबकी आँखों में स्वयं के लिये सम्मान देखना, यह एक अनोखी-सी बात थी। **हृदयँ हरष बीती सब सूला॥**

****

घर का दारिद्रय दूर करना

पडरौना निवासी श्रीनन्दलालजी भगत का पूज्य बाबूजी से अत्यधिक प्रेम और निकट का सम्बन्ध था। 1968 में उनके घर पुत्री का विवाह था। उन्होंने अत्यन्त मनुहारपूर्वक पूज्य बाबूजी को ब्याह में आने का निमन्त्रण दिया और बारम्बार दबाव दिया की व्यस्तता के होते हुए भी, किसी-न-किसी तरह, समय निकालकर बाबूजी को पडरौना आना ही होगा।

बाबूजी ने श्रीबंकाजी को बुलाकर कहा—कल श्रीनन्दलालजी की पुत्री के विवाह के उपलक्ष में पडरौना जाना है। तुम्हें भी साथ चलना है।

बाबूजी पडरौना जा रहे हैं, यह सुनते ही श्रीबंकाजी के तो खुशी का ठिकाना न रहा। वे तुरन्त बाबूजी के श्रीचरणों में गिर पड़े और आर्त-भाव से प्रार्थना की—बाबूजी यदि आप पडरौना जा रहे हैं तो दोपहर का भोजन आपको मेरे ही घर पर करना होगा। मेरे वृद्ध पिताजी और छोटे भाई, कई वर्षों से आर्थिक तंगी का सामना करते हुए अत्यधिक दयनीय हालत में हैं। आपको उनका उद्धार करना ही होगा। आपको उन पर तो कृपा करनी ही होगी, भोजन तो मेरे ही घर पर करना होगा।

बाबूजी ने, अति कातर भाव से झुके हुए श्रीबंकाजी के सिर और पीठ पर हाथ फेरते हुए कहा—जैसी हरि इच्छा।

श्रीबंकाजी अति प्रसन्न हो गये। बाबूजी के कक्ष से बाहर आए और आँसुओं को पोंछते हुये, भरे-भरे मन से पडरौना सूचित किया—मैं कल दोपहर को पूज्य बाबूजी के साथ पडरौना आ रहा हूँ। बाबूजी का भोजन अपने चौके में होगा। सब व्यवस्था कर लो।

पूर्वान्ह काल में पूज्य बाबूजी, श्रीकृष्णचन्द्रजी अग्रवाल और श्रीबंकाजी कार से पडरौना के लिए रवाना हुए। श्रीबंकाजी ने बाबूजी को कार की पिछली सीट पर बैठाया और स्वयं ड्राईवर के साथ वाली आगे की सीट पर बैठ गये। श्रीबंकाजी ने थोड़ी सी चतुराई बरती। उनका जन्म स्थान पडरौना है, अत: सारे मार्गो से परिचित थे। पडरौना पहुँचने पर, जिस मार्ग में धर्मशाला थी, जहाँ श्रीनन्दलालजी की सुपुत्री का विवाह था, श्रीबंकाजी कार को उधर से न ले जाकर दूसरे मार्ग से ले गये जिससे उनका घर पहले आ जाए।

बाबूजी की कार आकर श्रीबंकाजी के घर के सामने रुकी। घर के सभी लोग बाबूजी का स्वागत करने द्वार पर दौड़े आए। उस समय श्रीकौशल्यादेवी भी पडरौना में ही थीं। पिताजी ने अपने परिवार समेत बाबूजी के पावन चरणों में प्रणाम किया और आदरपूर्वक उन्हें भीतर ले जाकर आसन पर बैठाया। **सेवक सदन स्वामि आगमनू। मंगल मूल अमंगल दमनू॥**

श्रीबंकाजी तुरन्त चौके में पहुँच गये और अति शीघ्रतापूर्वक भोजन

परोसने का आदेश अपने छोटे भाई-बहनों को दिया। शीघ्र ही बरामदे में आसन-पाटा लगाकर बाबूजी को आदरपूर्वक बैठाया गया।

बाबूजी के बगल में श्रीहरिरामजी बंका और श्रीकृष्णचन्द्रजी अग्रवाल बैठे। श्रीबंकाजी स्वयं परोसने लगे। उन्होंने बाबूजी की थाली में दाल-सब्जी परोसी ही थी कि तभी श्रीनन्दलालजी के परिवार के बहुत से लोग अचानक से आ गये और उन सबने एक स्वर में कहा—बाबूजी! आपको तो हमारे घर प्रसाद पाना चाहिए था। आप यहाँ कैसे आ गये और यहाँ प्रसाद पाने कैसे बैठ गये हैं?

श्रीनन्दलालजी के परिवार के लोगों को हैरान-परेशान देखकर बाबूजी ने विनययुक्त वाणी में कहा—देखो भैया! ऐसा है, मैं भोजन करने बैठ गया हूँ। मैं अपनी थाली में केवल तीन वस्तु परोसने देता हूँ। दाल-सब्जी आ गई है, तुम चाहो तो एक वस्तु अपने घर से ला दो। दोनों जगह का भोजन हो जायेगा।

गरम-गरम फुलके चौके से आ चुके थे। श्रीबंकाजी उन्हें परोसने के लिए खड़े थे, ऐसे में भला वे लोग क्या करते और क्या कहते। उन्होंने यही उत्तर दिया—ठीक है, रात्रि भोजन आप ब्याह-मण्डप में ही करियेगा।

बाबूजी ने स्वीकार कर लिया। प्रभुकृपा से श्रीबंकाजी की मनचाही बात बन गई। भोजन प्रारम्भ हुआ। बाबूजी को अपने घर पर प्रसाद पाते देख श्रीबंकाजी बार-बार पुलकित हो रहे थे और उनके नेत्रों से आँसुओं की धारा बह चली। **प्रभुता तजि प्रभु कीन्ह सनेहू। भयउ पुनीत आजु यहु गेहू॥**

श्रीबंकाजी ने अपने छोटे भाई गोविन्द से गदगद वाणी में कहा—गोविन्द! आज से अपने घर का दारिद्रय दूर हो गया। आज, बाबूजी जैसे परम विशुद्ध सन्त अपने घर जीम रहे हैं, आज उनकी चरण-रज अपने आँगन में पड़ी है, आज ये घर पवित्र हो गया। आज हमारे सारे पितर तर गये। आज हम सब धन्य-धन्य हो गये। दोनों भाई बाबूजी को देख-देख कर आनन्दित हो रहे थे। **मुदित भए लहि लोयन लाहू ॥**

पूज्य बाबूजी के पावन चरण श्रीबंकाजी के घर के आँगन में पड़ने से और उनके प्रसाद पाने के बाद से बंकाकुल की दरिद्रता वास्तव में दूर हो गई। जिस घर में अत्यधिक आर्थिक अभाव हो गया था वहाँ धीरे-धीरे सब कुछ ठीक होने लगा। धन का संकट तो टला ही पारिवारिक सम्बन्ध भी मधुर होने लगे। सारे घर का उद्धार हो गया। आर्थिक और सामाजिक परिस्थिति दिन प्रतिदिन सुन्दर-से-सुन्दर होती चली गई।

पिताजी ने अति हर्षित होते हुए बाबूजी से कहा—आज आपको अपने घर में भोजन करते देखकर मुझे कितनी प्रसन्नता हो रही है यह मैं शब्दों में कह नहीं पा रहा हूँ। आप जैसे सिद्ध सन्त ने मेरे पुत्र को अपना आश्रय प्रदान किया, उसका लालन-पालन कर रहे हैं, ऐसा तो मैंने सपने में भी नहीं सोचा था। आपके श्रीचरण मेरे घर में पड़े, आज मेरी सब इच्छा पूर्ण हो गयी। अब मुझे मृत्यु भी आ जाये तो कोई चिन्ता नहीं। **पुनि न सोच तनु रहउ कि जाऊ।**

बाबूजी ने सान्त्वनापूर्ण शब्दों से पिताजी का समादर किया और उनके पुत्र की प्रशंसा करके उन्हें और अधिक आनन्दित कर दिया। सारे परिवार को अपने मंगल आशिर्वाद से सिक्त करके बाबूजी गोरखपुर लौट आये।

****

श्रीकृष्ण जन्मभूमि, भागवत भवन का शिलान्यास

सन् 1965, चैत्रमास में परम पूज्य रस-घन-मूर्ति श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार के कर-कमलों द्वारा मथुरा के श्रीकृष्ण जन्मस्थान, केशवदेव टीला पर, विशाल भागवत-भवन का शिलान्यास होना था। शिलान्यास के उत्सव की तैयारी बड़े उत्साह से हो रही थी। श्रीकृष्ण चबूतरे के समक्ष पण्डाल में लगभग साड़े तीन सौ मूर्धन्य विद्वान पण्डितों ने श्रीमद्भागवत का सप्ताह पारायण किया। यह एक अनोखा दृश्य था। लगभग साड़े तीन सौ वर्ष पूर्व अत्याचारी औरंगजेब द्वारा मन्दिर के ध्वंस किए जाने के बाद, यही पहला अवसर था, जब इस पुण्यभूमि में ब्रज के विद्वानों द्वारा श्रीमद्भागवत का सस्वर मंगल पारायण हो रहा था।

इस प्रकार के ऐतिहासिक शिलान्यास उत्सव में भाग लेने के लिए

माँ-बाबूजी-बाबा गोरखपुर से प्रस्थान करके 8 फरवरी 1965 को मथुरा पहुँचे। श्रीबंकाजी और समस्त परिकर वर्ग उनके साथ था ही और साथ में भक्त-मण्डली भी थी। ये लोग थे लगभग दो सौ की संख्या में, जो गोरखपुर-लखनऊ-कानपुर आदि स्थानों से ही साथ हो लिए थे। मथुरा स्टेशन पर सन्त समुदाय के कीर्तन की उच्च ध्वनि ने तथा सम्भ्रान्त नागरिकों की पुष्प मालाओं ने माँ और बाबूजी का भव्य स्वागत किया।

माँ और बाबूजी के निवास की व्यवस्था की गई थी बिरला धर्मशाला में जो मथुरा वृन्दावन के बीच में निर्मित है। श्रीबंकाजी ने अपने प्रिय छात्र, मथुरानिवासी श्रीशिवराज को पत्र लिखकर, इस उत्सव में भाग लेने के लिये, बुलवा लिया था। श्रीबंकाजी ने श्रीशिवराज से कहा था कि माँ के हाथ की बनी मधुकरी (गेहूँ, चना, जौ के मिश्रित आटे की, पानी के हाथ की बनी, चूल्हें की अग्नि से सेंकी हुई, घी लगी रोटियाँ) तथा टेंटी का अचार लेते लाना।

श्रीशिवराज दूसरे दिन ही श्रीबंकाजी की सेवा में आदेशित भेंट लेकर पहुँच गये। श्रीबंकाजी ने टेंटी का थोड़ा-थोड़ा अचार रखकर उपस्थित सन्तों-साधकों को मधुकरी-प्रसाद दिया। ब्रजवासी के घर की मधुकरी को सभी ने बड़े भाव से पाया। तदनन्तर श्रीबंकाजी, श्रीशिवराज को पूज्य बाबूजी के पास ले गये। श्रीशिवराज का परिचय सरदारशहर के अपने प्रिय विद्यार्थी के रूप में करवाया। श्रीशिवराज ने बाबूजी के परम पावन चरणारविन्दों पर अपना सिर रखकर सादर प्रणाम किया। बाबूजी ने उनके सिर पर कर-सरोज रखकर आशीर्वाद दिया—भगवान् की भक्ति करने से ही कल्याण होता है।

11 फरवरी 1965 को श्रीमद्भागवत भवन का स्मरणीय शिलान्यास दिवस था। निर्धारित शुभ मुहूर्त में विशाल शोभायात्रा निकाली गई। परम पूज्य बाबूजी, माँ, श्रीराधाबाबा, श्रीबंकाजी, समस्त परिकर एवं साथ आये हुये उच्च कोटि के सन्त-महात्मा केशवदेव टीला (जहाँ आज श्रीकेशवदेव मन्दिर बना है, मस्जिद के पीछे पश्चिम दिशा में वहाँ पहले ऊँचा टीला था) पर पहुँचे। केशवदेव टीला की भूमि स्वच्छता, पवित्रता, बिजली की लाईट,

सुगन्धित फूल की मालाओं की सजावट तथा सन्त-चरणों के पावन स्पर्श से सुशोभित थी।

श्रीकृष्ण जन्मस्थान के गर्भगृह में माँ और बाबूजी पधारे। यह वस्तुतः वही स्थान है जहाँ द्वापर में भगवान श्रीकृष्ण का प्राकट्य हुआ था। श्रेष्ठ ब्राह्मणों ने माँ और बाबूजी के द्वारा देवी-देवताओं का पूजन करवाया। इसके बाद का मुख्य कार्य था शिलान्यास। लगभग बारह फीट से भी अधिक गहरा गड्डा खोदा गया था। सीढ़ियों से नीचे उतरने की व्यवस्था थी। माँ और बाबूजी शिलान्यास स्थल पर पधारे और सीढ़ियों से नीचे उतर करके अर्चक के आसन पर बैठ गये। विधिपूर्वक देव पूजन करवाया गया। श्रीगणेशजी, श्रीवास्तुदेवता, श्रीपृथ्वी माता आदि के पूजन का मांगलिक कार्य लगभग एक घण्टे तक चलता रहा। अन्त में बाबूजी ने शक्ति की (पूज्या माँकी) साक्षी में भागवत-भवन के नींव की ईंटें रखी एवं उन पर चाँदी की करनी से गारा लगाया। मूर्धन्य विद्वान वेद पाठी पण्डितों द्वारा किये गये स्वस्तिवाचन एवं वेद-मन्त्रों के गायन से सुरम्य वातावरण गूँज उठा। विशाल जनता ने इस छवि पर बलिहारी होते हुए बड़े हर्षोल्लास से जयघोष किया। सम्पूर्ण हिन्दू समाज के लिये ये महान गौरव का दिन था। **लहहिं लोग सब लोचन लाहू ॥**

पूज्य बाबूजी ने मस्जिद की पश्चिमी दीवाल के तले खड़े होकर खुद, इस पुनीत अवसर पर आई जनता को, समझाया कि—जहाँ आज मस्जिद खड़ी है वहाँ भगवान केशवदेवजी का अति प्राचीन मन्दिर था जिसे तोड़कर मुगल बादशाह औरंगजेब ने मस्जिद में रूपान्तर करवा दिया था और आज भी जिस टीले पर हम खड़े हैं उसके अन्दर में केशवदेवजी के प्राचीन मन्दिर के भग्नावशेष दबे पड़े हैं। उस दिन उनका भाषण बड़ा ओजस्वी था।

इस पावन अवसर पर रासलीला का मनोरम मंचन भी हुआ। रास के रस में सभी रसिक सराबोर हो गये। कालान्तर में श्रीमद्भागवत भवन का निर्माण कराया गया जिसमें श्रीजगन्नाथजी, श्रीराधाकृष्ण, श्रीसीताराम, श्रीदुर्गाजी आदि अनेकानेक विग्रहों की विशाल रूप में स्थापना हुई। भागवत भवन की दीवारों पर श्रीमद्भागवत के सम्पूर्ण श्लोक, धातु पत्रों पर खुदवा कर लगवाने के अनुसार ही भागवत भवन नाम रखा गया है।

पूज्य बाबूजी के हाथों हिन्दू धर्म और भारत भूमि के संरक्षण-संवर्धन के अनेकानेक कार्य हुए जिनमें से एक मुख्य कार्य श्रीकृष्णजन्मभूमि का संरक्षण भी था। इस कार्य में भी श्रीबंकाजी सदैव बाबूजी की सेवा में उपस्थित रहे।

****

श्रीब्रह्मचारीजी का आमरण अनशन

एक कुशल सेवक अपने स्वामी के इशारे को भली-भाँति समझ लेता है। श्रीबंकाजी भी पूरे मन से बाबूजी की सेवा करते थे और उनके बताये हुए हर कार्य को पूर्ण तत्परता एवं बुद्धिमानी से निभाते थे। पूज्य बाबूजी को भी श्रीबंकाजी के काम पर और उनके समर्पण पर अत्यधिक भरोसा हो गया था। वे अपने गोपनीय से भी गोपनीय और अत्यधिक महत्तवपूर्ण कार्य भी श्रीबंकाजी से करवाया करते थे। इसी बात को पुष्ट करने के लिये एक प्रसंग उदाहरण स्वरूप दिया जा रहा है।

सन् 1966 में गोरक्षा आन्दोलन के सरगर्मी वाले दिन चल रहे थे। सर्वत्र वातावरण बड़ा अशान्त था। श्रीमनोहरलालजी चौधरी को बाबूजी ने दिल्ली भेज दिया और कई दिनों तक वहीं रखा, गोरक्षा आन्दोलन से सम्बन्धित विभिन्न समाचार गोरखपुर भेजते रहने के लिये। सन् 1966 के नवम्बर मास में यह आन्दोलन आरम्भ हुआ था और बाबूजी हृदय से चाहते थे कि यह आन्दोलन सफल हो तथा सरकार कानून द्वारा सारे देश में गो-हत्या बन्द कर दे। दिल्ली में 7 नवम्बर को विशाल जुलूस के बाद जो विराट सभा हुई थी, उसको सरकार ने अराजक तत्त्वों के सहयोग से विध्वंस कर दिया और सरकार चाहती थी तथा भरपूर प्रयास कर रही थी कि गोरक्षा के लिये चल रहे सत्याग्रह आन्दोलन को भी असफल बना दिया जाय।

सत्याग्रह करने के कारण पूज्य श्रीकरपात्रीजी महाराज गिरफ्तार हो चुके थे और सत्याग्रहियों के जत्थे अपनी गिरफ्तारी करवा रहे थे। सत्याग्रह तो चल ही रहा था, इसी के साथ 20 नवम्बर से श्रीजगन्नाथपुरी के शंकराचार्य पूज्य श्रीनिरंजनदेवतीर्थजी महाराज तथा प्रयाग के पूज्य श्रीप्रभुदत्त ब्रह्मचारीजी

महाराज, दोनों विभूतियों ने आमरण अनशन आरम्भ कर दिया, पूज्य श्रीशंकराचार्यजी महाराज ने दिल्ली में और पूज्य श्रीब्रह्मचारीजी ने वृन्दावन में। सम्पूर्ण देश में बड़ी उत्तेजना फैली हुई थी। दैनिक समाचार-पत्रों के पृष्ठ आन्दोलन के समाचारों से भरे रहते थे।

जिस तरह बाबूजी ने श्रीमनोहरलालजी को दिल्ली में रख रखा था, उसी प्रकार उन्होंने अपने निजी व्यक्तियों को स्थान-स्थान पर नियुक्त कर रखा था, जिससे आन्दोलन की सही स्थिति का ताजा समाचार नित्य-निरन्तर उनको मिलता रहे। बाबूजी का शरीर रुग्ण चलता था और उनका यत्र-तत्र आना-जाना सम्भव नहीं था, अतः जगह-जगह अपने निजी संदेश को पहुँचाने का कार्य वे श्रीबंकाजी से ले रहे थे। उन दिनों श्रीबंकाजी का एक पैर गोरखपुर और एक पैर बाहर रहा करता था। बाबूजीके संदेश को पहुँचाने के लिये दिल्ली, कानपुर, कलकत्ता, श्रीजगन्नाथपुरी, वृन्दावन आदि स्थानों पर उनको सदा दौड़ते रहना पड़ता था।

31 दिसम्बर 1966 को अचानक गोरखपुर से टेलीफोन द्वारा श्रीमनोहरलालजी के पास समाचार आया कि श्रीबंकाजी वायुयान द्वारा शाम को दिल्ली पहुँच रहे हैं। श्रीमनोहरलालजी को श्रीडालमियाजी से कार लेकर हवाई-अड्डे चले जाना था और वहीं से बाहर-बाहर, श्रीबंकाजी के साथ वृन्दावन जाने का आदेश था।

समाचार के अनुसार श्रीमनोहरलालजी को कार्य करना ही था। स्वयं परमादरणीय श्रीजयदयालजी डालमिया को यह समाचार पाकर आश्चर्य हो रहा था कि ऐसी क्या आकस्मिक और गम्भीर बात हो गयी, जिसके कारण हवाई अड्डे से बाहर-ही-बाहर वृन्दावन जाना पड़ रहा है। श्रीबंकाजी लगभग चार बजे वायुयान से आये और श्रीमनोहरलालजी के साथ कार द्वारा वृन्दावन के लिये चल दिये। श्रीमनोहरलालजी ने पूछा—ऐसी क्या गम्भीर बात हो गयी, जिसके कारण आपको पूज्य बाबूजी ने ट्रेन से नहीं, प्लेन से भेजा और बाहर-की-बाहर तुरन्त वृन्दावन जाने के लिये कहा?

श्रीबंकाजी ने बतलाया—कहा नहीं जा सकता कि कहाँ तक सत्य है, पर पूज्य बाबूजी के पास यह समाचार पहुँचा है कि पूज्य श्रीब्रह्मचारीजी चुपचाप छिपे-छिपे, कुछ-कुछ रसाहार ले रहे हैं। ज्यों ही यह समाचार गोरखपुर पूज्य बाबूजी के पास पहुँचा, वे तो बड़े अस्त-व्यस्त हो गये। उनके चिन्तन में बड़ी उथल-पुथल मच गयी कि आमरण अनशन की सार्वजनिक घोषणा करने के बाद श्रीब्रह्मचारीजी यह क्या कर बैठे?

श्रीबंकाजी के मुख से यह बात सुनकर श्रीमनोहरलालजी का मन बड़ा विचलित हो उठा। विचारों में झंझावात उठ खड़ा हुआ। आगे की बात जानने के लिए अत्यधिक उत्सुकता जाग उठी। श्रीबंकाजी बता रहे थे और श्रीमनोहरलालजी ध्यानपूर्वक सुन रहे थे। श्रीबंकाजी ने कहा—मैं आज से एक माह पहले की एक बात बता रहा हूँ। जब पूज्य श्रीब्रह्मचारीजी ने अपनी घोषणा के अनुसार 20 नवम्बर को आमरण अनशन आरम्भ किया, तब अनशन के आरम्भ करते ही सरकार ने उनको गिरफ्तार करके मथुरा जेल में बन्द कर दिया। बाबूजी के पास मथुरा से समाचार पहुँचा कि सरकारी अधिकारी "जबरदस्ती खिलाने" वाली बात सोच रहे हैं। उसी समय बाबूजी ने 28 नवम्बर 1966 को एक पत्र, डाक द्वारा मथुरा के श्रीकृष्ण जन्मस्थान के प्रधान प्रबन्धक पण्डित श्रीदेवधरजी शर्मा के पास लिखा। उस पत्र में बाबूजी ने श्रीदेवधरजी को लिखा था—मेरा एक काम आप अवश्य कर दीजिएगा। किसी प्रकार से जेल में पूज्य श्रीब्रह्मचारीजी से मिलकर मेरा यह सन्देश कह दीजिएगा कि—राष्ट्रपति के द्वारा गौ-हत्या पर पूर्ण प्रतिबन्ध सम्बन्धी आदेश जारी होने तक आपको अपने व्रत पर अटल रहना चाहिए। व्रत पर आप न बैठते तो बात दूसरी थी पर अब किसी भी हेतु से इसे छोड़ देना उचित नहीं। आशा है आप मेरा सन्देश अवश्य और तुरन्त पहुँचा देंगे।

पूज्य बाबूजी का यह पत्र श्रीदेवधरजी को मथुरा में मिला। वे सन्देश देने के लिए तुरन्त सक्रिय हो गये। पूज्य श्रीब्रह्मचारीजी तो जेल में थे और किसी भी प्रकार से भेंट हो सकना सम्भव नहीं था। फिर भी अपने प्रभाव

और सम्पर्क का उपयोग करके श्रीदेवधरजी जेल में पूज्य श्रीब्रह्मचारीजी से मिले। उनके पास श्रीदेवधरजी लगभग एक घण्टा रहे तथा बाबूजी का सन्देश सुनाया। पूज्य श्रीब्रह्मचारीजी ने श्रीदेवजी से कहा—आप श्रीभाईजी के पास मेरा सन्देश भेज दीजियेगा कि आमरण अनशन का मेरा व्रत था और आज भी यह व्रत अटूट है। जेल से आकर श्रीदेवधरजी ने यह सन्देश गोरखपुर पूज्य बाबूजी के पास भेज दिया। इससे बाबूजी को बड़ी सान्त्वना मिली।

जिन्होंने एक माह पहले यह कहा था कि आमरण अनशन का मेरा व्रत अटूट है, वही श्रीब्रह्मचारीजी अब न जाने कैसे और किस बात के प्रभाव में आकर डिग गये हैं और प्राप्त समाचारों के अनुसार उनका व्रत टूट चुका है। वे छिप-छिपे रसाहार ले रहे हैं। श्रीबंकाजी ने आगे बताया—मैं जब गोरखपुर से वृन्दावन के लिए चलने लगा तो पूज्य बाबूजी ने मुझे बड़ा सावधान किया और समझाया—देखो, बड़ी होशियारी, चतुराई और साहस का काम है। श्रीब्रह्मचारीजी की सेवा में कई लोग रहते हैं। सरकारी गुप्तचर भी वहाँ पर हैं। इन सबकी आँख बचाकर मेरा पत्र उनको पढ़ने के लिए देना है और जब वे पत्र पढ़ ले, तो पत्र को तुरन्त और पूर्णत: नष्ट भी कर देना है।

श्रीबंकाजी ने पूज्य बाबूजी से कहा—आपकी कृपा से ऐसा ही होना चाहिए।

श्रीबंकाजी के मुख से इन बातों को सुनकर श्रीमनोहरलालजी के मन में बड़ी बेचैनी उत्पन्न हो गई कि—यह क्या हो गया? क्या इतना बड़ा आन्दोलन, इस छोटी-सी कमजोरी के कारण असफल हो जाएगा? आज सारे गो-भक्तों की नजरें पूज्य श्रीशंकराचार्यजी और श्रीब्रह्मचारीजी के उत्सर्ग पर टिकी हुई हैं।

जाड़े के दिन थे। सूर्य जल्दी ही ढल गया। कार के भीतर श्रीबंकाजी अपने विचारों में डूबे हुए थे। जब कार वृन्दावन के संकीर्तन भवन के द्वार पर रुकी, काफी अन्धकार फैल चुका था। इस समय पूज्य श्रीब्रह्मचारीजी जेल में नहीं, अपने आश्रम संकीर्तन भवन में थे। सरकार ने उन्हें जेल से मुक्त

कर दिया था और यहीं संकीर्तन भवन में उनका आमरण अनशन व्रत चल रहा था।

श्रीबंकाजी ने जाकर पूज्य श्रीब्रह्मचारीजी को प्रणाम किया। उन्होंने अपना आशीर्वाद दिया तथा पूज्य बाबूजी का कुशल समाचार पूछा। आपस में औपचारिक बात दो-तीन मिनट होती रही। श्रीबंकाजी वही बैठ गये। बाबूजी ने ठीक ही कहा था कि उनकी सेवा में कुछ लोग सदा पास रहते हैं। एकान्त की प्रतीक्षा में श्रीबंकाजी चुपचाप बैठे रहे। संयोग से थोड़ी देर बाद ही एकान्त मिल गया और श्रीबंकाजी ने उनको पूज्य बाबूजी का पत्र दिया। वह पत्र इस प्रकार है।

गीतावाटिका, गोरखपुर
31 दिसंबर 1966

पूज्य श्रीब्रह्मचारीजी महाराज,
श्रीचरणों में अनन्त प्रणाम।

बड़ा कठिन कर्तव्य है। इसी से यह पत्र लिख रहा हूँ , हृदय पर पत्थर रखकर। मुझे आपके शरीर से बड़ा मोह है, इसीलिए बड़ा ही चिन्तित रहता हूँ। क्षण-क्षण यही चाहता हूँ—आपके शरीर की रक्षा हो। पूज्य श्रीशंकराचार्यजी में इतना मोह नहीं है, पर उनके शरीर की भी बड़ी चिन्ता है, किन्तु उससे भी अधिक बड़ी चिन्ता है आप के स्वरूप रक्षण की। शरीर अनित्य है। अनशन न करने वाले खाते-पीते आदमी भी मरते हैं, और मरते हैं अपने पूर्व निर्मित प्रारब्ध के अनुसार ही। आत्मा कभी मरती नहीं। यह बातें मैं आपको क्या लिखूँ, आप ही लोगों से सीखी हुई है। आपका और श्रीजगद्गुरुजी का अनशन एक परम आदर्श दिव्य तप है। महाव्रत है। आपने तथा श्रीजगद्गुरुजी ने बार-बार घोषणा की है व्रत पर अटल रहकर प्राण त्याग कर देने की। मेरा विश्वास था और है कि आप अपने निश्चय पर अटल हैं, अचल हैं। श्रीजगद्गुरुजी ने मुझको लिखा है कि वे हिमालय की तरह अटल हैं।

इधर मैं सुन रहा हूँ कुछ सज्जन आप लोगों का अनशन व्रत त्याग कराना

चाहते हैं। इसका प्रयत्न भी चल रहा है। आप त्याग कर देंगे, मैं तो यह सोच ही नहीं सकता। आप मरकर भी अमर हो जायेंगे और भगवद्चिन्तन आप कर ही रहे हैं। इससे भगवान की प्राप्ति हो जायेगी। पर कहीं भी, कुछ भी शिथिलता आ गई, तो वह आपकी आध्यात्मिक मृत्यु होगी। हिन्दू जाति का सिर सदा के लिए झुक जायेगा। अनशन न करते तो कोई बात नहीं थी, पर अब तो इसे निभाना ही है।

कहीं ऐसा न हो कि हमारा तमाम आदर्श ही नष्ट हो जाय। आपको पत्र लिखकर मैं बड़ा कठिन कार्य कर रहा हूँ। पर न करता तो आपके साथ अन्याय करता, धर्मच्युत हो जाता। पत्र सुनकर आप उचित विचार कीजिएगा, यही विनीत प्रार्थना है।

आपका दास
हनुमान

यह पत्र क्या था, एक महान परमाणु बम था। पत्र की घोर प्रतिक्रिया हुई, घोर विस्फोट हुआ। पूज्य श्रीब्रह्मचारीजी अकस्मात् जोर-जोर से बड़बड़ाने लगे। वे शायद यही सोच रहे होंगे कि श्रीबंकाजी के द्वारा क्या अनचाहा कर दिया गया? परन्तु श्रीबंकाजी तो एक आज्ञाकारी सन्देशवाहक थे। जब श्रीब्रह्मचारीजी जोर-जोर से बोलने लगे तो श्रीबंकाजी ने उनके हाथ से पत्र ले लिया और पास सुलग रही अंगीठी में डाल दिया। वह पत्र उस अंगीठी में जलकर राख हो गया। पूज्य श्रीब्रह्मचारीजी द्वारा लिए जाने वाले रसाहार की घटना कितनी सत्य है, यह तो वे ही जाने, पर श्रीबंकाजी के मन में बार-बार यह बात आती थी कि ऐसा उद्बोधनात्मक, ऐसा प्रेरणादायक पत्र एकमात्र पूज्य बाबूजी ही लिख सकते हैं।

****

पिताजी का देहान्त

प्रसंग 1969 के जनवरी मास का है। श्रीबंकाजी के पिताजी श्रीहरिरामजी बंका की तबीयत अचानक से खराब हो गयी। उनके बड़े पुत्र श्रीहनुमानप्रसाजी

बंका को सूचित किया गया। वे अपनी पत्नी श्रीगंगादेवी सहित धनबाद से अविलम्ब पडरौना चले आये। करीब 30 दिनों तक वे दोनों पडरौना में रहे, पिताजी की देखभाल की, खूब सेवा की। उपचार चल रहा था। उन्हें लगा कि अब पिताजी का स्वास्थ्य सुधर रहा है और शायद वे स्वस्थ्य हो जायेंगे। वे दोनों पिताजी की आज्ञा लेकर धनबाद लौट गये। उनके जाते ही रात्रि में पिताजी के स्वास्थ्य में एकदम से गिरावट आयी और अभी वे लोग ट्रेन से धनबाद पहुँचे भी नहीं होंगे कि 12-2-1969, फाल्गुन कृष्ण सप्तमी को, संध्या समय पूज्य पिताजी का देहावसान हो गया। शवदाह अष्टमी को होना निश्चित हुआ। घर में चारों ओर रुदन मच गया। आँखों से आँसुओं की वर्षा हो रही थी। मोहल्ले के आत्मीयजन सहानुभूति प्रगट करने आने लगे।

प्रभु के खेल बड़े न्यारे होते हैं। ढलती आयु में पिताजी की अन्तिम अभिलाषा यही थी कि उनकी मृत्यु के बाद उनके द्वितीय पुत्र राधेश्याम उनका अन्तिम संस्कार करें। अब बड़े पुत्र के रहते यह हो नहीं सकता था इसलिये भगवान की कृपा से ऐसा बानक बन गया कि बड़े पुत्र को ट्रेन में सूचित नहीं किया जा सकता था कि पिताजी की मृत्यु हो गयी है। गीता वाटिका सूचना भेज दी गयी। श्रीबंकाजी ने पूज्य बाबूजी को यह दुःखद समाचार सुनाया। बाबूजी ने श्रीबंकाजी को धैर्य बँधाते हुए अन्तिम संस्कार में क्या-क्या करना है और कैसे करना है, सब बताया और श्रीबंकाजी के साथ अपने निजजनों को पडरौना भेजा। ये सब गीताप्रेस के सम्पादकीय विभाग के लोग थे, जो हरिनाम संकीर्तन कर रहे थे।

अगले दिन प्रातः गोरखपुर से चार गाड़ियाँ पड़रौना पहुँची। घर पर अन्तिम यात्रा की व्यवस्था कर ली गयी थी। श्रीबंकाजी तुलसी की लकड़ी, गंगाजल और अजामिल का एक बड़ा-सा चित्र साथ लेकर आये थे। अर्थी पर सबसे सामने की ओर, अजामिल का चित्र लगाया गया, जिसमें यह दर्शाया गया था कि अजामिल शय्या पर पड़ा है। यमदूतों को भगवान के चतुर्भुज पार्षदों ने मार भगाया है और वे अजामिल को विमान पर बैठाकर विष्णुलोक ले जा रहे हैं।

पिताजी की अन्तिम आज्ञानुसार श्रीबंकाजी ने सारे कर्मकाण्ड को विधान पूर्वक पूर्ण किया। अग्नि देते वक्त उन्होंने अपने हाथ में प्रज्ज्वलित लकड़ी पकड़ रखी थी। उन्होंने इशारा करके अपने दोनों छोटे भाईयों को बुलाया और तीनों भाईयों ने एक साथ पिताजी को अग्नि समर्पित की। श्रीबंकाजी के पिताजी की अन्तिम अभिलाषा थी कि उनकी दाह क्रिया उनके सन्त-सेवी पुत्र के द्वारा हो और प्रभु के मंगलविधान ने ऐसी योजना बना दी कि सारी बात उनकी इच्छानुसार पूर्ण हो गई।

करीब पन्द्रह दिन तक श्रीबंकाजी पडरौना में रहे और श्राद्ध आदि सारे कार्य सम्पादित किया परन्तु उनके मन में सदा यही चिन्ता बनी रहती थी कि—बाबूजी के काम का हर्जा हो रहा है। मेरे जीवन का तो एक-एक क्षण बाबूजी को समर्पित है, मेरे यहाँ आ जाने से उन्हें कार्य-बहुल्य का सामना करना पड़ रहा होगा। इन्हीं विचारों में डूबे हुए श्रीबंकाजी ने अपने छोटे भाई विनोद को गोरखपुर भेजा और बाबूजी से पडरौना में ही रहकर करने लायक कार्य माँगा। श्रीविनोद अगले दिन ही बाबूजी के पास गीतावाटिका पहुँचे, प्रणाम किया और आने का प्रयोजन बताया।

बाबूजी अत्यन्त स्नेहपूर्वक उनसे मिले और घर का कुशल समाचार पूछा। श्राद्ध आदि कार्यों की जानकारी ली और बड़े ही प्रेम से उन्हें कलेवा कराया। फिर गीताप्रेस की कई फाईल दिये और कार्य बताकर विदा किया। पडरौना निवास के पन्द्रह दिनों में, जब भी समय मिलता श्रीबंकाजी बाबूजी का कार्य करते रहते और दोनों तरफ का अपना दायित्व भली-भाँति निभाकर वे यथासमय गोरखपुर लौट आये।

****

माँ के साथ तीर्थ यात्रा

पहले बताया जा चुका है कि श्रीबंकाजी ने बहुत ही कम उम्र में घर छोड़ दिया था और पिताजी से नाराज़गी होने के कारण वे लगभग सत्रह वर्ष बाद घर लौटे थे। इतने दिनों में घर की परिस्थिति बहुत बदल गई थी। जब

पिताजी का देहान्त हुआ तब श्रीबंकाजी को पन्द्रह दिनों तक घर में रहने और श्राद्ध कार्य करने का अवसर मिला।

श्रीबंकाजी की जन्मदात्री माँ का तो बचपन में ही देहान्त हो गया था। इनकी दूसरी माँ, श्रीकिसनी मैया, के साथ रहने का भी श्रीबंकाजी का एक तरह से यह पहला अवसर ही था। इन्होंने करीब से देखा कि घर की गरीबी के कारण मैया न कहीं घूमने जा सकी, न ही जीवन में उनको कोई सुख-सुविधा प्राप्त हुई। उन्होंने पडरौना से बाहर कदम तक नहीं रखा है। वे अतिशय भोली स्वभाव की थीं और अब पिताजी के जाने के बाद उनका हृदय अत्यधिक उदास और भविष्य की चिन्ता से घिरा हुआ था। बहुत सोच-विचारकर श्रीबंकाजी ने मैया से पूछा—माँ! तुम तीर्थयात्रा करना चाहती हो क्या?

माँ ने निराशाजनक वाणी में उत्तर दिया—बेटा! मैं तो घर से बाहर कभी गई नहीं, पढ़ी-लिखी भी नहीं हूँ। जब मेरे सास-ससुर को तुम श्रीबद्रीनाथ की यात्रा पर ले गये थे तो मेरा बहुत मन था जाने का परन्तु तुम्हारे पिताजी की आज्ञा नहीं थी। अब मुझे भला तीर्थयात्रा पर कौन ले जायेगा?

श्रीबंकाजी ने प्रश्न किया—अगर मैं लेकर चलूँ, तो क्या तुम मेरे साथ चलोगी?

माँ के अधरों पर मुस्कुराहट दौड़ गयी। माँ ने प्रसन्न होते हुए कहा—हाँ, चलूँगी, अवश्य चलूँगी।

श्रीबंकाजी ने अपने बड़े भाई श्रीहनुमानप्रसादजी बंका को पत्र लिखा कि—तीर्थयात्रा ट्रेन के द्वारा मैं माँ को तीन धामों की तीर्थयात्रा करवाना चाहता हूँ। अगर आप और भाभी भी साथ चलना चाहें तो अति उत्तम होगा।

तीर्थयात्रा के लिये बड़े भैया श्रीहनुमानप्रसादजी बंका ने और भाभी ने अपनी सहर्ष अनुमति प्रदान कर दी। भारत के प्रमुख तीर्थ स्थानों का परिचय हिन्दू समाज को प्रदान करने के उद्देश्य से, श्रीजयदयालजी गोयन्दका ने तीर्थयात्रा ट्रेन का आरम्भ किया था। यह ट्रेन भारत के तीन कोनों में स्थित तीनों धाम—श्रीद्वारकापुरी, श्रीरामेश्वरम, श्रीपुरीधाम की यात्रा कराती थी। इस

ट्रेन से इन तीनों धाम के साथ-साथ अन्य मुख्य स्थान जैसे मथुरा, वृन्दावन, अयोध्या, गया, प्रयाग, चित्रकूट, नासिक, उज्जैन, चितौड़गढ़, उदयपुर, श्रीनाथद्वारा, मदुरई, कन्याकुमारी, वेदारण्यम, चिदम्बरम आदि तीर्थों के भी दर्शन करना सुलभ था।

श्रीबंकाजी ने चार टिकटों की व्यवस्था कर ली और नियत समय पर सन् 1972 के दिसम्बर महीने में, वाराणसी से अपनी माँ और भाई-भाभी के साथ तीर्थयात्रा का शुभारम्भ किया। पूरी ट्रेन में उच्च स्वर से हरिनाम संकीर्तन होने लगा। एक फर्स्ट क्लास का डिब्बा बुक कर लिया गया था। अगले तीन महीने तक यह रेल का फर्स्ट क्लास का डिब्बा ही इनका घर था। यह ट्रेन जिस स्टेशन पर पहुँचती वहाँ तीर्थयात्रियों के लिए प्लेटफार्म पर, कहीं वेटिंग-रूम में और कहीं-कहीं खुले मैदान में भोजन बनता। रेलगाड़ी के सभी तीर्थ यात्रियों के लिए एक साथ ही भोजन तैयार होता। श्रीबंकाजी ठीक समय पर लाइन लगाकर सबका भोजन, टिफिन में डलवा कर अपने डिब्बे में ले आते, जहाँ माँ और भाई-भाभी के साथ मिलकर प्रसाद पाते। श्रीबंकाजी हर तीर्थ में पहुँचने के पहले ही वहाँ के दर्शनीय स्थल, मन्दिर, नदी, कुण्ड आदि की जानकारी प्राप्त कर लेते और अपनी माँ को साथ लेकर तीर्थ स्नान और दर्शन करवाते। साथ-साथ स्थान का महत्त्व-इतिहास भी बताते जाते। **पूजि जथा बिधि तीरथ देवा॥**

जो माँ अपनी पूरी जिन्दगी में घर के बाहर कभी गयी ही न हो, उसे अचानक से पूरे भारत की यात्रा का सुअवसर मिल जाये तो उसे कितनी प्रसन्नता होगी यह शब्दों में बताया नहीं जा सकता। शीतकाल के दिन थे, बहुत ही सुहाना सफर था। हर प्रकार से श्रीबंकाजी ने माँ और भाई-भाभी की तीर्थयात्रा के समय सेवा की। जब ट्रेन गया जंक्शन पर पहुँची तो सबने पवित्र फल्गु नदी में स्नान किया और पिताजी का भक्तिपूर्वक श्राद्ध किया। सिद्धपुर गुजरात, माँ का श्राद्ध करने के लिये सर्वोत्तम तीर्थ है। यहाँ श्रीबंकाजी ने अपनी जन्मदात्री माँ का श्राद्ध किया। उन्होंने माँ के लिए खीर-हलवा-पूड़ी-सब्जी की पवित्र रसोई बनवाई और एक खूब सुन्दर लाल रंग की साड़ी, माँ

के लिए ब्राह्मण को दान दी। उस दिन श्रीबंकाजी अपनी माँ को याद करके खूब रोए।

तीन धामों के सभी मुख्य तीर्थों का दर्शन करके और सभी श्रेष्ठ नदी-सरोवरों में स्नान करते हुए यह यात्रा प्रसन्नतापूर्वक तीन महीने में सम्पन्न हुई। पुनः बनारस लौटने पर श्रीबंकाजी ने अपने माँ और भाई-भाभी के चरणों में प्रणाम किया। माँ के नेत्रों से मातृत्व झरने लगा। माँ ने शीश और पीठ पर हाथ रखकर, गद्गद् वाणी में अपने पुत्र को आशीर्वाद दिया—पुत्र! तूने मुझे अथाह सुख प्रदान किया है, मेरी बहुत सेवा की है। मेरे बिना कहे ही तुमने मेरे हृदय की बात जान ली और मुझे सब तीर्थों का दर्शन कराया। मैं बहुत प्रसन्न हूँ। मेरा आशीर्वाद है, तेरा अशेष मंगल हो।

माँ की प्रेमभरी वाणी सुनकर श्रीबंकाजी के नेत्र भी छलछला गये थे। एक पुत्र होने का दायित्व पूरा करके, माँ और भाई-भाभी से आज्ञा लेकर श्रीबंकाजी गीतावाटिका लौट आये।

****

अग्निपुराण की भूमिका

प्रसंग सन् 1969 के दिसम्बर मास का होना चाहिये। जनवरी 1970 में मासिक धर्मपत्रिका कल्याण का अग्निपुराण विशेषांक छपने वाला था। पूज्य बाबूजी इतने रुग्ण थे कि वे स्वयं चाहकर भी कुछ लिख नहीं सकते थे। पत्रिका के नियमानुसार, अग्निपुराण के आरम्भ में भूमिका स्वरूप कोई लेख होना ही चाहिये। सम्पादक होने के नाते अक्सर बाबूजी स्वयं ही कल्याण विशेषांकों की भूमिका लिखा करते थे। बाबूजी का स्वभाव था कि वे अपने लिखे लेखों के नीचे अपना नाम कभी नहीं लिखते थे। वे कल्याण के यशस्वी सम्पादक थे, तो ऐसी मान्यता हो गयी थी कि जो भी लेख बिना लेखक के नाम के होता था, पाठक उसे बाबूजी का लिखा हुआ ही मानने लगे थे। इन दिनों बाबूजी अत्यधिक रुग्ण थे। विशेषांक की भूमिका स्वयं न लिख पाने की लाचारी में पूज्य बाबूजी ने श्रीबंकाजी को बुलाया और कहा—तुम अग्निपुराण विशेषांक की भूमिका लिख दो और दस-बारह दिन में दे देना।

पूज्य बाबूजी के आदेश को सुनकर श्रीबंकाजी अपने कक्ष में चले तो आये परन्तु उनके मन में बड़ी उथल-पुथल थी। मन का पहला प्रश्न यह था कि, बाबूजी की जानकारी में भारत के कोने-कोने में निवास करने वाले पौराणिक साहित्य के उद्भट विद्वान हैं। बाबूजी ने उनमें से किसी को यह लेख लिखने के लिये क्यों नहीं कहा? अब एक लेखिका होने के नाते मैं ऐसा अनुमान करती हूँ कि प्रत्येक विद्वान अपने लेख के साथ अपने नाम का प्रकाशन चाहेगा परन्तु श्रीबंकाजी को अपने नाम के प्रकाशन का कोई लोभ नहीं था। बाबूजी नहीं चाहते थे कि अग्निपुराण विशेषांक की भूमिका वाले लेख में किसी अन्य लेखक का नाम हो। श्रीबंकाजी के स्वाभाव से बाबूजी अच्छे से परिचित थे। मेरे अनुमान के अनुसार इसीलिये बाबूजी ने इस कार्य के लिये श्रीबंकाजी को चुना होगा।

श्रीबंकाजी के मन में एक और प्रश्न था। उन्होंने अग्निपुराण का अध्ययन तो दूर की बात कभी उस ग्रन्थ का दर्शन भी नहीं किया था। अग्निपुराण के पृष्ठों को उलटना-पलटना, तथ्यों को पढ़ना, रहस्यों की गहराई में उतरना, सबको हृदयंगम करके मात्र कुछ पृष्ठों की सीमा के अन्तर्गत सीमित करना कोई साधारण कार्य नहीं था। कार्य की गुरुता को देखकर श्रीबंकाजी मन-ही-मन बहुत परेशान थे कि यह पहाड़-सा कार्य कैसे हो पायेगा? परेशानी भले ही हो परन्तु बाबूजी के आदेश का पालन तो करना ही था।

श्रीबंकाजी पुस्तकालय से अग्निपुराण ले आये और अपनी सामर्थ्य के अनुसार उसका अवलोकन-आलोड़न-अनुशीलन करने लगे। ऐसा करते समय वे कुछ संकेत बिन्दु अलग कागज पर लिखते जाते थे। सतत् परिश्रम के उपरान्त 13-14 दिन में यह लेख तैयार हो गया। तैयार लेख श्रीबंकाजी ने पूज्य बाबूजी को दे दिया। अब मेरा ऐसा अनुमान है कि कल्याण के प्रधान सम्पादक होने के नाते, उस लेख में यत्र-तत्र किंचित् संशोधन अथवा सम्वर्धन पूज्य बाबूजी ने किया होगा, परन्तु वही लेख अग्निपुराण विशेषांक के आरम्भ में छपा।

अग्निपुराण विशेषांक के आरम्भ में एकमात्र यही लेख है जिसके अन्त

में न श्रीबंकाजी का नाम है और न पूज्य बाबूजी का नाम है। किसी का नाम न होने से और केवल एक ही लेख होने से कल्याण पत्रिका के प्रत्येक पाठक की यही मान्यता रही होगी कि यह लेख श्रीपोद्दारजी के द्वारा लिखा गया है क्योंकि उनके द्वारा लिखे गये लेखों में प्राय: उनका नाम नहीं रहता था।

अग्निपुराण विशेषांक छप गया और कई वर्षों तक श्रीबंकाजी ने उसे देखा भी नहीं। बात पुरानी हो गई। वे इस सारे प्रसंग को एकदम भूल गये। सन् 2004 में किसी वार्तालाप के मध्य अग्निपुराण का जिक्र होने के कारण उनके मन में जिज्ञासा उठी। उन्होनें अग्निपुराण विशेषांक मँगवाया और वह स्वलिखित लेख पढ़ा। लेख पढ़कर श्रीबंकाजी महान आश्चर्य में डूब गये और मन-ही-मन कहने लगे—बेटा राधेश्याम! एकमात्र भगवत्कृपा से ही ऐसा लेख लिखा जा सकता है। ऐसा लेख तुम तो सात जन्म में नहीं लिख सकते।

कई दिनों तक श्रीबंकाजी के मन में लगातार इस बात का चिन्तन चलता रहा। फिर उनके हृदय में एक नवीन समाधान का अवतरण हुआ। पूज्य बाबूजी ने अवश्य ही अज्ञात रूप से शक्तिपात किया होगा तभी उनके द्वारा ऐसा लेखन सम्भव हो पाया। जब बाबूजी ने उनको लेख लिखने की आज्ञा दी तभी साथ में लेख लिखने की योग्यता भी प्रदान की। श्रीबंकाजी द्वारा लिखा गया वह लेख यहाँ विस्तार भय से नहीं दिया जा रहा है। उस लेख को अग्निपुराण विशेषांक की भूमिका में देखना चाहिये।

****

लेखों का संग्रह

श्रीबंकाजी की हार्दिक चाह थी तथा तदनुसार प्रारम्भ से ही प्रयास था कि पूज्य बाबूजी के व्यक्तित्व के सम्बन्ध में देश के गणमान्य लोगों की जो धारणा है, वह उन्हीं की लेखनी से लिखवा कर, लिखित रूप में प्राप्त की जाए, जिससे उसका उपयोग भविष्य में उचित समय पर किया जा सके। इसके लिए श्रीबंकाजी ने अनेक लोगों को व्यक्तिगत रुप से पत्र लिखा। श्रीबंकाजी बाबूजी के निजी सचिव के रूप में लगभग दस वर्षों तक कार्यरत् रहे इसलिये बाबूजी का किन-किन लोगों से परिचय है और कौन-कौन बाबूजी के बारे में लिख कर दे सकते हैं, इन सब बातों की जानकारी उन्हें बहुत अच्छे से थी।

कल्याण के प्रथम यशस्वी सम्पादक होने के नाते बाबूजी का कार्य क्षेत्र बहुत व्यापक रहा है। श्रीबंकाजी ने असंख्य पत्र लिखे। भारत के बड़े-से-बड़े साधु-सन्तों को, मठाधीश्वरों को, नेताओं को, सेठ-साहूकारों को, बाबूजी के पारिवारिक सदस्यों-स्वजनों को, मित्रों को, सहकर्मियों को, गीताप्रेस के लेखकों को, गीताप्रेस के प्रति श्रद्धा-भाव रखने वालों को, चित्रकारों को, कवियों को, संगीतज्ञों को, रासाचार्यों को, वकील-जज, घर के डाक्टर, जिस भी व्यक्ति से उन्हें ज़रा-सी भी उम्मीद थी बाबूजी के बारे में जानने की, उन सबको श्रीबंकाजी ने सम्पर्क किया।

किसी सूत्र से बाबूजी को इस बात की जानकारी हो गई और यह भी पता चल गया कि जबलपुर के सेठ, गीताप्रेस के प्रति श्रद्धा-भाव रखने वाले श्रीगोविन्ददासजी के पास भी पत्र लिखा गया है। श्रीगोविन्ददासजी को लिखने से निवारण करने के लिए बाबूजी ने 27 सितम्बर 1970 को जो पत्र लिखा वह इस प्रकार है—

परम सम्मान्य श्रीगोविन्ददासजी

सादर नमस्कार।

मालुम हुआ है कि हमारे यहाँ के श्रीराधेश्यामजी बंका ने मेरे सम्बन्ध में कुछ लिखने के लिए आपसे निवेदन किया है। मेरे प्रति उनका सद्भाव है। वह मुझ में श्रद्धा रखते हैं इसीलिए उन्होंने विशुद्ध भावुकतावश प्रयास किया है परन्तु न तो मेरे जीवन में ऐसा कोई गुण है न कोई महत्त्व है जिससे इस विषय में आप सभी महानुभावों का समय दिया जाए। सिद्धान्ततः भी मैंने जीवन भर आत्म-प्रशंसा का विरोध किया है। मन में क्या है, सो तो भगवान जाने। आप सरीखे मुझ पर अहैतुकी कृपा और स्नेह रखने वाले आदरणीय महानुभाव यदि कुछ लिखेंगे तो आपका समय जाएगा और मेरे लिए कोई लाभ की बात नहीं होगी। मैं तो आप से यही आशीर्वाद और सद्भाव चाहता हूँ कि मान-प्रतिष्ठा से बचे रहकर, जीवनभर भगवान का स्मरण कर सकूँ। आपका जो समय किसी

बहुमूल्य लोकहितकर काम में लगता, उसे श्रीराधेश्यामजी ने और मैंने पत्र लिखकर व्यर्थ किया, इसके लिए मैं करबद्ध क्षमा चाहता हूँ।

शेष भगवत्कृपा।

आपका विनीत
हनुमानप्रसाद पोद्दार

बाबूजी द्वारा लिखे गये पत्र में जो आत्म-संगोपन एवं दैन्य भाव है, वह उनके आध्यात्मिक व्यक्तित्व के अनुरूप ही है। संतोचित विनम्रता पत्र की एक-एक पंक्ति में समाई हुई है। श्रीगोविन्ददासजी ने बाबूजी को क्या उत्तर दिया वह तो ज्ञात नहीं पर श्रीबंकाजी के पास उनका जो पत्र आया वह भी पठनीय है। बाबूजी के सम्बन्ध में अपनी धारणा को लिपिबद्ध करके वह लेख श्रीगोविन्ददासजी ने भेजा और लेख के साथ आने वाले पत्र में उन्होंने लिखा—

राजा गोकुलदास महल
जबलपुर
15.10.1970

प्रिय बंकाजी,

आपका पत्र मिला। श्रद्धेय पोद्दारजी पर एक छोटा-सा लेख लिखा जो इस पत्र के साथ आपकी सेवा में भेज रहा हूँ। इसका जहाँ उचित समझे आप उपयोग कर सकते हैं। श्रद्धेय पोद्दारजी का एक पत्र मुझे इन दिनों मिला जिसमें उन्होंने आप के पत्र का हवाला देकर, उनपर कुछ न लिखने का मुझे आदेश दिया। उसमें पोद्दारजी का वही आत्म-संगोपन और आत्म-प्रशंसा विरोधी भाव था। किन्तु इसमें आत्म-प्रशंसा की तो कोई बात ही नहीं है। इसी भाव से भावित मैं श्रद्धेय पोद्दारजी की उस आज्ञा का पालन न कर सका और अपने भाव-विचार अंकित कर आपके पास भेज रहा हूँ। कृपया पहुँच दें। शेष भगवत्कृपा।

भवदीय
गोविन्ददास

सेठ श्रीगोविन्ददासजी के पत्र ने श्रीबंकाजी को तथ्य संग्रह के प्रयास में प्रोत्साहन ही दिया। ऐसा एक नहीं अनेकों बार हुआ कि श्रीबंकाजी ने किसी को बाबूजी के लिये कुछ लिखने को कहा और बाबूजी ने उन्हें तो मना किया ही और श्रीबंकाजी को भी खूब डाँटा। श्रीबंकाजी भली प्रकार जानते थे कि बाबूजी को स्वयं की प्रशंसा अतिशय अप्रिय है और उन्हें इस काम की भनक भी लगी तो वे बहुत रुष्ट होंगे। बहुत बार बाबूजी की डाँट खाने के बाद भी श्रीबंकाजी अपने कार्य से रुके नहीं और वर्षों तक, चुप-चाप उनका प्रयास जारी रहा। बाबूजी चाहे नाराज़ हों पर माँ ने इस काम में सदा श्रीबंकाजी का सहयोग और समर्थन ही किया। उन्हें यह जानकर अति प्रसन्नता होती थी कि राधेश्याम अपने बाबूजी का गुणगान करना चाहता है।

श्रीबंकाजी को बाबूजी के बारे में अधिक-से-अधिक जानकारी प्राप्त करने की इतनी ललक थी कि गीतावाटिका में जो कोई भी मिलता—कभी बाबूजी की माताजी से, कभी पूज्या माँ की माताजी (बुढ़िया नानीजी) से, कभी बाबूजी के परिवार के लोग, घर के नौकर, रसोईये, माली, कर्मचारी आदि आदि कहाँ तक कहा जाय, श्रीबंकाजी सबसे बाबूजी के बारे में पूछते रहते और जो भी व्यक्ति कोई प्रसंग या कथा-वार्ता सुनाता उसे झट से अपने कमरे में आकर, लिख लिया करते थे। इसी लगन और कड़ी मेहनत का फल है वे पुस्तकें जो श्रीबंकाजी ने बाबूजी और माँ पर लिखी हैं। सन्तचरित लेखन में श्रीबंकाजी ने सर्वप्रथम 'माँ एवं बाबूजी' नामक पावन ग्रन्थ की रचना ही की थी।

****

ब्याह के गीत

पूज्य बाबूजी की दौहित्री पुष्पाबाई के ब्याह का प्रसंग है। आदरणीया श्रीसावित्री बाई फोगला की सुपुत्री, पुष्पा का मंगल विवाह 4 मार्च 1965 को हुआ। 3 मार्च की रात को गिरिडीह से आनेवाली बारात बरौनी पहुँचने वाली थी। बरौनी में बारात के स्वागत तथा खान-पान का प्रबन्ध करना था। इसके

लिये श्रीमानमलजी थरड कुछ व्यक्तियों के साथ 2 मार्च की रात को गोरखपुर से बरौनी जाने वाले थे।

बरौनी से गोरखपुर के लिए ट्रेन के दो डिब्बों का आरक्षण भी करवाना था, जिससे बराती लोग सुविधापूर्वक आ सकें। आरक्षण सम्बन्धी कार्य के लिये श्रीबंकाजी को काफी दौड़-धूप करनी पड़ी थी। बरौनी भी कई बार जाना पड़ा था। रेलवे अधिकारियों ने इसके लिए आवश्यक आदेश जारी कर दिये थे तथा इससे सम्बन्धित सारे कागज लाकर उन्होंने बाबूजी को दे दिये। कागज प्राप्त करके बाबूजी ने कहा—अच्छा हुआ, यह काम भी सलट गया। श्रीमानमलजी बरौनी जा रहे हैं। वे चतुर हैं, समझदार हैं, सारी व्यवस्था कर लेंगे।

श्रीबंकाजी भी मन में निश्चिन्त हुए कि चलो, एक काम तो पार पड़ा। अचानक श्रीमानमलजी का स्वास्थ्य थोड़ा ढीला हो गया, अतः उनका जाना स्थगित हो गया। उनके स्थान पर श्रीसुशीलजी मूँधड़ा का जाना तय हुआ। साथ ही यह भी तय हुआ कि श्रीसुशीलजी मूँधड़ा के साथ श्रीबंकाजी को भी जाना है, पर इस परिवर्तन की श्रीबंकाजी को कोई जानकारी नहीं थी। बरौनी से सम्बन्धित सारे कागज बाबूजी को सम्भला देने के पश्चात श्रीबंकाजी तो पूर्ण निश्चिन्त हो चुके थे और फिर इस बारे में उन्होंने कुछ जानने की चेष्टा भी नहीं की।

आदरणीया श्रीसावित्री बाई के मन में बेटी के ब्याह का पूर्ण उत्साह था। गीतावाटिका में ब्याह की विशाल तैयारियाँ हो रही थीं। किसी के जिम्मे सारी व्यवस्था सम्भालने का काम था, किसी के जिम्मे मिठाइयों के बनाने का काम था, किसी के जिम्मे घर की सजावट का काम था, किसी के जिम्मे बरात के स्वागत का काम था, बाबूजी के सारे परिकर अपने-अपने काम में संलग्न थे।

विवाह के दो-तीन दिन पहले की बात है। अपनी लाडली बेटी श्रीसावित्रीबाई के पास बाबूजी ने श्रीकृष्णचन्द्रजी द्वारा एक सूचना भिजवाई कि—हमलोगों को ऐसा ब्याह करना है जो समाज के लिए एक आदर्श हो। अतः ध्यान रखना कि कोई भी चलचित्र का गीत, विवाह में न बजे और किसी

भी प्रकार के अभद्र लोक-संगीत का भी प्रयोग न हो। विशुद्ध पारम्परिक गीत और भजन आदि का ही समावेश हर कार्यक्रम में होना चाहिये।

सूचना सुनकर श्रीसावित्रीबाई कुछ निराश-सी हो गईं कि अगर सुन्दर गीत न गाये जाएँ तो विवाह का आनन्द क्षीण हो जायेगा। वे तुरन्त बाबूजी के पास चली आईं और अनुरोध भरे स्वर में कहा—बाबूजी! क्या कोई भी गीत ब्याह में नहीं गाये जायेंगे?

बाबूजी ने उत्तर दिया—सिनेमा के गीत मुझे पसन्द नहीं। आगे तुमलोग सोच-विचार कर लो कि क्या करना उचित है।

श्रीबंकाजी वहीं कार्य कर रहे थे और सारी बात सुन रहे थे। उन्होंने श्रीसावित्रीबाई के सामने भात के नवीन गीत लिखने का प्रस्ताव रखा। श्रीसावित्रीबाई अत्यधिक प्रसन्न हो गईं और बाबूजी से कहा—आप आज्ञा दें तो बंकाजी भात के नये गीत लिख देंगे।

बाबूजी सहमत हो गये थे। बरौनी सम्बन्धित सारे कागज बाबूजी को देने के बाद श्रीबंकाजी अपने कमरे में आकर पूरे मनोयोग से गीत लिखने में व्यस्त हो गये। वे मन-ही-मन सोचने लगे—कल बाई भात नूतने के लिए जाने वाली है। माँ और बाबूजी को भात भरने के लिए बाई निमन्त्रण देगी। बाई के लिए माँ और बाबूजी ही सर्वस्व हैं। बाई को लोक और परलोक दोनों के लिए बाबूजी पर ही विश्वास है और बाबूजी का ही बल है। इन्हीं विचारों में डूबे हुए श्रीबंकाजी ने भात नूतने का गीत लिखा।

(1)

भात नूतने का गीत

सुमंगल ब्याह पुष्पा का, हृदय से मुदित है बाई।
चली है भात नूतन को, पिता के आज घर बाई॥

मनाती देव गीतों में,
पिता के गीत कण्ठों में,
चला है वृन्द महिला का, शोभिता बीच में बाई।

मिली जाकर पिता-माँ से,
सभी, भाई, सहेली से,
उमड़ता हर्ष मैया का, भवन मेरे खड़ी बाई।

पिता से कह दिया मन का,
'रचा है ब्याह बेटी का,
बुलावा भात का देती', पिता पर निर्भरा बाई।

भरोसा आपका ही है,
सभी शुभ आप से ही है,
सम्भालें कार्य सारा ही, सरस बचना सरल बाई।

पधारे आप मेरे घर,
पधारे आपके परिकर,
पधारे बन्धु.भाई वर, विनय से अति विनत बाई।

हृदय हुलसित पिताजी ने,
कहा—'फिर भात को भरने,
चलेंगे हम सभी जन ही ', बदन-मन-पुलकिता बाई।

किया अति चाव मैया ने,
कहा अति भाव से अपने,
"भला हो ब्याह पुष्पा का", शुभाशिष आश्रिता बाई।

पली है दूध से जिनके,
छकी है नेह में जिनके,
वही है मोद की सीमा, हृदय से विह्वला बाई।

सुमंगल ब्याह पुष्पा का, हृदय से मुदित है बाई।
चली है भात नूतन को, पिता के आज घर बाई॥

अपने कमरे के एकान्त में श्रीबंकाजी भात भरने के सुन्दर दृश्य को बन्द आँखों से अपनी कल्पना में देख रहे हैं और सोच रहे हैं—विवाह के दिन

बाबूजी भात भरने वाले हैं। यह भावना रह-रहकर श्रीबंकाजी को आनन्दित कर रही है। बाबूजी भक्त हैं, परम भक्त हैं, ऐसे हैं, जिनके जीवन का एक-एक क्षण श्रीराधामाधव के संग में व्यतीत होता है, जिनका अन्तर्मन श्रीराधामाधव की अन्तरंग लीला में सदैव डूबा रहता है। ऐसे बाबूजी भात भरने के लिए आयेंगे, इसकी कल्पना ही कितनी मनोरम है ? और इस कल्पना का यथार्थ तो कल्पनातीत मनोरम होगा। इन्हीं भावों से भावित होकर श्रीबंकाजी ने भात भरने का यह सुन्दर गीत लिखा।

(2)

भात भरने का गीत

(राग पीलू)

सखी री, मेरे भाग्य बड़े।
भरने भात पिताजी आये, मेरे भवन खड़े॥

राधा-माधव-लीला में रत, अनुदिन जिनका मन।
वे ही चुनरी लिये पधारे, पुलकित मेरा तन॥ सखी री ऽऽऽ

जिनके युग-कर पल-पल करते, प्रभु-पद का अर्चन।
चुनरी उढ़ायेंगे उन कर से, धन्य हुआ जीवन॥ सखी री ऽऽऽ

जिनके भाल सदैव सुशोभित, प्रभु-पद-रज सुन्दर।
उसी भाल पर तिलक करूँगी, हुलसित है अन्तर॥ सखी री ऽऽऽ

श्रीबंकाजी मन-ही-मन सोच रहे हैं—कल बाई अपने भाग्य की सराहना करते थकेगी नहीं। भात भरने का नेग पण्डाल में सम्पन्न होगा। पण्डाल में समुचित व्यवस्था हो गई है। माँ और बाबूजी का स्वागत करने के लिए बाई खड़ी होगी। सबसे आगे बाबूजी पधारेंगे। गीत गाती हुई महिलाओं के साथ पीछे-पीछे माँ आयेगी। एक अनोखा ही दृश्य होगा। चुनरी उढ़ाने के दृश्य को सभी देखना चाहेंगे। बाबूजी चौकी पर खड़े होकर, अपने हाथों से बाई को लाल रंग की चुनरी उढ़ायेंगे, सचमुच बाई निहाल हो जायेगी। बाई बाबूजी के

भाल पर रोली का तिलक करेगी। प्रफुल्लित महिलाओं का गीत गाना आरम्भ होगा। इन्हीं भावों में बहते हुए श्रीबंकाजी ने भात की चुनरी का यह सुन्दर गीत लिखा।

(3)
भात की चुनरी गीत
(राग माँड)

सजनी! सुन्दर चुनरी लाल।
ओढ़ पिताजी के शुचि करसे, तन-मन आज निहाल॥ सजनी....

जिनका स्पर्श तुरन्त कर देता, शुचिता का संचार।
उन्हीं करों से मिली चुनरी, सभी सुखों का सार॥ सजनी...

रक्तिम अम्बर, चम-चम तारे, चन्दा से हैं फूल।
नव-गंगा-सी फैली लम्पी, हुआ सभी अनुकूल॥ सजनी...

दोपहर के समय श्रीसुशीलजी मूँधड़ा श्रीबंकाजी के कक्ष में आये और उन्होंने कहा—बंकाजी, आपको बरौनी चलना है।

श्रीबंकाजी के मन में यही बात थी कि श्रीमानमलजी बरौनी जा रहे हैं, वे सारा काम सम्भाल लेंगे। उन्होंने अपनी मस्ती में श्रीसुशीलजी से कहा—मैं बरौनी नहीं जा रहा हूँ। मेरे जाने का कोई कार्यक्रम भी नहीं है। मैं तो बाई द्वारा बताया गया एक काम कर रहा हूँ। आदरणीय बाई भात नूतने वाली हैं, इसी अवसर के लिए एक गीत लिखने में तल्लीन हूँ।

श्रीबंकाजी के उत्तर को सुनकर श्रीसुशीलजी लौट गये। अभी श्रीबंकाजी ने दो-तीन गीत ही लिखे ही थे कि बाबूजी के भेजे हुए एक अन्य व्यक्ति ने उनके कक्ष का द्वार खटखटाया। श्रीबंकाजी को यह विक्षेप अच्छा नहीं लगा। वे तो मन की आखों से अभी भी ब्याह मण्डप में, भात भरने का नेग देख रहे थे। न चाहते हुए भी उन्होंने उठकर दरवाजा खोला। बाबूजी के भेजे हुए उस व्यक्ति ने कहा—बाबूजी ने आपको बुलवाया है।

श्रीबंकाजी ने कुछ झुंझलाते स्वर में उत्तर दिया—मैं ब्याह के गीत लिख रहा हूँ। अभी थोड़ी देर में आता हूँ।

वह व्यक्ति चला गया और उसने बाबूजी से कहा—श्रीबंकाजी तो ब्याह के गीत लिख रहे हैं। थोड़ी देर बाद आयेंगे।

श्रीबंकाजी ब्याह के गीत लिखने में इतने अधिक तल्लीन थे कि बाबूजी के तीन-चार बार बुलाये जाने पर भी उन्होंने कहला दिया कि—बाई का काम करके अभी आता हूँ।

उधर बाबूजी श्रीबंकाजी की प्रतीक्षा कर रहे थे कि कब बंका आये और कब उसे सारे कागज सम्भला दिये जावें। कई बुलावे के बाद भी श्रीबंकाजी के नहीं आने पर उन्हें बड़ी व्यग्रता हुई। बाबूजी को कार्य की सम्पन्नता की बड़ी चिन्ता थी। बरौनी को जाने वाली रेलगाड़ी के आने में एक-डेढ़ घण्टा और शेष था। किसी ने जाकर बाबूजी को यह भी कह दिया कि बंकाजी का बरौनी जाने का कोई कार्यक्रम नहीं है। बाबूजी ने सुशीलजी से कहा—बंका से कहो कि सारा काम छोड़कर पहले मुझसे मिले।

श्रीसुशीलजी ने ज्यों ही श्रीबंकाजी से कहा, त्यों ही तुरन्त श्रीबाबूजी के सामने वे उपस्थित हुए। बाबूजी रोष में हैं, इसका उन्हें तनिक भी आभास नहीं था। उनके आते ही बाबूजी ने पूछा—तुमको किसने कहा कि बरौनी नहीं जाना है?

श्रीबंकाजी ने सरलता से कहा—आपने।

श्रीबंकाजी कुछ और भी कहना चाहते थे, पर उन्हें अवसर नहीं मिला। 'आपने' सुनते ही बाबूजी का रोष प्रगट हो गया। कमरे में वहाँ पूज्य श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी, श्रीगुलाबरायजी नेमाणी, श्रीसुशीलजी आदि कई लोग उपस्थित थे। बाबूजी ने बुरी तरह डाँटा—तुम मेरे सामने मुझसे झूठ बोलते हो? मैंने तुमसे कब कहा कि तुमको बरौनी नहीं जाना है? मैं तो कब से तुम्हारी राह देख रहा हूँ कि कब तुम आओ, कब सारे कागज तुम्हें सम्भला दूँ? तुम्हारे लिये कई बुलावे भेजे।

श्रीबंकाजी चुपचाप खड़े रहे। बाबूजी की वाणी की कुछ-कुछ तुतलाहट आवेश की अधिकता को व्यक्त कर रही थी। डाँटना काफी देर तक चलता रहा। बाबूजी की क्षुब्ध वाणी सुनकर श्रीबंकाजी के भावुक हृदय को बहुत दुःख हुआ। 'झूठ' शब्द सुनते ही उनके चेहरे का रंग उतर गया। भावों के स्वप्न-राज्य में वे अभी ब्याह के मण्डप में, भात की चुनरी को ही देख रहे थे, वह कल्पना-राज्य एक झटके में टूट गया और सामने अति क्रुद्ध बाबूजी को देखकर श्रीबंकाजी हक्के-बक्के रह गये। श्रीबंकाजी को लगा कि उन्होंने बाबूजी की बात को ठीक प्रकार से सुना नहीं है अथवा सुनकर भी अपनी नादानी से सही प्रकार से समझा नहीं है। ज्यों ही यह बात उनके मन में आयी, उन्होंने बाबूजी से कहा—समझने में भूल हो गयी।

ऐसा सुनते ही बाबूजी सम हो गये। एकदम सरल शान्त हो गये। उन्होंने सारे कागज दिये। टिकट के लिये रुपये दिये। श्रीबंकाजी ने वस्तुस्थिति को समझा और स्वयं को शीघ्रतापूर्वक सम्भालते हुए, बाबूजी के पास से आकर जल्दी-जल्दी पूजा की, बिस्तर बाँधा तथा स्टेशन की ओर दौड़े। रेलगाड़ी मिल गयी। वे और श्रीसुशीलजी बरौनी के लिए रवाना हो गये। श्रीबंकाजी के मन में अभी भी दुःख था कि बाबूजी उनसे नाराज़ हो गये हैं। वे तन-मन से बाबूजी की सेवा एकमात्र उनकी प्रसन्नता के लिये ही करते थे और उनके जीवनधन, उनके गुरुदेव ही नाराज़ हो जाँय तो भला वे दुःखी कैसे नहीं होंगे? वे खिन्न मन से रेलगाड़ी में चुपचाप बैठे थे।

गाड़ी चलने के बाद श्रीसुशीलजी ने श्रीबंकाजी को एक लिफाफा दिया। लिफाफे पर लिखा था 'सर्वथा व्यक्तिगत' और उसके नीचे लिखा था। 'प्रिय राधेश्याम'। लिफाफा दिया गया था बाबूजी के द्वारा तथा बाबूजी ने सुशीलजी से कहा था—ट्रेन चलने पर ही यह लिफाफा बंका को देना। पहले मत देना।

कुछ आतुरतापूर्वक और कुछ आशंकित होकर श्रीबंकाजी ने वह लिफाफा लिया और उसे खोलकर पत्र निकाला। बाबूजी के हाथ से लिखा गया वह पत्र इस प्रकार था—

प्रिय भैया राधेश्याम,

आशीष, मैंने उस समय आवेश में 'झूठ' शब्द कह दिया। अवश्य ही तुम समझे थे भूल ही, पर उससे बड़ी भूल हुई मुझसे, जो मैंने तुम्हारे प्रति ऐसा अपशब्द कह दिया। क्षमा कैसे माँगू—पर मन में क्षोभ भी हो रहा है, जब तुम्हें उदास देख रहा हूँ और अपना दोष प्रत्यक्ष दीख रहा है। भैया, माफ करना। मैं प्रायश्चित्त तो करूँगा ही। तुम संकोच मत करना।

तुम्हारा अपना ही,
हनुमान

इस पत्र को पढ़कर श्रीबंकाजी रेलगाड़ी में घण्टों रोते रहे। बरौनी में बरातियों के स्वागत सत्कार का कार्य भली प्रकार से पूर्ण करके वे बरातियों के साथ ही गोरखपुर लौटे। ब्याह वाले दिन भात के समय, बाबूजी ने बाई को भात की चूनड़ी उढाई। **मुदित मातु सब सखीं सहेली॥** श्रीबंकाजी का लिखा हुआ गीत, महिलाओं ने मधुर कण्ठ से गाया। सबलोग गीत के मधुर बोल और भावों की प्रशंसा करने लगे। श्रीबंकाजी पण्डाल में, एकदम पीछे की ओर, एक किनारे खड़े होकर चुपचाप गीत सुन रहे थे। तभी बाबूजी उनके पास आये और पीठ पर हाथ रखते हुए कहा—भाई, मुझे माफ कर देना। मैंने कल 'झूठ' शब्द का प्रयोग किया जो मुझे नहीं करना चाहिये था। तुम गलत नहीं थे। मैं ही सुबह की सारी बातें, तुम्हें सब कुछ बताना भूल गया। मुझसे गलती हो गयी।

इतना सुनते ही श्रीबंकाजी तो बाबूजी के चरणों में गिर पड़े और उनके नेत्रों से अश्रुधारा बहने लगी। अवरुद्ध कण्ठ से उन्होंने बस इतना ही कहा—आप यह क्या कह रहे हैं बाबूजी! मैं आपका बालक हूँ, मुझे डाँटने का आपको पूरा अधिकार है। गलती मेरी ही थी। मुझे सब ठीक से समझ लेना चाहिये था।

बाबूजी ने श्रीबंकाजी को उठाकर हृदय से लगा लिया और भात के गीतों की प्रशंसा की। अब सिर्फ श्रीबंकाजी के ही नहीं बाबूजी के नेत्र भी सजल थे।

बाबूजी ने कहा—तुमने भात के बहुत सुन्दर गीत लिखे। विवाह के अवसर पर ऐसे ही गीत होने चाहिये।

अब भावुक हृदय श्रीबंकाजी की स्थिति की कुछ कल्पना कीजिये। बाबूजी ने उनको हृदय से लगाया। श्रीबंकाजी के आनन्द की कोई सीमा नहीं। बाबूजी जैसे रस-सिद्ध-सन्त, जिनके जीवन का एक-एक क्षण श्रीराधामाधव के संग में व्यतीत होता है, ऐसे बाबूजी का आलिंगन पाकर श्रीबंकाजी निहाल हो गये। **नाथ आजु मैं काह न पावा॥**

श्रीबंकाजी कहा करते थे कि एक साधक हो अपनी पूरी शक्ति लगाकर अपने गुरु की आज्ञा का पालन करते रहना चाहिये। जीवन में कोई-न-कोई क्षण ऐसा अवश्य आयेगा कि गुरु प्रसन्न हो जायेंगे और अपने शिष्य को अपना आलिंगन प्रदान करके कृतार्थ कर देंगे। श्रीबंकाजी के जीवन का वह क्षण, आज उपस्थित हो गया। उस रात अपने कक्ष के एकान्त में श्रीबंकाजी के नेत्र अविरल अश्रु बहाते रहे, हृदय गद्-गद् था। **बरनि न जाइ दसा तिन्ह केरी॥** बाबूजी जैसे रस-सिद्ध-सन्त ने उन्हें हृदय से लगाया! इससे बड़ी भगवत्कृपा क्या हो सकती है कि—गुरुदेव शिष्य को हृदय से लगा ले!

****

बाबूजी की विचित्र भावमय स्थिति

बाबूजी के अद्भुत, अद्वितीय, लोकोत्तर व्यक्तित्व की सराहना करने के लिए उत्सुक पूज्य श्रीराधाबाबा ने भावभरे उद्गार व्यक्त करते हुए एक बार कहा था कि—

1. धार्मिक ग्लानि को दूर करने के लिए धर्म-प्रचार का जो कार्य आदि शंकराचार्य, रामानुजाचार्य जैसे आचार्यों द्वारा हुआ,

2. जन-जन के आचार-विचार-व्यवहार को नियंत्रित-सुसंस्कृत करने के लिए, समाज-जीवन सम्बन्धी प्रश्नों पर व्यवस्था देने का जो कार्य मनु-याज्ञवल्क्य जैसे स्मृतिकारों द्वारा हुआ,

3. भक्तों की कोमल भक्ति भावनाओं के तरंगित हो उठने पर भक्तिकाव्य की रचना का जो कार्य तुलसीदास-सूरदास जैसे भक्त कवियों द्वारा हुआ और

4. श्रीराधामाधव के लीला-सिन्धु में नित्य निरन्तर निमग्न रहने के आदर्श की प्रतिष्ठा का जो कार्य मीराबाई-चैतन्य महाप्रभु जैसे रसिकजनों द्वारा हुआ,

इन चारों कार्य-धाराओं के अद्भुत संगम का पावन दर्शन श्रीपोद्दार महाराज के विशाल व्यक्तित्व में होता है। ऐसे महा महिमामय बाबूजी नित्य श्रीबंकाजी के साथ रहते हैं यही सोच-सोच कर वे अपने सौभाग्य पर फूले न समाते थे।

एक दिन की बात है बाबूजी ने श्रीबंकाजी को बुलाया और कहा—आज प्रेस जाना है। प्रेस की मशीनों के लिये छापने की पर्याप्त सामग्री देनी है, और भी कुछ काम है। वहाँ का काम कहीं रुक न जाये। आप भी साथ चलिये। सभी कागज-फाइल ले लीजिए और गाड़ी निकलवाइये।

आज्ञानुसार श्रीबंकाजी प्रेस ले जाने के लिए आवश्यक कागज-फाइल आदि निकालने लगे। ड्राईवर को गाड़ी निकालने की सूचना दे दी। थोड़ी देर में बाबूजी अपने कमरे से बाहर निकले। श्रीबंकाजी अपने केबिन के सामने पहले से तैयार खड़े थे। वे बाबूजी के पीछे-पीछे कोठी की सीढ़ियाँ उतरने लगे। अभी दो-चार सीढ़ी ही उतरे होंगे कि बाबूजी ने रुकते हुए कहा—मुझे कुछ दिखाई नहीं दे रहा।

श्रीबंकाजी कुछ सावधान हो गये, बाबूजी का हाथ पकड़ लिया कि कहीं उन्हें सीढ़ी से उतरने में असुविधा न हो और धीरे से पूछा—आप ठीक हैं न बाबूजी?

बाबूजी ने उत्तर दिया—कुछ सुनाई नहीं दे रहा है।

श्रीबंकाजी ने कहा—आपकी तबियत ठीक न हो तो आज प्रेस मत जाइये।

बाबूजी ने कुछ देर रुककर, प्रयासपूर्वक कहा—प्रेस का काम आज बहुत जरूरी है। अगर आज नहीं गया तो कल छापने की सामग्री नहीं पहुँचेगी और इससे भी जरूरी कुछ बातें करनी है। कई लोग आये हुए हैं। मुझे कार

तक ले चलो। शायद थोड़ी देर में ठीक हो जायेगा, प्रयास कर रहा हूँ।

बाबूजी अर्ध-चेतन-अवस्था में हैं। श्रीबंकाजी बाबूजी का हाथ पकड़ कर बोल रहे हैं—धीरे-धीरे पाँव अगली सीढ़ी पर रखिये। अभी पाँच सीढ़ी और उतरनी है। उतरिये..., अब चलिए। गाड़ी का गेट खोल दिया है, बैठिये। किसी प्रकार से श्रीबंकाजी ने बाबूजी को कार में बैठाया और प्रेस के लिए रवाना हुए। बाबूजी एकदम चुप, निष्कम्प बैठे हुए हैं।

श्रीबंकाजी बाबूजी के बगल में कार में बैठे-बैठे मन-ही-मन सोच रहे हैं—यदि ऐसी ही अर्ध-चेतन-अवस्था रही तो क्या इन्हें प्रेस ले जाना उचित होगा? गाड़ी मोड़ दूँ क्या? वाटिका चलें क्या? या बाबूजी से पूछ लूँ? श्रीबंकाजी के मन में एक साथ कई प्रश्न हैं, पर बाबूजी को स्पर्श करने का साहस नहीं। बाबूजी से कुछ कहने-पूछने का भी साहस नहीं। वे एकटक अपने बाबूजी को देख रहे हैं, नहीं...नहीं.., निहार रहे हैं और बलिहारी जा रहे हैं अपने सौभाग्य पर! ऐसे रस-लीला-दर्शन में डूबे हुए सन्त का मुझे नित्य संग प्राप्त है! जिन आँखों से बाबूजी अभी श्रीप्रिया-प्रियतम की युगल लीला का दर्शन कर रहे हैं, उन्हीं आँखों से कुछ देर बाद मुझे देखेंगे, इससे बड़ा सौभाग्य क्या होगा भला! जाने कौन जन्म के मेरे सुकृत उदय हो गये, जो इस भावमयी स्थिति में मैं इन्हें देख रहा हूँ, इनसे बात कर रहा हूँ , इनको स्पर्श कर रहा हूँ? इसी सौभागय को पाने के लिये तो मैंने अपना घर छोड़ा था! **सफल सकल सुभ साधन साजू। राम तुम्हहि अवलोकत आजू॥**

श्रीबंकाजी इन्हीं भावों में डूबे थे कि तभी गाड़ी का जोर से ब्रेक लगा और जैसे माँ अपने छोटे वच्चे को ब्रेक लगने पर सम्भालती है, ठीक उसी तरह श्रीबंकाजी ने बाबूजी को पकड़ा कि कहीं गाड़ी में गिर न पड़ें। बाबूजी चौंक गये और उन्होंने आँखे खोली। श्रीबंकाजी ने पूछा—बाबूजी, आप कहें तो वाटिका चलें। प्रेस अभी दूर है। अभी गोलघर आया है।

बाबूजी ने अपनी आँखों पर हाथ फेरते हुए कहा—नहीं, अब ठीक लग रहा है। प्रेस का काम आवश्यक है। प्रेस ही चलो।

इस तरह के एक नहीं अनेक प्रसंग 1965-1971 के बीच में श्रीबंकाजी के साथ घटित हुए। कभी बाबूजी के कक्ष में, कभी भोजन के अवसर पर, कभी प्रवचन देते वक्त तो कभी अतिथियों के सामने। श्रीबंकाजी और साथ के अन्य परिकर हमेशा सावधान रहकर बाबूजी को सम्भालते थे।

****

श्रीबंकाजी ने 22.8.1967 की शाम को एक विचित्र दृश्य देखा। खाट पर बैठे बाबूजी कल्याण का प्रूफ देख रहे थे। देखते-देखते वृत्ति अन्तर्मुख हो गई। आँखें कल्याण के प्रूफ पर गड़ी हैं पर दृश्य को आँखें देख नहीं रही हैं। अँगुलियों में कलम है पर निष्कम्प है। इसी समय शहर से श्रीद्वारिकाप्रसादजी जालान, श्रीकन्हैयाप्रसादजी की धर्मपत्नी आदि आये बाबूजी को प्रणाम करने के लिए। सब कमरे में गये, जाकर प्रणाम किया पर प्रणाम को स्वीकार करने वाला वहाँ था नहीं। तभी पण्डित श्रीरामनारायणदासजी शास्त्री आए और श्रीबंकाजी से कहा—देखिए, भाईजी से मिलना चाहता हूँ। आवश्यक काम है।

बाबूजी को घेरकर जालान परिवार जमीन पर बैठा था। श्रीबंकाजी ने जाकर बाबूजी से कहा कि—शास्त्रीजी मिलना चाहते हैं।

बाबूजी से कोई उत्तर नहीं मिला। बाबूजी की बाह्य-मुद्रा से श्रीबंकाजी को ज्ञात हो गया कि वे भाव-समाधि में हैं। उन्होंने आकर शास्त्रीजी से सब बात कह दी। शास्त्रीजी चले गये। फिर जालान परिवार को कमरे से बाहर आने के लिए अनुरोध किया गया। वे सब बाहर चले गये। बाबूजी खाट पर ही बैठे थे।

श्रीबंकाजी को डर था कि कहीं बाबूजी लुढ़ककर गिर न जाँय। बाबूजी की आज्ञा थी कि भाव-समाधि के वक्त माँ के सिवा, कोई भी उनका स्पर्श न करे। वे माँ के पास गये पर माँ सो रही थी अतः नीचे जाकर श्रीकृष्णजी से कहा—ऊपर आकर बाबूजी को सम्भालो। उनके खाट पर से लुढ़क कर गिरने का डर है। श्रीबंकाजी फिर ऊपर आये। तब तक माँ जाग चुकी थी।

श्रीबंकाजी माँ को बुलाकर लाये। माँ ने बाबूजी को खाट पर सुला दिया। फिर कमरे के दरवाजे को बन्द किया गया।

****

बाबूजी के जीवन में 'उधर' शब्द का बड़ा महत्त्व था। बाबूजी कभी नहीं कहते थे कि उनकी वृत्तियाँ श्रीराधामाधव के लीला-रस-सिन्धु में डूब गई थीं। संगोपन प्रिय बाबूजी कहा करते थे कि वृत्तियाँ 'उधर' चली गई थीं। जब उनसे 'उधर' शब्द का अर्थ पूछा जाता था तो वे कहते थे कि 'उधर' का स्वरूप समझा सकना कठिन है।

25.8.1967 को प्रात: बाबूजी ने स्वत: श्रीबंकाजी के सामने बात छेड़ी और अपनी एवं गीताप्रेस की स्थिति के बारे में कहने लगे—पता नहीं आजकल क्या हो गया है, मुझसे काम नहीं होता। काम करना चाहता हूँ पर वृत्तियाँ काम करना स्वीकार नहीं करतीं। अपने कई लोग मेरे पास आते हैं, वे अपनी सुख-दु:ख की बात कहते हैं पर मैं उनको ठीक से सुन नहीं पाता। चाहता हूँ सुनूँ, पर मन जागतिक बातों को पकड़ नहीं पाता। वृत्तियाँ 'उधर' चली जाती हैं फिर उनको ठीक से जवाब नहीं दे पाता। बड़ा भय रहता है कि कहीं गलत उत्तर न दे दूँ। बस यही चाह होती है कि कोई बोले नहीं। कोई मिले नहीं। गीताप्रेस वाले आते हैं, वे राय माँगते हैं, कुछ पूछते हैं पर मैं वह भी ठीक से नहीं कह पाता। विशेषांक का काम अलग पड़ा है। चाहता हूँ कि कोई करके दे दे। रात को लेख देखते-देखते सोता हूँ जिससे कि मन लेखों में लगा रहे और फिर जागते ही लेख देखता हूँ पर यह सब जबरदस्ती करता हूँ। गीताप्रेस का भी काम कैसे होगा? जितने ट्रस्टी हैं, उनमें इतनी रुचि नहीं है। सभी के अपने-अपने प्रश्न हैं, अपनी-अपनी समस्याएँ हैं। वे जितनी रुचि लेते हैं, वही बहुत है। हाँ, एक बिहारीलालजी रुचि लेते हैं, पर उनको ज्ञान नहीं कि क्या-क्या पूर्व प्रकाशित हो चुका है? कल्याण का काम पण्डित श्रीरामनारायण दत्तजी सम्भालते हैं पर आगे कैसे होगा? सेठजी थे, वे सारे साहित्य की जानकारी रखते थे और अब कोई ऐसा है नहीं जिसे सारे प्रकाशित

साहित्य की जानकारी हो या उसमें रुचि हो। श्रीरामनारायण दत्तजी शास्त्री कुछ काम सम्भाल रहे हैं, कुछ उनको सहारा लगा दिया करो।

श्रीबंकाजी ने बाबूजी की आज्ञा को स्वीकार किया और पूरी लगन से श्रीरामनारायण दत्तजी शास्त्री को प्रेस के काम में सहयोग देने लगे।

****

श्रीबंकाजी की जिज्ञासा, बाबूजी का समाधान

श्रीप्रिया-प्रियतम के लीला-राज्य में सर्वथा निमग्न बाबूजी का प्रत्यक्ष जीवन श्रीबंकाजी के लिए एक प्रेरक उदाहरण था। यह उदाहरण उन्होंने किसी पुस्तक में पढ़ा नहीं था अथवा कहीं कथा में सुना नहीं था, अपितु उन्होंने अपनी आँखों से देखा था और वे अकसर सोचा करता थे कि क्या कभी ऐसी स्थिति मेरे जीवन में भी हो सकती है? भले इतनी ऊँची स्थिति न हो, इसके सहस्रांश की उपलब्धि ही हो जाय।

जब-जब पूज्य बाबूजी से उन्होंने एकान्त में बात की, तब-तब उनकी जिज्ञासा बाबूजी की भाव-समाधि के बारे में रहा करती थी। वे पूछा करते थे कि ऐसी अन्तर्मुखता उनके जीवन में कैसे हो सकती है?

बाबूजी हर बार उनको समझाया करते थे, उत्साहित किया करते थे और बतलाया करते थे कि यह हो सकता है और हर एक के जीवन में यह अन्तर्मुखता आविर्भूत हो सकती है, बस, भगवान की कृपा के सहारे उस ओर अग्रसर होने का व्यक्ति प्रयास करें। जो बातें पूज्य बाबूजी ने उनको बतायीं, उससे श्रीबंकाजी को बड़ा सहारा मिला। वे बातें इस प्रकार है-

गोपी प्रेम के आधार पर भगवद्-रस के प्रवाह में बहने के लिए सर्वत्याग का आदर्श सामने रखकर साधना में प्रवृत्त होना चाहिए। किसी सर्वत्यागी, ऐसे गोपीरूप रसमय प्रेमीजन को ही अपना पथ-प्रदर्शक बनाकर आगे बढ़ना चाहिए और सदा यह देखते रहना चाहिए कि—

- **भगवत्-प्रीति बढ़े**

- **भोगो से उपरति हो**
- **भगवान की आत्यन्तिक अखण्ड स्मृति रहे**
- **जगत प्रपंच की विस्मृति हो**
- **उत्तरोत्तर भगवत्-सेवा में प्रवृत्ति हो**
- **स्वसुख वासना की निवृत्ति हो**

यही कसौटी है इस परम पवित्र प्रेम के साधन की। अगर जीवन में यह छः सूत्र लागू हो रहे हैं तो श्रीप्रिया-प्रियतम स्वयं खिंचे चले आयेंगे, साधक के मानस में लीला करने के लिये, उसे अपने आनन्द में डुबा देने के लिये।

****

बाबूजी के दो पद

बाबूजी अपने स्वयं के लिखे पदों को लोगों से बहुत छिपा कर रखते थे। जब उनके द्वारा कुछ पद लिखे जाते तो वे उन्हें श्रीबंकाजी को नकल उतारने के लिए, साफ-साफ अक्षरों में लिखने के लिए दे देते थे। पद रत्नाकर पुस्तक में जो पद लिखे गये हैं, उनमें से बहुत से पदों को प्रथम बार अगर किसी ने पढ़ा, तो वह श्रीबंकाजी ही थे।

एक बार ऐसे ही बाबूजी ने कुछ पद श्रीबंकाजी को नकल उतारने के लिए दिये। श्रीबंकाजी ने पदों को साफ-साफ सुन्दर अक्षरों में उतारा और अगले दिन बाबूजी को वापस करने गये। बाबूजी ने सारे कागज ले लिए। जो स्वयं के लिखे हुये थे वे भी और जो श्रीबंकाजी लिख कर लाये थे वे भी। कुछ क्षण उन सभी कागजों को देखा, फिर स्वलिखित दो पद उन्होंने श्रीबंकाजी को देते हुए कहा—यह तुम रख लो। यह तुम्हारे लिए है।

श्रीबंकाजी उन दो कागजों को बाबूजी के हाथों से लेकर पढ़ने लगे। वे दो पद थे—

(1)

राधा-माधव-जुगल के प्रनमौं पद-जलजात।
बसे रहैं मो मन सदा, रहै हरष उमगात॥

हरौ कुमति सबही तुरत, करौ सुमति कौ दान।
जातें नित लागौ रहै तुव पद-कमलनि ध्यान॥

राधा-माधव! करौ मोहि निज किंकरी स्वीकार।
सब तजि नित सेवा करौं, जानि सार कौ सार॥

राधा-माधव! जानि मोहि निज जन अति मति-हीन।
सहज कृपा तैं करौ नित निज सेवा में लीन॥

राधा-माधव! भरौ तुम मेरे जीवन माँझ।
या सुख तैं फूल्यौ फिरौं, भूलि भोर अरु साँझ॥

तन-मन-मति सब में सदा लखौं तिहारौ रूप।
मगन भयौ सेवौं सदा पद-रज परम अनूप॥

राधा-माधव-चरण रति-रस के पारावार।
बूड्यौ, नहिं निकसौं कबहुँ पुनि बाहिर संसार॥

(2)

हे राधा-माधव! तुम दोनों दो मुझको चरणों में स्थान।
दासी मुझे बनाकर रक्खो, सेवा का अवसर दो दान॥

मैं अति मूढ़, चाकरी की चतुराई का न तनिक-सा ज्ञान।
दीन नवीन सेविका पर दो समुद उँडेल सनेह अमान॥

रजकण सरस चरण-कमलों का खो देगा सारा अज्ञान।
ज्योतिमयी रसमयी सेविका मैं बन जाऊँगी सज्ञान॥

राधा-सखी-मंजरी को रख सम्मुख मैं आदर्श महान।
हो पदानुगत उसके, नित्य करूँगी मैं सेवा सविधान॥

झाड़ू दूँगी मैं निकुंज में, साफ करूँगी पादत्रान।
हौले-हौले हवा करूँगी सुखद व्यजन ले सुरभित आन॥

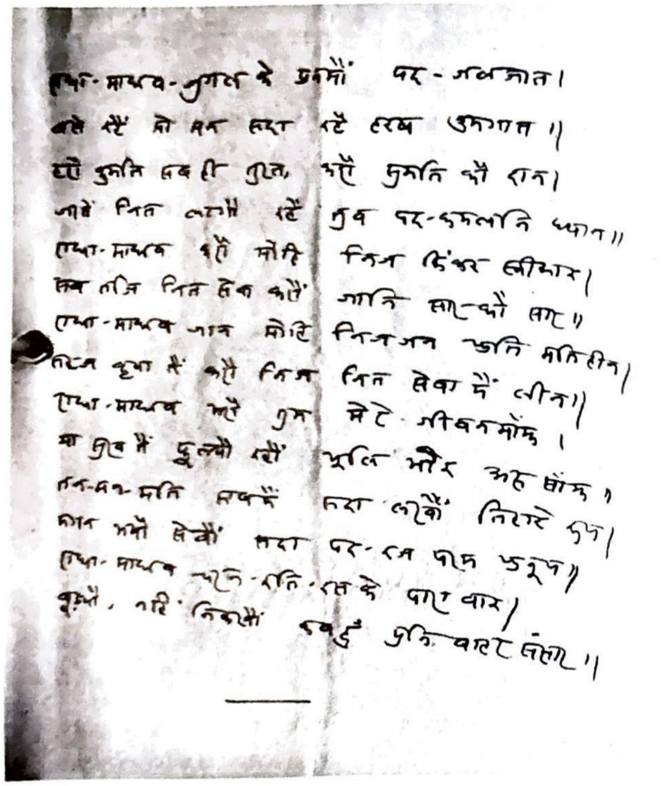

परम पूज्य रस सिद्ध संत श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार ने अतिशय कृपा करते हुए दो पद स्वयं लिखकर, श्रीबंकाजी को प्रदान किये जिसमें मधुर भाव की साधना का सम्पूर्ण वर्णन है।

पद रत्नाकर पद संख्या ३५

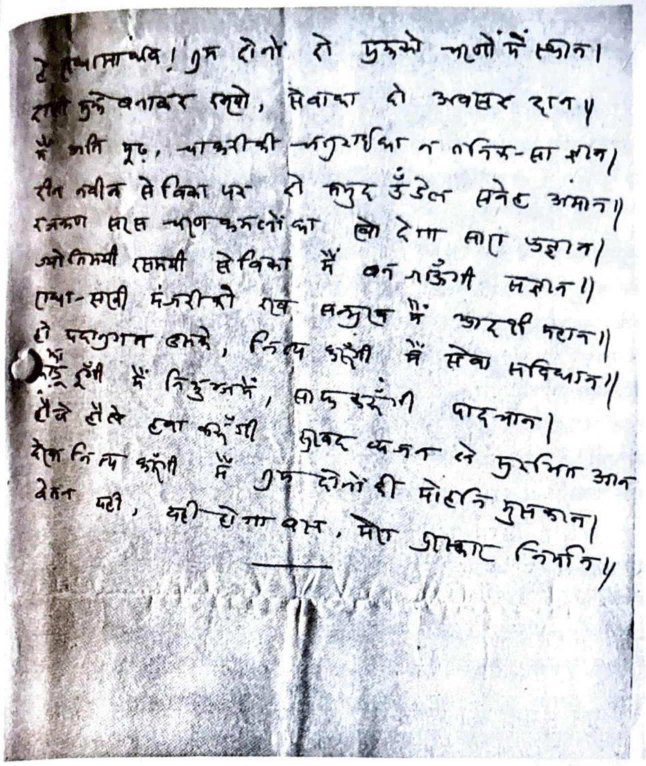

परम पूज्य रस सिद्ध संत श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार ने अतिशय कृपा करते हुए दो पद स्वयं लिखकर, श्रीबंकाजी को प्रदान किये जिसमें मधुर भाव की साधना का सम्पूर्ण वर्णन है।

पद रत्नाकर पद संख्या ४२

देखा नित्य करूँगी मैं तुम दोनों की मोहनि मुसकान।
वेतन यही, यही होगा बस, मेरा पुरस्कार निर्मान॥

बाबूजी ने अपनी कृपा वर्षिणी दृष्टि से श्रीबंकाजी की ओर देखते हुए कहा—तुम अक्सर भाव-समाधि और मधुर-रस की उपासना के बारे में पूछा करते हो। ये दो पद तुम्हारे लिये लिखे हैं, इनके अनुसार साधना करो।

श्रीबंकाजी ने बाबूजी के श्रीचरणों में प्रणाम किया और उन पदों को लेकर अपने केबिन में आ गये। बाबूजी द्वारा लिखित उन दो पदों को बहुत देर तक वे पढ़ते रहे, बार-बार पढ़ते रहे और मन-ही-मन सोचते रहे—कैसी सहजता से बाबूजी ने उन्हें गोपी-प्रेम की सम्पूर्ण पद्धति लिख कर दे दी है। श्रीराधामाधव की कौन-सी सेवा करनी है, किस भाव से सेवा करनी है, जीवन में कैसा समर्पण हो, सब कुछ मात्र दो पदों में बाबूजी ने समझा दिया। यह दोनों पद श्रीबंकाजी के जीवन के हार बन गये। उन्होंने इसी भाव से आजीवन साधना की और बाबूजी की कृपा से सखी-भाव की प्राप्ति की। **सबु पायउँ रज पावनि पूजें॥**

बाबूजी की पुस्तक श्रीराधामाधव चिन्तन में उन्होंने बताया है कि नवीन साधक को गोपी-भाव की उपासना किसी सखी-मंजरी के आनुगत्य में करनी चाहिये। यही भाव इन दोनों पदों में भी है। श्रीबंकाजी की डायरी में एक मधुर कविता इसी काल की है जो सखी-आनुगत्य-गोपी के भाव को बहुत खूबसूरती से दर्शाती है। यह कविता श्रीबंकाजी को अत्याधिक प्रिय थी।

इन सुमनों की शुचि ढ़ेरी में, क्या मेरा फूल मिला लोगी

इन सुमनों की शुचि ढ़ेरी में, क्या मेरा फूल मिला लोगी ?
है नम्र निवेदन यह मेरा, स्वीकार इसे क्या कर लोगी ?

सौभाग्य कहाँ मेरा इतना, मेरी माला वे पहन सके ?
मैं सोच नहीं सकती ऐसा, उनके कर तल तक पहुँच सके।
जब हार पिरोने बैठो तुम, क्या मेरा फूल पिरो लोगी ?
है नम्र निवेदन यह मेरा, स्वीकार इसे क्या कर लोगी ?

अपने भावों के गीतों को, मैं सुना सकूँ, अधिकार नहीं।
हो भले उमड़ती अभिलाषा, पर जा सकती हूँ पास नहीं॥
जब गीत सुनाओ तुम उनको, क्या मेरा गीत सुना दोगी ?
है नम्र निवेदन यह मेरा, स्वीकार इसे क्या कर लोगी ?

मधुस्वप्न सँजोयी थी मन में, उनकी सेवा का पूजा का।
मन की मन में ही रही और, उपहास मिला उलटा जग का॥
जो बनते-बनते बिगड़ गयी, क्या मेरी बात बना दोगी ?
है नम्र निवेदन यह मेरा, स्वीकार इसे क्या कर लोगी ?

लायी कुछ फूल चढ़ाने पर, विधि ने की है मुझसे छलना।
मैं चढ़ न सकी, ना चढ़ा सकी, उन अमल चरण पर मैं मलिना॥
जब सुमन चढ़ावो चरणों पर, क्या मेरा फूल चढ़ा दोगी ?
है नम्र निवेदन यह मेरा, स्वीकार इसे क्या कर लोगी ?

24.09.1970

****

बिल्ली के बच्चे की क्रीड़ा

सन् 1962 की बात है। दिन के तीन या चार बजे होंगे। पूज्य बाबूजी की निजी पारिभाषिक शब्दावली के अनुसार उनका '**माथा खराब**' हो गया था। '**माथा खराब**' होना बाबूजी की एक विशिष्ट शब्दावली है, जिसका अर्थ है बाह्य-ज्ञान का अभाव और पूर्ण अन्तर्मुखता। इसी '**माता खराबी**' की स्थिति में बाबूजी को लघुशंका का वेग हुआ। बाबूजी कमरे से बाहर निकले। लघुशंका कर चुकने के बाद स्थिति की प्रगाढ़ता और अधिक हो जाने के कारण वे कमरे में वापस नहीं लौट सके। छत पर एक कम्बल पड़ा था। उसी पर बिना हाथ धोए हुए वे बैठ गये। अब, फिर हो गये लीला में लीन।

तभी एक बिल्ली का छोटा-सा बच्चा आया और बाबूजी के चक्कर देने लगा। चक्कर के स्थान पर परिक्रमा कहना अधिक उपयुक्त होगा। जब वह बचिया परिक्रमा दे रहा था, तभी उसकी पूँछ से बाबूजी के घुटने का स्पर्श

हुआ। बाबूजी बहुत हल्के से प्रकम्पित हुए, पर फिर अपनी 'लीला' में लीन हो गये। परिक्रमा देत-देते बचिया उनकी गोद में कूदकर चढ़ गया। बाबूजी अब स्पर्श-ज्ञान से भी ऊपर उठ गये। बिल्ली के बच्चे के गोद में आने का बाबूजी को कोई भान नहीं। बचिया फिर कूदकर जमीन पर आ गया। चढ़ने-उतरने और परिक्रमा देने का उसका क्रीड़ा-विनोद चलता रहा। बाबूजी को इन सब का कुछ ज्ञान नहीं। बाबूजी लीला-चिन्तन में तल्लीन रहे।

यह सब देख रही थीं आदरणीया श्रीकमलीबाई बागला। यह मात्र संयोग है कि इस दिव्य दृश्य को देखने का सौभाग्य उन्हें मिला। वे तुरन्त श्रीबंकाजी के पास उनके केबिन में पहुँचीं और उन्हें बुला लाईं। इस दृश्य को देखकर श्रीबंकाजी को रोमांच हो आया। वे बच्चे के भाग्य की सराहना करने लगे। मधुर लीला-चिन्तन में लीन सन्त के दर्शन होना ही बड़ी बात है, पर यह बच्चा तो इनकी गोद में खेल रहा है, बिल्कुल निर्भय होकर खेल रहा है। बाबूजी की समाधि जैसी स्थिति देखकर श्रीबंकाजी को बड़ा आश्चर्य होने लगा। उनके तन-मन में पुलकन व्याप्त हो गई। वे वहीं खड़े-खड़े एकटक बाबूजी को निहारने लगे। उनकी स्थिति ऐसी थी मानो आज जीवन धारण करने का फल प्राप्त हो गया। **पाइ नयन फलु होहिं सुखारी॥**

श्रीकमलीबाई से रहा नहीं गया। वे माँ को बुलाने के लिये नीचे दौड़ीं। माँ घर का काम कर रही थीं। कमलीबाई ने कहा—माँ तू ऊपर चल।

माँ—क्यों, क्या बात है?

कमली बाई ने माँ का हाथ पकड़ते हुए कहा—तू चल मेरे साथ। देर से चलने से क्या लाभ जब वह देखने वाली चीज ही ना रहे।

कमली बाई के साथ माँ ऊपर आईं। सीढ़ियों पर चढ़ते-चढ़ते माँ को उस दृश्य की सारी बात कमलीबाई ने धीरे-धीरे सुना दी। ज्यों ही अन्तिम सीढ़ी आई, कमली बाई ने इशारा किया—अब माँ, इससे आगे न जाओ। यहीं से खड़ी होकर देखो।

माँ ने वहीं से खड़े-खड़े वह दृश्य देखा। अभी भी उस बच्चे का क्रीड़ा-

विनोद चल रहा था। माँ, गोद में चढ़ना-उतरना और परिक्रमा देने का यह दृश्य बहुत देर तक खड़ी-खड़ी देखती रहीं और मुस्कुराती रही। बिल्ली के बच्चे को देखकर वे उसके भाग्य की सराहना करने लगी। तब तक बाबूजी के चेहरे पर सूरज की धूप पड़ने लगी थी। धूप को देखकर माँ के अन्तर का ममत्व जागा। उन्होंने जाकर धीरे से बाबूजी से कहा—यहीं पर बैठे रहेंगे क्या? अब उठ जाईये।

बाबूजी थोड़े बहिर्मुखी हुए और पूछा—क्या?

माँ ने बाबूजी को कमरे में चलने के लिए कहा। बाबूजी उसी 'माथा खराबी' की स्थिति में उठकर जाने लगे। कमलीबाई ने कहा—बाबूजी लघुशंका करके आए हैं। अभी हाथ नहीं धोये हैं। कमली बाई के कहने पर माँ ने बाबूजी का हाथ धुलवाया। फिर कमरे में जाकर बाबूजी ने दरवाजा बन्द कर लिया।

****

माथा खराबी

जीवन के उत्तर काल में बाबूजी प्रायः 'माथा खराबी' की स्थिति में रहा करते थे और उस स्थिति में बाबूजी को सँभालना और उनके कमरे की चौकसी करना, यह सब उनके परिकर और माँ करती थीं। 17 अप्रैल 1967 को हिसाब जोड़ते-जोड़ते ही बाबूजी अन्तर्मुख हो गये थे। तब माँ ने ही डेस्क के पास से उठाकर बाबूजी को सुलाया था।

18 अप्रैल को सबेरे श्रीबंकाजी और वाटिका के कई लोग बाबूजी के पास उपस्थित थे। कोई बैठा था, कोई खड़ा था, तभी माँ ने सब लोगों से कहा—अरे, तुम लोग इतने जने हो, थोड़ा ख्याल रखा करो। आजकल इनका (बाबूजी का) माथा ठीक रहता नहीं। तुम लोगों को थोड़ी सँभाल रखनी चाहिये कि कहीं बिना पत्र का लिफाफा पोस्ट न कर दें, लिफाफे में गलत चिट्ठी न डाल दें, लिफाफे पर गलत पता न कर दें। कल की ही बात है कि लिफाफे पर लिखना चाहिये था जज साहब का नाम श्रीरामप्रसादजी दीक्षित,

पर ये लिख गये श्रीरामप्रसादजी अवस्थी। इन भूलों को तो तुम लोग भी ठीक कर सकते हो।

फिर मीठा विनोद करते हुए माँ ने कहा—आजकल तो ये हमेशा आधे पागल, आधी समाधि में ही रहते हैं।

बाबूजी थोड़ा मुसकुरा पड़े। वाटिका के लोगों ने माँ को आश्वासन दिया। उसी समय बाबूजी को कहीं जाना था। डेस्क में ताला बन्द करने के लिये ताला खोजने लगे, पर मिला नहीं। डेस्क पर ही एक ताला पड़ा था। उस ताले की ओर इशारा करके श्रीबंकाजी ने कहा—यह ताला पड़ा तो है।

बाबूजी ने पहले तो सहज ढंग से कहा—यह वह ताला नहीं। वह तो दूसरा ताला है।

फिर विनोद करते हुए उन्होंने कहा—मुझे सचमुच पागल समझ लिया है क्या? मैं पागल कहाँ हूँ? यदि पागल होता तो दूसरा वाला ताला क्यों खोजता?

बाबूजी के इस विनोद पर श्रीबंकाजी समेत सभी लोग खिलखिलाकर हँस पड़े।

****

भावसमाधि का पूर्वाभास

गीतावाटिका में प्रतिदिन नौ बजे प्रात:काल बाबूजी का सत्संग होता था। प्रवचन में प्राय: भाव-जगत की चर्चा रहा करती थी। 17 मार्च 1967 के दिन नीचे पण्डाल में श्रोता लोग बाबूजी की प्रतीक्षा कर रहे थे, पर ऊपर कमरे में बाबूजी का दूसरा ही समाचार था। 'माथा खराब' होने के पूर्वाभास लक्षित होने लग गये।

बाबूजी की स्मृति ठीक से काम नहीं कर रही थी। किसी को कोई आवश्यक काम समझाना था, किसे समझाना था और क्या समझाना था, यह ठीक प्रकार से याद नहीं आ रहा था। वहाँ पर माँ बैठी थी। वे एक-एक करके सभी लोगों के नाम लेने लगी कृष्णा, हरि, दूलीचन्द, रामसनेही, बंका।

बंका का नाम लेते ही बाबूजी को स्मरण आ गया। बाबूजी ने कहा—हाँ, बंका को जल्दी बुलाओ। मुझे दरवाजा बन्द करना है।

श्रीबंकाजी को जल्दी बुलाया गया। बाबूजी ने उन्हें कुछ अटकती जबान में समझाया—गोरखपुर विश्वविद्यालय के शिक्षा विभाग (Department of Education) के प्रमुख का निमंत्रण आया है। शिक्षा परिषद के लिए आज का दिन वर्ष का अन्तिम दिवस है। इसके समापन समारोह के अवसर पर मुझे भाषण देने के लिए बुलाया था। मेरा माथा ठीक प्रकार से काम नहीं कर रहा है। पता नहीं, मेरा जाना हो सकेगा या नहीं। यदि ठीक रहा तो जाने का विचार है। मेरी इस विवशता का जाकर उनसे निवेदन कर दो। देखना, कहीं उनसे कहने में भूल न हो।

अपने सामाजिक कार्यों के लिए बाबूजी की इतनी अधिक सतर्कता और सचेष्टता से श्रीबंकाजी बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने कहा—मैं जाकर अवश्य कह दूँगा। आप चिन्ता न करें।

आश्वस्त होकर बाबूजी ने कहा—अब आप सभी लोग बाहर जाएँ। कमरे का दरवाजा बन्द करूँगा।

सब बाहर आ गये, परन्तु माँ दरवाजे के पास कमरे के अन्दर खड़ी रही। बाबूजी दरवाजे के पास दरवाजा बन्द करने की तैयारी में खड़े थे और वे सभी को जल्दी से बाहर निकलने के लिये कह रहे थे। माँ ने कहा—आप कमरा अन्दर से बन्द न करें। मैं बाहर से ताला बन्द कर दूँगी। फिर कोई भी अन्दर नहीं जा सकेगा।

माँ के मन में भय था कि कहीं एक ही स्थिति में लगातार बैठे न रहे अथवा कम्बल या ऊनी चादर को ओढ़े बिना ही न लेटे रहें अथवा भोजन के समय पर दरवाजा न खोलें अथवा बिना जल लिए घण्टों न निकाल दें। इन आशंकाओं से प्रेरित होकर माँ ने चाहा था कि चुपचाप बीच में सम्भाल लिया करूँगी, पर माँ का प्रस्ताव बाबूजी को स्वीकार नहीं। बाबूजी ने कहा—नहीं, नहीं, मैं अन्दर से कमरा बन्द करूँगा। जल्दी बाहर जाओ।

अन्त में माँ को ही बाबूजी की बात स्वीकार करनी पड़ी। माँ के कमरे से बाहर आते ही बाबूजी ने कमरे का दरवाजा बन्द कर लिया। बाहर खड़े हुए श्रीबंकाजी और अनेक व्यक्ति दरवाजे का बन्द होना मूक और उत्सुक नेत्रों से देख रहे थे।

श्रीबंकाजी भी देख रहे थे और सोच रहे थे—ऐसी यह कौन सी विचित्र स्थिति है कि देखना-सुनना-बोलना स्वत: बन्द हो जाता है ? अभी दिख रहा है, पर समाधि की प्रगाढ़ता के आने पर, न कुछ दिखाई देगा और न कुछ सुनाई देगा। नेत्र खुले हैं, पर जगत के दृश्य नेत्र देख नहीं पाते। हमारे शब्द उनके कानों में पड़ते हैं, परन्तु वहाँ ग्रहण नहीं होते। मुख में जीभ भले ही है, पर हिल नहीं पाती। इस अन्तर्मुखता पर कोटि-कोटि मुखरता, कोटि-कोटि व्याख्यान बलिहारी है। **बचन अगोचर सुखु अनुभवहीं॥**

श्रीबंकाजी के जीवन में ऐसा एक नहीं अनेकों बार हुआ। हर बार बाबूजी की भावमयी स्थिति को देखकर वे आश्चर्यचकित हो जाते। वे छत पर कुछ देर मौन खड़े रहे और यही सोच रहे थे—मन का यह कौन सा स्तर है कि हम मन को भगवल्लीला-चिन्तन में लगाना चाहते हैं, पर लगता नहीं और बाबूजी 'उधर' से मन को हटाना चाहते हैं, पर हटता नहीं।

पता नहीं कुछ रात-दिवस का, पता नहीं कब संध्या भोर।
जाग्रत-स्वप्न दिखायी देता, श्याम सदा मेरा चितचोर॥

****

बाबूजी का सामीप्य

प्रिया-प्रियतम श्रीराधामाधव की दिव्य मधुर लीलाओं में आशिख निमग्न, रस-सिद्ध-सन्त बाबूजी के जीवन के उत्तर-काल में, जिस महा भावमयी स्थिति के दर्शन होते हैं, वह दिव्य एवं मधुर लीला-रस-सागर में सतत तल्लीन हृदय की, परम लोकोत्तर दशा है। उस लोकोत्तर दशा को देख-देखकर श्रीबंकाजी का मन क्षणे-क्षणे विस्मित होता है और पदे-पदे विलुब्ध होता है।

नगर के एक व्यक्ति को देखकर बाबूजी कार से वापस आ रहे थे, पर कार में ही उनकी वृत्ति ने शारीरिक धरातल छोड़ दिया और वे समाधिस्थ हो

गये। गीतावाटिका में श्रद्धालु भक्तों के सामने बाबूजी प्रवचन दे रहे थे और अपने कमरे के एकान्त से निकल करके, समुदाय के मध्य बैठे हुए प्रवचन इसलिए दे रहे थे कि वृत्ति जागतिक धरातल पर टिकी रहे, पर प्रवचन देते-देते बाबूजी समाधिस्थ हो गये। श्रोता समूह ऐसे भाव-समाधि में डूबे बाबूजी को बहुत देर तक एकटक निहारता रहा। बाबूजी शौचालय से आकर मिट्टी से हाथ धो रहे थे, धोते-धोते शरीर की विस्मृति हो गई और वृत्तियाँ लीला-राज्य में विहरण करने लग गयीं। हाथ धोने की क्रिया में विराम आ गया। न जाने कितनी देर बाद यह कार्य पूर्ण हुआ। एक बार बाबूजी छत पर टहल रहे थे, पर टहलते-टहलते मूर्तिवत् खड़े हो गये। खड़े हो गये इसलिए की वृत्ति 'उधर' चली गई थी और तत्क्षण निकटवर्ती जनों को उनके निश्चेष्ट शरीर की सम्भाल के लिए तत्पर हो जाना पड़ा। कमरे में बाबूजी बैठे-बैठे लेखों का संशोधन-सम्पादन कर रहे थे कि लेखनी अंगुलियों से छूट कर नीचे गिर पड़ी और उनकी वृत्तियाँ पहुँच गई दिव्य-लीला-राज्य में। बाबूजी एक लम्बी अवधि के लिए भाव-समाधि में लीन हो गये। बाबूजी की यह दिव्य लोकोत्तर स्थिति लोक-चक्षु से सर्वथा अतीत है तथा साधारण व्यक्ति के मन-बुद्धि-चित्त से सर्वदा परे के स्तर की है। प्राकृतिक बुद्धि उस अप्राकृतिक स्थिति का स्पर्श कर नहीं पाती। ऐसी लीला श्रीबंकाजी प्रतिदिन देखा करते थे।

सन् 1970 का प्रसंग है। पूज्य बाबूजी अक्सर अपने मन की बात और कठिनाइयाँ श्रीबंकाजी से कहा करते थे। एक बार श्रीबंकाजी किसी काम के सिलसिले में, कुछ पूछने बाबूजी के कक्ष में गये। बाबूजी अपनी डेस्क के सामने, हाथों में कागज़ लेकर बैठे थे पर उनको देखकर लग रहा था कि उन्हें पूर्ण चेतना नहीं है। श्रीबंकाजी उनके सामने बैठ गये। उस वक्त और कोई कमरे में नहीं था। बाबूजी अकेले बैठे थे।

पहले तो बाबूजी चुपचाप बैठे रहे फिर श्रीबंकाजी को देखा, फिर कुछ क्षण बाद बाबूजी ने प्रयासपूर्वक कहना आरम्भ किया—मैं बोलना चाहता हूँ , मैं काम करना चाहता हूँ , पर यह जो आजकल हो रहा है, मैं नहीं चाहता कि यह हो। मेरे काम में हर्ज पहुँचता है। अब यह क्या हो जाता है, उसको

बताने के लिए कोई शब्द नहीं। बोलना चाहता हूँ , पर बोल नहीं सकता। अगर यह स्थिति दो-तीन दिन तक लगातार रह जाये तो शरीर का पतन हो जायेगा। कुछ क्षण मौन रहकर फिर बाबूजी ने कहा—बीच में कुछ कम हुआ था, अब इन दिनों में ज्यादा बढ़ गया है। अब तो बड़ी कठिनाई से उस वृत्ति को 'वहाँ' से उतारना पड़ता है। बड़ी कठिनता होती है। अभी-अभी सवेरे होने लगा उसी तरह से। नीचे इसलिए आया कि यह वृत्ति न रहे। 'माथा ठीक' हो जाए तो कुछ काम करें।

थोड़ी देर तक अस्पष्ट लड़खड़ाती भाषा में बाबूजी कुछ बोलते रहे जो समझा नहीं जा सकता था। फिर बोले—इस दृश्य जगत का सब तरह से अभाव हो जाता है। न तो इंद्रियाँ उसे ग्रहण करती है और न मन ग्रहण करता है। कुछ देर मौन रहने के बाद बाबूजी फिर बोले—हमारा जो जप है न जप, कल दिन में तो पूरा कर नहीं पाया। तो रात को करने का प्रयास किया, करते-करते नींद आ गयी। माला हाथ से छूट गई। संख्या पूरी करनी है न। फिर सवेरे जागा, जल्दी जागकर माला की संख्या पूरा किया। पूरा तो किया, पर उसके बाद फिर दिमाग 'खराब' होने लगा। काम फिर हो नहीं पाया। इसके बाद संध्या करने बैठा, पर संध्या करते-करते संध्या छूट गई। जब ठीक हुआ, तो फिर संध्या की। फिर उसमें देर लग गई। ऐसी अव्यवस्थित स्थिति हो रही है। कामकाज के लिए कोई आता है तो भूल जाता हूँ। लोगों के नाम भूल जाता हूँ , उनके घर वालों को भूल जाता हूँ , कई बार याद नहीं रहता कौन है, क्या है? क्या काम था, भूल जाता हूँ। अभी तुम आये तो तुम्हारा नाम भी भूल गया। तुमसे बात इसलिये कर रहा हूँ कि माथा कुछ ठीक हो जाये।

श्रीबंकाजी को लगा कि आज तो एक प्रकार से मैं प्रत्यक्ष भगवान के ही दर्शन कर रहा हूँ और भगवान से ही बात कर रहा हूँ। ऐसा अवसर कहाँ मिलता है कि भगवान के ध्यान में डूबे सन्त के संग का इस प्रकार से अवसर मिले? **को सुकृति हम सरिस बिसेषी ॥**

बाबूजी कुछ क्षण मौन रहे और फिर जल्दी से खड़े होते हुए कहा—तुम बाहर जाओ, मुझे कमरा बन्द करना है।

बाबूजी ने कमरे का दरवाजा बन्द कर लिया। लगभग एक घण्टा बाद

फिर दरवाजा खोला। खोला लघुशंका के लिए। श्रीबंकाजी अपने केबिन में काम कर रहे थे। दरवाजा खुलने की आहट मिलते ही वे बाबूजी के कमरे की ओर गये। उन्होंने देखा कि बाबूजी कमरे से बाहर निकल रहे हैं। श्रीबंकाजी ने पूछा—क्यों, अब ठीक है क्या?

बाबूजी ने बतलाया—अब तो एकदम ठीक है। जब वृत्ति अपने आप उतर आती है, तब तो कोई बात नहीं। यदि वृत्ति को उतारने का प्रयत्न किया जाता है, वृत्ति के साथ जबरदस्ती की जाती है, तो होता यह है कि वृत्ति उतरती तो है नहीं, वह किसी एक स्थान पर अटक जाती है। आज भी ऐसा ही हुआ था। अब ठीक है।

****

बाबूजी का लीला प्रवेश

बाबूजी अपने जीवन के उत्तरकाल में चाहा करते थे कि 'अहं' की नितान्त विस्मृति न हो। यदि 'अहं' की स्मृति बनी रह सके तो उत्तम है, जिससे जागतिक-व्यवहारिक दायित्वों का निर्वाह हो सके। ऐसी चाह होने के बाद भी उनके शारीरिक-लौकिक कार्य-व्यवहार सम्पन्न नहीं हो पाते थे क्योंकि अब यह उनके बस की बात नहीं रह गई थी।

साधक-साधु-सिद्ध चाहा करते हैं कि उपास्य की सरस स्मृति में सदा निरन्तरता बनी रहे और बाबूजी चाहते थे कि उनकी सघन स्मृति में किंचित विराम आये। बाबूजी के मन में विराम की यह अभिलाषा साधारण नहीं, प्रबल हुआ करती थी। विराम कि यह अभिलाषा भले कितनी ही प्रबल हो, पर न चाहते हुए भी जहाँ-तहाँ लीला-रस-सिन्धु में गहन निमग्नता वाली गम्भीर अन्तर्मुखी स्थिति आविर्भूत हो ही जाया करती थी।

सन 1969 के अप्रैल मास में बाबूजी के उदर में बेहद दर्द आरम्भ हुआ। तब किसी को भी यह अनुमान नहीं हो पाया कि इस उदर शूल के रूप में कैंसर ही अपना जाल फैला रहा है। अनुमान तो एक डेढ़ साल बाद हो पाया। कैंसर रोग ही बाबूजी की जीवन लीला के लिए विघातक सिद्ध हुआ। बाबूजी

की रुग्णता को देखकर स्वास्थ्य लाभ के लिए बाबा ने, परिवार के निजी जनों ने तथा सभी आत्मीय जनों ने चिकित्सा परिचर्या के रूप में क्या-क्या नहीं किया, पर इस व्याधि के समक्ष सारे प्रयास असफल ही रहे।

भीषण कष्ट के समय भी बाबूजी का नाम-जप और लीला-चिन्तन निरन्तर जारी रहा। कोई भी उनसे मिलने आता तो वे मन्द मुसकुराते हुए यही कहते कि—कष्ट के रूप में मंगलमय भगवान ही आये हैं। भगवान का हर विधान मंगलमय होता है।

निधन के सात दिन पहले बाबूजी की स्थिति नाजुक हो गई थी और ऐसा लगने लगा कि शायद वे अपने पांचभौतिक कलेवर का परित्याग कर देंगे। इस सम्भावना से सभी पारिवारिक जन अत्यधिक विकल थे। बाबूजी ने 22 मार्च 1971 को महाप्रयाण किया था। स्नानादि विविध कृतियों की सम्पन्नता के उपरान्त बाबूजी की पार्थिव देह को अर्थी पर विराजित किया गया और अंत्येष्टि क्रिया गीतावाटिका के गिरिराज परिसर में पूर्ण हुई। हजारों की संख्या में जनसमूह गीतावाटिका में एकत्रित था। सबके नेत्र बरस रहे थे। **सुनि बिलाप दुखहू दुखु लागा॥**

श्रीबंकाजी को तो लगा कि उनके गुरुदेव, उनके पिता, उनके मार्गदर्शक, उनके बहि-प्राण, उनके एकमात्र सहारे, उनके अपने से भी अपने बाबूजी चले गये। उनका हृदय चीत्कार कर रहा था, दु:ख और क्रन्दन की कोई सीमा नहीं थी। **बिरहु बिषादु बरनि नहीं जाई॥**

****

बाबूजी पर तीन पुस्तकें

सन् 1971 में पूज्य बाबूजी के नित्य-लीला-लीन होने के बाद श्रीबंकाजी का उनके साथ प्रतिदिन का प्रत्यक्ष सम्पर्क नहीं रह गया अत: वे अत्यधिक दु:खी रहने लगे। उनके नेत्र सजल रहते और हृदय विगलित रहता। जैसा प्रेम और समर्पण उनका बाबूजी के प्रति था, वैसा भाव किसी भी अन्य व्यक्ति के लिये उनके मन में नहीं था। बाबूजी मानो उनके बहिर-प्राण ही थे। उनके जाने के बाद श्रीबंकाजी का गीताप्रेस के कामों में भी मन नहीं लगता था।

जब भी वे अपने केबिन में जाकर काम करने बैठते, कोई भी फाईल-रजिस्टर निकालते, उन्हें बाबूजी की याद आने लगती। कोई पुरानी बात, कोई संस्मरण याद आ जाता और श्रीबंकाजी विकल हो जाते। बाबूजी के सूने कमरे को देखकर, उनकी सूनी डेस्क को देखकर अश्रु बहाते रहते। उनसे सारे-सारे दिन में एक काम न होता। **मिटा मोदु मन भए मलीने। बिधि निधि दीन्ह लेत जनु छीने॥**

एक तो श्रीबंकाजी इतने दु:खी थे ऊपर से कुछ लोग वहाँ ऐसे थे जो नहीं चाहते थे कि अब श्रीबंकाजी गीतावाटिका में रहें। वे लोग तो प्रारम्भ से ही नहीं चाहते थे कि श्रीबंकाजी वहाँ रहें पर बाबूजी के सामने किसी की बोलने की हिम्मत नहीं थी अत: श्रीबंकाजी बाबूजी के घर के सदस्य की भाँति रहा करते थे। अब बाबूजी के जाने के उपरान्त उन लोगों ने हर प्रकार से कोशिश की जिससे श्रीबंकाजी गीतावाटिका छोड़कर चले जायें। परिस्थिति इतनी विपरीत हो गयी जिसकी कोई सीमा नहीं थी।

परिस्थितियों की जटिलता, विचार-लहरियों के घात-प्रतिघात, हृदयस्थ मान्यताओं तथा वृत्तियों के संघर्ष के कारण उठने वाले धूल-धक्कड़ में श्रीबंकाजी को मार्ग दीखना कठिन हो गया। साधना-मार्ग को अवरुद्ध होते देखकर उन्हें निराशा ने आ घेरा। दिग्भ्रान्ति होने लगी। ऐसी विषम परिस्थिति में श्रीबंकाजी को इस प्रबल झंझावात से उबारने के लिए भगवत्कृपा शक्ति ने उनकी जीवन नौका की पतवार अपने हाथों में ले ली।

श्रीबंकाजी की पूज्य श्रीराधाबाबा में अत्यधिक श्रद्धा थी पर क्योंकि श्रीबंकाजी हर समय बाबूजी के साथ ही रहा करते थे इसलिये उनकी बाबा से निकटता अभी नहीं थी। बाबा में अत्यधिक श्रद्धा होने का भी एक विशेष कारण था। एक बार श्रीराधाबाबा काष्ठ-मौन व्रत लेने वाले थे। काष्ठ-मौन व्रत लेने के ठीक पहले, मध्य रात्रि के समय, बाबूजी ने अपने प्रवचन में बाबा के बारे में स्वयं कहा था कि—

एक होता है रस-मार्ग और दूसरा ज्ञान-मार्ग। दोनों मार्गों में तत्वज्ञान

अपेक्षित है। रस-मार्ग का सिद्ध पुरुष तत्वज्ञान से रहित नहीं होता और तत्व ज्ञानी में तत्वज्ञान रहता ही है, रस चाहे ना हो। बाबा का काष्ठ मौन केवल तत्वज्ञान में स्थितिजनित पंचम भूमिकावाला नहीं, क्रिया के अभाव के स्वरूपवाला भी नहीं अपितु रस-समुद्र में लहराने के स्वरूपवाला है। बाबा के जो अन्तरंग जीवन के सम्पर्क में आए हैं, उनको मालूम है कि महाभाव की जो अगले स्तर की चीज है, जिसकी रूपरेखा शायद श्रीरूप-सनातन गोस्वामी आदि रस-मर्मज्ञों तक ने भी नहीं खींची, वैसी चीज इनमें व्यक्त हुई, इनके अनुभव में आयी। इस प्रकार से इनका काष्ठ मौन असल में इनका रस-समुद्र में निमज्ञन है। साधना के क्षेत्र में यह एक बड़ी विलक्षण वस्तु है कि जहाँ रस-तत्व और ब्रह्म-तत्व एक दूसरे के अ-प्रतिद्वन्द्वी होकर एक साथ एक रुप में रहते हों। यह रहे हैं पहले। ऐसा नारदादि में था। भगवान शंकराचार्य में भी ऐसा माना जाता है, लेकिन यह उदाहरण विरल होते हैं।

जब बाबूजी ने स्वयं अपनी वाणी से, श्रीराधाबाबा की इतनी महान भगवदीय स्थिति के बारे में बताया, तबसे श्रीबंकाजी के मन में बाबा के प्रति आदर-भाव और श्रद्धा अनन्तगुना बढ़ गयी। बाबूजी के जाने के बाद बाबा ने ही पूरी वाटिका को, माँ को और बाबूजी के परिवार को सम्भाला। बाबूजी के प्रत्येक सेवक-परिकर के प्रति बाबा का विशेष प्रेम और ममत्व था। वे सबकी खोज-खबर लेने लग गये। निकट के व्यक्ति उनको सभी परिकरों की सारी खबर देते और उनको यह भी पता चल गया कि आजकल श्रीबंकाजी का गीताप्रेस के कामों में मन नहीं लगता है और वाटिका की विषम परिस्थितियों के कारण वे हृदय से अत्यधिक दुःखी हैं। जिन बंकाजी के श्रीमुख पर सदैव हल्की मुस्कान खेलती रहती थी वे आजकल हँसना-मुसकुराना एकदम भूल गये हैं। बाबा को उनकी विशेष चिन्ता होने लगी और उन्होंने श्रीबंकाजी को अपने पास बुलवाया।

बाबा ने श्रीबंकाजी को बड़े प्यार से अपने निकट बैठाकर स्नेहपूर्वक पूछा—बंकाजी! आप कैसे हैं? आजकल आपके मन में क्या चल रहा है? आप क्या करना चाहते हैं?

बाबा के प्रेम को देखकर श्रीबंकाजी उनके सामने फूट-फूट कर रोने लगे। हृदय की सारी वेदना एक साथ उनके नयनों से बरस पड़ी। बहुत देर बाद, सिसकते हुए बस इतना ही कह सके—बाबा! अब कुछ भी करने को जी नहीं चाहता। बाबूजी के जाने के बाद यहाँ की परिस्थितियाँ अब मेरे लिये अत्यधिक प्रतिकूल हो गई है। कभी-कभी सोचता हूँ वृन्दावन चला जाऊँ। यहाँ की एक-एक वस्तु बाबूजी की याद दिलाती है। **भयउ बिकल जनु फनि मनि हानी॥**

पूज्य बाबा ने सान्त्वना भरे शव्दों में समझाना शुरु किया—अगर मेरी बात पर विश्वास कर सको तो सुनो। मेरी बात मानने में भलाई तुम्हारी ही है। श्रीपोद्दारजी महाराज के जाने के बाद उनका परिवार मेरा परिवार है, उनके सारे स्वजन-परिकर मेरे अपने-से-अपने हैं। तुमको वृन्दावन जाने की पूरी छूट है। चाहे ब्रज में वास करो चाहे यहाँ रहो, पर जब तक मेरा शरीर है, तब तक यहाँ रहने से अधिक लाभ में रहोगे। एक सैनिक चाहे दूर रहे, चाहे पास रहे, है तो सेना का अंग तथा सेनापति की दृष्टिपथ में ही है पर यदि सेनापति के समीप रहे तो उसे अधिक लाभ मिलता है, उसी तरह यहाँ रहने पर तुमको अधिक लाभ होगा। श्रीपोद्दारजी महाराज का कलेवर चलता फिरता वृन्दावन था। जिस तरह उनका पांचभौतिक कलेवर जड़ वस्तु थी उसी प्रकार यह कोयला, (समाधि की ओर संकेत करके कहा जहाँ पूज्य बाबूजी की चिता के भस्मावशेष हैं) यह कोयला भी तो जड़ वस्तु है पर उस कलेवर में जो विराज रहा था (अर्थात श्रीकृष्ण), विलास कर रहा था, वही वस्तु यहाँ भी है। जिस तरह वह कलेवर चलता फिरता वृन्दावन था उसी तरह यह कोयला स्थिर वृन्दावन है, उनके कलेवर की भस्म स्थावर वृन्दावन है। यह परम दिव्य, परम पवित्र वस्तु है तथा इससे व्रजभाव की क्या वस्तु प्राप्त नहीं हो सकती! यदि आप यहाँ रहते हैं तो घाटे में नहीं रहेंगे बल्कि लाभ ही होगा।

श्रीबंकाजी बहुत ध्यान से बाबा की बातें सुन रहे थे। उन्होंने बाबा से करुण स्वर में कहा—बाबा, मैं क्या करूँ, कुछ समझ नहीं आता। भजन-साधन सब बन्द हो गया है। किसी चीज में मन नहीं लगता। गीताप्रेस का

काम बोझ लगता है। गीताप्रेस का काम ही क्या, आजकल तो जीवन भी बोझ ही लगता है। बाबूजी के बिना मैं कोई काम करने के लायक नहीं। मैं तो बस उनकी आज्ञा-पालन करता था। वही मुझे आता है, और कुछ नहीं।

पहले बताया जा चुका है कि बाबा ने स्वयं चार साल का अनुष्ठान श्रीबंकाजी के लिये किया था कि उनको श्रीकृष्णभक्ति प्राप्त हो और उनकी लेखनी में अद्भुत लेखन क्षमता का अवतरण हो। वे जानते थे कि भगवत्कृपा से श्रीबंकाजी अभूतपूर्व लेखनकार्य करने की क्षमता रखते हैं। सिर्फ उन्हें सही मार्गदर्शन की आवश्यकता है। अत: बाबा ने प्रेमपूर्वक उन्हें समझाते हुए कहा—ऐसा कीजिये, आप गीताप्रेस का काम नहीं करना चाहते हैं तो उसे छोड़ दीजिये। अपने खर्च की चिन्ता आप मत कीजिये। जहाँ रहते हैं, वहीं रहिये। आपको जो मासिक ढाई सौ रुपये पहले मिलते थे, वही मिलते रहेंगे। भोजन आप बासा में ही करते रहियेगा। अब आपको करना यह है कि बाबूजी के सामने, बाबूजी के जीवन के बारे में लिखने का जो काम आप छुप-छुप कर किया करते थे, वही काम आपको अब खुल कर करना है, पूरे मन से करना है। आप बाबूजी के जीवन के बारे में लिखिये।

श्रीबंकाजी को बाबा की सहानुभूति भरी बातें सुनकर बहुत अच्छा लगा और उनका प्रस्ताव तो और भी पसन्द आया। माँ और बाबूजी के बारे में तो वे सदा से लिखना चाहते ही थे और बाबूजी जैसे महान व्यक्तित्व के बारे में, उनके काम के बारे में, उनकी भावमयी स्थिति के बारे में सारा जग जाने, यही तो श्रीबंकाजी की आन्तरिक चाह थी। वे हृदय में धैर्य धारण करके बाबा की बात पर गम्भीरता से विचार करने लगे। **समुझि करम गति धीरजु कीन्हा॥**

श्रीबंकाजी ने बाबा की बात को स्वीकार कर लिया और बाबूजी के बारे में लिखने में स्वयं को तन-मन से डुबा दिया। बाबूजी के अति व्यापक कार्य-क्षेत्र में से, जो लोग उनके बारे में लिख सकते थे, उनसे श्रीबंकाजी ने सम्पर्क स्थापित करना शुरु किया और प्रत्येक आदमी को चाहे वह छोटा हो या बड़ा, परिवार का हो या बाहर का, सबको बाबूजी के संस्मरण, अपनी सरल भाषा में लिखने के लिये अनुरोधपूर्वक प्रेरित किया। श्रीबंकाजी दिन-

रात अपने कमरे के एकान्त में, सबसे दूर बैठे, बाबूजी को याद कर-करके उनके जीवन की हर छोटी-बड़ी बातें लिखा करते। वे उनके सिद्धान्त-पक्ष को भी लिखते और उनके जीवन-पक्ष को भी लिखते। बाबूजी ने जो अपने प्रवचनों में कहा उसको भी लिखते और जो उन्होंने अपने जीवन में स्वयं करके दिखाया वह भी लिखते।

बाबूजी के जाने के बाद अगले कुछ सालों तक श्रीबंकाजी अक्सर एकान्त में बाबा के पास जाया करते थे, अपने कार्य के बारे में विस्तृत चर्चा करने के लिये। बाबा उनकी हर बात को ध्यान से सुनते, उन्हें प्रोत्साहित करते, सहयोग देते और उनकी मेहनत और लगन को देखकर मन-ही-मन बहुत प्रसन्न होते थे।

पूज्य बाबा भी श्रीबंकाजी के रूप में, एक सुपात्र अधिकारी को पाकर अपनी निजी साधना, श्रीपोद्दारजी से उनके आन्तरिक सम्बन्ध तथा जीवन के रहस्यों की परत-पर-परत खोलेने लगे। बाबा से एकान्त में जो भी बातें होती उन्हें श्रीबंकाजी अपने कमरे में आते ही तुरन्त लिख लिया करते थे। उनकी स्मरण-शक्ति और ग्रहण करने की क्षमता इतनी अधिक थी कि बाबा जो भी बोलते, उन्हें एक-एक शब्द याद हो जाया करता था, जिसे वे वैसे-के-वैसे रजिस्टर में लिख लिया करते थे। वाटिका के लोग तो यहाँ तक कहने लगे थे कि श्रीबंकाजी का दिमाग एक टेप-रिकार्डर है। जो सुनता है तुरन्त रिकार्ड कर लेता है। उनकी अलमारी में बाबा से हुए वार्तालाप के ढेरों रजिस्टर भरे पड़े थे। वे बाबूजी की बातों को अलग रजिस्टर में लिखते और बाबा की निजी बातें, उनके जीवन और साधना सम्बन्धी वार्तालाप को, अलग रजिस्टर में लिखते थे। वे जानते थे कि बाबा अत्यन्त आत्म-गोपन स्वभाव के हैं और उन्होंने कृपा करके जो अपने बारे में बताया है, वह अभी प्रकाशित नहीं किया जा सकता है। केवल बाबूजी की बातें ही अभी पुस्तकाकार छप सकती हैं। इस बात की सावधानी उन्होंने हमेशा रखी कि बाबा के जीवनकाल में उनकी कोई बात न छपे।

धीरे-धीरे श्रीबंकाजी के पास लोगों के पत्र आने लगे जिसमें उन्होंने

बाबूजी के बारे में अपने संस्मरण लिखे थे। सन्तों के आशीर्वाद रूपी पत्र, बाबूजी के पुराने मित्रों के पत्र और गीताप्रेस के लेखकों के बहुत सुन्दर-सुन्दर संस्मरण भरे पत्र आये। कुछ सीधे-साधे भक्त भी थे बाबूजी के जिन्होंने सरल भाषा में अपनी बात लिखी थी। श्रीबंकाजी उनके पत्रों की भाषा सुधारते, संशोधन करते और सुन्दरतापूर्वक लेख लिख करके पुस्तक में छापने योग्य बनाते।

बरसों के अथक प्रयास और परिश्रम के बाद उनके पास इतनी सामग्री तैयार हो गयी कि बाबूजी के ऊपर तीन पुस्तकें प्रकाशित हो सके। आये हुए लेखों के संकलन के साथ-साथ इन पुस्तकों में, श्रीबंकाजी के स्वयं के लिखे हुए भी बहुत सारे सुन्दर प्रसंग थे, जो उन्होंने अपनी आँखों से माँ और बाबूजी के साथ रहते हुए देखे थे। उन तीनों पुस्तकों के नाम थे—

- **परम भागवत श्रीपोद्दारजी**
- **सन्त हृदय श्रीपोद्दारजी**
- **महा भावोदधि श्रीपोद्दारजी**

इन तीनों पुस्तकों को पाठकों ने बेहद पसन्द किया और इनके लेखक व संकलनकर्ता श्रीबंकाजी को अत्यधिक प्रसंशा प्राप्त हुई। उनके पास जगह-जगह से साधुवाद के पत्र आने लगे। जो इन पुस्तकों को पढ़ता वही बाबूजी के जीवन के बारे में, इतनी बारीकी से लिखी सब बातें जानकर अति विस्मित होता। बाबूजी बहुत ही संगोपन-प्रिय स्वभाव के थे अतः उन्होंने अपनी उच्चतम आध्यात्मिक स्थिति के बारे में कभी भी, किसी को बताया ही नहीं था और अब श्रीबंकाजी ने एक ओर उनके सरल-सीधे-सात्त्विक जीवन के बारे में बारीकी से लिखा और दूसरी ओर उनके महान व्यक्तित्व, व्यापक कार्य और महाभावमयी स्थिति के बारे में भी खूब विस्तार से लिखा। सभी साधु-सन्त-भक्त समाज इन प्रसंगों को पढ़कर अति आनन्दित हुए और इन पुस्तकों का खूब प्रचार-प्रसार हुआ।

एक बार श्रीबंकाजी ने बताया कि बाबूजी पर पुस्तक तो कई लिखी गयी

परन्तु उनकी लिखी पुस्तकों को इतनी सराहना-लोकप्रियता मिली इसके पीछे कई कारण थे। उन्होंने प्रारम्भ से ही अपनी पुस्तकों के लिये कुछ दृढ़ नियम बनाये थे। उनकी पुस्तकों में—

- किसी भी व्यक्ति-परिवार-धर्म-संस्था-सम्प्रदाय की निन्दा नहीं है।
- भाषा एकदम सरल है।
- रोदन नहीं है।
- यर्थाथ बातें लिखी हैं, बिना कसौटी के कुछ नहीं लिखा है।
- बहुत लोगों ने अपने स्वप्न लिख कर भेजे थे, जो पुस्तक में नहीं लिखे गये हैं।
- अपनी और अपने परिवार की प्रशंसा नहीं लिखी है।

इन्ही कारणों से यह पुस्तकें चमक उठी थी और अत्यधिक लोकप्रिय हुई।

****

देवर्षि नारद सम्वाद पर लेख

सन् 1936-37 में श्रीदेवर्षि नारद एवं महर्षि अंगिरा के दर्शन पूज्य बाबूजी को गीतावाटिका में हुए तथा उनसे प्रेमोपदेश के साथ-साथ ऐकान्तिक उपासना की महान प्रेरणा भी प्राप्त हुई। यही प्रकर्ष मधुरोपासना भविष्य में बाबूजी के द्वारा 'ज्ञानोत्तर भावराज्य' संज्ञा से अभिहित हुई। देवर्षि के कथनानुसार दिव्य सन्त मण्डल में उनका अन्तर्निवेश हो गया।

देवर्षि नारद से मिलन होने के बाद बाबूजी इस भूतल पर 34-35 वर्ष रहे। बाबूजी की महाभाव में स्थिति उत्तरोत्तर जैसी प्रगाढ़ से प्रगाढ़तर होती चली गई, इसे देखकर देवर्षि नारद को अवश्य-अवश्य परमानन्द हो रहा होगा कि महान प्रेरणा के रूप में उस बीज का वपन एक अति श्रेष्ठ भूमि में हुआ, जिसका महान परिणाम जगत के लिए स्मरणीय-वन्दनीय-अनुकरणीय बन गया। महाभाव से सदा रसार्द्र बाबूजी के उन श्रीचरणकमलों को सदा-

सदा प्रणाम। इन्हीं महाभाव से सदा रसार्द्र बाबूजी का अति निकट का सामीप्य मिला श्रीबंकाजी को।

श्रीबंकाजी ने बाबूजी और श्रीदेवर्षि नारद के मिलन के अवसर पर हुई चर्चा पर एक लेख लिखा। लेख लिखकर उन्होंने इस लेख को पूज्या श्रीकमल दीदी को दिखलाया। उन्होंने इस लेख को आरम्भ से लेकर अन्त तक पढ़ लिया और फिर वे कहने लगीं—बंका भईया! लेख तो अति सुन्दर लिखा है आपने, परन्तु मुझे एक बात कहना आवश्यक लग रहा है। आजकल अंग्रेजी पढ़े लोग प्रायः बात-बात में तर्क करते हैं। आपने ऐसा लिखा है मानो देवर्षि नारद की तथा पूज्य बाबूजी की पारस्परिक बात हो रही है और आप वहीं खड़े-खड़े सुन रहे हैं तथा नोट करते चले जा रहे हैं। आज का पढ़ा-लिखा समाज आपकी इस बात को आप की कल्पना की उड़ान बतलायेगा। आप आकाश में इतना न उड़ें कि लोगों के लिये आप अविश्वसनीय हो जायें। अपने पैर जमीन पर रखें। मेरा अनुरोध है कि जो बात देवर्षि नारद और पूज्य बाबूजी के मध्य हुई है, उसको निकालकर लेख की भाषा का प्रवाह ठीक कर दें।

श्रीकमल दीदी के कहने पर श्रीबंकाजी ने वह बातचीत का अंश निकाल दिया और लेख को सुन्दर तरह से ठीक कर दिया। उन दिनों दिव्यभावस्वरूपा श्रीरुक्मिणी बाई गीतावाटिका में ही एक भवन में विराज रही थीं। श्रीजयराम भईया ने वह सुधारा हुआ लेख बाई को सुनाया। सुन करके वे मुग्ध हो गईं और कहने लगीं—बंका भईया ने आज बहुत बड़े रहस्य को सरल और सरस शब्दों में प्रमाण सहित उद्घाटित किया है। बंका भईया की जितनी सराहना की जाये वह कम ही होगी। वे अत्यन्त महान कार्य कर रहे हैं।

पूज्या श्रीरुक्मिणी बाई के इन प्रसन्न उदगारों को सुनकर श्रीजयराम भईया ने कहा—बाई! यह लेख तो अधूरा है। कमल दीदी के कहने से श्रीबंका भईया ने लेख का एक महत्त्वपूर्ण अंश निकाल दिया है।

पूज्या श्रीरुक्मिणी बाई ने श्रीजयराम भईया से कहा— श्रीबंका भईया के पास जाओ और वह निकाला गया अंश मेरे पास लेकर आवो।

श्रीजयराम भईया ने श्रीबंकाजी से वह लेख का निकाला हुआ अंश लाकर बाई को दिया। पूज्या बाई उस अंश को आरम्भ से अन्त तक पढ़ गईं और कहने लगीं—यह क्यों निकाला गया? यह तो लेख में ही रहना चाहिए। जिस तरह श्रीमद्भागवत का महत्त्वपूर्ण अंश दशम स्कंध है और दशम स्कंध का प्राण गोपीगीत है, उसी तरह यह अंश इस लेख का प्राण है। इसे यथा स्थान ज्यों-का-त्यों कर देना चाहिये।

फिर उन्होंने एक उदाहरण दिया। उदाहरण देते हुए पूज्या श्रीरुक्मिणी बाई ने कहा—श्रीरामचरितमानस के अरण्यकाण्ड का प्रसंग है। निशाचर खर-दूषण वध के उपरान्त भगवान श्रीराम ने अपनी जीवन सर्वस्व भगवती सीता से कहा कि—अब मुझे विशेष प्रकार की नर-लीला करनी है, अतः तुम अग्नि में निवास करो। प्रभु की आज्ञा मानकर भगवती श्रीसीता अग्नि में प्रवेश कर गईं और अपना प्रतिबिम्ब वहाँ विराजित कर दिया। इस अवसर पर एक चैपाई बनती है—**लछिमनहूँ यह मरमु न जाना। जो कछु चरित रचा भगवाना॥**

अब प्रश्न यह उठता है कि जिस लीला को नित्य सहचर श्रीलक्ष्मणजी ही नहीं जान पाये उस चरित को रामभक्त तुलसीदास कैसे जान गये? इसका सहज समाधान यह है कि जो भक्त या भगवान के चरित लिखता है उसके हृदय में प्रभु वास्तविक बात को स्फुरित कर देते हैं। इसी प्रकार देवर्षि नारद और पूज्य बाबूजी के मध्य जो सम्वाद है, व स्वयं श्रीदेवर्षिजी ने श्रीबंका भैया के मन में स्फुरित कर दिया है। यह बंका भईया का सौभाग्य है कि उन पर देवर्षि की कृपा बरसती है।

पूज्या श्रीरुक्मिणी बाई के ऐसा कहते ही सारा लेख पूर्ववत् कर दिया गया। जब यह बात श्रीकमल दीदी को बतलाई गई, तब उनको भी मौन होकर स्वीकार करना पड़ा। उनके मन की भी सारी उधेड़-बुन समाप्त हो गई।

****

रास पूर्णिमा के दिन बाबा की विशेष विशेष कृपा

1974 का प्रसंग है। गर्मी के दिन थे। श्रीबंकाजी और गीतावाटिका के अन्य कई भाई-बहन पूज्य श्रीराधाबाबा के पास, टीन शेड के नीचे बैठे हुए थे। बाबूजी के नित्य-लीला-लीन होने के बाद से बाबा टीन शेड के नीचे ही, समाधि के सामने रहा करते थे। बाबूजी के जाने के बाद बाबा अपनी कुटिया में कभी गये ही नहीं।

बातों के मध्य में बाबा ने कहा—बंकाजी, इस वर्ष शारदीय पूर्णिमा के दिन आप ब्रह्ममुहुर्त में मेरे पास आइयेगा।

श्रीबंकाजी ने बाबा की बात को स्वीकार किया और मन-ही-मन प्रसन्न हुए क्योंकि किसी विशेष हेतु से ही बाबा ऐसा आदेश दिया करते थे परन्तु यह दिन उनके जीवन को ही पूर्णरूपेण बदल देगा, इसकी उन्होंने कल्पना भी नहीं की थी।

1974 की रास पूर्णिमा के दिन, ब्रह्ममुहुर्त में स्नानादि से निवृत्त होकर श्रीबंकाजी टीन शेड के नीचे बाबा के समीप गये। श्रीबंकाजी ने देखा, बाबा कुँए पर स्नान करके आये हैं और वस्त्र परिवर्तन कर रहे हैं। बाबा को प्रणाम करके श्रीबंकाजी वहीं सामने बैठ गये। बाबा की सेवा में एक-दो व्यक्ति और थे। वस्त्र पहनकर बाबा श्रीबंकाजी को देखकर मुसकुराये और अन्य सभी को वहाँ से हट जाने को कहा। पूर्णत: एकान्त में उन्होंने श्रीबंकाजी पर विशेष-विशेष कृपा की। बाबा ने श्रीबंकाजी को विधिपूर्वक उनका सिद्धदेह, सखी-स्वरूप प्रदान किया और उन्हें बताया कि—बाबूजी की आज्ञा से आप जो गोपी-भाव की उपासना वर्षों से कर रहे हैं, वास्तव में आप श्रीप्रियाप्रियतम की प्रधान अष्ट सखियों में से पाँचवीं सखी श्रीचम्पकलताजी हैं।

श्रीचम्पकलताजी की विस्तृत जानकारी देते हुए पूज्य बाबा बहुत देर तक श्रीबंकाजी को समझाते चले गये और कहा कि—श्रीराधा की प्रमुख अष्ट सखियों में से पाँचवी सखी श्रीचम्पकलताजी हैं। उनके पिता का नाम गोपराज चन्द्रभानु है और उनकी माता का नाम महासुन्दरी चन्द्रकलादेवी (उपनाम

वाटिका) है। श्रीचम्पकलताजी का जन्म ब्रज के करहला ग्राम में हुआ है। निकुंज सेवा में इनकी आयु चौदह वर्ष, दो माह और चौदह दिन की है अर्थात् यह श्रीराधा से मात्र एक दिन छोटी हैं। इनके देह का रंग चम्पा पुष्प के समान है और ये सदा नील वर्ण के सुन्दर वस्त्र धारण करती हैं। ये परम विदुषी सखी विभिन्न कलाओं में अत्यन्त कुशल हैं और इनकी मुख्य सेवा श्रीप्रियाप्रियतम को चँवर डुलाने की है।

'चम्पकलता' कान्ति चम्पा-सी, कुंज तपे सोनेके रंग।
नीलकण्ठ-पक्षी के रँग के रुचिर वसन धारे शुचि अंग॥
चाव भरे चित चँवर डुलाती, अविरत नित कर-कमल उदार।
द्यूत-पण्डिता, विविध कलाओं से करती सुन्दर सिंगार॥

श्रीगोवर्धन के श्रीराधा-कृष्ण कुण्ड के आठों दिशाओं में अष्ट सखियों के आठ कुंज हैं जहाँ श्रीप्रियाप्रियतम की अष्टयाम लीला निरन्तर होती रहती है। इनमें श्रीचम्पकलताजी का कुंज श्रीराधाकुण्ड के दक्षिण दिशा में है। यह कुंज तपे हुए सोने के रंग का है।

श्रीचम्पकलताजी के रूप-रंग सेवा आदि को समझाने के बाद पूज्य बाबा उनके दिव्य वासक-सज्जा भाव का विस्तारपूर्वक वर्णन करने लगे। उन्होंने बताया—अष्ट सखियों में से प्रत्येक सखी का अलग-अलग भाव है। श्रीचम्पकलताजी वासक-सज्जा भाव की प्रतीक हैं। कान्त की प्रतीक्षा में निमग्न एवं उनके स्वागतार्थ जो कान्ता स्वयं को एवं अपने कुंज को सुसज्जित करती है, उसे वासक-सज्जा कान्ता कहते हैं। सज-धजकर के परमानुरागिनी कान्ता अपने कान्त के यश का गायन करती हुई, उनके शुभागमन की प्रतीक्षा में निमग्न है। वह प्रतीक्षा तो कर रही है, किन्तु एक सन्देह है कि क्या उसकी प्रतीक्षा फलवती हो पायेगी? उसकी प्रतीक्षा का अन्त आयेगा कि नहीं? किसी भी अनुरागी के अन्तर में इस सन्देह का उद्भव होना स्वाभाविक है। अब यथार्थ सत्य यह है कि उस प्रतीक्षा का अन्त आया। इस यथार्थ सत्य के संगठित होने के पीछे एक रहस्य है। कान्ता जिस लालित्य के साथ भाव-भरा

गीत गा रही थी, उस रसमय गीत के गायन में एक लोकोत्तर सम्मोहिनी शक्ति थी। इस सम्मोहिनी शक्ति ने एक चमत्कार उपस्थित कर दिया कि विधाता के विधान में विपर्यय दिखाई देने लग गया। विधि-विधान के अनुसार भले मधुप चम्पा पुष्प के समीप न जाये, पर यह विधान अस्तित्व से रहित हो गया और सच्चिदानन्दमय निकुंज-राज्य का रसिक मधपु, चम्पा पुष्प की सुन्दर-सुरभित-सुमधुर सुमनावली के साथ विहार-विलास कर रहा था।

अपने ग्रन्थ जय जय प्रियतम के आधार पर इन सारे गुप्त भाव-विवरण के साथ-साथ, बाबा ने गोपी-भाव के सूत्रात्मक पक्ष की भी व्याख्या की। उन्होंने बताया—

गोपी-भाव में प्रधान बातें पाँच हैं।

1. श्रीभगवान के स्वरूप का पूर्ण ज्ञान (यद्यपि वह प्रगट नहीं रहता)
2. श्रीभगवान में प्रियतम भाव
3. श्रीभगवान के प्रति सर्वस्व-अर्पण
4. निज-सुख की इच्छा का पूर्ण त्याग
5. श्रीभगवान के सुखार्थ ही जीवन के सारे आचार-विचार (अर्थात भगवत्प्रीत्यर्थ जीवन धारण)

हमारे इस पांचभौतिक स्थूल-देह को ही साधना में संलग्न होने पर साधक-देह कहते हैं। इसके परे सिद्ध-देह है, जिसकी पहले साधक-देहवाले महानुभाव भावना करते हैं और उस भावनामय सिद्ध-देह के द्वारा भगवान की सेवा किया करते हैं। पर जिनके हृदय में यथार्थ रति की उत्पत्ति हो गयी है, उनको सिद्ध-देह की भावना नहीं करनी पड़ती, उसकी स्वयं स्फूर्ति हुआ करती है और वे परम सौभाग्यवान् साधक उक्त सिद्ध-देह के द्वारा श्रीराधामाधव की मधुरतम निकुंज-सेवा में नियुक्त रहकर, नित्य परमानन्द सिन्धु में निमग्न होते रहते हैं।

इस मार्ग की साधना की परिपक्व स्थिति में इस सिद्ध-देह की स्वयमेव स्फूर्ति हुआ करती है। पांचभौतिक देह छूट जाती है, पर यह सच्चिदानन्द-

रस-विग्रहमयी व्रजसुन्दरियाँ भगवान के प्रेमधाम में स्फूर्ति प्राप्त करके श्रीयुगलस्वरूप की सेवा में नियुक्त रहती हैं।

इतना कहते-कहते पूज्य श्रीराधाबाबा बड़े भाव में आ गये और बड़े प्यार से श्रीबंकाजी से कहा—देख, अब प्रपंच में लौटकर मत जाना। मेरे मुँह पर कालिख मत लगा देना। तुमको मैंने पाँच भाव का प्रतीक बना रखा है। यह बेल का पेड़ साक्षी है (बाबूजी की समाधि के पास एक बेल का पेड़ है जिसे बाबा साक्षात् श्रीशंकरजी का स्वरूप मानते थे। इसी बेल के पेड़ के नीचे बाबा ने सभी पुराणों का श्रवण किया था। उसी पेड़ की ओर इशारा करके बाबा ने कहा कि—यह पेड़ साक्षी है अर्थात् श्रीशंकर भगवान साक्षी हैं।) कि मैंने तुमको अंगीकार किया है। अब मैं ही तेरी माँ हूँ , मैं ही तेरा बाप हूँ।

पूज्य बाबा की एक-एक बात को ध्यानपूर्वक सुनते हुए और बाबा की अतिशय कृपा को अपने आँचल में संजोते हुए गीतावाटिका के एक सुगंधमय सुमन के समान श्रीबंकाजी का मन-जीवन भी भक्तिरस से सिंचित होकर एक सुवासित उत्फुल्ल पुष्प बन गया। उन्होंने बाबा के समर्थ श्रीचरणों में दण्डवत प्रणाम किया और अपने परम दुर्लभ सौभाग्य की सराहना करने लगे। उनके नेत्रों से आनन्दाश्रुओं की वर्षा हो रही थी। बाबा जैसे समर्थ सद्गुरु का आश्रय पाकर श्रीबंकाजी का हृदय बार-बार यही कह रहा था—**होहिं सनाथ जनम फलु पाई॥ तुम्हरें दरस आस सब पूजी॥**

प्रतिवर्ष शरद पूर्णिमा की रात्रि को श्रीराधाबाबा गीतावाटिका में अखण्ड रात्रि जागरण करवाया करते थे। रात्री के समय पूज्य बाबा गिरिराज परिसर में बैठे थे। पास में श्रीबंकाजी थे। अन्य कई भाई-बहन भी रात्रि जागरण के लिये बैठे थे। पूज्य बाबा अपनी मस्ती में कहने लगे—मेरी तो चाह है कि मेरे जो निजजन हैं उनको 'स्वरूप-स्थिति' शीघ्र प्राप्त हो जाये। जिसका जो 'भागवती रूप' हो वह उन्हें इसी जीवन में प्राप्त हो जाये। इस 'भागवती रूप' की प्राप्ति में जो बाधक है, उन्हें मैं भोग लूँ पर उन-उनको उनकी आध्यात्मिक स्थिति उपलब्ध हो जाये। यदि किसी कारण से इस जन्म में न हो सके तो अगले जन्म में प्राप्त हो जाये। पर वह क्षण कितना सुन्दर होगा जब सभी जन

अपने वास्तविक भागवती स्वरूप में स्थित होकर अचिन्त्य इन्द्रियातीत सुख का आस्वादन करेंगे।

श्रीबंकाजी ने पूछा—बाबा! निजजनों के द्वारा जो श्रेष्ठ कार्य, भजन, उपासना आदि होते हैं क्या वह आपके इस कार्य में सहायक नहीं होगा?

पूज्य बाबा ने कहा—इन शुभ कार्यों का फल भी उन्हें ही मिले पर उस भागवती स्थिति की प्राप्ति में जितने प्रतिबन्धक हैं, वे सभी शीघ्र दूर हो जाँय। पर क्या करूँ? पूर्व जन्मार्जित प्रतिबन्धकों का तो ढेर है ही, अब भी साधक नव-नव प्रतिबन्धकों का संग्रह करते चले जा रहे हैं। पर कोई बात नही! देखें, तुम कितना संग्रह करोगे।

पूज्य बाबा के इस उमड़ते हुए प्यार को देखकर सभी लोग भीग गये। सब बाबा की करुणा और कृपा पर बलिहारी थे। **अब कछु नाथ न चाहिअ मोरें। दीन दयाल अनुग्रह तोरें॥**

****

ऐसा कब होगा

परम पूज्य श्रीराधाबाबा की अहैतुकी कृपा के फलस्वरूप, 1974 की रास पूर्णिमा को सिद्धदेह प्राप्ति के बाद, श्रीबंकाजी की साधना में तीव्र गति से उन्नति हुई। जन्म से जो उनमें भक्ति लता का बीज था वह अंकुरित हो गया और बाबा के प्रभाव से पल्लवित और पुष्पित भी हो गया। बाबा के अनुग्रह से उनका मन, रस का समुद्र बन गया जिसमें निकुंज-लीला की एक-से-एक बड़ी लहर उठने लगी। श्रीप्रिया-प्रियतम की निकुंज-लीलाओं की मधुरातिमधुर सुनहरी-रूपहली अभिलाषाओं से उनका हृदय लबालब भर गया। जहाँ वे अपने डायरी में पहले कविता लिखा करते थे, अब वे नित्यप्रति नयी-नयी लीलाओं का चिन्तन करने लगे और नई-नई अभिलाषाओं को अपनी डायरी में लिखने लगे। सोते-जागते-उठते-बैठते-खाते—पीते हर वक्त एक-से-एक सुन्दर लीलाओं की अभिलाषा उनके मन में उठने लगी। वे अपने सिद्धदेह की कल्पना करते और हर वक्त श्रीप्रियाप्रियतम की मानसी

सेवा में लगे रहने का प्रयास करते। दिनभर के चिन्तन नवनीत को वे रात्रि के समय, अपनी डायरी में लिख लिया करते थे। यह प्रतिदिन का क्रम हो गया।

सिद्धदेह प्राप्त साधक के, प्रेम-राज्य की मानसी सेवा में डूबे हुए रसमय हृदय की दशा क्या होती है, यह वाणी का विषय नहीं है। हमलोग तो केवल बाहरी चेष्टाओं का ही अवलोकन-वर्णन कर सकते हैं और कुछ बातें उन्होंने मुझे स्वयं बताए थीं, वही लिख रही हूँ।

श्रीचम्पकलताजी सखी के वासक-सज्जा भाव के अनुरूप श्रीबंकाजी अब, पूज्य बाबा की परिक्रमा के पर्याप्त पूर्व ही गिरिराज परिसर में आ जाते और बाबूजी की समाधि के समीप अपने कम्बल पर, अपनी माला झोली लिये नाम-जप करने बैठ जाते। उस वक्त वाटिका की माताएँ-बहनें श्रीगिरिराजीजी के परिक्रमा मार्ग पर बुहारी सेवा करती थी और सुन्दर पत्र-पुष्पों से श्रीगिरिराजजी का शृंगार किया करती थीं।

श्रीबंकाजी वहाँ बैठे-बैठे यही भावना करते कि—एक चौदह वर्ष की गौरांगी सखी (अर्थात श्रीबंकाजी), नीली साड़ी पहनकर श्रीप्रियाप्रियतम के निकुंज को बुहार रही है और अपने हृदय के मधुरतम प्रेमरूपी नवीन सुमन-किसलय-मंजरी से निकुंज-राज्य को सजा रही है। कभी गिरिराज वीथियों में भ्रमण करके पुष्प-चयन कर रही है, श्रीराधा-कृष्णकुण्ड पर पुष्प-सज्जा कर रही है..., आदि। बाबा के परिक्रमा में आने के तुरन्त पहले वहाँ धूपबत्ती जलाई जाती थी। धूपबत्ती के उठते हुए धुँए को देखकर श्रीबंकाजी यही भावना करते कि—मेरे हृदय का स्नेह ही इस धूपबत्ती के रूप में वन-वीथियों को सुगन्धित-सुवासित कर रहा है। इसी प्रकार की एक-से-एक सुन्दर भावनाएँ प्रतिदिन उनके हृदय में उठती थीं।

जब पूज्य बाबा परिक्रमा में पधारते तो श्रीबंकाजी अपने सिद्धदेह से उनके पीछे-पीछे चलने की भावना करते। उन्हें यही लगता कि श्रीप्रियाजी अपने प्रियतम से मिलने के लिये गिरिराजजी की ओर जा रही हैं और वे उनके पीछे चँवर डुलाते हुए, कभी पीकदानी लिये हुए, कभी पुष्प की डलिया लिये

हुए, मन्थर गति से अनुगमन कर रहे हैं। वर्षा के दिनों में जब गिरिराज परिसर में जल भर जाता तब वे भावना करते कि वे श्रीप्रियाजी के नीले घाघरे की किनारी को अपने हाथों से कुछ ऊँचा करके उनके साथ-साथ चल रहे हैं।

इस प्रकार की असंख्य भाव-तरंगे श्रीबंकाजी के हृदय में उठती रहती। श्रीगिरिराज परिसर में जो सुमधुर पद गायन होता, कभी-कभी वे उसी की भावना में बहने लग जाते। वृन्दावन के भक्ति-काल के पदों में उनकी विशेष रुचि थी। बाबा की अनुमति से उन्होंने रसिक सन्तों के पदों का एक बहुत विशाल संकलन किया था जिसके अनुसार वे लीला-चिन्तन करते थे। इसका वर्णन आगे आयेगा। जब पूज्य श्रीबालकृष्णदासजी महाराज के आने पर या किसी उत्सव के समय परिक्रमा मार्ग में खड़े होकर, बाबा स्वयं आलाप लेते और सुमधुर कण्ठ से गाते तब तो श्रीबंकाजी की खुशी का ठिकाना ही न रहता था। उन्हें यही लगता कि आज को श्रीप्रियाजी कृपा करके स्वयं गा रही हैं, अपने प्रियतम को रिझाने के लिये स्वयं आलापचारी कर रही हैं।

श्रीबंकाजी की भाव-साधना समय सापेक्ष नहीं थी, वह दिन भर चलती थी। अपनी छोटी सी कुटिया के एकान्त में, श्रीबंकाजी अपने सिद्धदेह से श्रीप्रियाप्रियतम की मधुरतम लीलाओं की भावना करते और स्वयं को श्रीचम्पकलताजी सखी के रूप में उनके एकदम समीप खड़ा देखते। वे घण्टों इन्हीं भावनाओं में डूबे रहते और समय का उन्हें एकदम ज्ञान नहीं रहता था। रात्रि के समय वे इन्हीं अभिलाषापूर्ण लीलाओं को लिख लिया करते और प्रत्येक लीला-चिन्तन के बाद वे लिखा करते—ऐसा कब होगा ? उनके सेवा की उत्कण्ठा दिनोदिन बढ़ने लगी। कभी-कभी एक-एक लीला की भावना कई दिनों तक भी चलती रहती। इन मधुरातिमधुर लीलाओं के प्रत्यक्ष दर्शन के लिए उनके प्राण अकुलाने लगे। वे शीध-से-शीघ्र इन लीलाओं में स्वयं सम्मिलित होना चाहते थे।

श्रीयुगल सरकार के लिये उनके हृदय में तड़पन थी, नयनों में अश्रु थे, अधरों पर मनुहार-पुकार थी और चित में नवीन-नवीन मधुरतम अभिलाषा थी कि कब वह दिन आयेगा जब वे साक्षात् युगल सरकार की सेवा, स्वकरों से करेंगे।

इन्ही मधुरातिमधुर लीला-चिन्तन में डूबे श्रीबंकाजी ने अपने मनोरथ की एक सौ आठ अभिलाषाएँ लिखीं जो बाद में अभिलाषामृत नामक पुस्तक में प्रकाशित हुई। इन्ही लीलाओं में से प्रारम्भिक दो लीलाओं को यहाँ उदाहरण स्वरूप दिया जा रहा है जिससे पाठक कुछ अनुमान लगा सकें की श्रीबंकाजी के हृदय में कैसे भाव थे।

॥ श्रीहरिः ॥

(१)

चन्दन के पलंग का चन्दनी सुवास वायुमण्डल को आप्लावित कर रहा है। शय्या की श्वेत चादर चाँदनी-रात में चमकने वाली सरिता की धवल शोभा का अपहरण कर रही है। स्पर्श-सुख प्रदान करने वाले कोमल तकिये पर पुष्प जगत की सम्पूर्ण कोमलता बलिहारी है।

उसी तकिये पर अपने शीश को टेककर सोयी हुई श्रीकृष्णप्रिया के दोनों कमल-नयन मुँदे हुये हैं और समीप ही बैठे हुये श्रीराधाप्रियतम अपनी प्राणप्रिया पर पवन-संचार कर रहे हैं।

उसी पलंगके समीप बैठकर मैं भी श्रीकृष्णजीवना राधा के श्रीचरणों के कोमल तलवों में तेल लगाऊँ........... धीरे-धीरे सहलाऊँ..........., ऐसा कब होगा ?

****

॥ श्रीहरिः ॥

(२)

सखियाँ अपनी स्वामिनी श्रीराधारानी को सजाने की तैयारी में व्यस्त हैं। कोई पुष्पों की माला का निर्माण कर रही है। कोई चन्दन का सुवासित लेप तैयार कर रही है। कोई अवसरोपयुक्त वस्त्रालंकार का संचयन कर रही है।

परन्तु प्रियतम श्यामसुन्दर अपनी प्राणाराध्या राधा को मनाने में व्यस्त हैं। वे चरण-कमलों पर महावर लगाने की आज्ञा चाहते हैं और आज्ञा मिल भी गयी।

सर्वांग-सुन्दरी श्रीराधा के श्रीचरणों को सुचित्रित करने वाली रंगीन तूलिका प्रियतम श्यामसुन्दर की कोमल अँगुलियों में हो......... और सुचित्रण करने के लिये रंग प्रदान करने वाला महावर का पात्र मुझ समीपस्था की हथेली पर हो.........., ऐसा कब होगा ?

****

ऐसी ही और इससे भी मधुर, एक सौ आठ लीलाओं का संकलन है उनकी पुस्तक अभिलाषामृत में। श्रीबंकाजी के हृदय की भावनाओं को अगर ठीक से समझना है तो उनकी सभी लीलाओं-अभिलाषाओं को पढ़ना चाहिये। अभिलाषामृत पुस्तक के अंत में उन्होंने अपनी अभिलाषा के सारांश रूप में निम्नलिखित पंक्तियाँ लिखीं—

इस जीवन में उदित कभी क्या, होगा शुभ दिन रसमय अभिनव।
राधा रानी मुझे बुलाकर, सिर पर रख दे निज कर-पल्लव॥
तथा कहेंगी मुझ दासी को, जिनकी वाणी में वीणा-रव।
कर पद-सेवा शयन-कक्ष में, प्रतिनिशि आकर नित ही नव-नव॥

****

ब्रज रज वटी

अपने परम आत्मीय जनों को प्रेरित करके पूज्य श्रीराधाबाबा ने ब्रज मण्डल के सभी मुख्य स्थानों की पावन रज का संग्रह करवाया था। संग्रह की प्रक्रिया को देखकर बड़ा विस्मय होता है कि कितनी गहरी श्रद्धा के साथ यह कार्य किया गया है। प्रतिदिन बाबा इस ब्रज रज का सेवन किया करते थे। इसमें ब्रजभूमि के असंख्य स्थानों की रज मिश्रित है।

बाबा की ऐसी भावना थी कि मृत्यु के समय यदि किसी व्यक्ति को यह ब्रज रज वटी दे दी जाये तो उसका परम कल्याण होगा, हाँ उसे इसके महत्त्व के बारे में यथासम्भव बता देना चाहिये और यह रज कहाँ-कहाँ से ली गयी है, यह भी बता देना चाहिये। इस ब्रज रज वटी का संग्रह कहाँ-कहाँ से किया गया है यह नीचे लिखा जा रहा है।

- ब्रज चौरासी कोस की यात्रा में एक-एक मिनट पर उठाई हुई समस्त मार्ग की रज।
- ब्रज यात्रा में जो-जो सरोवर, कुण्ड आये उनकी गीली रज जैसे—कृष्णकुण्ड, राधाकुण्ड, गोविन्दकुण्ड, प्रेमसरोवर, मानसरोवर इत्यादि।
- ब्रज यात्रा में आये सारे देव मन्दिर और श्रीतुलसीजी की रज।
- ब्रज यात्रा में आये जल तीर्थ जैसे मानसी गंगा, कृष्ण गंगा इत्यादि की रज।
- चौरासी कोस में यमुनाजी की विभिन्न स्थानों से ली गई गीली रज।
- यात्रा में श्रीराधा, श्रीकृष्ण, श्रीदाऊजी आदि के चरण चिन्हों की रज।
- यात्रा में आये अन्य कई प्रकार के दर्शनीय स्थल जैसे—चरण पहाड़ी, व्योमासुर की गुफा, भोजन थाली इत्यादि स्थानों की रज।
- श्रीलीला पुरुषोत्तम की लीला स्थली—उखल बंधन, मिट्टी भक्षण, आँख मिचौली लीला, महारास आदि स्थानों की रज।
- ब्रज यात्रा में जितने वन और कदम खण्डी आई उनकी रज जैसे कामवन, कोकिलावन, भाण्डीरवन आदि।
- ब्रज यात्रा के वट-पीपल-कदम्ब इत्यादि वृक्षों से ली हुई रज जैसे—टेर कदम्ब, अक्षय वट, भाण्डीरवट आदि।
- महात्माओं की तपोभूमि या समाधि-स्थल की रज जैसे—श्रीवल्लभाचार्यजी की बैठक, श्रीरूप-सनातन गोस्वामी की समाधि आदि।
- श्रीगिरिराज गोवर्धनजी की रज, परिक्रमा करके चारों ओर से तलहटी की 14 मील की मिनट-मिनट के अन्तर पर ली गई रज।
- घाटों की, मन्दिरों की, कंस के टीले आदि लीला स्थलों की चारों ओर परिक्रमा करके ली गयी रज।
- श्रीनाथजी के चरणों की रज, नाथद्वारा।
- वृन्दावन के श्रीबांकेबिहारीजी के सर्वांग में लेपन किया हुआ अक्षय तृतीया का प्रसादी चन्दन।
- श्रीद्वारकाजी से आया हुआ श्रीगोपी तलाई का गोपी चन्दन।

बाबा इस ब्रज रज वटी के तीन प्रकार के प्रयोग बताया करते थे। सर्वांग में लेपन करना, तिलक स्वरूप धारण करना और प्रसाद पाना। किसी भी देवी-देवता को यह नहीं चढ़ाना चाहिये क्योंकि इसमें भक्तों की चरण रज भी मिली हुई है।

श्रीबंकाजी प्रतिदिन इस ब्रज रज वटी की एक चुटकी अतिशय श्रद्धापूर्वक अपने मुख में पान किया करते थे। वे इस ब्रज रज वटी का तिलक, एक गोल बिन्दी के रूप में अपने भाल पर भी किया करते थे। इस गोल बिन्दी के मध्य में वे एक बहुत छोटी सी लाल बिन्दी भी लगाया करते थे।

एक बार मैं अपने दोनों पुत्रों के साथ गीतावाटिका गयी हुई थी। हमलोग सब श्रीबंकाजी के पास सहज रूप से बैठे थे और वे हमें ब्रज की भिन्न-भिन्न कथा कहानी सुना रहे थे। यह बात लगभग 2007 या 2008 की होगी। कथावार्ता के मध्य उन्होंने हमलोगों को ब्रज रज वटी प्रदान की और कहा कि प्रतिदिन इसके कुछ कणों का मुख में पान करना है और तिलक लगाना है। फिर उन्होंने अपने भाल पर लगी गोल ब्रज रज वटी की बिन्दी की ओर इशारा करते हुए कहा कि—ऐसा तिलक लगा सकते हो या वैष्णव तिलक भी लगा सकते हो।

श्रीबंकाजी के तिलक के मध्य में एक लाल रंग की छोटी सी बिन्दी भी थी। उस लाल बिन्दी की ओर इशारा करते हुए मेरे पुत्र देवर्षि ने पूछा—बड़े नानाजी, यह ब्रज रज वटी की बिन्दी के बीच में लाल बिन्दी क्या है?

इसके पहले कि श्रीबंकाजी कुछ कहते मेरे मुख से निकल गया—यह तो राधा कुण्ड के बीच में स्थित रंग महल है।

मेरे शब्दों को सुनकर श्रीबंकाजी अत्यधिक प्रसन्न हुए और खिलखिलाकर हँसते हुए बोले—लाली! बड़ी चंट हो गयी है तू तो! तेरी बुद्धि की बलिहार है!

'राधाकुण्ड के बीच में रंग महल है' इन शब्दों का अर्थ वही समझ सकता है जिसने श्रीबंकाजी की पुस्तक अभिलाषामृत में यह मधुर लीला पढ़ी हो। यह लीला इस प्रकार है।

****

॥ श्रीहरि: ॥

श्रीराधा-कुण्ड की शोभा निराली है। कुण्ड के मध्य में हंस के आकार का एक रंग-महल है। कुण्ड में विभिन्न रंग के अनेक कमल पुष्प खिले हये हैं। जलाशय में तैरते हुये हंसिनी-हंस सभी की दृष्टि को आकृष्ट कर लेते हैं। शीतल-मन्द-सुगन्ध पवन का स्पर्श सुहावना लग रहा है। कुण्ड की सीढ़ियाँ मणि-माणिक्य से निर्मित हैं। कुण्ड के आठों कोनों में अष्ट-सखियों के अष्ट-कुंज हैं। श्रीललिताजी का कुंज उत्तर दिशा की ओर है। ललिता-कुंज के घाट पर श्रीप्रिया-प्रियतम खड़े हैं और खड़ी हैं अन्य सखियाँ-सहचरियाँ भी।

श्रीप्रियाजी के मानस में एक मनोरथ का उद्भव होता है। मनोरथ यह है कि हम दोनों होड़ बद करके जल पर संतरण करें और देखें कि कौन पहले रंग-महल की सीढ़ियों का स्पर्श करता है। श्रीललिताजी तथा अन्य सभी इस बदा-बदी का सोल्लास अनुमोदन करती हैं।

श्रीप्रिया एवं श्रीप्रियतम कुण्ड में जल पर संतरण करते हैं और साथ में हम सब भी तैर रही हैं यह देखने के लिए कि सर्व-प्रथम कौन रंग-महल की सीढ़ियों का स्पर्श करता है। स्पष्ट लग रहा है कि श्रीप्रियाजी पहले स्पर्श कर लेंगी......, परन्तु यह क्या हुआ? संतरण करते-करते श्रीप्रियाजी डुबकी लगा लेती हैं और श्रीप्रियतम बाजी जीत लेते हैं।

रात्रि के समय निकुंज में एकान्त और अनुकूल अवसर पाकर मैं श्रीप्रियाजी से प्रश्न करती हूँ—हे स्वामिनि! आपने जीतते-जीतते डुबकी क्यों लगा ली?

श्रीप्रियाजी उत्तर में कहती हैं—मैं अपने प्रियतम की हार नहीं देख सकती। मेरी यही भावना है कि वे सदा विजयी हों।

ऐसा सुनते ही परमोल्लास में मेरे अधरों से स्वर फूट पड़े—इस तत्सुखी-भावना की सदा जय हो........., ऐसा कब होगा?

****

इस लीला में राधाकुण्ड के मध्य में एक सुन्दर रंग महल है। श्रीबंकाजी

के भाल की बिन्दी को देखकर मुझे इसी लीला की स्मृति हो आई थी और मैंने कह दिया था कि लाल बिन्दी तो राधाकुण्ड का रंग महल है।

इस सारे प्रसंग को बताने का तात्पर्य बस इतना था कि श्रीबंकाजी अतिशय श्रद्धापूर्वक ब्रज रज वटी का तिलक किया करते थे और अपने अनुचरों को भी करने के लिये कहते थे।

****

ब्रज यात्रा का विचार

श्रीबंकाजी श्रीप्रियाप्रियतम श्रीराधामाधव के उपासक थे और मधुर-भाव से निकुंज में सेवा करते थे, इसलिये वृन्दावन धाम उन्हें सदा से ही बहुत आकृष्ट करता था। ऐसे तो अपनी माँ के साथ तीर्थ-यात्रा के अवसर पर और बाबूजी के साथ भी इनकी ब्रज यात्रा कई बार हो चुकी थी परन्तु ब्रज में वास करने का और कुछ महीनें वहाँ रहकर साधन-भजन करने का लोभ सदा ही इनके मन में बना रहता था। जब ये बाबूजी के साथ काम कर रहे थे तब भी ब्रज जाने की इच्छा तो होती थी पर एक तो बाबूजी का साथ था और दूसरा गीताप्रेस का काम इतना अधिक होता था कि उससे फुर्सत ही नहीं मिलती थी, अत: उनका उस काल में ब्रज में जाकर रहना नहीं हो सका।

बाबूजी के जाने के बाद परिस्थितियाँ अब बिलकुल भिन्न थीं। पहले कार्य बाहुल्य था अब समय बाहुल्य था। श्रीबंकाजी अक्सर बाबा के पास रात्रि के समय एकान्तिक वार्तालाप में बैठा करते थे जहाँ सिर्फ वाटिका के ही कुछ निज जन और परिकर हुआ करते थे। उस वक्त भी चर्चा का विषय घूम फिरकर ब्रज-वृन्दावन-गोवर्धन पर ही आ जाया करता था। बाबा की पुस्तक जय जय प्रियतम के दूसरे शतक में श्रीराधाकुण्ड, श्रीकृष्णकुण्ड, श्रीगिरिराज गोवर्धन, सूर्यकुण्ड, अष्ट सखियों के अष्ट कुंज आदि का विस्तृत वर्णन है। इन दिनों बाबा अक्सर, बातों के मध्य में अपने काव्य की कोई-न-कोई पंक्ति सुनाकर उसका वर्णन किया करते थे। जब-जब वृन्दावन का, गिरिराज गोवर्धन का वर्णन आता तो श्रीबंकाजी का हृदय विगलित होने लगता और उनका हृदय ब्रजवास के लिये मचल उठता था।

एक दिन, एकान्तिक वार्तालाप में अवसर देखकर श्रीबंकाजी ने बाबा से कहा—बाबा, मैं ब्रज मण्डल स्थित श्रीगिरिराजजी की एक सौ आठ परिक्रमा देना चाहता हूँ। इसी प्रकार कुछ काल ब्रज में रहने का सौभाग्य भी प्राप्त हो जायेगा। आपकी अनुमति चाहता हूँ। मैं तो आपका बालक हूँ, आपकी प्रसन्नता यदि हो और आप आज्ञा दें तो मैं गोवर्धन जाना चाहता हूँ।

श्रीबंकाजी की बात सुनकर बाबा बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने कहा—उत्तम! आपका विचार अतिउत्तम है। प्रत्येक साधक के जीवन में तप बहुत महत्त्वपूर्ण होता है पर उसको करने की एक विधि है। आप अवश्य गोवर्धन जाइये और वहाँ के स्थानीय महान् सन्त पण्डितजी (परम श्रद्धेय सन्त प्रवर श्रीगयाप्रसादजी महाराज) के आनुगत्य में इस एक सौ आठ परिक्रमा के महा अनुष्ठान को पूर्ण कीजिये। वे हर प्रकार से आपकी सम्भाल करेंगे और आपके अनुष्ठान की पूर्ति में सहायक होंगे।

पण्डितजी का विस्तृत परिचय देते हुए बाबा ने बताया—पूज्य श्रीपण्डितजी साक्षात् हरिदासवर्य गिरिराज स्वरूप ही हैं। श्रीगिरिराजजी की तलहटी में उनके अखण्ड निवास ने, उनकी स्वभावसिद्ध विरक्ति ने, श्रीगिरिराजजी एवं श्रीबालकृष्ण के प्रति उनकी वात्सल्य-भाव प्रधान भक्ति ने, अपनी दिव्यातिदिव्य उपलब्धियों—अनुभूतियों-साधना एवं सिद्धि की हिमालय सदृश ऊँचाइयों को सहज ही नम्रता एवं दैन्य के आवरण में गोपनीय रखने के स्वभाव ने तथा साधुशाही रहनी-सहनी ने उन्हें जगद्वन्द्य बना दिया है। भारत की लगभग समस्त विभूतियों ने उनके दर्शन श्रीदानघाटी स्थित श्रीलक्ष्मीनारायण मन्दिर में स्वयं पधार कर किए हैं। वे दैन्य, त्याग और वैराग्य की साक्षात् मूर्ति हैं। **राम चरन पंकज प्रिय जिन्हही। बिषय भोग बस करहिं कि तिन्हही॥**

बाबा आगे बताते चले गये, श्रीपोद्दारजी महाराज के साथ एक-दो बार मुझे भी उनके दर्शन का सौभाग्य सुलभ हुआ था। ब्रजवासी जनों के प्रति उनके हृदय में अत्यन्त आदर एवं आत्मीयता का भाव है। उनकी दृष्टि में ब्रज के समस्त मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट, पतंग ,वृक्ष, लता, तृण, पत्र, पुष्प

जड़-चेतन सभी श्रीकृष्ण लीला परिकर ही हैं। श्रीरासबिहारी स्वरूपों के प्रति उनका अति विलक्षण भाव है। वे श्रीरासबिहारी स्वरूपों की साक्षात भगवद्भाव से प्रेमपूर्वक सेवा किया करते हैं। श्रीरासबिहारी स्वरूप चाहे स्वरूप-श्रृंगार में हो या श्रृंगार-रहित हो, स्वरूपों के प्रति उनका सदैव भगवद्भाव युक्त ही व्यवहार एवं सम्मान होता है। यदि आप वस्तुतः भगवत्प्रेम के पथ पर चलना चाहते हैं तो मथुरा मण्डल अन्तर्गत गोवर्धन जाकर श्रीपण्डितजी महाराज से मिलें। वे साधना के साकार स्वरूप हैं। उनके आनुगत्य में रहकर अनुष्ठान सम्पन्न करना आपका परम सौभाग्य होगा।

पूज्य बाबा बहुत देर तक पण्डितजी श्रीगयाप्रसादजी महाराज की महिमा का बखान करते रहे और उनके दिव्य गुणों को स्मरण करके भाव विभोर होते रहे। ऐसे तो श्रीबंकाजी पहले से ही पण्डितजी के बारे में जानते थे परन्तु बाबा के श्रीमुख से उनका विस्तृत परिचय जानकर उन्हें बहुत प्रसन्नता हुई। ऐसे महा महिमामय सन्त के चरणाश्रय में अनुष्ठान काल में, स्वयं को सौंप देना उन्होंने अपना परम सौभाग्य माना।

बाबा से हुए इस वार्तालाप को कई महीने बीत गये। श्रीबंकाजी को बाबा ने ब्रज जाने की आज्ञा दी है यह बात वाटिका में बहुत लोग जानते थे पर वे कब जायेंगे और कैसे, इस बात की कोई पक्की खबर नहीं थी। गीतावाटिका में जो भी सुनता कि श्रीबंकाजी बाबा की आज्ञा से एक सौ आठ परिक्रमा देने गोवर्धन जा रहे हैं, वह उनके भाग्य की सराहना करने लगता। उन दिनों श्रीबंकाजी को मात्र ढाई सौ रुपय प्रति माह मिला करते थे इसलिये उनके पास सदैव आर्थिक तंगी बनी रहती थी और ब्रज में चार महीने वास करने के लिये और आने-जाने के लिये पर्याप्त किराये और खर्च की आवश्यकता थी। अपने संकोची स्वभाव के कारण श्रीबंकाजी किसी से कभी कुछ माँगते नहीं थे। इस अवसर पर, कुछ लोगों ने स्वयं आगे बढ़कर उनकी सहायता की जो उन्होंने सहर्ष स्वीकार की। एक-एक रुपया जोड़कर उन्होंने चार मास के लिये पर्याप्त धन-राशि एकत्रित की और 1974 के चातुर्मास में बाबा की आज्ञा और आशीर्वाद के साथ उन्होंने वृन्दावन की यात्रा की।

****

पण्डितजी श्रीगयाप्रसादजी से मिलन

जो साधक परम सिद्ध सन्तों के आश्रय में रहते हैं उनके जीवन का संचालन वे सन्त स्वयं ही करते हैं। परम वत्सला भगवत्कृपा शक्ति ने श्रीबंकाजी के भावी साधन-पथ को विघ्न रहित बनाने हेतु श्रीगिरिराजजी की एक सौ आठ परिक्रमा कर लेने की प्रेरणा दी तथा उन्हें इस प्रकार ब्रजमण्डल के सिरमौर सन्त पूज्य पण्डित श्रीगयाप्रसादजी महाराज के चरणों तक पहुँचा दिया। पूज्य श्रीपण्डितजी ने इन्हें गीतावाटिका की धरोहर समझकर न केवल सहलाया, अपितु अपने प्यार-दुलार से अभिषिक्त करके, इन्हें अनुष्ठान को सम्पन्न कर सकने के लिए आवश्यक आत्मिक-बल भी दिया। अनुष्ठान पूरा होत-न-होते श्रीबंकाजी के पथ का कुहरा तथा भ्रम के बादल छट चुके थे और पूज्य पण्डितजी द्वारा मिली दृष्टि के आलोक में, अपने गन्तव्य तक ले जाने वाला मार्ग उन्हें स्पष्ट दिखाई देने लग गया था। हरिदासवर्य श्रीगिरिराजजी ने उनकी माँग से कहीं अधिक उनकी झोली में डाल दिया था।

जब श्रीबंकाजी के पास यात्रा के लिये पर्याप्त धन की व्यवस्था हो गयी और वे परिक्रमा के लिए श्रीगोवर्धन धाम जाने वाले थे तो उन्होंने बाबा से कहा—बाबा! जब गोवर्धन में रहूँगा तो किसके आश्रय में रहूँगा? आप श्रीहरिबल्लभजी से कह दें कि गोवर्धन वाले पूज्य पण्डित श्रीगयाप्रसादजी महाराज से वे आपकी ओर से निवेदन कर दें कि—मैं अपनी वस्तु अर्थात बंका को, कुछ दिनों के लिए आपके संरक्षण में छोड़ रहा हूँ।

श्रीबंकाजी के ऐसा कहने का प्रयोजन यही था कि स्वतंत्र रहना उचित नहीं। मनुष्य चंचल स्वभाव का होता है। न चाहते हुए भी गलती हो ही जाती है। जीवन की राह में, पता नहीं कब कौन-सी चूक हो जाये। गोवर्धन में रहते हुए पूज्य पण्डितजी की छाया मिल जाये इस भावना से प्रेरित होकर ही सहज ढंग से यह बात उन्होंने बाबा से कह दी। श्रीबंकाजी की बात सुनकर बाबा का जी भर आया। उनके चहरे की आभा ही उनके अंतर की प्रशंसा को प्रकट कर रही थी। बाबा न जाने कितनी बार अपने ग्रन्थ जय जय प्रियतम में वर्णित श्रीगिरिराजजी के श्रेष्ठ हरिदास तत्व की चर्चा श्रीबंकाजी के सामने कर चुके

थे। उनके नैनों की भंगिमा यही कह रही थी कि—मैं तुम्हें उतनी अवधि के लिए श्रेष्ठ हरिदासवर्य पण्डित श्रीगयाप्रसादजी को सौंप रहा हूँ, फिर तुरन्त ही श्रीबंकाजी की आशा को पोषण करने के लिए बाबा ने स्पष्ट रूप से अपनी वाणी से कहा—अरे भैया! मैं तुम्हें हरिदासवर्य श्रीगिरिराजजी महाराज को सौंपता हूँ। वे तेरी हर प्रकार से सम्भाल करेंगे।

ऐसा सुनते ही श्रीबंकाजी बाबा के चरणों में लोटने लगे और उनके श्रीचरण रज को अपने मस्तक पर धारण करने लगे। बाबा की आज्ञा और आशीर्वाद के साथ श्रीबंकाजी गोवर्धन पहुँचे और दान घाटी स्थित श्रीलक्ष्मीनारायण मन्दिर में पूज्य पण्डितजी के दर्शन के लिये गये।

परम पूज्य श्रीपण्डितजी इस युग की भगवद्विभूतिस्वरूप थे। आपका श्रीविग्रह पांचभौतिक न होकर असीम प्यार की धातु से निर्मित था। आपका हृदय वात्सल्य रस का सागर था। आपके हृदय के कोने-कोने में अपने हृदय-धन, प्यारे-दुलारे कन्हैया के प्रति अनन्त, अगाध, प्यार-ही-प्यार भरा था। आपके हृदय की यह परम पावन प्रीति आपके जीवन के प्रत्येक व्यवहार में, आपके शरीर की प्रत्येक चेष्टा में, आपके अन्तःकरण के प्रत्येक संकल्प में परिव्याप्त थी। ऐसा होकर भी आपका स्वभाव अत्यन्त गोपनप्रिय था। आप अपने वात्सल्य-भाजन-शिशु-स्वरूप श्रीकृष्ण की इस आनन्दरूपा प्रीति को अपने अन्तर में महा मूल्यवान मणि की भाँति छुपाए रखना चाहते थे और अन्त तक छुपाए रखने के प्रयत्न में ही सतत लगे रहे। उनके बाहरी स्वरूप को देखकर कोई अनुमान भी नहीं लगा सकता था कि यह कोई सन्त है, इतनी सहज वेशभूषा थी।

परम अनुग्रहशील सन्त का चार मास का सान्निध्य श्रीबंकाजी के जीवन का अति महत्त्वपूर्ण काल सिद्ध हुआ। पूज्य पण्डितजी की कुटिया के समीप एक छोटा निम्ब वृक्ष था। सभी आगन्तुक, चाहे गृहस्थ हो अथवा साधु, चाहे बालक हो या वृद्ध, सभी उस वृक्ष की छाया में भूमि पर बैठा करते थे। श्रीबंकाजी भी गये और प्रणाम करके पण्डितजी के समक्ष भूमि पर बैठ गये और अपना परिचय बताया।

इधर श्रीबंकाजी का भूमि पर बैठना था और उधर पूज्य पण्डितजी ने अपने निजी परिकर श्रीरामदासजी को कुछ संकेत किया। श्रीबंकाजी उस संकेत को समझ नहीं सके। संकेत पाते ही श्रीरामदासजी कुटिया के भीतर गए और एक चटाई ले आये और वह चटाई पूज्य पण्डितजी के सामने फैला करके भूमि पर बिछा दी। जब चटाई बिछ गई, पण्डितजी ने कहा—आप इस चटाई पर बैठ जायें।

श्रीबंकाजी ने संकोचपूर्वक विनम्र स्वर में कहा—मैं यहाँ ठीक से बैठा हूँ।

पूज्य पण्डितजी—मेरा निवेदन है कि आप इस चटाई पर बैठ जाये।

पूज्य पण्डितजी की आज्ञा माननी ही थी। श्रीबंकाजी चटाई पर बैठ गये। पूज्य पण्डितजी की आज्ञा से श्रीबंकाजी चटाई पर बैठ तो गये पर उनके मन में संकोच के साथ-साथ अनेक प्रश्न थे कि मुझ जैसे साधारण बालक के साथ इतने बड़े सन्त का ऐसा सम्मान सूचक बर्ताव क्यों हो रहा है?

श्रीबंकाजी के चहरे पर उठते हुए भाव को पूज्य पण्डितजी ने देखा और धीरे-धीरे कहा—मैं आपको नहीं बैठा रहा हूँ, मैं 'उनको' अर्थात श्रीराधाबाबा को बैठा रहा हूँ जिन्होंने आपको श्रीगिरिराजजी भगवान की परिक्रमा के लिए भेजा है।

अब श्रीबंकाजी के पास कोई शब्द कहने के लिए रह नहीं गये थे। वे बार-बार उनकी भाव धारा और चिन्तन शैली पर मन-ही-मन विभोर हो रहे थे।

पण्डितजी ने जब श्रीबंकाजी का कुशल समाचार पूछा और आने का कारण पूछा तब श्रीबंकाजी ने उनसे कहा—**नाथ कुसल पद पंकज देखें। भयउँ भाग भाजन जन लेखें॥** आप सच मानिये आज यह चैपाई मेरे जीवन में मूर्तिमान हो गयी है। आप जैसे सिद्ध सन्त का दर्शन पाकर मैं धन्य-धन्य हो गया। मेरे भाग खुल गये। बाबा की आज्ञा से मैं श्रीगिरिराजजी महाराज की एक सौ आठ परिक्रमा करने आया हूँ। इस महा अनुष्ठान को अब आपको

ही पूरा करवाना है। भले आप मेरी प्रार्थना न सुनना चाहें पर कम-से-कम इसी नाते सुन ले कि यह शिशु वाटिका की वस्तु है। बाबा-बाबूजी की वस्तु है, इसी नाते आप मुझे सम्भाल लें। आप मेरे आचरण की ओर मत देखियेगा क्योंकि मैं तो सदा ही आलोच्य-अयोग्य रहूँगा। आप अपनी ओर देखकर इस शिशु की सम्भाल कर लीजियेगा।

श्रीबंकाजी के हृदय की भाव भरी विनीत वाणी सुनकर पण्डितजी को बहुत संतोष हुआ और उन्होंने अपना आशीर्वाद और आश्वासन प्रदान किया और विस्तृत रूप से उनके रहने और भोजन आदि के बारे में पूछा। सब प्रकार से व्यवस्था करके, अगले दिन से अनुष्ठान आरम्भ करने की आज्ञा प्रदान की। श्रीबंकाजी प्रसन्नचित्त हो अपने निवास कक्ष पर लौट आये।

****

श्रीगिरिराजजी की परिक्रमा

अप्रैल 1975 के चातुर्मास में, परम पूज्य श्रीराधाबाबा की सत्प्रेरणा से श्रीबंकाजी, श्रीगिरिराजजी की एक सौ पन्द्रह परिकमा लगाने श्रीगोवर्धन धाम पधारे। यह श्रीबंकाजी के पावन जीवन की अति महत्त्वपूर्ण, कठोरतम तपस्या थी। चलने का अभ्यास एकदम न होने के कारण पहले कुछ दिन तक, एक परिक्रमा लगाने में उन्हें तीन दिन का समय लगता था। फिर कुछ अभ्यास होने पर दो दिन में एक परिक्रमा लगाने लगे। करीब दो-तीन सप्ताह का लगातार अभ्यास बढ़ने पर एक दिन में एक परिक्रमा लगाने लगे। अन्तिम के दस-बारह दिन, प्रतिदिन डेढ़ परिक्रमा लगाकर उन्होंने इस महद् अनुष्ठान को पूर्ण किया।

श्रीबंकाजी परिक्रमा-मार्ग में स्थित एक ब्रजवासी चौबेजी के एकान्त कक्ष में रहते थे। कक्ष के सामने बरामदा था। आगे खुली जगह में पीपल का पेड़ एवं कुँआ था। परिक्रमा-अवधि में श्रीबंकाजी की दिनचर्या इस तरह रही—

श्रीबंकाजी प्रात: ब्रह्ममुहूर्त में जगते। शौचादि से निवृत्त हो दाँतुन कर

मुख-प्रक्षालन करके स्नान करते। सूर्यादय से पहले ही सन्ध्या-वन्दन कर लेते। सन्ध्या-वन्दन के तुरन्त बाद अपने हाथ में माला-झोली सम्भाले परिक्रमा मार्ग पर पहुँच जाते। श्रीगिरिराजजी की ओर मुख करके भूमि पर पाँच बार साष्टांग दण्डवत् प्रणाम करके परिक्रमा का श्रीगणेश करते। तदनन्तर शान्तचित्त, दृढ़ मौन धारण करके, अनवरत जप करते हुए, एकाग्र मन से, मन्थर गति से, लीला चिन्तन करते हुए और स्वयं अपने सिद्धदेह की भावना करके परिक्रमा लगाते। बीच-बीच में पावन श्रीराधाकुण्ड, श्रीश्यामकुण्ड, एवं परम पावनी मानसी गंगा के तट पर जाकर श्रद्धा सहित नमन करके जल से आचमन करते। परिक्रमा-मार्ग में स्थित मन्दिरों, मठों, वृक्षों, साधु-सन्तों को भी नमन-वन्दन करते चलते। परिक्रमा-सम्पूर्ण होने पर पुनः पाँच साष्टांग दण्डवत् प्रणाम करते, तब अपने एकान्त कक्ष में पहुँचते।

दैनिक परिक्रमा पूर्ण करने के उपरान्त श्रीबंकाजी बरामदे में बैठकर नमक डाले हुए सहते-सहते गर्म पानी से पैरों की पिण्डलियों और तलवों को धोते, धीरे-धीरे पानी डालकर पैरों पर सेंक करते। ऐसा करने से पैरों की थकान हल्की होने पर राहत मिलती। कुछ देर विश्राम करके भोजन पकाते, भगवान् को भोग लगाते। श्रीरामचरितमानस का पारायण और श्रीहनुमानजी का पूजन करके प्रसाद पाते। उनका मानना था कि श्रीहनुमानजी की पूजा साधना को बढ़ाने में सहायक होती है। परिक्रमा की अवधि में उन्होंने किसी अन्य व्यक्ति के हाथ का पकाया भोजन नहीं किया। भोजनोपरान्त विश्राम कर लेने पर करीब चार बजे सायं ब्रजवसुन्धरा के मूर्धन्य सन्त परम पूज्य पण्डित श्रीगयाप्रसादजी के दर्शनार्थ, दानघाटी पर स्थित, श्रीलक्ष्मीनारायणजी के मन्दिर में नियमित रूप से जाते।

श्रीबंकाजी ने जब गिरिराज परिक्रमा की तब 108 परिक्रमा के बाद सात परिक्रमा और की थी। उनसे पूछने पर उन्होंने बताया कि सात अतिरिक्त परिक्रमा करने के दो कारण थे। पहला कारण यह था कि—श्रीगोवर्धन ग्राम स्थित श्रीगिरिराज भगवान की परिक्रमा सात कोस की है। सात वर्ष की आयु वाले कन्हैया ने ब्रज-वासियों की रक्षा के लिए, सात कोस वाले गिरिराज

भगवान को अपनी कनिष्ठिका अँगुली पर सात दिन तक उठाये रखा था। इस कारण से उन्होंने सात अतिरिक्त परिक्रमा लगाना उचित समझा और दूसरा कारण उन्होंने बताया कि सात परिक्रमा के निम्नलिखित सात कारण भी थे—

1. बाबूजी-बाबा के लिये
2. मैया (बाबूजी की पत्नी) और सावित्रीबाई फोगला के लिये
3. बाबा-बाबूजी को अपना सर्वस्व मानकर चलने वाले समस्त परिकरों के लिये
4. जन्मदात्री माँ के लिये
5. सीताबाई पोद्दार और कमलजी ने कह दिया था, उनके लिये
6. गीतावाटिका और गोवर्धन के स्थानीय सहयोगियों के लिये जिन्होंने इस अनुष्ठान के लिये आर्थिक और समयानुकूल सेवा प्रदान की थी।
7. अखिल ब्रह्माण्ड के लिये

पूज्य पण्डितजी ने जब यह सारा विवरण सुना तो रीझ गये। सिर्फ रीझ ही नहीं गये, वे बह गये। उन्होंने श्रीबंकाजी को गले लगा लिया और बोले—बहुत सुन्दर! बहुत सुन्दर! यह बुद्धि कैसे उपज गयी?

श्रीबंकाजी ने विनम्र स्वर में पण्डितजी की, आँखों-से-आँखें मिलाते हुए कहा—ऐसी बुद्धि आप ही तो देंगे।

ऐसा सुनना था कि पण्डितजी ने श्रीबंकाजी को पुनः अपनी छाती से चिपका लिया। श्रीबंकाजी धन्य-धन्य हो गये।

श्रीबंकाजी के शीश पर हाथ फेरते हुए पण्डितजी ने कहा—शिष्य में कहीं कोई विशेष भाव जागृत हुआ है तो उसके मूल में सिर्फ शिष्य का संस्कार और पुरुषार्थ ही नहीं है, उसका साधन ही नहीं है, उसके मूल में आचार्य अनुग्रह है, गुरुजनों की कृपा है, क्योंकि गुरुजनों का प्रसाद, उनकी करुणा ही शिष्य में झलकती है। आप पर बाबा की बहुत कृपा है।

श्रीबंकाजी का श्रीगोवर्धन में चातुर्मास के चार महीने रहने का उद्देश्य था जिससे एक सौ पन्द्रह परिक्रमा का उनका महा-अनुष्ठान पूर्ण हो सके।

उस अनुष्ठान की कठिनाई को झेल पाना उनकी क्षमता से परे की बात थी। परिक्रमा करते-करते वे कई बार हतोत्साहित हो जाया करते थे और मन-ही-मन यही सोचने लगते कि यह अनुष्ठान सम्पन्न नहीं हो पायेगा। लगभग पन्द्रह-बीस परिक्रमा करने के बाद उनका साहस टूट गया। अप्रैल से अगस्त तक की भीषण गर्मी, असह्य थकावट, पैरों में कष्ट, तलवों में घिसावट आदि कठिनाइयों के सम्मुख उन्होंने अपनी हार स्वीकार कर ली थी और गोरखपुर वापस लौट जाने की बात सोचने लगे थे। वापस लौटने से पहले पण्डितजी से आज्ञा लेना आवश्यक था। वे पण्डितजी के पास गये और परिक्रमा न लगा सकने की अपनी असमर्थता का वर्णन किया। मार्ग की कठिनाई और शारीरिक कष्ट को बताते हुए गोरखपुर वापस लौट जाने की आज्ञा माँगी।

श्रीबंकाजी के आज्ञा माँगते ही पण्डितजी का अनूठा वात्सल्य उनके ऊपर पूरे वेग से उमड़ पड़ा। **संत हृदय नवनीत समाना।** वे श्रीबंकाजी के घायल मन को धीरे-धीरे बड़े प्यार से सहलाने लगे। उनकी प्रेरणा पाकर श्रीबंकाजी ने फिर साहस किया और पुनः परिक्रमा करने लगे। किन्तु वे 25-30 परिक्रमा करके अपना साहस पुनः खो बैठे। घायल मन को कैसे चलाना चाहिए यह तो परम पूज्य पण्डितजी महाराज ही जानते थे।

पण्डितजी ने फिर श्रीबंकाजी के मन को धैर्य बँधाया और वे पुनः परिक्रमा करने लगे। यदि पण्डितजी का यह वात्सल्य, यह प्रोत्साहन और यह संरक्षण नहीं मिला होता तो उनका यह महा-अनुष्ठान पूर्ण ही नहीं होता। हाँ, एक दिन अवश्य पण्डितजी ने कहा कि—कल परिक्रमा करने मत जाना।

उन्होंने देख लिया था कि श्रीबंकाजी के पैरों के तलवे, रज की रगड़ से बहुत ही छिल गये हैं। इस पर उन्होंने कहा कि—रात को सोते समय गीली मेहंदी लगा देना, जिससे पैरों को आराम मिल जायेगा।

यह स्वयं में प्रमाण है कि उनके मन में निज जनों के प्रति कितना वात्सल्य और हित चिन्तन बना रहता था। जब मध्य जुलाई का समय आया तब आकाश में अधिक वर्षा होने के योग दिखाई देने लगे। चाँद देखकर पण्डितजी ने जान लिया कि अब भीषण वर्षा के योग हैं। अधिक वर्षा होने से

परिक्रमा मार्ग अवरुद्ध हो सकता है। उस प्रतिकूलता को यह राधेश्याम झेल नहीं पायेगा। ऐसा मन में विचारकर पण्डितजी ने श्रीबंकाजी से पूछा—आप प्रतिदिन एक परिक्रमा तो करते ही हैं, एक के अतिरिक्त और भी कर सकते हैं क्या? अब अधिक वर्षा के दिन आने वाले हैं और वर्षा में परिक्रमा करना बहुत ही कठिन होता है। इसीलिए डेढ़ परिक्रमा कर लिया करो तो अच्छा रहेगा। आपका अनुष्ठान शीघ्र पूर्ण हो जायेगा।

उस समय परिक्रमा मार्ग कच्चा था तथा आज जो पक्की सड़क दिखाई दे रही है, उस समय नहीं था। चिकनी मिट्टी और श्रीरज-रानी का ही अखण्ड साम्राज्य था, जिसमें पानी पड़ते ही जबरदस्त फिसलन हो जाया करती थी, जिसके कारण परिक्रमार्थियों को विशेष कठिनाई होती थी। परिक्रमा करते-करते श्रीबंकाजी को अब चलने का खूब अभ्यास हो ही गया था। पण्डितजी की आज्ञा उन्होंने स्वीकार कर ली। अगले दिन से श्रीबंकाजी डेढ़ परिक्रमा करने लगे। डेढ़ परिक्रमा लगाने से ही उनका यह अनुष्ठान भीषण वर्षा के पूर्व पूर्ण हो सका। सच तो यह है कि परम पूज्य पण्डितजी की दूरदृष्टि और कृपा के फलस्वरूप ही श्रीबंकाजी का श्रीगिरिराजजी की परिक्रमा का महा अनुष्ठान निर्विघ्न सम्पूर्ण हुआ।

श्रीबंकाजी ने बताया था कि—इस परिक्रमा के अनुष्ठान में कुछ लोगों से सहायता मिली। जिसने जितने अंश में सहायता दी है उतने अंश में भजन का हिस्सा उनको मिलेगा। भगवान के यहाँ सारा हिसाब किताब है।

****

पूज्य पण्डितजी का सतसंग

अपने ब्रजवास के समय श्रीबंकाजी प्रात:काल श्रीगिरिराज भगवान की परिक्रमा किया करते थे और अपराह्न काल में पूज्य श्रीपण्डितजी के पास सत्संग के लिये श्रीदानघाटी स्थित श्रीलक्ष्मीनारायण मन्दिर चले जाया करते थे। मौनव्रती पूज्य श्रीपण्डितजी सत्संग में आये हुए जिज्ञासुओं के प्रश्नों के उत्तर, स्लेट पर खड़िया की पेंसिल से लिख कर देते जिनकी व्याख्या उनके विशेष कृपापात्र शिष्य, पूज्य श्रीरामदासजी सरल भाषा में समझाते थे।

ऐसे तो प्रतिदिन का सत्संग ही बहुत सुन्दर और प्रेरणादायक हुआ करता था, कभी किसी ग्रंथ की चर्चा-व्याख्या होती तो कभी किसी साधक के प्रश्नों का उत्तर श्रीपण्डितजी देते पर दो दिन कुछ ऐसी खास बातें हुई जो श्रीबंकाजी के हृदय को छू गई। वह दो विशेष प्रसंग नीचे दिये जा रहे हैं।

एक दिन एक जिज्ञासु ने पूज्य श्रीपण्डितजी से निवेदन किया कि मुझ पर ईश्वर की कृपा हो जावे ऐसी विधि बता दें। पूज्य श्रीपण्डितजी ब्रज भाषा ही बोलते व लिखते थे। उन्होंने अपनी स्लेट पर लिखा—

- तुम्हारौ जन्म भारतवर्ष में भयौ।
- ब्राह्मण कुल के हौ।
- ब्रज में आनौ भयौ।
- श्रीगिरिराजजी की परिक्रमा हू लगाय लई।
- सन्तों के दर्शन को सौभाग्य मिल्यौ।
- ईश्वर की कृपा पाइबे की उत्कण्ठा भई।
- यह सब ईश्वर की कृपा ही तो है।

इस वार्तालाप को सुनकर श्रीबंकाजी गहरे सोच में डूब गये। वे विचार करने लगे कि मैं हर वक्त सोचता रहता हूँ कि—मैं गरीब हूँ, अनाथ हूँ, अयोग्य हूँ, अकिंचन हूँ, मुझपर कभी प्रभुकृपा होगी क्या? परन्तु आज तो श्रीपण्डितजी ने कहा कि—अगर वह व्यक्ति एक बार परिक्रमा लगाकर और सन्त दर्शन करके, श्रीपण्डितजी के हिसाब से प्रभुकृपा का पात्र है तो मुझे तो पूज्य राधाबाबा का नित्य संग प्राप्त है और मैं तो उनकी आज्ञा और प्रेरणा से 108 परिक्रमा लगा लूँगा, तो मुझ पर तो प्रभु की विशेष-विशेष कृपा है। निश्चित रूप से है। मुझे डरने और घबराने की कोई आवश्यकता नहीं है। मैं तो सन्तों की गोद में पालित-पोषित हूँ। मैं भला क्यों भयभीत होउँ? इस प्रकार की भावनाओं में श्रीबंकाजी बहुत देर तक बहते रहे और इस वार्तालाप को याद करके अनेक दिनों तक उनके नेत्रों से अजस्र अश्रुधारा बहती रही।

इस प्रसंग के कुछ दिन बाद का एक और प्रसंग उल्लेखनीय है। एक

दिन एक मारवाड़ी, अधेड़ उम्र के विशालकाय व्यक्ति, सिर पर बड़ी पगड़ी बाँधे, पूज्य श्रीपण्डितजी के पास आकर बोले—ओ भाई पण्डित! थारौ बड़ौ नाम सुण्यौ। मैं तो ठेट किसान हूँ। पढ़ना-लिखना, कथा-भागवत कुछ कोनि समझूँ। गुरु बनायो नहीं। नाही कोऊ ज्ञान बतावण वालौ। भगवान कौ मिलनो कैसे होवे?

पूज्य श्रीपण्डितजी ने अपने स्लेट पर लिखा-

- माह कौ महीनौ
- रात कौ समय
- नन्हीं नन्हीं बूँदें
- ठण्डी हवा।
- गेहूँ की फसल।
- खेत में नहर कौ पानी
- किसान की नंगे पाम आँटी चढ़ी
- डौर रिसि न जावै, बाँह चढ़ायकै चैपाय रह्यौ
- बूँद-बूँद पानी फसल में ही जावै
- एक बूँद पानी भी व्यर्थ नहीं जान दे रह्यौ
- किसान की सी लगन भगवान में लग जावै
- एक-एक साँस भगवान के नाम-स्मरण में लगि जावै
- भगवान मिलीवे कूँ भागे चले आवैं हैं
- या ही ते किसान तो सबको गुरु है

भावार्थ—पूज्य श्रीरामदासजी ने पण्डितजी की बात का अर्थ समझाते हुए उस मारवाडी किसान से कहा—शीत ऋतु की कड़ाके की ठंड में, रातों-रात किसान जब अपनी गेहूँ की फसल में सिंचाई करता है तो एक-एक बूँद पानी का प्रतिपल सदुपयोग करने के लिए बहुत सतर्क रहता है। एक बूँद पानी भी व्यर्थ नहीं जाने देता है। उसी प्रकार साधक यदि भगवान के चिन्तन

एवं नाम-स्मरण में प्रतिपल का सदुपयोग करे तो भगवत्कृपा सहज ही हो जाती है।

मारवाड़ी किसान और पण्डितजी के मध्य हुई सारी वार्तालाप को श्रीबंकाजी बहुत ही सावधानी पूर्वक सुन रहे थे। ग्रंथों में नित्य सत्संग करने के लिए इसलिए कहा गया है कि न जाने कौन से दिन, कौन सी बात मन में भीतर घर कर ले। आज वैसा ही क्षण श्रीबंकाजी के जीवन का भी था। पण्डितजी की कही एक-एक बात उनके हृदय को छू गई और उन्होंने निश्चय किया कि जीवन का हर क्षण अब नाम-जप और भगवद्चिन्तन में ही लगाना है। अपने इस दृढ़ निश्चय को उन्होंने आजीवन निभाया। जीवन में बहुत कठिन परिस्थिति, भयंकर रोग आदि के आने पर भी उनका नाम-जप और लीला-चिन्तन बन्द नहीं हुआ।

****

श्रीलक्ष्मीनारायण मन्दिर के तीन महत्त्वपूर्ण प्रसंग

पहले बताया जा चुका है कि श्रीबंकाजी जैसे ही श्रीलक्ष्मीनारायण मन्दिर में पण्डितजी से मिलने जाते, उनके परिकर भूमि पर चटाई बिछा दिया करते थे और श्रीबंकाजी उसी चटाई पर पण्डितजी के समक्ष बैठते थे। यह आदर, मान-सम्मान पण्डितजी की ओर से पूज्य बाबूजी-बाबा का था। श्रीबंकाजी को कितना भी संकोच हो, पर दैन्य की साक्षात प्रतिमा पण्डितजी को यह सहन ही नहीं था कि गीतावाटिका से आया कोई साधक, उनके समक्ष बिना आसन के बैठे। यह प्रतिदिन का क्रम हो गया था।

अब एक दिन की अनोखी बात। श्रीबंकाजी के पहुँचते ही चटाई बिछ गयी और वे उस पर बैठ गये। इधर वे बैठे और उधर पूज्य पण्डितजी अपने स्थान से उठे और अपने कमरे के भीतर से एक और चटाई ले आये और श्रीबंकाजी से कहा—आप इस चटाई पर बैठ जाइये।

श्रीबंकाजी को बहुत आश्चर्य हुआ। उन्होंने अपने चटाई की ओर इशारा करते हुए, बहुत संकोचपूर्वक कहा—यह भी तो चटाई ही है।

पण्डितजी ने बड़ी सरलता से उत्तर दिया—वह चटाई फटी हुई है।

श्रीबंकाजी चुपचाप उठकर पण्डितजी की आज्ञानुसार नवीन चटाई पर बैठ गये और उनका हृदय, एक महान सन्त के हृदय के कोमल भावों पर बलिहार था।

इसी कालावधि में हुए व्यक्तिगत वार्तालाप में पूज्य पण्डितजी ने एक बार याचक का बाना धारण कर श्रीबंकाजी से एक भिक्षा माँगी कि आप अपने आपको पूज्य बाबा के हाथों में बिना दाम बेच दें। प्रसंग इस प्रकार है।

श्रीबंकाजी श्रीगिरिराज भगवान की लगभग 87 या 88 परिक्रमा लगा चुके थे। प्रतिदिन के नियम के अनुसार, संध्या समय वे पूज्य पण्डितजी के पास गये। क्या ही संयोग, आज पूर्णत: एकान्त था। कोई भी नहीं था। पूज्य पण्डितजी अकेले नीम वृक्ष की छाया में बैठे थे। श्रीबंकाजी ने जाकर प्रणाम किया और उनके समक्ष बैठे गये। आज पूज्य पण्डितजी को न जाने क्या सूझी। वे श्रीबंकाजी के समक्ष भिक्षुकवत् युगल कर-पल्लव पसार करके कहने लगे—आज मैं आपसे एक भीख माँग रहा हूँ।

यह वाक्य सुनते ही श्रीबंकाजी घबरा गये। अत्यधिक घबरा गये। न जाने क्या याचना पण्डितजी करेंगे। उनके पास देने के लिए कुछ था नहीं। श्रीगिरिराज भगवान की परिक्रमा के लिए जो व्यवस्था हो पायी थी, वह भी कितनी कठिनता से कर पाये थे, उसे तो वे भुक्तभोगी ही जानते थे। पूज्य पण्डितजी जैसे महान सन्त के ऐसा कह दिए जाने पर श्रीबंकाजी न तो 'ना' कह पाये और न ही 'हाँ' कह पाये। अवश्य ही, धीरे से नेत्रों की भाषा में कहा—कहिये, क्या कहना चाहते हैं।

पूज्य पण्डितजी ने बड़े भाव से कहा—मैं यही भिक्षा माँग रहा हूँ कि आप स्वयं को बिना दाम के पूज्य श्रीराधाबाबा के हाथ बेच दें। बेच दें का अर्थ है उनके संकेत के अनुसार ही कार्य करना। कन्या-भाव को विदाई देकर, वधू-भाव धारण करें। जैसे पाणिग्रहण होते ही चलने-फिरने, खाने-पीने, बोलने-कहने की दृष्टि से परिवर्तन आ जाता है। मोक्ष या प्रेम की प्राप्ति

तो आनुसंगिक है, महत्त्वपूर्ण है पूज्य बाबा के प्रति सात्त्विक श्रद्धा। आप अपने आप को पूज्य बाबा के हाथ बेच दें।

पूज्य पण्डितजी आगे बताते चले गये—

- सद्गुरु का मिलना
- उनके प्रति समर्पित होना
- उनके द्वारा स्वीकार किये जाना

यह तीनों बातें एक संयोग ही हैं जो भगवद्कृपा से संघटित होती है। ऐसे संयोग को हाथ से खोना महापराध है। आपको यह संयोग मिला है। इससे न चूकें। यह अवसर हाथ से मत खोवे। श्रद्धादेवी जीवन में बड़े चमत्कार उत्पन्न करती हैं। पूज्य बाबा के प्रति पूर्ण श्रद्धा, पूर्ण समर्पण करें। अवधूत, मौनी, त्यागी, भजनी, तपी, अनेक मिल जाते है पर सद्गुरु के प्रति समर्पित, उनपर, एकमात्र उनपर अपने आप को न्यौछावर कर देने वाला नहीं मिलता। अब तो देखते-देखते उपरति हो गयी है। श्रद्धा करने में त्रुटि देखकर मन बड़ा खिन्न होता है। श्रद्धेय के संकेत में, आदेश में, बुद्धि न लगाये।

पूज्य पण्डितजी की सेवा में रहने वाले श्रीठाकुरसीदासजी ने बताया कि पूज्य पण्डितजी की ऐसी मान्यता है कि—यदि साधक अपने सद्गुरु को सन्त या उच्च कोटि का साधु मानेगा तो वह साधक एक उत्तम साधक बनेगा और उसी सद्गुरु को यदि भगवान मानेगा तो वह साधक एक उत्तम प्रेमी भक्त बनेगा। वह साधक भविष्य में क्या बनेगा, यह उसकी भावना पर निर्भर करता है कि वह अपने सद्गुरु को क्या मानता है।

इन वाक्यों की तो श्रीबंकाजी ने कल्पना भी नहीं की थी। उन्होंने मन्द स्वर में बस इतना ही कहा—यह बात तो है ही।

श्रीबंकाजी के उत्तर को सुनकर पूज्य पण्डितजी को संतोष हो गया। अब उस समय श्रीबंकाजी के मन की स्थिति के बारे में लिख रही हूँ। उन दिनों वे गीतावाटिका में निवास कर अवश्य रहे थे परन्तु अत्यन्त विकट परिस्थितियों में। पूज्य बाबा के प्रति श्रद्धा भावना होते हुए भी उसे शत-प्रतिशत वे नहीं कह

सकते थे। उन्हें यह ब्रजवास इतना अच्छा लग रहा था कि सदा के लिये ब्रज में ही रह जाना चाहते थे। अब कितनी विरोधी स्थिति के मध्य से उन्हें गुजरना पड़ रहा था यह तो वे ही जान सकते हैं। एक ओर मन की उथल-पुथल से भरी दुविधा थी और दूसरी ओर पूज्य पण्डितजी की ओर से माँग। उनके हृदय में एक संग्राम सा मचा हुआ था।

जो भी हो, क्रमशः दिवस व्यतीत होने लगे। श्रीबंकाजी की जो विकट मानसिक स्थिति थी उसको पूज्य पाण्डितजी की अमोघ-अव्यर्थ वाणी ने एक सही दिशा प्रदान कर दी थी। इतने बड़े सिद्ध सन्त जब याचक का बाना धारण करके कुछ माँगे तो उन्हें भला कैसे निराश किया जा सकता था। श्रीबंकाजी ने अपने मन को समझा लिया कि चाहे ब्रज कितना भी आकर्षित करे, जबतक पूज्य बाबा का शरीर है तब तक उन्हें गीतावाटिका में ही निवास करना है और उन्हीं की आज्ञा का पालन करना है।

गीतावाटिका लौटने पर श्रीबंकाजी ने यह प्रसंग आदरणीय भाई श्रीनारायणदास स्वामीजी को सुनाया। सुनकर वे कहने लगे—ऐसा लगता है कि पूज्य पण्डितजी के कथन की गहराई में उतर नहीं पाये हैं आप। पूज्य पण्डितजी ने ऐसा तब कहा था, जब आप श्रीगिरिराज भगवान की लगभग 86 या 87 परिक्रमा लगा चुके थे। इसका अर्थ यह क्यों नहीं आप लगा लेते है कि अब चौरासी का चक्कर जीवन में नहीं रह गया है।

श्रीनारायण दादा के मुख से इस गूढ़ार्थ को सुन करके श्रीबंकाजी के विस्मय की सीमा नहीं रही। प्रसंग बहुत हैं। सबको लिखना सम्भव नहीं है। श्रीबंकाजी का पूज्य पण्डितजी से 1975 से 1992 तक विस्तृत पत्राचार होता रहा है। यह पत्राचार वाटिका के पत्र पुष्प, चार भाग में प्रकाशित हो चुका है। जो इच्छुक हो, उसका अवलोकन करें।

परिक्रमा काल में ही पुनः एक अन्य अवसर पर श्रीबंकाजी को प्रबोध देते हुए पण्डितजी की यह उक्ति उनके हृदय में घर कर गई कि—भैया! जीव को सब कुछ, यहाँ तक कि भगवान भी सुलभ है, परन्तु यदि कुछ दुर्लभ

है तो महदाश्रय, जो आपको पूज्य बाबूजी एवं पूज्य बाबा के रूप में सहज सुलभ हो गया है। अतः किसी भी परिस्थिति अथवा प्रलोभन या आकर्षण में फँसकर पूज्य बाबा का त्याग मत करियेगा। श्रीराधाबाबा भारतवर्ष की अद्वितीय विभूति हैं। किसी भी स्थिति में उनके समीप जमे रहियेगा। बस, फिर आपका सब काम बन जायेगा।

****

पण्डितजी के दिव्य उपदेशों का सार

चार मास की अवधि में पूज्य पण्डितजी द्वारा कहे, सभी दिनों के उपदेशों का सार जो श्रीबंकाजी की डायरी में लिखा हुआ था—

पूज्य पण्डितजी ने कहा—जब साधक अपने हृदय से धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष, इन चारों पुरुषार्थों को तृणवत् त्याग देता है तब वह प्रेम की प्राप्ति का अधिकारी, प्रेम पथ पर चलने का अधिकारी होता है। भाव-जगत ब्रह्मा की सृष्टि से परे की वस्तु है। एक साधारण मानव को, एक पांचभौतिक मानव को, भगवान मानना क्या बुद्धिमानी कहा जा सकता है? इसे साधारण बुद्धि नहीं स्वीकार करती। किन्तु जो रासबिहारी बालकों में भगवत्भाव रखते हैं, उन्हें अपनी श्रद्धा के अनुसार फल और चमत्कार के दर्शन होते हैं। भावना के राज्य में तर्क नहीं, बुद्धि नहीं। इसीलिये भाव-राज्य त्रिगुणात्मक जगत से परे की वस्तु है। इस पथ के पथिक को जगत की ओर देखना ही नहीं चाहिये। भाव के बढ़ने से लाभ है, भाव के घटने से हानि है। बस, भाव बढ़ता जाय। यही उद्देश्य होना चाहिये।

साधारण जगत में लोग बालक की आकृति-प्रकृति को देखकर बता देते हैं यह बालक अमुक का पुत्र है। पिता की छाया बालक में होती है। शिष्य को देखकर सन्त लोग बता सकते हैं कि इसका गुरु कैसा है। यदि श्रद्धा सच्ची है तो श्रद्धालु में श्रद्धेय प्रतिबिम्बित हो उठते हैं। कालान्तर में श्रद्धालु श्रद्धेय की प्रतिकृति बन जाता है। श्रीराधा, श्रीकृष्ण का चिन्तन करते-करते, श्रीकृष्ण ही बन जाती हैं।

यदि श्रद्धा सच्ची है तो श्रद्धेय की रुचि श्रद्धालु के हृदय में स्वतः स्फुरित हो जाती है। पूज्य पण्डितजी ने बताया कि मैं तो यहाँ (गोवर्धन में) उपस्थित हूँ तथा बाबा (उनके गुरुदेव श्रीउड़ियाबाबा) वृन्दावन में विराजमान हैं पर बिना तार-का-तार जुड़ा रहता है। सदा संकेत मिलते रहते हैं।

वृन्दावन में रहकर भी श्रीवृन्दावन का लाभ नहीं मिलता, इसका कारण यह है कि साधक की रहनी उत्तम नहीं। रहनी माने जीवन की शैली। सोचने का ढंग, चिन्तन का स्वरूप, अन्तर की स्फुरणा, शरीर की चेष्टा, मन के संकल्प, बुद्धि के निर्णय इन सबसे साधक की रहनी बनती है। वृन्दावन का माहात्म्य अतुल्य है, पर उचित रहनी के अभाव में लाभ नहीं मिलता। इसी प्रकार सन्त-संन्रिधि का माहात्म्य अतुल्य है पर लाभ साधक को नहीं होता इसीलिये कि साधक-जैसी रहनी नहीं। साधक अपनी रहनी को बनाये पवित्र, जीवन महापवित्र।

चार बातें उपदेश के रूप में श्रीउड़िया बाबा ने पूज्य पण्डितजी श्रीगयाप्रसादजी को कहीं थीं। इन्हीं चार बातों को लेकर पूज्य पण्डितजी की साधना है।

1. भगवत्प्रेम प्राप्ति की तीव्र उत्कण्ठा
2. भगवन्नाम का आश्रय
3. सहनशीलता तथा
4. विषयों में अरुचि

सद्गुरु में संदेह से रहित, बुद्धि से अतीत, श्रद्धा हो। यदि ऐसी श्रद्धा बन गयी तो मोक्ष या प्रेम अपने आप मिल जायेगा।

अन्य भी बहुत सी बाते हैं डायरी में, सब को लिख पाना सम्भव नहीं है।

****

अनुष्ठान की पूर्णता

ज्यों ही श्रीबंकाजी का 115 गिरिराज परिक्रमा का महदानुष्ठान निर्विघ्न पूर्ण हुआ, उन्होंने श्रीगिरिराजजी भगवान को पाँच बार साष्टांग दण्डवत् प्रणाम करके श्रीलक्ष्मीनारायण मन्दिर में आकर पण्डितजी को प्रणाम किया। उनकी स्थिति ऐसी थी मानो—**पुलकित गात बिलोचन बारी॥**

प्रातःकाल लगभग चार बजे का समय था। प्रणाम करने के उपरान्त परम पूज्य पण्डितजी ने बड़े ही प्यार से उन्हें अपने पास बिठाया और महदानुष्ठान की पूर्णता पर अपनी साधुवाणी से संतोष व्यक्त करते हुये आशीर्वाद देने लगे। **सुफल होन हित आसिष देहीं॥**

पण्डितजी ने कहा—यह गिरिराज परिक्रमा का अनुष्ठान सरल नहीं है। बहुत से लोग यहाँ परिक्रमा के लिए आते हैं पर सब का उद्देश्य पूर्ण नहीं होता है। 108 परिक्रमा का अनुष्ठान कम लोगों का ही पूरा होता है। कोई गिर जाता है, किसी की हड्डी टूट जाती है, कोई बीमार पड़ जाता है, किसी-किसी को नीलगाय, बन्दर या अन्य वन पशु हानि पहुँचा देते हैं। आप तो बहुत भाग्यशाली हैं जो पूज्य राधाबाबा की कृपा से यह आपका संकल्प पूरा हुआ है। लगता है कुछ मिलना है।

श्रीबंकाजी ने कहा—न जाने कितनी बार मेरा मन उचटा है, साहस ने साथ छोड़ा है। मैं इमानदारी से कहता हूँ कि मेरे लिये असम्भव था पर उधर पूज्य बाबा और इधर आप, इन दो की कृपा से ही यह अनुष्ठान सफल हुआ है।

पण्डितजी ने पूछा—अब यह बताओ कि व्रत के पूर्ण होने पर श्रीगिरिराजजी को प्रणाम करते समय तुमने क्या याचना की?

श्रीबंकाजी ने जो याचना की वह दूसरों को भले ही न बताते परन्तु अपने परम पूज्य श्रीपण्डितजी को बताने में उन्हें भला क्या संकोच था? उन्होंने पण्डितजी को अपनी हृदय की माँग बता दी। उनकी कोई सांसारिक माँग तो थी नहीं। उनकी अभिलाषायें अति दिव्य थी। उन्हें तो चाहिये था दिव्य

निकुंज राज्य में सखी रूप से, अनन्त काल तक नित्य वास और परम दुर्लभ सेवा अधिकार।

श्रीबंकाजी की दिव्य याचना को सुनकर श्रीपण्डितजी अत्यन्त प्रसन्न हुए क्योंकि उनको सकामता किंचित भी प्रिय नहीं थी। उन्होंने बड़ी प्यार भरी वाणी में उनसे कहा—आपकी माँग पूज्य श्रीराधाबाबा के अनुचर के अनुरूप ही है। इस तप को बेचना मत।

श्रीबंकाजी को सावधान करते हुए पण्डितजी ने उन्हें यह भी बताया कि—भगवान के प्राणप्यारे भक्त अपनी सामर्थ्य शक्ति, स्वयं को छिपाने में लगा देते हैं। खजाना-धन-सम्पत्ति तब तक सुरक्षित है जब तक किसी को पता नहीं है। पता चलते ही, उसी दिन असुरक्षित हो जायेगा। यह प्रेमरूपी-साधनरूप-भजनरूपी सम्पत्ति भी तब तक सुरक्षित है जब तक किसी को पता नहीं है। जब पता चल जायेगा तो चोर पीछे लग जायेंगे। अपनी माँग और भजन को सदा गुप्त रखना।

श्रीपण्डितजी के इस आदेश और आशीर्वाद को सुनकर श्रीबंकाजी का हृदय भर आया। जैसे जननी अपने लाल की सम्पत्ति की रक्षा करती है, ठीक वैसे ही श्रीपण्डितजी ने उनकी तपस्या की रक्षा करने का आन्तरिक भाव व्यक्त किया था। उन्होंने पण्डितजी की बात को गाँठ बाँध ली। वे अत्यधिक प्रसन्न थे और उन्होंने भाव भरे मन से बारम्बार पण्डितजी को प्रणाम किया। **बार-बार कर दंड प्रणामा॥** श्रीबंकाजी को विपुल मंगल आशिर्वाद देकर श्रीपण्डितजी ने उन्हें विदा किया। **करि परितोषु बिदा तब कीन्हे॥**

भविष्य में भी श्रीबंकाजी का पूज्य पण्डितजी से आजीवन अति निकट का सम्पर्क बना रहा। श्रीपण्डितजी श्रीबंकाजी से पूज्य श्रीपोद्दारजी महाराज के द्वारा समय-समय पर दिये गये प्रवचनों के टेप रिकॉर्ड तथा कैसेट मँगाते और उन्हें बड़ी श्रद्धा आदर से सुनत-सुनते भाव विभोर हो जाया करते थे।

परम पूज्य पण्डितजी की कृपा से श्रीबंकाजी का श्रीगिरिराजजी की परिक्रमा का महाअनुष्ठान निर्विघ्न पूर्ण हुआ। **लहि जनु रंकन्ह सुरमनि ढेरी॥**

****

गीतावाटिका लौटना

अपने दुर्लभ सौभाग्य पर मत्त श्रीबंकाजी, अपने सौभाग्य को सहेजने के लिये गोवर्धन से गीतावाटिका लौट आये। हृदय में पूज्य पण्डितजी के अपार वात्सल्य, प्यार तथा सम्भाल के प्रति कृतज्ञता थी और पूज्य बाबा एवं बाबूजी के प्रति अनन्तगुना वर्धित श्रद्धा। साथ ही उन्हें मिल गई थी उनकी लीलाओं को देखने-समझने की एक नवीन दृष्टि, पगों में गति, अमित उल्लास-उत्साह और चू पड़ने के लिए सदैव आकुल नयन। इस पाथेय को लेकर वे अपने गन्तव्य की ओर वेग से बढ़ चले। जहाज का पंछी पुनः जहाज पर आ बैठा। अथवा यूँ कहा जाये कि कृपाशक्ति ने गीतावाटिका की निधि को ब्याज सहित कई गुना बढ़ा-चढ़ा करके गीतावाटिका को लौटा दिया था।

लौटकर गोरखपुर आ जाने तथा पूज्य बाबा को अनुष्ठान की सम्पन्नता का विवरण सुनाने पर पूज्य पण्डितजी की अहैतुक करुणा तथा दिव्य रहनी की चर्चा करते समय दोनों के नेत्र भर-भर आये थे। पूज्य बाबा ने श्रीबंकाजी से चार महीने के अनुष्ठान काल की एक-एक बात पूछी। जब श्रीबंकाजी ने उन्हें 115 परिक्रमा करने और उसके पीछे के कारण को बताया तो बाबा भाव में डूब गये और श्रीबंकाजी को गले से लगा लिया। क्रमशः पूज्य बाबा से श्रीबंकाजी का सम्पर्क-प्रेम-समर्पण बढ़ता ही चला गया।

वापस आकर श्रीबंकाजी ने स्वयं को अपने एकान्त कक्ष में निबद्ध कर लिया। नये उत्साह के साथ पूजन-अर्चन तथा ध्यान-धारणा के साथ ही अक्षर-साधना भी आरम्भ कर दी। गीतावाटिका के सहयात्री साधकों के साथ इष्ट-गोष्ठी पुनः आरम्भ हो गयी। नवोदित साधकों की एक टोली भी धीरे-धीरे उनके चारों ओर जुटने लगी, जिनमें गीतावाटिका के बाबा के निज जन जैसे श्रीनारायण दादा, श्रीगणपत बाबा, श्रीजयराम भैया, बहन विमला बाई, श्रीसीताबाई पोद्दार आदि थे। पूज्य बाबा से भी उनको सर्वप्रकारेण मार्ग-दर्शन मिलने लगा।

गीतावाटिका के प्रत्येक निवासी श्रीबंकजी के पास आकर उनके ब्रजवास

की मधुर चर्चा करने लगे। सबको श्रीबंकाजी अत्यन्त प्रेमपूर्वक, मन्द-मन्द मस्कुराते हुए अपने अनुभव और पूज्य पण्डितजी के विषय में बताते थे। ब्रज के स्मरण मात्र से उनका रोम-रोम पुलकित हो जाता और लोग उनके भाग्य की सरहना करते थकते नहीं थे। इसका एक लाभ यह हुआ की श्रीबंकाजी के प्रति वाटिका-वासियों की श्रद्धा और प्रेम बहुत बढ़ गया और उनके लगातार आते-जाते रहने से श्रीबंकाजी का एकान्त और अकेलापन दूर हो गया।

नवीन साधक मण्डली श्रीबंकाजी के हँसमुख स्वभाव से आकर्षित होकर अकसर उनके कक्ष में आने लगी, जहाँ घंटों सन्तों-भक्तों-वृन्दावन आदि की सरस चर्चा होती। एकादशी का व्रत भी सब एक साथ ही करते थे। प्रत्येक साधक अपने फलाहार की वस्तु श्रीबंकाजी के कक्ष में ही ले आता। वहाँ सारे फलों को अमनिया करके, सेंधा नमक और नींबू का रस डालकर फलों की चाट बनायी जाती, जिसे सब साधक भोग लगाकर, एक साथ ही पाते। भजन के साथ-साथ खूब आनन्द भी रहने लगा।

****

गीतावाटिका में गिरिराज परिक्रमा

गोरखपुर, गीतावाटिका में पूज्य बाबा द्वारा स्थापित श्रीगिरिराजजी हैं जिनकी बाबा प्रतिदिन परिक्रमा किया करते हैं। पहले श्रीबंकाजी की इन गिरिराजजी में बहुत अधिक श्रद्धा नहीं थी। वे बाबा की परिक्रमा में नियमित रूप से जाते अवश्य थे पर स्वयं इन गिरिराजजी की परिक्रमा लगाने के विषय में उन्होंने कभी नहीं सोचा था।

जब वे गोवर्धन में 108 परिक्रमा लगा रहे थे तब एक दिन उन्होंने देखा कि संध्या समय, एक साधु एक वृक्ष की डाल पर बैठा था। उस डाल पर उसने कम्बल डाल रखा था और दोनों हाथों से डाल को दबा रहा था। इस दृश्य को देखकर श्रीबंकाजी को कुछ आश्चर्य हुआ और उन्होंने जिज्ञासावश पूछा—आप वृक्ष की डाल पर यह क्या कर रहे हैं ?

साधु ने सहजता से उत्तर दिया—श्रीगिरिराज भगवान के चरण दबा रहा हूँ।

इस उत्तर को सुनकर श्रीबंकाजी को बहुत विस्मय हुआ। उन्होंने जिज्ञासावश पुनः पूछा—यहाँ श्रीगिरिराज भगवान कहाँ हैं ?

साधु ने बड़ी आस्था के साथ उत्तर दिया—श्रीगिरिराजजी तो अत्यन्त दयालु ठाकुर हैं। जहाँ उनकी भावना करो वे वहीं प्रकट हो जाते हैं।

इतना सुनते ही श्रीबंकाजी के मन-मस्तिष्क में एक लहर दौड़ गई। वे सोचने लगे—अहो ! कितनी अनोखी बात कह रहा है यह साधु ! गिरिराजजी इतने दयालु हैं कि जहाँ उनकी भावना करो वे वहीं प्रकट हो जाते हैं और मैं मूर्ख, बाबा द्वारा पूजित-प्रतिष्ठित गिरिराजजी की आज तक अवहेलना करता रहा। हाय ! मैंने आज तक उनकी कभी एक भी परिक्रमा नहीं लगाई। मुझसे कितनी बड़ी भूल हो रही थी कि मैं गोवर्धन स्थित गिरिराजजी को ही मान-सम्मान दे रहा था और गीतावाटिका वाले ठाकुर की अवहेलना कर रहा था। इन्हीं भावों में डूबे-डूबे श्रीबंकाजी ने उन साधु को साष्टांग प्रणाम किया और मन में संकल्प किया कि अब गीतावाटिका जाकर, वहाँ बाबा द्वारा प्रतिष्ठित गिरिराजजी की 108 परिक्रमा लगा लूँगा।

श्रीराधाबाबा ने पूरी गिनती कर रखी थी कि गीतावाटिका में कितनी परिक्रमा लगाने से गोवर्धन की एक परिक्रमा पूरी होती है। उसी गिनती के अनुसार अपने संकल्प को पूरा करते हुए श्रीबंकाजी ने गीतावाटिका स्थित गिरिराज भगवान की दो बार 108 परिक्रमा लगाई। इस प्रकार से उनके जीवन काल में 108 परिक्रमा का अनुष्ठान तीन बार पूर्ण हुआ।

****

वाटिका के पत्र पुष्प

सम्पूर्ण सृष्टि जिसकी महान रचना है, उस महान चित्रकार की अदृश्य तूलिका जब अपने अनन्य प्रियजन की महिमा का चित्रांकन करने के लिये समुत्सुक हो उठती है, तब सचमुच बिना बात ही कोई बहुत बड़ी बात सहज बन जाया करती है। इसी का प्रत्यक्ष प्रमाण है पुस्तक वाटिका के पत्र पुष्प। इस पुस्तक के प्रणयन के पीछे कोई भी पूर्व योजना नहीं थी, परन्तु सृष्टि का

वह सिद्धहस्त सूत्रधार, सृष्टि की दृष्टि को बचाकर और श्रीबंकाजी को निमित्त बनाकर इस पुस्तक का ताना-बाना बुनने में सतत संलग्न था।

श्रीगिरिराज परिक्रमा का अनुष्ठान पूर्ण होने के बाद श्रीबंकाजी गोवर्धन से गोरखपुर आ गये। वापस आने के बाद पूज्य पण्डितजी महाराज से श्रीबंकाजी का पत्र व्यवहार होता रहा। इन पत्रों में ही श्रीबंकाजी के चिन्तन का नवनीत है। सन्त ही सन्त की महिमा को हृदयंगम कर सकते हैं। इसी भाव से भावित हुए श्रीबंकाजी इस नवनीत-निवेदन की अहैतुक अर्चना मूक भाव से निरन्तर सम्पन्न करते रहे।

श्रीबंकाजी के प्रारम्भिक पत्रों में उनका अपना भाव-भरा आत्म-निवेदन तो है ही, किन्तु उत्तरोत्तर गीतावाटिका का आध्यात्मिक गौरव अधिकाधिक रूप में व्यक्त होने लग गया। श्रीबंकाजी के पत्रों का एकमात्र विषय ही बन गया वाटिका की युगल विभूतियों के सन्त जीवन की भाव-धारा का और उनके द्वारा सम्पन्न हुए महान कार्यों का वर्णन। पत्रों में वाटिका-विभूतियों के संतत्व का जो वर्णन हो पाया है, वह इसीलिए कि इसके पीछे समर्थ प्रेरिका शक्ति रही है पण्डितजी की सन्त-चरितामृत-श्रवणाभिलाषा। उनकी शुभ श्रवण अभिलाषा ने श्रीबंकाजी को यदि एक ओर सन्त वृत्त लिखने के लिए उत्साह प्रदान किया है तो इसी के साथ उसने उस वृत्त को लिखने की योग्यता भी प्रदान की है। पूज्य पण्डितजी की कृपा से ही यह लेखन सम्भव हो सका।

गीतावाटिका में अति निकट रहते हुए श्रीबंकाजी बाबूजी-बाबा की करनी-रहनी को जितना देख पाये और जितना समझ पाये, उसी को शब्द-बद्ध करने का प्रयास उन्होंने किया है। यह पुस्तक निजी पत्रों का संग्रह है, किन्तु यह संग्रह एक पक्षीय नहीं है, अपितु दोनों पक्षों के पत्र इस संग्रह में संग्रहीत हैं। पूज्य पण्डितजी ने गोवर्धन से श्रीबंकाजी के पास जो पत्र लिख-लिख करके भेजें हैं, उन पत्रों में उनकी दैन्य-विभूषित और भावभीनी भाषा बरबस उनकी महानता पर बलिहार हो जाने के लिए बाध्य कर देती है। पूज्य पण्डितजी द्वारा लिखे गए पत्रों के एक-एक शब्द अमित दैन्य की सुरभि से

सुवासित हैं और उन पत्रों की एक-एक पंक्ति सन्त चरण पर सर्व समर्पण की प्रेरणा प्रदान करती है। सच तो यह है कि यह सारे पत्र पूज्य पण्डितजी के आन्तरिक और वास्तविक जीवन का सांकेतिक परिचय देते हैं।

इन पत्रों का प्रकाशन श्रीबंकाजी को तनिक भी अभीष्ट नहीं था। पत्राचार है ही ऐसा एकान्तिक। वे नहीं चाहते थे कि उनका नाम प्रकाश में आये, परन्तु वाटिका-वासियों का विचार कुछ और प्रकार का था। सर्व नियन्ता के अचिन्त्य विधान से पत्र व्यवहार के बहाने भावपूर्ण तथ्यों का यह सुन्दर संग्रह इतना रुचिकर और हितकर बन गया कि प्रकाशन का लोभ वे लोग संवरण नहीं कर पाये। प्रकाशन की भावना थी सर्वजन सुखाय, सर्वजन हिताय। वाटिका-वासी श्रीबंकाजी से अनुरोध और आग्रह करते रहे, किन्तु उन्हें प्रकाशन की बात ही अप्रिय लग रही थी। बहुत आग्रह करने पर उन्होंने उनके आग्रह को सम्मान तो दिया, परन्तु बड़े संकोच के साथ। फिर वाटिका के पत्र पुष्प चार भाग में प्रकाशित हुई जो भक्त समाज में अतिशय लोकप्रिय हुई।

जहाँ एक ओर श्रीपण्डितजी के पत्र बहुत संक्षेप में हैं वहीं श्रीबंकाजी के पत्र बहुत ही विस्तृत हैं। कोई-कोई पत्र तो 20-30 पन्नों से भी अधिक के हैं। इसके पीछे एक कारण है। श्रीबंकाजी गोवर्धन से आया हर पत्र पूज्य बाबा को सुनाया करते थे। उन्होंने श्रीपण्डितजी से कह रखा था कि—जो पत्र गीतावाटिका से जाता है उसका वर्णन वे अपने उत्तर में न करें क्योंकि यदि बाबा को पता चल जायेगा कि श्रीबंकाजी उनकी गुप्त बातें को श्रीपण्डितजी को बता रहे हैं, तो वे अत्यधिक रुष्ट होंगे। इसी करन से श्रीपण्डितजी के उत्तर बहुत ही लघु पत्र के रूप में आया करते थे।

गोवर्धन से लौटने के बाद पूज्य पण्डितजी का बहुत ही भाव-भरा पत्र श्रीबंकाजी के पास आया था। इस पत्र के आने से शुरू हुआ पूज्य पण्डितजी और श्रीबंकाजी का विस्तृत पत्राचार। श्रीबंकाजी का पूज्य पण्डितजी से 1975 से 1990 तक विस्तृत पत्राचार होता रहा है। उस पहले पत्र के उत्तर में जो श्रीबंकाजी ने पत्र लिखा उसके कुछ अंश यहाँ दिये जा रहे हैं। जिज्ञासु पाठक को शेष सभी विस्तृत पत्र, वाटिका के पत्र पुष्प नामक पुस्तक में पढ़ना चाहिये।

परम पूज्य पण्डितजी,

श्रीचरणों में बालक का साष्टांग प्रणाम।

आपका यह पावन पत्र क्या आया, ऐसा लगा मानो अचानक आपका शुभ दर्शन मिल गया। इस अप्रत्याशित दर्शन से मैं अपने सौभाग्य पर आश्चर्य करने लगा। सन्तों की यह अहैतुकी कृपा मन में एक प्रकार का विश्वास जगा देती है कि जीवन का 'प्राप्तव्य' एक-न-एक दिन अवश्य प्राप्त होकर रहेगा। पत्र में मुझ बालक के लिए आपने जो लिखा, उसके लिए मैं क्या लिखूँ? मुझ पथिक के साथ में आपने एक ऐसा पाथेय दे दिया, जो कभी समाप्त होगा ही नहीं। यह पथ में मुझे कभी थकित या व्यथित नहीं होने देगा। पत्र के शब्दों के रूप में अभिव्यक्त आपके इस आशीर्वाद को पाकर मैं अपने मन से कहने लगा—पगले, तू चला चल। सन्त तुझ पथिक को छाया दे रहे हैं, हर प्रकार से तेरी सम्भाल कर रहे हैं। ऐसी अलभ्य अनुकूलता पाकर तू क्यों विलम्ब कर रहा है?

पूज्यपाद! आप विश्वास करें, मैं हृदय से चाहता हूँ कि मैं जिनके आश्रित हूँ उनकी रूचि के अनुसार अपने जीवन को ढाल दूँ। किन्तु न जाने ऐसी कौन सी दुर्बलता है कि मेरा कोई दिव्य-सपना साकार नहीं हो पा रहा है। एक विश्वास है और सुदृढ़ विश्वास है और यह विश्वास ही मेरी मूल और अमूल्य निधि है। मेरे आचरण आलोचना योग्य है और भले मेरा जीवन मलिन है किन्तु अपनी सारी दुर्बलताओं के सहित में मलिन शिशु उनका ही हूँ। जिनका मैं शिशु, मेरी वह माँ बड़ी समर्थ है, वत्सला है, वह नेहमयी है। वे ही मेरी हर प्रकार से सम्भाल करेगीं। आपके श्रीचरणों में प्रणाम।

आपका बालक,
राधेश्याम बंका

****

श्रीराधाबाबा के साथ एकान्तिक वार्तालाप-1

मंगलवार 21.10.75, आज पूज्य बाबा बड़े प्रसन्न थे। श्रीबंकाजी बाबा से मिलने उनकी कुटिया पर गये। प्रात:काल का समय था। संयोग से कोई

भी वहाँ नहीं था। पूर्ण एकान्त अवसर पाकर श्रीबंकाजी अक्सर ऐसे प्रसंग छेड़ते थे कि बाबा कुछ अपने हृदय की बात कहें। बाबा अपनी मस्ती में बैठे थे। उनके मुख से कुछ सुन्दर सुनने को मिले, इस उद्देश्य से श्रीबंकाजी ने वार्तालाप प्रारम्भ किया।

श्रीबंकाजी ने कहा—बाबा! समर्पण का रूप एक विचित्र प्रकार का है। उसमें मन इतना शिथिल हो जाता है, बुद्धि इतनी शिथिल हो जाती है कि क्या कहा जाय? वस्तुतः समर्पण का सुख विचित्र ही है।

श्रीराधाबाबा ने तुरन्त उत्तर दिया—अरे, बुद्धि तो जड़ वस्तु है। समर्पण का सुख तो अनुभवगम्य होता है। ऐसा कहते-कहते बाबा समर्पण के दो स्तर बताने लगे। बाबूजी के दो पद है—''सौंप दिये मन प्राण तुम्हीं को, सौंप दिये ममता अभिमान" तथा दूसरा पद वह जो षोडश गीत का अन्तिम पद ''तुम हो यन्त्री मैं यन्त्र काठ की"। ''सौंप दिये मन प्राण तुम्हीं को" यह साधनावस्था का समर्पण है। इसमें समर्पण करने वाले का अहं वर्तमान है। पर ''तुम हो यन्त्री'' में समर्पण करने वाले का अहं भाव समाप्त हो गया है। समर्पक में समर्पकत्व नहीं है। 'तुम ही बोले भर स्वर मुझमें, मुखरा से मैं तो शून्य मौन' समर्पक कहती है या कहता है कि मैं तो शून्य हूँ मेरे अन्दर जो बोल रहा है, वह भी तुम ही हो।

श्रीराधाबाबा आगे बताते चले गये—साधना में समय का भी बड़ा महत्त्व है। ब्रह्मवेला से सूर्योदय तक का समय, अर्थात् चार बजे से सूर्य उगने तक का समय, साधकों की साधना का होता है। अधिक साधक इसी समय साधना किया करते हैं। परन्तु ब्रह्मवेला से पहले का जो समय है, अर्थात् रात के दो बजे से लेकर चार बजे, साढ़े चार बजे, पाँच बजे तक का समय, यह समय सिद्धों का समय है। इसमें सिद्ध जगत की कृपाशक्ति अधिक सक्रिय रहती है।

श्रीबंकाजी को ऐसा लगा कि, शायद बाबा उन्हें सुझा रहे हैं कि उन्हें दो बजे उठना चाहिये। तब उन्होंने कहा—बाबा! मैं प्रतिदिन तीन बजे तो उठा ही करता हूँ, आप कहेंगे तो दो बजे से उठना आरम्भ कर दूँगा।

श्रीराधाबाबा—अभी नहीं, किसी शुभ दिन से उठना आरम्भ करना चाहिये। आज चतुर्थी है। तीन दिन बाद अष्टमी आने वाली है, तब से उठना आरम्भ करना। मैं तुम्हें बता दूँगा। उठकर वैसे करना।

श्रीबंकाजी—बाबा! आजकल सबेरे आपके पास आता हूँ , आता हूँ इसलिये कि आपके पास किसी बहाने आना चाहिये। दिन में आता नहीं। उस समय अनेक व्यवहार की, प्रपंच की बात होती है, वह प्रिय लगती नहीं, इसलिये सबेरे आ जाया करता हूँ।

श्रीराधाबाबा—अब तो मेरा घाव ठीक हो चला है। आपको सुबह आने की जरूरत नहीं। परिक्रमा में आने की आवश्यकता नहीं। परिक्रमा में अच्छे पद हों तो रहें अन्यथा बैठने की जरूरत नहीं। यहाँ आने से क्या? मेरी किरणों का प्रवाह वहाँ (तुम्हारे कक्ष में) भी मिलेगा और यहाँ आने से जो वस्तु मिलेगी, उससे बहुत बड़ी वस्तु तुम्हें नहीं आने से मिलेगी। तुम्हारे सामने जो काम आवे, उसे करो पर यही समझ कर करो कि वह भी भगवदार्चना का एक अंग है। उस काम का करना भगवान की सेवा है। भले काम थोड़ा हो, पर जितना काम करो उसकी श्रेणी उत्तम हो। सम्पादित कार्य का स्तर उत्तम हो, इसीलिये कि वह भगवान की सेवा है। उस काम की सम्पन्नता से भगवान को प्रसन्नता मिले। (बाबा का संकेत श्रीबंकाजी के लेखन कार्य की ओर था) हाँ, आगामी तीन तिथियों को तो अवश्य मेरे पास आ जाना। श्रीराधाष्टमी, श्रीदेवोत्थानी एकादशी तथा कार्तिक मास की पूर्णिमा।

श्रीबंकाजी के मन में ऐसा आया मानो बाबा संकेत के रूप में कह रहे हैं कि बस अधिक-से-अधिक अपने कमरे के एकान्त में रहो। एकान्त में ही भजन करो और एकान्त में ही लेखन कार्य करो।

श्रीबंकाजी—बाबा! एक बात निवेदन कर रहा हूँ। गोवर्धन से आने के बाद से एक विशेष परिवर्तन हुआ है। जब अखण्ड हरिनाम संकीर्तन की, अपने नित्य नियमानुसार परिक्रमा लगाता हूँ तब अपने भाव-स्वरूप की स्फूर्ति होती है, मानो नील वस्त्र पहने सखी ही परिक्रमा दे रही हो।

श्रीराधाबाबा—यह तो सुन्दर है। जब साधक अपनी भावमयी साधना में आगे बढ़ता है और अपने स्वरूप का स्फुरण होने लगता है तब उसको अपने पांचभौतिक शरीर की विस्मृति होने लगती है। ज्यों-ज्यों स्थिति प्रगाढ़ होगी फिर चूड़ियो की आवाज़ सुनाई देने लगेगी। साधक का रजोगुण ज्यों-ज्यों शान्त होगा, जैसे-जैसे सत्त्व की वृद्धि होगी और भावमयी साधना के प्रवाह में जितनी-जितनी प्रबलता आयेगी, तब ऐसा हो सकता है कि साधक में जड़िमा भाव उभर आवे। साधक अपने भाव-जगत में होगा, प्राकृतिक जगत में नहीं। प्राकृतिक जगत के सांसारिक लोग जब उससे कुछ कहेंगे तो वह सुनेगा नहीं। प्रश्न करेंगे तो उत्तर देने की स्थिति में नहीं होगा। यदि प्रश्न करने पर उस साधक की वृत्ति साधारण धरातल पर आयी तो वह निर्णय नहीं कर पायेगा कि क्या उत्तर दूँ। प्रश्न का उत्तर सोचने और देने में जो समय निकल जाता है यह जड़िमा भाव का एक लक्षण है। ऐसे और भी लक्षण है। जब जड़िमा भाव अधिक होने लगता है तो खाने-पीने की सुधि नहीं रहती है। निकट के लोग खिलाना-पिलाना चाहते हैं पर वह साधक क्या करे? वह विवश होता है। जड़िमा भाव के प्रबल होने पर फिर साधक का शरीर अधिक दिन नहीं टिकता।

बाबा की बातों को सुनकर श्रीबंकाजी का मन भर आया। **अति आनंद उमगि अनुरागा॥** इस समय उनका मन यह संकल्प कर रहा था कि पूज्य बाबा का सपना उनके जीवन में सत्य हो। एकमात्र बाबा की रुचि उनके जीवन का स्वरूप हो, बाबा की इच्छा उनके जीवन में प्रतिफलित हो।

श्रीबंकाजी—बाबा! आजकल पदों की रुचि में भी अन्तर आ गया है। पहले दान लीला के, पनघट लीला के पद अच्छे लगते थे पर अब वे पद अच्छे लगते हैं जिसमें श्रीराधाजी की सन्निधि हों।

श्रीराधाबाबा—ज्यों-ज्यों भावों के उच्चतर स्तरों का उन्मेष होगा त्यों-त्यों यह सब होगा ही। मेरी कुटिया से कोठी तक जाने का रास्ता पहले सीधा था पर आजकल समाधि का निर्माण चल रहा है अतः स्थान-स्थान पर गड्ढे

हैं, कंकण हैं। अत: उनके अनुसार नवीन पथ का चुनाव हो ही जाता है। इसी प्रकार विकास के अनुसार ज्यों-ज्यों रुचि में पतिवर्तन होगा तदनुसार पदों के चुनाव में भी अन्तर आयेगा ही।

श्रीबंकाजी—बाबा! श्रीहरिवल्लभजी जब पद गाते हैं, उस समय नेत्र बन्द करने पर जो 'भावदृश्य' सामने आता है, वह क्या वस्तु है?

श्रीराधाबाबा—वह चिन्मय लीला-विहार की छाया है। वह कल्पना भी हो सकती है पर जो भी हो, है तो चिन्मय वस्तु से संपृक्त, चिन्मय वस्तु को लेकर। भले छाया हो या कल्पना हो, यदि यह चलता रहा, तो चिन्मय वस्तु भी एक दिन अवतरित हो जायेगी।

श्रीबंकाजी—बाबा! कोई कितनी ही साधना कर ले, पर यह नितान्त सत्य है कि बिना संताश्रय के बात बनती नहीं। आपकी कृपा हो गई। **अब कछु नाथ न चाहिअ मोरें॥**

बाबा ने तुरन्त इसका अनुमोदन किया। फिर बड़े भाव में आकर कहा—संताश्रय वस्तुत: श्रीराधारानी का आश्रय है। जिसने संताश्रय लिया है, जिसको संताश्रय मिल गया है, उसकी बात बन गयी।

इतनी ही बातें हो पायी थीं कि कुछ लोगों के आ जाने से बातों का क्रम अवरुद्ध को गया।

****

श्रीराधाबाबा के साथ एकान्तिक वार्तालाप-2

विक्रम सम्वत् 2032 कार्तिक कृष्ण 7, सोमवार 27.10.75

सायंकाल के समय परम एकान्तिक वार्तालाप में, श्रीराधाबाबा श्रीबंकाजी को बहुत देर तक समझाते रहे—जब ध्यान करना हो तब शरीर न हिले, खाज आदि भी नहीं। आकाश में श्रीप्रिया-प्रियतम दिव्य कदम्ब के नीचे खड़े हैं। वृक्ष का एक-एक पत्ता चिन्मय है। श्रीप्रिया-प्रियतम के नेत्रों से नेत्र मिलाना। मच्छर-मक्खी अगर तंग करे तो मच्छरदानी में ध्यान करना।

यदि इससे मन ऊबे तो अपने आत्मस्वरूप का चिन्तन करना। सुन्दर-

से-सुन्दर, केश राशि का, यौवन का, शृंगार का। (योनी की रेखा मात्र है, वहाँ मल-मूत्र नहीं है।) चम्पकलता का स्वेद भी सौरभमय है। चम्पकलता श्रीराधारानी का रूप है। श्रीराधारानी ही चम्पकलता हैं। श्रीराधारानी का वासकसज्ञा भाव है। श्रीराधारानी ही चम्पकलता हैं। यही फिर आगे पालिका मंजरी हो जाती है। पालिका मंजरी ही फिर केलि मंजरी बन जाती हैं। जब रस-रंग का गहन आवर्त होता है तो केलि मंजरी ही मंजुला मंजरी बन जाती है। यह सब महाभाव का महासमुद्र है। ऐसा समझो राधाकुण्ड में भाव की एक-से-एक ऊँची लहर है।

यदि 45 मिनट भी ध्यान बन गया तो आपका आठ-दस आना काम बन गया। ध्यान में मन एकदम शान्त हो, शरीर एकदम शान्त हो, परम शान्त। श्रद्धापूर्वक, सुदीर्घ काल तक, निश्चित समय पर, निरन्तर अर्थात् प्रतिदिन करना, रोज़ निर्दिष्ट अवधि के लिये बैठना। ध्यान के समय कोई आ जाये तो उसे विक्षेप नहीं मानना। वह आने वाला भी भगवान ही है। साधकपने का अभिमान उचित नहीं। यदि कभी ध्यान करने का समय नहीं मिले तो उद्विग्न नहीं होना। मान लो, बाबा बहुत अधिक बीमार पड़े हैं। तो उन्हें देखने जाना हो सकता है। यह नहीं कि यह तो मेरे ध्यान का समय है, अत: नहीं जाऊँगा। साधकपने का वृथा अभिमान ठीक नहीं। ध्यान सुखासन से करना, मच्छर तंग करे तो मछहरी में करना। यदि बैठ नहीं पाये तो लेट के करना। पर यह तो लाचारी की स्थिति में।

आप जो सवेरे मेरे पास आते हैं और जो काम करते हैं, उससे अधिक बड़ी सेवा यह होगी कि आप यह ध्यान करें। रात के दो बजे से साढ़े छ: बजे तक, सिद्ध सन्त अपनी शक्ति का दान करते हैं। मैं प्रतिदिन भले दो मिनट के लिये ही बैठूँ, दो से साढ़े चार के बीच में बैठकर अपनी शक्ति का दान, शक्ति का वितरण करता हूँ। आपमें जो बीजारोपण हुआ है, वह अपने आप आपको आगे ले जायेगा।

श्रीबंकाजी—बाबा! वासक सज्ञा भाव के बारे में बतायें।

श्रीराधाबाबा—जब महाभाव स्वरूप श्रीराधा रसराज श्रीकृष्ण को सुख

प्रदान करना चाहती हैं और श्रीकृष्ण सुख का आस्वादन करना चाहते हैं, यही वासक सज्ञा भाव है। इसकी छाया की, छाया की, छाया भी साहित्य में वर्णित नहीं है। कम-से-कम सूर्योदय होने के 24 मिनट बाद तक यह ध्यान तो कर ही लेना चाहिये। आप जितने बजे उठते हैं, उतने बजे उठकर, नित्य कर्म करके, सबसे निवृत्त होकर आप यह ध्यान करें। इसमें निरन्तरता तथा नियमितता (regularity and punctuality) बहुत आवश्यक है। सुदीर्घ काल तक यह साधन करने से इसका फल होता है।

इसके बाद बाबा ने अपने प्रियतम काव्य का वह अंश सुनाया जब भगवान श्रीकृष्ण में भगवती श्रीराधा के प्रति प्रथम पूर्वानुराग जागता है। वह आश्विन शुल्क नवमी तिथि की प्रभात वेला है। उस समय का कुछ वर्णन करके बाबा ने बताया कि श्रीकृष्ण मधुमय वंशी बजाते हैं तथा सबको बुलाते हैं।

इसी समय कुछ लोग आ जाते हैं अत: एकान्तिक वार्तालाप को विराम देना पड़ता है।

****

श्रीराधाबाबा के साथ एकान्तिक वार्तालाप-3

शुक्रवार 14.11.75 को पूज्य बाबा ने कह रखा था कि देवोत्थानी एकादशी के प्रात: मेरे पास आ जाना। आज सवेरे श्रीबंकाजी पूज्य बाबा के पास गये। अभी बाबा सो कर उठे नहीं थे। जब वे उठे तब जाकर प्रणाम किया।

श्रीराधाबाबा ने पूछा—आज कैसे आये?

श्रीबंकाजी ने कहा—आपने ही कहा था कि श्रीराधाष्टमी, श्रीदेवोत्थानी एकादशी तथा कार्तिक मास की पूर्णिमा को प्रात: मेरे पास आ जाना।

श्रीराधाबाबा ने कहा—कार्तिक कृष्ण अष्टमी तथा कार्तिक की पूर्णिमा को बुलाने का हेतु तो याद आ रहा है पर आज बुलाने का हेतु स्मरण नहीं हो रहा है। मैंने कब कहा था?

श्रीबंकाजी—गोवर्धन से आने के बाद प्रति प्रात:काल मैं आपके पास आया करता था। आपने कहा कि मेरे पास प्रात:काल आने की आवश्यकता नहीं। यहाँ आने से जो वस्तु मिलती है, उससे अधिक मूल्यवान वस्तु कमरे में ही मिलेगी। तब आपने कहा था कि सूर्योदय के बाद 24 मिनटों तक कमरे में अपनी उपासना ही करनी चाहिये। इतना कहकर कहा कि इसके बाद भी इन तीन तिथियों को मेरे पास अवश्य आ जाना।

श्रीराधाबाबा—सूर्योदय के बाद 24 मिनट तक नहीं, 1 घण्टा 36 मिनट तक उपासना में, जो भी अपनी उपासना हो, उसमें रहना चाहिये। भगवान श्रीकृष्ण की वंशी योगमाया ही है, वह ही आवाहन करती है या वंशी मौग्ध्य संपुटित ऐश्वर्य का स्वरूप है। भगवान के ऐश्वर्य के तेज़ को सह सकना असम्भव है पर वंशी का ऐश्वर्य बड़ा रसीला है। सूर्योदय के बाद वंशी के ऐश्वर्य का प्रभाव रहता है।

फिर थोड़ी देर चुप रहने के बाद बाबा ने कहा—अब बुलाने का हेतु स्मरण आ गया। आज देवोत्थानी एकादशी है। आज से देव जगत सक्रिय हो जायेगा। पर इसका ब्रज भाव का भी पक्ष है वह भी अभी बताऊँगा। हरिशयनी एकादशी को देवजगत शयन करता है तथा शक्ति पक्ष जागृत हो जाता है। आज से शक्ति पक्ष का शयन प्रारम्भ होगा। श्रीवृषभानुजी के छठवे प्रांगण में भगवती श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीजी का मन्दिर है जिसमें भगवति महात्रिपुरसुन्दरीजी का चिन्मय श्रीविग्रह है। उस चिन्मय श्रीविग्रह के दिव्य चक्षु हरिशयनी एकादशी को तो खुल जाते हैं। वे चक्षु आज निमीलित हो जाते हैं। आज देवोत्थानी एकादशी के दिन ही श्रीतुलसीजी का भगवान से विवाह होता है। विवाह के बाद कोहबर लीला अर्थात् विश्राम लीला। आधिदैव जगत का जो नर पक्ष है, अब सक्रिय हो जायेगा तथा आधिदैव जगत का जो शक्ति पक्ष है वह हरिशयनी को सक्रिय होता है। इसी तरह ब्रज भाव में इसका क्रम चलता है। श्रीप्रियाप्रियतम सतत विषयालम्बन तथा आश्रयलम्बन है पर हरिशयनी एकादशी से देवोत्थानी एकादशी तक महाभाव पक्ष प्रबल रहता है तथा देवोत्थानी एकादशी से हरिशयनी एकादशी तक रसराज पक्ष प्रबल रहेगा।

बाबा ने बताया कि उन्होंने अपने प्रियतम काव्य में एक जगह लिखा है कि "नारायणी शक्ति" सक्रीय होती हैं। देवी के उपासकों के लिये यह दिन महत्त्व का है। आज यदि रात्रि जागरण हो तो बड़ा महत्त्व है।

श्रीबंकाजी—आप कहे तो रात्रि जागरण करूँ ?

श्रीराधाबाबा—सारी रात जागने की जरूरत नहीं। मध्यरात्रि के समय जागना चाहिये।

श्रीबंकाजी—उस वक्त क्या करना होगा ?

श्रीराधाबाबा—कुछ करना नहीं है। बाह्य कुछ नहीं करना है। बस अपनी उपासना में रहना है। जो भी उपासना हो, उसके द्वारा अपने आराध्य के पास रहें। श्रीराधामाधव की प्रीति की प्राप्ति ही जीवन का लक्ष्य है। श्रीप्रिया-प्रियतम का दर्शन ही जीवन का प्राप्तव्य है। जीवन का लक्ष्य भोग नहीं, भगवान हैं। जीवन के भीतरी-बाहरी प्रत्येक व्यापार पर लक्ष्योन्मुखता छायी रहे। श्रीराधा-माधव-भाव में बहो, युगल-चरण के प्रति समर्पण भाव में सनो। श्रीराधामाधव सतत छाये रहें। उनके नाम का जप, उनके रूप का ध्यान, उनकी लीला का चिन्तन, उनके गुणों में अवगाहन, उनके तत्त्व का, स्वरूप का मनन सतत् होता रहे। जगत की, जगत के प्राणी पदार्थ परिस्थिति की स्मृति न हो। यदि हो तो श्रीराधामाधव के नाते हो। जगत अच्छा न लगे। जगत के काम अच्छे न लगे। जगत की चर्चा अच्छी न लगे। जगत के प्राणी पदार्थ आदि अच्छे न लगें। जगत की स्मृति न हो। बस सतत् भगवत्स्मृति बनी रहे। बस, कृपा की प्रतीक्षा करो।

श्रीराधाबाबा—तिथियों का, समय का बड़ा महत्त्व होता है। तुम सूर्यास्त के समय, संध्या को मेरे पास आ जाना। केवल कुछ क्षण के लिये मेरे सामने आ जाना। वह दिव्य वस्तु उसे ही प्राप्त हो सकती है जो पूर्ण समर्पण करे। कोई actor तो बने फिर तो director स्वयं ही श्रृंगार कर देगा। पाठ याद न हो तो न सही, परदे के पीछे से prompter सब बातें बता देगा पर मंच का actor बनने की मन में तैयारी तो हो। Actor से ज्यादा चिन्ता, ज्यादा खोज director को होती है। कहीं कोई actor मंच लायक मिल जाय। रह-रह कर बाबा संकेत कर रहे थे actor बनने के तैयारी का यही अर्थ है कि स्वयं को director के हाथ पूर्णत: सौंप दे।

श्रीराधाबाबा—कार्तिक की पूर्णिमा भी रासदिवस है। बंगाल में इसे बहुत मनाया जाता है। यह आगम जगत के अनुसार है। रास दिवस है, इसीलिये कार्तिक की पूर्णिमा को सवेरे आने को कहा था। बस, भईया, अब आगे बढ़े चलो। " कार्यं वा साधयामि देहं वा पातयामि।" ताकते रहो, रस भंग न हो जाये।

श्रीबंकाजी के कमरे में अनेकों रजिस्टर भरे हुए हैं जिनमें 1971-1992 तक के बाबा से हुए, उनके विस्तृत वार्तालाप लिखे हुए हैं। उनमें से अधिकतर प्रसंग श्रीबंकाजी ने अपनी पुस्तकों में, बाबा की जीवनी में, वाटिका के पत्र पुष्प आदि पत्रों में लिख दिये हैं। बाबा के दिव्य प्रियतम काव्य की जितनी बातें श्रीबंकाजी ने सुनीं उसे उन्होंने प्रियतम सौरभ नामक पुस्तक में बहुत सुन्दर रूप में वर्णन किया है।

एक बार गिरिराजजी की परिक्रमा करने श्रीराधाबाबा पधारे। परिक्रमा में श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी, श्रीनारायणजी आदि बैठे हुए थे। बाबा ने उस वक्त श्रीबंकाजी के लिये कहा कि—यह बंका वाटिका का रत्न है।

एक और अवसर पर राधाबाबा ने कहा कि—सृष्टि के नियमों में परिवर्तन आ सकता है पर बंका असफल नहीं हो सकता। सूरज पश्चिम से निकल सकता है पर बंका असफल नहीं हो सकता।

कुछ आशीर्वाद वचन और व्यक्तिगत साधना की बातें जो बाबा ने श्रीबंकाजी से कही थीं, वह कहीं भी नहीं लिखी गयी हैं क्योंकि स्वयं के बारे में लिखना उन्हें बिल्कुल प्रिय नहीं था। केवल उन्हीं बातों को बहुत संक्षेप में यहाँ दिया गया है।

18-9-77 को सूर्यास्त के 48 मिनट पहले, तुलसी माला को विधिवत अभिमन्त्रित करके पूज्य बाबा ने श्रीबंकाजी को दी थी। वे इसी माला से जप किया करते थे।

****

सन्त क्या चाहा करता है

3.11.75, को श्रीबंकाजी तथा अन्य कुछ लोग बाबा के पास बैठे हुए थे। प्रयाग से श्रीजजसाहब के सुपुत्र, श्रीमहेशजी दीक्षित आये। बाबा को प्रणाम किया। बाबा ने पूछा—क्यों आजकल वकालत कैसी चलती है ?

श्रीमहेशजी ने कहा—बाबा अच्छी चल रही है।

तब बाबा ने विनोद में कहा—ये दो व्यक्ति बड़े विचित्र है। डॉक्टर चाहता है कि लोग खूब बीमार पड़ें, चिकित्सा कराने आयें तथा आमदनी बढ़े। इसी प्रकार वकील चाहता है कि लोग खूब झगड़ा करें। झगड़ा होगा तभी तो वकील की आमदनी बढ़ेगी।

बाबा की बात सुनकर सब लोग हँस पड़े। इसी प्रकार बातचीत का वातावरण हल्का था। तभी श्रीबंकाजी ने एक प्रश्न किया।

श्रीबंकाजी—बाबा ! सन्त क्या चाहा करता है ?

इतना पूछना था कि पूज्य बाबा का चेहरा गम्भीर हो गया और यही गम्भीरता वातावरण में भी व्याप्त हो गयी। अपनी दृष्टि में करुणा बहाते हुए बाबा बोले—सन्त हमेशा यही चाहता है—विश्व का कल्याण हो, दुष्टों की बुद्धि शुद्ध हो, सब प्राणियों में परस्पर सद्भावना हो, सभी एक दूसरे का हित चिन्तन करें, हमारा मन शुभ मार्ग में प्रवृत्त हो और हम सबकी बुद्धि निष्काम भाव से भगवान् श्रीहरि में प्रवेश करे।

भक्तराज प्रहलाद सतत् यह विनती भगवान से करते रहते हैं। प्रहलादजी तो चिरजीवी हैं और उनकी यह प्रार्थना आज भी हो रही है। यह विनती भागवत में है।

****

ब्रज रस के पदों का संग्रह

गिरिराज गुंजन पुस्तक में जितने भी पद छपे हैं, उन सब ब्रज रस के पदों का संकलन श्रीबंकाजी ने किया था। बाबा का ब्रज साहित्य का ज्ञान

और अध्ययन बहुत विशद था। उन्होंने श्रीबंकाजी से अष्टयाम लीला के पदों का संकलन करवाया, जो मधुपर्क के नाम से छपा है। संकलन को करने में श्रीकृष्णचन्द्रजी अग्रवाल ने भी सहायता प्रदान की थी। अष्टयाम लीलाओं के साथ-साथ अन्य बहुत से लीला-वन्दना-स्वरूप-उत्सव आदि के पद भी थे जो बाबा को अतिशय प्रिय थे और उनका बाबा की परिक्रमा के समय गायन होता था। सभी पदों को गिरिराज गुंजन नामक पुस्तक में देखना चाहिये।

श्रीबंकाजी भिन्न-भिन्न ब्रज साहित्य की पुस्तकों में से सुन्दर-सुन्दर पद एकत्रित करते और संध्या समय बाबा को सुनाने उनकी कुटिया पर जाते। यह प्रतिदिन का क्रम हो गया था। बाबा प्रत्येक पद को बहुत ध्यान से सुनते और संशोधन करते थे। जो पद उन्हें पसन्द आते, उसमें से कुछ अष्टयाम लीला में सम्मिलित कर लेते और कुछ परिक्रमा के समय गाने के लिये रख लिये जाते थे। जो पद बाबा को प्रिय नहीं लगते थे, वह हटा दिये जाते थे।

बाबा ने पदों का चयन बहुत सावधानी पूर्वक किया। किसी भी पद में खुला श्रृंगार नहीं है। ब्रज साहित्य के अधिकतर मधुर रस के पदों में, श्रीप्रियाप्रियतम का खुला श्रृंगार-प्रेम-सुरतान्त छवि आदि का वर्णन है। पूज्य बाबा ने उन पदों को अपने संकलन में नहीं लिया क्योंकि उनका कहना था कि जब तक साधक का काम-भाव पूर्णत: शान्त नहीं हो जाता है, ऐसे पदों को पढने-गाने से हानि होती है।

विश्वास मानिये बाबा द्वारा करवाया गया यह पदों का संकलन अति दिव्य है। गिरिराज गुंजन पुस्तक में एक-एक पद कितनी सावधानी से लिया गया है यह दर्शाने के लिये एक प्रसंग नीचे लिखा जा रहा है।

नित्य के क्रम के अनुसार बुधवार 5.5.1976 को शाम चार बजे, श्रीबंकाजी पूज्य बाबा के पास गये संकलित पदों को दिखलाने के लिये। "फुलवा बीनन हौं गयी री जमुना तीर द्रुमन की भीर।" यह पद पढ़कर श्रीबंकाजी सुना रहे थे। पूज्य बाबा को जैसा याद था उससे इसका पाठ भेद था। पूज्य बाबा ने श्रीबंकाजी के लिखे गये पाठ का संशोधन कराया। फिर बड़े भाव में आकर इस पद के चयन करने का इतिहास बताने लगे।

बात सन् 1939 के आस-पास की है। श्रीपोद्दारजी कलकत्ता गये। साथ में पूज्य बाबा भी थे। श्रीकानोड़ियाजी के यहाँ श्रीपोद्दारजी ठहरे थे। श्रीग्वालदासजी मूँदड़ा किसी कीर्तनिया को लेकर आये और उससे यह पद सुनवाया। इसके सुनते ही श्रीपोद्दारजी महाराज समाधिस्थ हो गये। यह नहीं कहा जा सकता कि इस पद का मूल पाठ अथवा शुद्ध पाठ क्या है। बाबा तो उस पाठ को महत्त्व देते है जिसे सुनकर श्रीपोद्दारजी समाधिस्थ हो गये। वह पाठ उन्हें ज्यों-का-त्यों याद था। वह कीर्तनिया कितना पढ़ा था, कैसा पाठ याद किया था इसका प्रश्न नहीं है। जिस पद के जिन शब्दों में श्रीपोद्दारजी डूब गये, श्रीपोद्दारजी के भाव की छाप तो उस पर लग ही गयी।

इसी प्रकार एक पद और है—"खेलन के मिस कुवरि राधिका नन्द महर घर आयी हो"। यह पद श्रीपोद्दारजी को रतनगढ़ में सुनाया गया और श्रीपोद्दारजी समाधिस्थ हो गये। तभी तो इस पद का महत्त्व है। श्रीपोद्दारजी को विप्रलम्भ रस का एक पद बड़ा प्रिय था—"चित दै सुनो स्याम प्रवीन"। एक बार रेकार्ड में यह पद गाया जा रहा था। श्रीपोद्दारजी इतने अधिक प्रेम विह्वल हो गये कि संयम रख सकना कठिन हो गया। तब वे बाबा की कुटिया में आये, अति विह्वलावस्था में और कहा—बाबा कहा जाऊँ, कहीं छिपने आया हूँ।

पूज्य बाबा यह सुनकर विभोर हो उठे तथा उनका स्वागत किया। पूज्य बाबा ने बताया कि—यह पद "चित दै सुनो स्याम प्रवीन" श्रीपोद्दारजी को मैंने सौ बार से भी अधिक सुनाया होगा। इसी प्रकार सुनाया है गोपी गीत। चलती ट्रेन में अनेक बार सुनाया है। यह गोपी गीत मेरी और उनकी सुदृढ़ प्रीति में एक प्रधान हेतु है।

जब श्रीबंकाजी ने अपने संकलन में से "जयति श्रीराधिके सकल सुखसाधिके" वाला पद तथा "सुमिरो नट नागर वर सुन्दर गोपाल लाल" वाला पद सुनाया तो पूज्य बाबा ने कहा—ये तो ब्राह्ममुहूर्त के पद हैं। साधक की दृष्टि जब तक प्रपंच जगत की ओर तनिक भी है उसको प्रापंचिकता से ऊपर उठाने में यह पद बड़ा सहायक है। श्रीगोपाल लाल के स्मरण से समस्त प्रापंचिक दुःख दूर हो जाते हैं।

उर्पयुक्त कुछ उदाहरण तो मात्र समझाने के लिए दिये गये हैं कि कैसे एक-एक पद का चयन बाबा द्वारा कितना सोच-विचारकर किया गया है। श्रीबंकाजी कहा करते थे कि—इस संग्रह में से कोई भी पाँच पद, जो अत्यन्त प्रिय लगे उन्हें अलग कर लेना चाहिये और प्रतिदिन उनका नियमपूर्वक पाठ करना चाहिये। पाठ करते वक्त हर पंक्ति का एक चित्र भी मन-ही-मन बाँधते चले जाना चाहिये। इस प्रकार पाठ करने से लीला-चिन्तन हो जायेगा। यदि यह क्रम आजीवन निभ गया तो बाबा की कृपा से श्रीप्रिया-प्रियतम की प्राप्ति सहज में ही हो जायेगी।

बुधवार 6.5.1976। आज चार बजे श्रीबंकाजी पूज्य बाबा के पास अपने छँटे हुए पद दिखलाने गये। इन पदों को दिखलाने का क्रम वैशाख कृष्ण 13 से आरम्भ हुआ। पदों को दिखाने के पूर्व श्रीबंकाजी ने पूज्य बाबा से कहा—बाबा! इन पदों को छाँट लिया है पर इन पदों से श्रीराधा का वह रूप उभर कर नहीं आया है जिस रूप की अन्दर से माँग है। बाह्य चेष्टाओं का तथा रूप का वर्णन है, पर भीतरी समर्पण भाव का जो छलछलाता चित्रण होना चाहिये, उसके भव्य दर्शन नहीं होते हैं।

तब बाबा ने कहा—मैंने भी पद साहित्य देखा है, पर वह भाव गरिमा नहीं मिलती। मैंने भी एक बार विशाल संग्रह किया था, वह संग्रह अब किसी के पास होगा, पर वह वस्तु नहीं मिली जो मैं चाहता था। फिर संस्कृत के श्लोक छाँटे, तब भी बात नहीं बनी। मेरी राधा के स्वर की जो कोमलता है, कहीं भी तो वह सुनने को नहीं मिलती। इतना रास देखा, कहीं भी तो श्रीजी का वैसा स्वर सुनने को नहीं मिलता। आज भी जब मेरे हाथ हिलते हैं, हाथ के हिलने से चूड़ियों की जो झनकार होती है, उसे केवल मैं ही सुनती हूँ, वैसी झनकार कहीं भी तो सुनने को नहीं मिलती। मैंने श्रीकृष्ण के इतने चित्र देखे, किसी भी चित्र में वह झलक, वह छवि, वह आभा नहीं जो मेरे श्रीकृष्ण में है।

अब जो पदों का संकलन चल रहा है और अष्टयाम बन रहा है, यह सत्य है कि उसमें वह वस्तु नहीं है जो बाबा के मन में है। बाबा ने बताया कि मेरी राधा का स्वरूप अनोखा है। बहुत से पद देखे पर कोई भी उस स्तर को

छू नहीं पाता। बंगला भाषा के कुछ पद अवश्य उस स्तर को छूने का प्रयास करते हैं। रामी का पद 'बंधु कि आर बोलबो आमि' यह पद बड़ा भावपूर्ण है। व्रज भक्तों के जो पद हैं केलि के, रूप के, बड़े सुन्दर पद हैं। उनके काव्यात्मिक सौन्दर्य पर वस्तुत: कवि हृदय रीझ जाये, पर मेरी राधा का वह 'स्वरूप' उनमें नहीं दिखलाई देता। उन पदों को पढ़कर निम्न स्तर के भावों के उभर आने की आशंका रहती है। कुछ भी हो, यह संकलन फिर भी श्रेष्ठ है। इसमें रूप माधुरी तो है ही। जो भी इसका आश्रय लेगा, उसमें वह परम सत्य, वह परम स्वरूप, स्वत: आविर्भूत हो जायेगा।

अनेक दिनों के अथक प्रयास के बाद श्रीबंकाजी ने गिरिराज गुंजन में लिखे सभी पदों का संकलन कर लिया और बाबा को दिखला भी दिया। श्रीबंकाजी की पद श्रवण में इतनी अधिक रुचि थी की 7-2-76 से 22-3-76 तक होली के अवसर पर वे वृन्दावन, श्रीभट्टजी के यहाँ समाज सुनने भी गये थे। इससे उनके भाव को बहुत पोषण मिला और लीला-चिन्तन में बहुत उन्नति हुई।

****

लिखित सामग्री को श्रृंखलाबद्ध करना

श्रीबंकाजी तीस सालों तक बाबूजी एवं बाबा की बातों को लिखते रहे। यह लेखन कार्य उनकी साधना का बहुत ही महत्त्वपूर्ण अंग बन गया। दिन भर बाबूजी एवं बाबा का संग करना, उनकी बातों को सुनना, उनसे मिलने आनेवाले लोगों की बात को सुनना-समझना, बाबूजी-बाबा द्वारा किये गये पत्राचार को देखना, उनकी दिनचर्या की छोटी-से-छोटी महीन बातों को ध्यानपूर्वक निरखना, आदि आदि और फिर इन सारी बातों को रात के वक्त, अपने कुटिया के एकान्त में लिखते चले जाना।

महीन-से-महीन, प्रतिदिन की सहज बातें जो किसी की नजर में भी न आयें, ऐसी बातें भी श्रीबंकाजी लिख लिया करते थे। एक उदाहरण लें—बाबूजी का व्यवहार अपने परिवार वालों के साथ, आगन्तुकों के साथ,

सेवकों के साथ, साधु-सन्तों के साथ, सहकर्मियों के साथ, विद्वानों के साथ, धनपतियों के साथ, नेताओं के साथ, पत्रकारों के साथ, साधारण कुली, नौकर माली, रसोईयों के साथ, हर पक्ष पर श्रीबंकाजी ने अपनी कलम चलाई है। यह उनकी पैनी दृष्टि की और मजबूत पकड़ की ही देन है जो बाबूजी-बाबा के जीवन की इतनी सहज और महत्त्वपूर्ण बातों का हमें पता चल पाया जबकी दोनों ही सन्त स्वयं को परम गोपनीय रखना चाहते थे।

श्रीबंकाजी का स्वाभाव ऐसा मधुर, मिलनसार था कि जहाँ बगीचे के साधारण कर्मचारी, नौकर, माली, सेवक भी उनसे अपने मन की बात तथा बाबा-बाबूजी से हुई बातें बता दिया करते थे वहीं भारत के बड़े-से-बड़े विद्वानों, सन्तों एवं साधकों से भी उनका पत्राचार बराबर होता रहता था। उनके विनीत स्वभाव, जिज्ञासु प्रवृत्ति और मिलनसार व्यक्तित्व से प्रभावित होकर, प्रत्येक मिलने वाले व्यक्ति अपनी अंतरंग और गुप्त वार्तालाप भी सहज ही उन्हें बता दिया करते थे।

वृन्दावन की कई विभूतियाँ जो प्राय: बाबा-बाबूजी के पास आया करती थीं, उनका श्रीबंकाजी के साथ मित्रता का भाव हो गया था। उदाहरण के लिये ठाकुर श्रीघनश्यामजी का श्रीबंकाजी बहुत सम्मान करते थे पर जब चर्चा होती तो मित्रों की भाँति होती और घंटों वे बाबा-बाबूजी की पुरानी बातें बतलाते रहते थे। श्रीबंकाजी के कर्ण कभी इस चर्चा से थकते नहीं थे और टेप रिकार्ड की भाँति उनके मस्तिष्क में यह सब चर्चा संचित होती चली जाती। फिर रात्रि के एकान्त में वे चुप-चाप इसे लिखते जाते।

श्रीबंकाजी उत्सवों और महोत्सवों पर बाबा-बाबूजी के जीवन को और भी ध्यानपूर्वक देखते तथा विभिन्न सन्तों के साथ उनके व्यवहार, कार्य-कलापों को चुप-चाप लिखते जाते। इस लेखन कार्य की किसी को भनक तक नहीं लगने दी। 25 साल की अवधि कम नहीं होती है। दिन-महीने-साल बीतते चले गए और श्रीबंकाजी की कुटिया में रजिस्टर पर रजिस्टर भरते चले जा रहे थे। कई लोहे की बड़ी-बड़ी अलमारियाँ इन रजिस्टरों एवं पुस्तकों से भर गयी।

एक दिन श्रीबंकाजी ने सोचा कि मैं लेखन तो कर रहा हूँ पर यदि मुझे किसी पूर्व प्रसंग को फिर से पढ़ना होगा तो इस विषद संग्रह में से वह प्रसंग किस प्रकार निकाला जा सकेगा? अगर सही प्रकार से विषय-सूची तैयार न की गई तो यह सारी लिखित सामग्री का अथाह संकलन व्यर्थ हो जायेगा।

इस सोच विचार में वे कई दिन डूबे रहे और फिर उन्होंने वर्षों की लिखित सामग्री को श्रृंखलाबद्ध करने का सोचा। प्रत्येक रजिस्टर पर नम्बर लिखना प्रारम्भ किया, हर पृष्ठ को संख्याबद्ध किया और फिर एक नये रजिस्टर पर विषय-सूची बनानी आरम्भ की कि किस रजिस्टर के कौन से पन्ने पर कौन सा प्रसंग है। यह बहुत ही विषद कार्य था। महिनों लग गये केवल श्रृंखलाबद्ध करने में ही और तब कहीं जाकर सारी लिखित सामग्री को शीर्षक दिया गया और सारी सामग्री सुव्यवस्थित हो सकी।

इसी प्रकार से श्रीबंकाजी का जो पत्राचार विभिन्न लोगों से, सन्तों से, विद्वानों से चलता था उनको भी श्रृंखलाबद्ध किया गया और रजिस्टर पर सूची बनायी गयी कि अमुक फाइल में अमुक व्यक्ति का पत्राचार है। यही सब संग्रह आगे चलकर उनकी सभी पुस्तकों का मूल स्त्रोत बना और इस सारी सामग्री का श्रृंखलाबद्ध होना बाद में, जब वे पुस्तक लिख रहे थे, बहुत काम आया।

इस लिखित सामग्री के समान ही श्रीबंकाजी अपनी पुस्तकों को भी एक पुस्तकालय की तरह श्रृंखलाबद्ध करके रखते थे। हर पुस्तक पर उनका नाम, पुस्तक संख्या, किस अलमारी में है, उसकी अलमारी संख्या और अलमारी के किस खण्ड में हैं, वह खण्ड संख्या अवश्य लिखी होती थी। प्रत्येक पुस्तक जिल्द चढ़ी होती थी या कवर की हुई होती थी। विद्या-धन को बहुत ही सहेज कर रखना उनका सहज स्वभाव था।

****

लीलावली

सांसारिक चकाचौंध से बहुत दूर रहते हुए, गीतावाटिका में अपनी कुटिया के एकान्त में, रसिक सन्तों द्वारा बताये गये पराभक्ति के रस मार्ग पर, श्रद्धा-भक्ति सहित दीर्घ कालीन उपासना के फलस्वरूप, जो रस-सागर श्रीबंकाजी के हृदय में उद्वेलित हुआ, उसकी कल्पना हम साधारण मानव नहीं कर सकते हैं। उसी रस-सागर की कतिपय उर्मिया उनकी पुस्तक लीलावली में वर्णित हैं।

रस-स्थली गीतावाटिका में नित्य निवास, पूज्य श्रीराधाबाबा का सान्निध्य, वृन्दावन-गोवर्धन की समय-समय पर यात्रा, श्रीगिरिराजजी की परिक्रमा, समाज गायन का श्रवण, भगवती महात्रिपुरसुन्दरीजी की आराधना, मधुर रस के उपासकों से मैत्री, इन सबने श्रीबंकाजी के अन्तर को रसमय बना दिया। रसमयता का परिणाम यह हुआ कि एकान्त के क्षणों में श्रीप्रिया-प्रियतम की मधुर निकुंज लीलायें उनके नयनों के आगे स्फुरित होने लगीं और वे उनको अपनी सरस लेखनी से लिपिबद्ध करने लगे।

नित्य वन्दनीय महान भागवतों द्वारा अनुमोदित और भागवत-रामायण-गीता द्वारा प्रतिपादित साधन-पथ पर दीर्घकाल तक एकाकी चलते हुए, जगत से स्वयं को परम सुगुप्त रखकर नित्य निकुंजेश्वरी-रासेश्वरी श्रीराधा और नित्य निकुंजेश्वर-रासेश्वर श्रीश्यामसुन्दरकी परम दिव्य लीलाओं का दर्शन श्रीबंकाजी करते रहे। इस आस्वादन में न दिन की सुध रही, न रात्रि की। कभी नयनों से अश्रुधार बहती तो कभी हँसी के फव्वारे छूटते......। कभी भाव अधिक छलछलाता तो अर्ध रात्रि में ही उठकर दृष्ट लीलाओं का लेखन करने लगते और लिखते-लिखते कब लेखनी करों से छूट जाती और पुनः रस सरिता में बह जाते इसकी साक्षी तो इनकी कुटीर की मूक दीवारें ही हैं। श्रीबंकाजी स्वयं श्रीचम्पकलता सखी के रूप से इन लीलाओं में सम्मिलित होकर सेवा करते थे।

इन दिव्य लीलाओं को मुझे देखन-पढ़नेका अवसर मिला। मैं विमुग्ध

थी, विलुब्ध थी.....। मेरी भावनायें अत्यंधिक उर्मिल हो रही थीं। मैं चाहती थी कि इनका प्रकाशन हो परन्तु श्रीबंकाजी बार-बार मना करते थे। वे कहा करते थे—लाली! यह मेरी परम गोपनीय निधि है। इसको समाज के सामने लाना उचित नहीं है, परन्तु मेरा चिन्तन कुछ और ही था। जैसे मुझ नगण्या को रसास्वादन का अवसर मिला वैसे ही मेरे अन्य भाई-बहनों को भी मिले, इसी भावना से प्रेरित होकर मैं उनसे प्रकाशन के लिये अनुरोध करती रही। श्रीबंकाजी की पोती होने के नाते मैं उनकी मुँहलगी हूँ। बालकों के हठ के समक्ष कभी-कभी गुरुजनों को झुकना पड़ता है। मेरे बाल हठ को उन्होंने स्वीकार किया, यह उनके परम वात्सल्य का द्योतक है।

श्रीप्रिया-प्रियतम की निकुंज लीलाओं का मधुरातिमधुर रसदान ही लीलावली है। श्रीप्रिया-प्रियतम एवं सखियों का नित्य लीला-विहार कितना पवित्र है, कितना आनन्ददायक है, कितना परस्पर सुख-सम्पादन से ओत-प्रोत है, कितना तत्-सुख-सुखिया भाव से आप्लावित है, इसका आस्वादन कराना इन रसीली लीलाओंका सहज स्वरूप है। लीलावली (दो भाग में) 2011 की राधाष्टमी को प्रकाशित की गयी और इसमें 108 लीलायें हैं। इन लीलाओं में जहाँ-जहाँ 'मैं' शब्द का प्रयोग हुआ है उसे श्रीचम्पकलता सखी के रूप में श्रीबंकाजी को ही समझना चाहिये। पहली लीला उदाहरण स्वरूप यहाँ दी जा रही है।

सखियों के चित्र

निकुंज का एकान्त कक्ष। श्रीप्रियाजी मखमली सिंहासन पर अकेली बैठी हैं। उन्होंने धीरे से पुकारा—चित्रा!

अपना नाम सुनते ही श्रीचित्रा उपस्थित हो गयी। नयनों की भाषा में चित्रा पूछ रही थी कि क्या आदेश है। श्रीचित्रा पर दृष्टि जमाये श्रीप्रियाजी ने कहा— क्या तुम मेरा एक काम कर दोगी?

श्रीचित्रा ने विनम्र स्वर में कहा—मैंने कब किसी कार्य के लिये ना कहा है?

श्रीप्रियाजी—यह तो मैं जानती हूँ , पर आज जो कहूँगी, उसके लिये तुम आनाकानी तो नहीं करोगी?

श्रीचित्रा—तुम कहो तो सही। मैं न तो ना कहूँगी और न आनाकानी करूँगी।

श्रीचित्रा का कथन आदेश-पालन की भावना से भरपूर था।

श्रीप्रियाजी—मैं जो कहूँगी, उसके बीच में कोई प्रश्न मत करना और न इसकी चर्चा कहीं अन्यत्र करना। मैं जो कहूँ , वैसा कर देना।

श्रीप्रियाजी ने जो कहा, उसके शब्द-शब्द से अपार प्यार झर रहा था। श्रीचित्रा की चित्तवृत्ति अत्युत्सुक थी कि श्रीप्रियाजी आज क्या अनोखी बात कहने वाली हैं। सुनने के लिये अति तत्परा चित्तवाली श्रीचित्रा से श्रीप्रियाजी ने कहा—तुम एक चित्र बना दो। सुन्दर चित्र, एक ललिता का, एक विशाखा का, एक तुम अपना............।

श्रीचित्राजी बीच में ही बोल पड़ी—मेरा और मेरी बहिनों का चित्र क्यों बनवा रही हो?

श्रीप्रियाजी—देखो, देखो, तुम बीच में ही बोल पड़ी न? मैंने कहा था न कि बीच में कुछ प्रश्न मत करना।

श्रीचित्रा—ठीक है। उत्सुकतावशात् प्रमाद हो गया। अब मैं नहीं पूछूँगी। श्रीचित्रा ने विश्वास दिलाया।

श्रीप्रियाजी—तुम ललिता, विशाखा, अपना, इन्दुलेखा, चम्पकलता, रंगदेवी, तुंगविद्या, और सुदेवी, इन सभी का एक-एक सुन्दर चित्र बना दो।

श्रीचित्रा ने कहा—जैसी आज्ञा।

श्रीचित्रा ने एक-दो दिन में आठों बहिनों के आठ चित्र बनाकर दे दिये। श्रीप्रियाजी ने उन आठों चित्रों को चन्दन की मंजूषा में सहेजकर और सँभालकर रख दिया। श्रीचित्रा के मन में बड़ी जिज्ञासा थी कि इन चित्रों को बनवाने का प्रयोजन क्या है? पूछने पर श्रीप्रियाजी बतलायेंगी नहीं और प्रयोजन जानने की उत्सुकता उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही थी।

एक रात श्रीचित्राजी के उकसाये जाने पर मैंने बात को टटोलने का प्रयास किया। प्रयास सफल भी हो गया। निकुंज के छिद्र-रन्ध्र से चुपचाप झाँककर मैंने जो देखा, उसे देखकर अपार विस्मय हुआ।

श्रीप्रियाजी ने चन्दन की मंजूषा से श्रीललिताजी का चित्र निकाला। उस चित्र को श्रीप्रियाजी ने प्रणाम किया, उसे छाती से लगाया, कपोलों से चिपकाया और फिर उस चित्र को निहारते हुए वे कहने लगीं—ललिते! जैसी तेरी सेवा-परायणता है, उसके कणांश का भी उद्भव मेरे जीवन में कभी होगा क्या? मेरी बहिनी! तुम कितनी महान हो जो हम दोनों के लिये सतत् और सर्वथा सर्वार्पण किये रहती हो.......। मैं तेरे चित्र को प्रणाम करती हूँ, शायद इसी से तेरा यह महान सद्गुण प्रिय-सुख-संवर्धनशीलता, मेरे अन्तर में भी संक्रमित हो जाय।

जिस प्रकार श्रीललिताजी के चित्र के प्रति वन्दन-निवेदन आदि श्रीप्रियाजी ने किया, वैसा ही अन्य बहिनों के चित्रों के प्रति भी किया।

मैं मन-ही-मन पुकार उठी—इस भाव-गरिमा की जय हो......, जय हो.....!! मैं बलि-बलि जाऊँ।

****

भोजन स्वयं बनाओ

एक दिन श्रीबंकाजी बाबा के पास बैठे थे। अन्य भी कई लोग बैठे थे। सामान्य चर्चा हो रही थी। भोजन पर बात चल पड़ी। बाबा ने कहा—तुमलोग जीने के लिये भोजन करते हो अथवा भोजन करने के लिये जीते हो? भोजन साधन है, साध्य नहीं। शरीर-धर्म से ऊपर उठो। एक बार, दो बार, जो मिल गया पर्याप्त है। क्या यह उचित है कि पशु की तरह, सदा चरते रहो? भोजन को साधारण बनाओ।

श्रीबंकाजी को लगा कि बाबा ये बातें उन्हीं से कह रहे हैं। उन्होंने बाबा से पूछा—बाबा! पता नहीं क्या बात है पर मेरा कोई सुनहला-रूपहला स्वप्न पूरा नहीं हो रहा है। मैं कितने वर्षों से साधना में लगा हूँ और आपकी कृपा

भी है, फिर भी मेरा काम नहीं बन रहा है। कहाँ भूल हो रही है और क्या भूल हो रही है, यह समझ नहीं आता है।

बाबा ने कहा—आप बासा में भोजन करते हैं। वहाँ नौकर-महाराज के परमाणु सांसारिक हैं। वही प्रभाव भोजन पर भी पड़ता है। साधक का भोजन परम विशुद्ध होना चाहिये। क्या तुम स्वयं रोटी बना सकते हो?

श्रीबंकाजी—बाबा, जब मैं सरदारशहर में पढ़ाता था तब स्वयं ही भोजन बनाता था। जब से यहाँ आया हूँ बाबूजी के चौके में ही भोजन करता आया हूँ। आप अगर आज्ञा करेंगे तो पुनः स्वयं भोजन बना लूँगा।

अभी मार्च का महीना चल रहा था। बाबा ने मुहूर्त निकला दिसम्बर का और कहा कि—तब तक आप सब व्यवस्था जुटा लीजिये और अब आपको स्वयं ही भोजन बनाकर, भोग लगाकर प्रसाद पाना है।

श्रीबंकाजी ने बाबा की आज्ञा को स्वीकर किया। उन दिनों श्रीसीताबाई पोद्दार, विमला बहन आदि कुछ निज जनों ने श्रीबंकाजी की बहुत सहायता की और भोजन बना सकने की सारी व्यवस्था उनके कक्ष में हो गई।

श्रीबंकाजी बहुत मोटा गेहूँ का दलिया पिसवाते और उसी में चने की दाल भी मिलवा देते थे जिससे शरीर को पोषण मिल सके। प्रातः काल उठते ही वे सात रोटी का आटा लगा लेते थे और ढक कर रख देते थे। एक रोटी गाय की, चार दोपहर की और दो रात की। अपनी भजन-साधना को पूर्ण करके ग्यारह बजे वे सब्जी की बटलोई चूल्हे पर चढ़ाते। गाय के घी में सब्जी बनाते और कम-से-कम मसालों का प्रयोग करते परन्तु उनकी बनायी हुई सब्जी-रोटी बहुत स्वादिष्ट होती थी। तोरू, परवल, लौकी, पालक, आलू आदि कोई भी सब्जी छौंकने के बाद बटलोई को चूल्हे के नीचे के भाग में रख देते थे और ऊपर रोटीयाँ बनाते थे। चूल्हे की धीमे-धीमे आँच में सब्जी स्वयं पक जाती थी।

दिसम्बर महीने में जो मुहूर्त बाबा ने निकाला था उस दिन श्रीबंकाजी ने सारे कमरे को गंगाजल से धोकर पवित्र किया और 18-20 रोटियाँ बनाईं।

बाबा की भिक्षा के समय सब लोगों को अपनी बनायी रोटियाँ परोसी। उनकी रोटीयों में ब्रज की मधुकरी का सा स्वाद था। श्रीविष्णुहरि डालमियाजी, श्रीपरमेश्वरप्रसादजी फोगला आदि वहाँ बाबा के साथ भोजन करने बैठे थे। उन्होंने श्रीबंकाजी की बनायी रसोई की खूब सराहना की और बाबा से कहा—बाबा, श्रीबंकाजी से एक दिन और रोटी मँगवाइये।

बाबा ने कहा—नहीं, आज ही आप जी भर कर खा लीजिये।

बाबा के प्राकृतिक चिकित्सक श्रीहीरालालजी कहा करते थे—गीतावाटिका में सबसे अधिक स्वादिष्ट और पौष्टिक रसोई श्रीबंकाजी ही बनाते हैं।

एक और आश्चर्य की बात श्रीबंकाजी ने बताई। जिस दिन भी वे आटा लगाते थे और आटा अधिक मात्रा में लग जाया करता था तब वे समझ जाते थे की आज कोई मेहमान आने वाला है और ठीक उस दिन, भोजन के समय कोई-न-कोई अतिथि आ ही जाता था जिसे श्रीबंकाजी बहुत प्रेमपूर्वक भोजन करवाते थे।

दिल्ली के श्रीअशोककुमारजी पटवा श्रीबंकाजी में बहुत श्रद्धा रखते थे। एक बार उन्होंने बताया कि वे श्रीबंकाजी के कक्ष में गये। उस वक्त श्रीबंकाजी रोटियाँ बना रहे थे। श्रीपटवाजी को आया देखकर उन्होंने मुस्कुराते हुए उनका स्वागत किया और भोजन करने का आग्रह किया। श्रीपटवाजी भोजन करने बैठ गये। जैसे ही उन्होंने रोटी का एक टुकड़ा अपने मुख में रखा उन्हें एक दिव्य स्वाद का अनुभव हुआ। श्रीपटवाजी को एक पुरानी बात याद आने लगी। कुछ समय पहले वे एक सिद्ध सन्त का दर्शन करने गये थे। वहाँ भी प्रसाद पाने का अवसर मिला था और जो दिव्य स्वाद वहाँ उनके प्रसाद में था वही स्वाद और सुगन्ध यहाँ श्रीबंकाजी की बनाई रोटियों में था। श्रीपटवाजी भाव-विभोर हो गये और वे समझ गये कि श्रीबंकाजी भी महान सन्त हैं। उन्होंने उनके श्रीचरणों में प्रणाम किया।

जबतक श्रीबंकाजी का स्वास्थ्य ठीक था, वे स्वयं भोजन बना कर पाते रहे। स्वयं भोजन बनाने का क्रम वर्षों चला। जब उनके शरीर में कमजोरी

रहने लगी तब श्रीविमला बहन की सुपुत्री श्रीअंजली दीदी उनका भोजन बनाकर भेजती थीं। अनेक वर्षों तक अंजली दीदी श्रीबंकाजी को बहुत प्रेमपूर्वक भोजन कराती रहीं। 2004 के बाद यह सौभाग्य श्रीयोगेन्द्रजी बंका एवं श्रीउमा बंका को प्राप्त हुआ। जबतक श्रीबंकाजी का शरीर रहा वे दोनों उनकी बहुत श्रद्धापूर्वा सेवा करते रहे।

****

घर का बँटवारा

श्रीबंकाजी के परदादाजी श्रीरामदयालजी बंका की बनवायी हुयी एक हवेली पडरौना में है जिसमें बंका परिवार आज भी रहता है। सत्तर के दशक में श्रीबंकाजी के भाइयों ने घर का बटवारा करके अपना-अपना हिस्सा अलग करने की सोची। श्रीबंकाजी के बड़े भाई श्रीहनुमानप्रसादजी बंका गीतावाटिका आये और श्रीबंकाजी से कहा—पिताजी की सम्पत्ति के रूप में हमारे पास पडरौना में श्रीराम जानकी मन्दिर, एक हवेली, बाजार में एक दुकान और बगीचा है। तुमको क्या चाहिये ?

अपने बड़े भाई के मुख से घर के बँटवारे की बात को सुनकर श्रीबंकाजी को दुःख हुआ और उन्होंने विनीत शब्दों में अपने भाई से कहा—मैंने जीवन में कभी पिताजी की बात नहीं मानी। उनकी इच्छा के विपरीत मैंने अपना जीवन व्यतीत किया है। मेरे कारण उनको बहुत दुःख झेलना पड़ा है। मैं उनको कोई सुख नहीं दे सका। मैंने पिताजी की बहुत दुर्दशा देखी है। जब मैं दुःख में उनका साथी नहीं था तब आज उनकी सम्पत्ति पर भी मेरा कोई अधिकार नहीं है। मैं कुछ भी हिस्सेदारी स्वीकार नहीं करूँगा।

श्रीबंकाजी के मुख से ऐसी वाणी सुनकर श्रीहनुमानप्रसादजी बंका वापस चले गये और अपने दोनों छोटे भाई गोविन्द और विनोद से गीतावाटिका में हुयी सारी बातें बता दी। उन तीनों भाइयों को यह जानकर बहुत आश्चर्य हुआ कि उनके भाई राधेश्याम ने कुछ भी लेना स्वीकार नहीं किया जबकि वे अत्यधिक गरीबी में अपना जीवन यापन कर रहे हैं। श्रीबंकाजी के संयम और निर्लोभी स्वभाव को देखकर उनके तीनों भाई विमुग्ध थे।

परिवार में बँटवारा होता है तो समाज के भी कुछ नियम होते हैं जिन्हें सबको मानना पड़ता है। बंका परिवार में बँटवारे की अध्यक्षता एक वरिष्ठ व्यक्ति कर रहे थे। उन्होंने कहा—यदि राधेश्याम का शरीर नहीं होता तो उसको कोई हिस्सा नहीं दिया जाता पर क्योंकि वह है, तो फिर हिस्सा उसका भी होगा। चार भाइयों के चार हिस्से होंगे। बहू कौशल्या को भी भाग दिया जायेगा। जो हवेली है उसके दो भाग करके गोविन्द और विनोद को दिया, जिसमें वे आज भी सुखपूर्वक रह रहे हैं। शहर की दुकान बड़े भाई श्रीहनुमानप्रसादजी को मिली और फलों का बगीचा श्रीबंकाजी को मिला।

जब इन सारी बातों की जानकारी श्रीबंकाजी को हुई तो उन्होंने इसे स्वीकार किया और कहा—बगीचा की सारी जिम्मेवारी मैं गोविन्द और विनोद को सौंपता हूँ। वे दोनों उसकी रख-रखाव करेंगे और फलों को बेचने से जो आमदनी होगी वह मन्दिर में खर्च के लिए अर्पित कर दी जायेगी। ऐसा करने से मन्दिर की व्यवस्था सुचारू रूप से चलती रहेगी।

श्रीबंकाजी ने अपनी पैतृक सम्पत्ति में से अपने लिये कुछ भी नहीं लिया। उनकी दृढ़ भावना थी कि—जब मैंने घर के लिए कुछ किया नहीं, कुछ कमाया नहीं तो उसके हिस्सेदारी में भी मेरा कोई अधिकार नहीं है। यह प्रसंग उनके निर्लोभी स्वभाव को दर्शाता है।

****

पडरौना में श्रीमद्भागवत कथा

आज के जमाने में श्रीमद्भागवत की सप्ताह कथा बहुत से कथावाचक करते हैं और घर-घर में और हर मन्दिर-मठ में कथा होती ही रहती है पर सत्तर के दशक में ऐसा नहीं था। बहुत कम स्थानों पर ही वृन्दावन के रसिक सन्तों द्वारा भागवत की कथा होती थी। श्रीबंकाजी के मन में एक बार भागवत कथा सुनने की बहुत इच्छा थी पर अब तक उनको जीवन में ऐसा अवसर प्राप्त नहीं हुआ था।

सन 1977 की बात है। श्रीबंकाजी ने अपने छोटे भाई की पत्नी

श्रीकौशल्या बाई बंका से कहा—बाई! अगर तेरे पास पैसों की व्यवस्था है तो तू एक बार मुझे श्रीमद्भागवत महापुराण की कथा सुनवा दे। कथा पडरौना में अपने मन्दिर में या घर पर करवाना और अपने दिवंगत पति के नाम से करवाना। भाई रामनिवास की कच्ची आयु में मृत्यु हो गई थी। भागवत महापुराण की कथा से उसको भी उत्तम गति की प्राप्ति होगी और मेरी भी कथा सुनने की अभिलाषा पूर्ण हो जायेगी।

श्रीकौशल्या बंका ने श्रीबंकाजी के अनुरोध को सहर्ष स्वीकार कर लिया। उन्होंने सोचा कि—यह तो बहुत ही उत्तम कार्य होगा। दिवंगत पति की सद्गति के लिए श्रीमद्भागवत महापुराण की कथा हो जायेगी और श्रीबंका भैया की अभिलाषा की पूर्ति भी हो जायेगी। इसी बहाने पूरे परिवार को कथाश्रवण का लाभ मिल जायेगा। हर प्रकार से मंगल-ही-मंगल है। उन्होंने वृन्दावन के श्रेष्ठ कथावाचक पूज्य श्रीश्रीनाथजी महाराज से कथा के लिए 1977 मार्च में, चैत्र नवरात्र की तिथि निश्चित करवा ली।

श्रीबंकाजी को जब यह सूचना मिली कि पडरौना में अपने घर पर भागवत कथा होगी तो उन्हें हार्दिक प्रसन्नता हुई। जब कथा तय हो गई, तब श्रीबंकाजी ने पूज्य बाबा से कहा—बाबा मेरे घर पडरौना में भागवत कथा होने वाली है। बरसों से मेरी कथा श्रवण की अभिलाषा है। वहाँ जाने की आज्ञा चाहता हूँ।

बाबा ने स्पष्ट कहा—आपको नहीं जाना है। माना कि आपके घर में भागवत कथा हो रही है पर आपका जीवन विरक्त है। जो लाभ आपको कथा सुनने से होगा उससे कहीं अधिक लाभ आपको यहाँ रहने से होगा। आपको अब सारा जीवन वाटिका में ही रहना है। कम-से-कम जब तक मेरा शरीर है तब तक तो यहाँ ही रहना है। अगर आप इस नियम को दृढ़तापूर्वक निभा सके तो आपको अधिक लाभ होगा। एक रात्रि भी गीतावाटिका से बाहर व्यतीत मत कीजिये।

यह सुनते ही श्रीबंकाजी के मन की स्थिति बड़ी विचित्र हो गई। उनके

सिर में भीषण द्वन्द्व मच गया। उनके कहने पर ही तो पडरौना में भागवत कथा आयोजित हुई और वे ही नहीं जायेंगे तो बाई कौशल्या क्या सोचेगी, इस बात की उन्हें बड़ी चिन्ता होने लगी। जो हो, बाबा की आज्ञा को तो टाला नहीं जा सकता था।

एक दिन उन्होंने यह सारी बात बाई कौशल्या को बता दी। फिर श्रीकौशल्या बंका स्वयं पूज्य बाबा के पास गईं और श्रीबंकाजी के लिए आज्ञा देने का अनुरोध किया। बाबा ने उनसे भी कहा—बेटी! बंकाजी नहीं जायेंगे। उनका जीवन विरक्त है। उनको गीतावाटिका में ही रहना है। तुम घरवालों के साथ मिलकर कथा का आयोजन करो।

श्रीकौशल्या बंका निराश, श्रीबंकाजी भी निराश, पर कथा तो पडरौना में भली प्रकार सम्पन्न करवानी ही थी अत: तैयारियाँ आरम्भ हो गयीं। **मंगल कलस सजन सब लागीं**॥ सप्ताह कथा के लिए पूज्य श्रीश्रीनाथजी महाराज ने अपनी स्वीकृति दे दी है, यह बात सुनकर पडरौना के मिलने-जुलने वाले लोगों ने श्रीकौशल्या बंका को बहुत ही हतोत्साहित किया कि—तुम अकेली कैसे भागवत की कथा के विशाल कार्य को सम्भाल पाओगी? अब तो श्रीबंकाजी भी नहीं आ रहे हैं। श्रीश्रीनाथजी महाराज की कथा में तो बहुत बड़े प्रबन्ध की आवश्यकता रहा करती है, आदि।

जब कई लोगों ने बार-बार इसी बात को कहना आरम्भ कर दिया तो श्रीकौशल्या बंका सचमुच डर गईं कि यह काम कैसे पूरा होगा। कमरे के एकान्त में उन्होंने पूज्य बाबूजी को याद किया और उनसे कातर स्वर में प्रार्थना करने लगीं—अब यह कार्य आपको ही सम्भालना है तथा पूरा करना है। बाबूजी से प्रार्थना करने के बाद उनको एक विचित्र प्रकार के आश्वासन और शक्ति का अनुभव होने लग गया। उनके मन में यह बात बैठ गई कि सारा काम ठीक प्रकार से हो जायेगा।

पडरौना में भागवत सप्ताह की कथा आरम्भ होने वाले दिवस के पूर्व, पूज्य बाबूजी रात्रि के समय श्रीकौशल्या बंका के स्वप्न में पधारे तथा कहने लगे—तुमने श्रीश्रीनाथजी महाराज को अपनी बुआजी के घर पर, खेतानों के पास ठहराया है। उनकी सुख-सुविधा के लिये तो यह ठीक ही किया, पर इस बात का ध्यान रखना कि जब तक महाराजजी कथा कहें, तब तक वे वहाँ का अन्न ग्रहण न करें। यदि यह हो पाया तो सप्ताह भागवत कथा तुम्हें विशेष रूप से फल दायिनी होगी।

सपने में इतना कहकर पूज्य बाबूजी अदृश्य हो गये तथा श्रीकौशल्या बंका की नींद टूट गई। उनके द्वारा यह कितनी बड़ी भूल हो रही थी? सवेरा होते ही जल्दी से नहा-धोकर वे अपनी बुआजी के यहाँ पूज्य महाराजजी के पास गईं। उन्हें प्रणाम कर स्वप्न वाली सारी बात उनसे कह दी। पूज्य भाईजी के शब्द सुनकर महाराजजी को बड़ी प्रसन्नता हुई और उन्होंने कहा—लाली! अब ऐसा ही होगा। इस दृष्टि से मैं पूर्ण सावधान रहूँगा। तुम धन्य हो जो भाईजी तुम्हारा इतना ध्यान रखते हैं।

पडरौना में भागवत महापुराण की कथा सोत्साह सम्पन्न हुई। जितने भी श्रोता थे सब कथा सुनकर अति आनन्दित हुए। श्रीकौशल्या बंका ने महाराजजी से कहा—श्रीबंका भैया के संकल्प से ही यह कथा आरम्भ हुई थी। वे तो बाबा की आज्ञा मानकर कथा में उपस्थित नहीं हो सके पर मेरी आपसे प्रार्थना है कि ट्रेन में बैठने से पहले आप गीतावाटिका चलें और उन्हें श्रीभागवतजी का प्रसाद अपने पावन कर कमलों द्वारा प्रदान करें।

महाराजजी ने इस आग्रह को स्वीकार किया। कथा के बाद श्रीकौशल्या बंका पूज्य श्रीश्रीनाथजी महाराज के साथ गीतावाटिका आईं और श्रीमद्भागवत महापुराण की कथा का प्रसाद महाराजजी के हाथ से श्रीबंकाजी को दिलवाया। श्रीबंकाजी का मन प्रसन्न हो उठा और उन्होंने महाराजजी को प्रणाम किया।

पूज्य बाबूजी का जितना और जैसा वात्सल्य श्रीबंकाजी को और उनके परिवार को जीवन में मिला है उसे याद करके श्रीबंकाजी का हृदय भर-भर आता था।

****

कुमारी पूजन

पूज्य श्रीराधाबाबा भगवती श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी के उपासक थे। बाबा ने वर्षों बड़ी कठिन उपासना करके भगवती को प्रसन्न किया था। उन्हें भगवती ने साक्षात अपना दर्शन देकर गुप्त मन्त्र प्रदान किया था। वही श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी की पूजा उन्होंने कृपा करके श्रीबंकाजी को बतायी थी।

श्रीराधाबाबा ने श्रीबंकाजी से भगवती श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी का परिचय बताते हुए कहा था कि—धनतेरस को भगवती श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी का जन्मदिन है। यही भगवती राधा हैं। आप जो कुमारी पूजन करते हैं वह इन श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी का ही पूजन करते हैं। इनका एक मन्दिर बरसाने में है तथा नन्दगाँव में भी है। धनतेरस का महत्त्व केवल इसीलिये नहीं है कि आज धनतेरस है बल्कि आज भगवती श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी का प्राकट्य दिवस है। ये ही आदि शंकराचार्य की इष्ट देवी हैं। न जाने किन-किन ने इनकी अराधना की है। जो भगवती श्रीराधा हैं वहीं भगवती श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी है। जो भगवती श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी हैं वही भगवती श्रीराधा हैं। केवल थोड़ा सा अन्तर है। जो महामाधुर्य स्वरूप में स्थिति होकर श्रीराधा कहलाती हैं वही परम ऐश्वर्य स्वरूप में स्थित होकर भगवती श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी कहलाती हैं। भगवती श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी ही शक्ति की आदि स्रोत हैं।

बाबा आगे बताते चले गये—मातृ परायण बनो। तुमको जो माँगना हो माँ से कहो। तुमको जो शिकायत करनी हो माँ से करो। एकमात्र माँ से। जीवन के लक्ष्य की प्राप्ति के लिये जो आवश्यक वस्तु या परिस्थिति होगी, माँ अवश्य प्राप्त करायेगी। यदि प्राप्त नहीं होती है, तो वह वस्तु या परिस्थिति आवश्यक नहीं। माँ पर पूर्ण निर्भर हो जाओ। माँ के कारण निश्चिंत हो जाओ। सच्चे आस्तिक बनो। तुम्हारी चिन्ता तुम्हारी अपेक्षा माँ को अधिक है। जितना हित-चिन्तन और हित-व्यवस्था माँ कर सकती है, उतना तुम नहीं कर सकते। तुम्हारे हित के सम्पादन में माँ सतत व्यस्त है। तुम्हारे हित की भावना से प्रेरित होकर ही माँ तुम्हारे सामने तदनुसार परिस्थिति प्रस्तुत करती है। परिस्थिति प्रतिकूल हो या अनुकूल, उसकी प्रेरणा तुम्हारा हित ही है। प्रत्येक

अनुकूल या प्रतिकूल परिस्थिति तुम्हारे हित के लिये तुम्हारे सामने आयी है। माँ का वात्सल्य, माँ का वरदान ही अनुकूल या प्रतिकूल परिस्थिति के रूप में व्यक्त हुआ है। सभी अनुकूलता-प्रतिकूलता माँ का वरदान है अतः उसे सहर्ष स्वीकार करो।

प्रसन्नतांया न गताभिषेकतस्तथा न मम्ले वनवासदुःखतः।
मुखाम्बुजश्रीरघुनन्दनस्यमेसदास्तुसामंजुलमंगलप्रदा॥

बरसाने में वृषभानुपुर की सात ड्योढियाँ हैं। जैसे ज्ञान की सात भूमिकाएँ होती हैं, वैसे ही महाभावस्वरूप श्रीराधारानी के भानु भवन की सात ड्योढियाँ हैं। प्रेम तो जागतिक स्तर की वस्तु है। इसके बाद स्नेह, प्रणय, मान, राग, अनुराग, भाव, महाभाव की सात ड्योढियाँ हैं। छठवें आँगन में अर्थात् भाव के आँगन में श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी का मन्दिर है। इस मन्दिर में नौ पुजारी हैं। यह नौ पुजारी सदाशिव हैं। ये सदाशिव ही श्रीवृषभानुजी की ओर से श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीजी की पूजा किया करते हैं। तुम सदा इन्हीं माँ के आश्रित रहो।

बाबा के श्रीमुख से श्रीमहात्रिपुरसुन्दरीजी के बारे में विशेष जानकारी प्राप्त करके श्रीबंकाजी बहुत प्रसन्न हुए। श्रीबंकाजी सन 1965 से सन 1978 तक बाबा द्वारा प्रदान किये गये मंत्रों और भाव के द्वारा देवी की अर्चना करते रहे। श्रीबंकाजी का मानना था की हर कठिन परिस्थिति में माँ ने ही उनको सम्भाला है और उनको जीवन में हर सफलता माँ की असीम कृपा से ही प्राप्त हुई है। उन्होंने दो बार कन्याकुमारी जाकर भी कुमारी कन्या रूपी भगवती का सभक्ति पूजन किया था। भारत में केवल कन्याकुमारी ही एक ऐसा तीर्थ है जहाँ माँ पार्वती कुमारी कन्या के रूप में पूजित हैं। अन्य सभी स्थानों पर वे भगवान शंकर के साथ पूजित होती है।

29 अक्टूबर सन् 1978 का प्रसंग है। गत तेरह वर्षों से श्रीबंकाजी कुमारी-पूजन-व्रत का अखण्ड निर्वाह कर रहे थे। वे प्रत्येक शुक्रवार को पूर्वाह्न में, नौ वर्ष से कम आयु वाली बालिका का भगवती श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी की भावना से पूजन करते थे, सुस्वादु भोजन कराते एवं दक्षिणा देते थे। इस

अर्चना का उद्देश्य सर्वथा निष्काम था। 13 वर्ष पूर्ण होने पर पूर्णाहुति की गई। कार्तिक कृष्ण त्रयोदशी, जिसे धनतेरस भी कहते हैं, इसी पावन दिवस पर भगवती श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी का आविर्भाव हुआ था। इसी पावन दिवस पर श्रीबंकाजी ने अपने तेरह वर्षीय पूजन-क्रम की सम्पन्नता करने का विचार किया, अत: भोग-प्रसाद आदि की पूर्ण तैयारी कर ली।

धनतेरस के दिन एक ब्राह्मण कन्या का श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी की भावना से विधिवत् पूजन श्रीबंकाजी ने किया। कन्या को पाँचो वस्त्र एवं दक्षिणा देकर प्रदक्षिणा की और सादर प्रणाम किया। यह पूजन उस भवन में हुआ, जिसे आजकल 'भाइजी-स्मृति-भवन' कहा जाता है। इस भवन के पूजा-घर में भगवती का पूजन क्रम सम्पन्न हुआ। सम्पन्नता के उपरान्त सबको प्रसाद देना था। योजना यह थी कि सबको एक-एक दोना प्रसाद दे दिया जायेगा। परन्तु जितने आगन्तुक श्रद्धालु निजजन थे, सभी भवन के हाल में, बैठकर भोजन करने के उद्देश्य से पत्तल लेकर पंक्ति में बैठ गये।

यह देखते ही श्रीबंकाजी के तो होश ही उड़ गये, अब क्या होगा? घबराते हुए उन्होंने सारी बातें श्रीविमला बहन से कहीं। श्रीबंकाजी की बात सुनते ही श्रीबिमला बहन को दैवी-आवेश हो आया और वे कहने लगीं—यह भला कैसे हो सकता है कि भगवती का प्रसाद कम हो जाय? मैं ही अब प्रसाद-वितरण करने वालों को सामग्री दूँगी। वे परोसने वाले आगन्तुक भक्तों को पत्तल में परोसना आरम्भ करें और मुझसे माँग-माँग कर प्रसाद ले जायँ।

इसके बाद श्रीविमला बहन ने पीतल के बहुत बड़े टोपिये पर अपनी चादर ढक दी। बिमला बहन अपने हाथ से टोपिये में से पूड़ी निकाल कर दे रही थीं। एक ओर पूड़ीयों को कड़ाही में तलतीं और दूसरी ओर परोसने वालों को अपेक्षित सामग्री देती चली जा रही थीं। सभी आगन्तुक भोजन करके तृप्त हो गये। इसके बाद भी पर्याप्त प्रसाद बच गया। यह श्रीविमला बहन की भागवती-शक्ति का चमत्कार और श्रीबंकाजी पर श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी की असीम कृपा का ही प्रमाण था।

श्रीबंकाजी अश्रुपूरित नेत्रों से श्रीविमला बहन को निहार रहे थे। उन्होंने श्रीविमला बहन के श्रीचरणों में मस्तक रखकर प्रणाम किया और गद्गद् स्वर से कहा—भगवती! अम्बे! माते, सब तुम्हारी ही कृपा है। आज तुमने इस शिशु की लाज रख ली। उस भागवती-शक्ति-सम्पन्ना विमला के समर्थ श्रीचरणों में बार-बार प्रणाम।

मेरी पूज्या विमला बहिनी, तुमको मेरा शत-शत वन्दन॥

था कुप्रयोग किया एक ने, उस बलाय को टाल दिया था।
वह बलाय जीवन घातक थी, उससे मुझे उबार लिया था।
निज आँचल की छाया दी थी, उस छाया को है नित वन्दन॥

हाल-चाल नित लेती रहती, सदा ध्यान रखती थी मेरा।
राखी का शुभ दिन जब आता, मेरा घर था आँगन तेरा।
ऐसी अगणित स्मृति समूह को, मेरा अन्तर करता वन्दन॥

****

श्रीराधाबाबा को सर्व पुण्यार्पण

7 दिसम्बर 1978 को बाबा तीसरी बार काष्ठ मौन ले रहे हैं और इस व्रत की अवधि अनिश्चित है, अत: बाबा से अवश्य मिल लेना चाहिये—इस प्रकार की विकल भावना से भावित लोगों का गीतावाटिका में आना आरम्भ हो गया। कहाँ-कहाँ से लोग नहीं आये? जो लोग आते थे, उनसे मिलकर बाबा उन्हें वापस भेज देते थे। जिन-जिन को भी बाबा ने विदाई दी, उन सभी को अपने रोम-रोम के प्यार से आप्यायित करके विदाई दी। न जाने कितने सहस्र व्यक्ति बाबा से जुड़े हए हैं। यह जुड़ना भी तो आध्यात्मिकता को लेकर ही है। जो जिस भाव से आया, उसको वही मिला। बाबा की अहैतुकी कृपा का द्वार इस समय पूर्ण उन्मुक्त था, बाबा का करुणा-विगलित हृदय इस समय, परम उदार था।

मिलनेवाले लोगों में व्यक्ति सभी स्तर के थे। कोई सन्त तो कोई सांसारिक, कोई श्रेष्ठ साधक तो कोई साधारण गृहस्थ, कोई आस्तिक तो कोई

नास्तिक, कोई धनिक तो कोई निर्धन, कोई शिक्षित तो कोई अशिक्षित, कोई शिष्ट तो कोई धृष्ट। जो लोग बाबा से एकान्त में मिलना चाहते थे उनके नाम की सूची तैयार कर ली गयी थी। सबको क्रम से बुलाया जाता और किसी को दो मिनट, किसी को पाँच मिनट, किसी को इससे भी अधिक समय बाबा देते पर जो भी मिलकर आता स्नेह-सिक्त, कृपा-सिक्त होकर लौटता। **रंकन्ह राय रासि जनु लूटीं।।**

श्रीबंकाजी ने अपना नाम मिलनेवालों की सूची में नहीं दिया था। उनकी दृढ़ आस्था थी कि उनके हृदय के कण-कण की जानकारी बाबा को है, फिर भला उनसे क्या कहना और क्या सुनना। जो उचित होगा उसे वे स्वयं करेंगे ही। इस प्रकार के भावों में बहते हुए और मिलनेवालों की संख्या अत्याधिक देखकर श्रीबंकाजी ने अपना नाम सूची में नहीं दिया था।

गीतावाटिका में रहने वाली पूज्या श्रीकमल बहन ने यह सूची देखी। उनकी इस बात पर दृष्टि गयी कि श्रीबंकाजी का नाम तो इस सूची में है ही नहीं। वे सोचने लगीं—बाबा काष्ठ मौन लेने जा रहे हैं। भविष्य अनिश्चित है। क्या पता बाबा कभी बोलेंगे भी या नहीं? श्रीबंकाजी को अन्तिम बार समय मिलना ही चाहिये। उन्होंने यह बात वृन्दावन के श्रीघनश्याम ठाकुरजी से कही। वाटिका के अन्य लोग भी श्रीकमल बहन की बात से सहमत थे कि श्रीबंकाजी को समय मिलना ही चाहिये। ठाकुर घनश्यामजी ने सबकी बात मानकर सूची में श्रीबंकाजी का नाम लिख दिया। इस बात की कोई जानकारी श्रीबंकाजी को नहीं थी।

काष्ठ मौन लेने के मात्र कुछ काल पहले, सबसे अन्त में बाबा परम आदरणीया श्रीसावित्रीबाई फोगला और श्रीपरमेश्वरप्रसादजी फोगला से मिले। इसके पहले बाबा कैंसर अस्पताल के डॉक्टरों से मिले और ठीक इसके पहले, एकदम अचानक श्रीबंकाजी को बुलवाया गया और कहा गया कि आप बाबा से बात कर लीजिये। आपको समय दिया जाता है।

श्रीबंकाजी को बहुत आश्चर्य हुआ क्योंकि उन्होनें तो अपना नाम सूची में दिया ही नहीं था। परन्तु जब उनके नाम की घोषणा हुई तब वे निर्धारित समय पर बाबा के समक्ष पहुँचे। बाबा समाधि के सामने अपने टीन शेड में चौकी पर लेटे हुए थे। आस-पास कोई नहीं था। श्रीबंकाजी को देखते ही बाबा ने कहा—कहिये, आप क्या कहना चाहते हैं?

श्रीबंकाजी ने तो कुछ सोच ही नहीं रखा था कि क्या कहना है। अचानक प्रस्तुत इस सुअवसर की तो उन्होंने कल्पना भी नहीं की थी। उन्होंने भगवती श्रीमन्महात्रिपुरसुन्दरी का स्मरण किया और मन-ही-मन प्रार्थना की—माँ! अम्बे! इस बालक का मार्ग-दर्शन करो। समयोचित सद्बुद्धि प्रदान करो।

मानसिक प्रार्थना करने के उपरान्त श्रीबंकाजी ने बाबा से कहा—बाबा! आपने कहा था कि इस बार आप काष्ठ मौन अपनी इच्छा से नहीं ले रहे हैं अपितु स्वयं श्रीकृष्ण ने आपका आवाह्न किया है और उन्हीं की प्रेरणा से, किसी परम महान उद्देश्य की पूर्ति के लिये आप यह काष्ठ मौन व्रत धारण कर रहे हैं। जब श्रीकृष्ण इतने कठिन व्रत को करने की प्रेरणा आपको दे रहे हैं तो स्वाभाविक है कि वह विशेष कार्य परम पवित्र और अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होगा ही। उस उद्देश्य की पूर्ति आपके सत्व से ही सम्भव है। केवल-और-केवल एकमात्र आप ही उस महानतम कार्य को कर सकते हैं। जिस प्रकार श्रीकृष्ण ने, इन्द्र के प्रकोप से श्रीवृन्दावन को बचाने के लिये, गोवर्धन पर्वत को अपनी अंगुली पर धारण किया था, श्रीगिरिराजजी को उठाने की सामर्थ्य एक मात्र श्रीकृष्ण में ही थी फिर भी, अपने मन के सन्तोष के लिये सखाओं ने अपने लकुट सहायता देने के उद्देश्य से लगा दिये थे। श्रीगोवर्धन पर्वत सखाओं के लकुट पर विराजित कदापि नही थे, थे एकमात्र श्रीकृष्ण की अंगुली पर, फिर भी सखाओं ने प्रेमवश अपनी ओर से सहयोग प्रदान करने की दृष्टि से, लकुट लगा ही दिये थे। ठीक उसी प्रकार से आज इस महानतम उद्देश्य की पूर्ति में, मैं अपने जीवन का सारा पुण्य आपको अर्पित करता हूँ। भली प्रकार जानता हूँ कि इस परम पावन महानतम उद्देश्य में मेरे पुण्य से काम पूरा नहीं होगा, होगा आपके सत्व से ही, परन्तु अगर मेरा आजीवन का संचित पुण्य आपके किसी उपयोग में आ सके तो मैं स्वयं को धन्य मानूँगा। आज इसी

क्षण मैं अपना समस्त पुण्य आपको समर्पित करता हूँ। मेरे द्वारा लगाया गया यह लकुट आप स्वीकार करें।

जैसे ही श्रीबंकाजी ने भावभरे शब्दों में अपनी बात समाप्त की उनके हथेलियों की अंजली बँध गयी और पुष्पार्पण की मुद्रा में श्रीबंकाजी ने अपने जीवन का सारा पुण्य परम पूज्य श्रीराधाबाबा को समर्पित कर दिया।

बाबा एकदम से उठकर बैठ गये और उन्होंने कहा—अय........ आपने क्या कहा ? जरा फिर से तो कहिये।

श्रीबंकाजी के उर्मिल हृदय में भावों की आँधी मण्डरा रही थी। उमड़ते-घुमड़ते भावों की लहरी में उनका मन हिचकोले ले रहा था। यह क्षण ही ऐसा अद्भुत था। उन्होंने धीरे-धीरे अपनी सारी बात बाबा के समक्ष फिर से दोहरा दी।

बाबा ने साधुवाद के स्वर में प्रसन्नतापूर्वक श्रीबंकाजी से कहा—उत्तम! अति उत्तम!

जब श्रीबंकाजी मुझे यह प्रसंग सुना रहे थे तो वे इतने भाव-विभोर हो गये कि उनके नयनों के कोर भीग गये। नासिका से जल बहने लगा और कण्ठ अवरुद्ध हो गया। बाबा ने आगे क्या कहा वे बता न सके और बार-बार अपनी श्वेत धोती के छोर से अपने नयन-नासिका को पोंछते रहे। मेरे बारम्बार आग्रहपूर्वक पूछने पर मात्र इतना कहा—वह क्षण मेरे जीवन के सर्वश्रेष्ठ क्षणों में से एक था। **बचन अगोचर किमि कहि जाई॥**

7 दिसम्बर 1978 की निश्चित अवधि पर बाबा ने मौन ले लिया। गीतावाटिका में नीरवता छा गयी। जहाँ सब साधक-साधिकायें एक साथ रहते हैं वहाँ पारस्परिक चर्चा होनी स्वाभाविक ही है। बाबा ने किसे क्या कहा और किसे क्या दिया, यह उस वक्त का सर्वाधिक प्रिय विषय बन गया। जब भी स्वजन आपस में मिलते तो केवल एक यही चर्चा होती कि बाबा से अन्तिम क्या बात हुई ? सब अपनी-अपनी बातें एक-दूसरे को बताते और बाबा की भाव-भीनी, स्नेह-सिक्त वाणी की चर्चा करते।

सबने श्रीबंकाजी से भी पूछा कि उनकी बाबा से अन्तिम क्या बात हुई परन्तु आत्मसंगोपन स्वभाव के कारण उन्होंने किसी से कुछ भी नहीं कहा। आखिरकार वृन्दावन के श्रीघनश्याम ठाकुर ने जब पूछा तो उनका सम्मान रखते हुए श्रीबंकाजी मना न कर पाये और उन्होंने यह सारा प्रसंग उन्हें सुना दिया।

श्रीठाकुरजी आश्चर्यचकित रह गये। उन्होंने यह बात परम पूज्य सन्त श्रीबालकृष्णदासजी महाराज, श्रीनारायण दादा, श्रीकमल बहन, श्रीसीताबाई पोद्दार आदि निकटतम कुछ लोगों को बतायी। सबने एक स्वर में कहा—बंकाजी! आपने तो हद कर दी! हम सब तो माँगते ही रह गये और आप अपना सर्वस्व देकर आ गये। आप धन्य हैं। आपकी सोच धन्य हैं। आपके भाव धन्य हैं। याचकों की भीड़ में एक ही दातार निकला।

श्रीबंकाजी ने सहज वाणी में कहा—मुझे तो पता भी नहीं था कि बाबा से बात करने का अवसर मिलेगा। जब अचानक मुझे बुलाया गया तो मेरे पास कहने को कुछ था ही नहीं। भगवती श्रीमन्महात्रिपुरसुन्दरी की कृपा से जो भाव मन में उदय हुए, वही मेरे द्वारा व्यक्त हुए हैं, मुझे कुछ पता नहीं। यह सब भगवती की ही प्रेरणा माननी चाहिये।

****

श्रीबालकृष्णदासजी महाराज

परम पूज्य बाबूजी-बाबा के परिकर होने के नाते श्रीबंकाजी जिस भी तीर्थ में जाते थे चाहे अयोध्या हो या वृन्दावन उन्हें हर जगह सन्तों द्वारा अत्यधिक स्नेह और कृपा की प्राप्ति होती थी। वृन्दावन के श्रीवेणु विनोद कुंज के परम रसिक, सिद्ध सन्त श्रीबालकृष्णदासजी महाराज के साथ भी श्रीबंकाजी का अति निकट का सम्पर्क रहा है।

1971 में श्रीमहाराजजी सर्वप्रथम गीतावाटिका पूज्य बाबूजी के दर्शन के लिए आये थे और एक सप्ताह तक बाबूजी के सान्निध्य में रहे थे। उस वक्त उन्होंने श्रीबंकाजी को बाबूजी के निजी सचिव के रूप में कार्य करते हुए देखा

था और उनकी निस्वार्थ सेवा से बहुत प्रभावित हुए थे।

बाबूजी के महाप्रयाण के बाद भी पूज्य महाराजजी का गीतावाटिका अकसर आना होता रहा पूज्य बाबा के दर्शन-संग हेतु। जब भी महाराजजी आते, चाहे वह राधाष्टमी का अवसर हो या अन्य कोई उत्सव उनके साथ ठाकुर श्रीघनश्यामजी रहते ही थे। इसी नाते से श्रीबंकाजी का ठाकुरजी के साथ भी बहुत निकट का सम्बन्ध स्थापित हो गया था। दोनों एक दूसरे का अत्यधिक सम्मान भी करते थे और सख्य भाव भी था।

श्रीबंकाजी ने एक पुस्तक लिखी है जिसका नाम है वाटिका वेणु। इस पुस्तक में उन्होंने पूज्य बाबा और महाराजजी के एकान्तिक मिलन, रात्रि सत्संग, गिरिराज परिक्रमा, उत्सव आदि के बारे में बहुत ही विस्तार से वर्णन किया है। राधाबाबा और महाराजजी के प्रत्येक एकान्तिक मिलन के साक्षी श्रीबंकाजी रहे हैं। रात्रि एकान्तिक गोष्ठी में महाराजजी की ओर से ठाकुर घनश्याम होते थे और बाबा की ओर से श्रीबंकाजी।

श्रीमहाराजजी का सान्निध्य पाकर पूज्य बाबा बह जाते थे और जो-जो बातें वे कभी किसी के सामने नहीं करते थे वे बातें भी महाराजजी के सामने निसंकोच कह जाते थे। बाबा के ग्रंथ जय-जय प्रियतम के छन्दों को बहुत बार बाबा, श्रीमहाराजजी के सामने गाकर सुनाते थे और उसका गूढ़ अर्थ भी बताते थे। ऐसे ही अपने जीवन के अंतरंग प्रसंग भी बताते थे। श्रीबंकाजी यह सब बातें सुनते रहते और एकान्तिक चर्चा के समाप्त होते ही अपनी कुटिया में आकर सब लिख लेते थे। श्रीमहाराजजी के आने पर बाबा के श्रीमुख से रसचर्चा का प्रवाह झरता ही रहता था जिसका सबसे अधिक लाभ श्रीबंकाजी को मिला।

जय-जय प्रियतम का जितना भी अर्थ बाबा ने महाराजजी को सुनाया था वह सब श्रीबंकाजी ने अपनी पुस्तक प्रियतम सौरभ में लिखा है और बाबा के जीवन की हर गुप्त-से-गुप्त बात जो बाबा ने महाराजजी को सुनाई थी वह श्रीबंकाजी ने प्रीतिरसावतार श्रीराधाबाबा नामक अपनी पुस्तक में लिखी है।

जब-जब महाराजजी वृन्दावन से आते और बाबा से मिलते तो दो सन्तों का पारस्परिक मिलन-दर्शन-संभाषण-दैन्य-अभिवादन कितना मधुर होता था, उनके नेत्र कैसे बरस पड़ते थे, नासिका कैसे भीग जाती थी, दोनों एक दूसरे को कैसे पुष्प अर्पित करते थे, परिक्रमा के समय कैसा रसोल्लास छा जाता था, यह सब श्रीबंकाजी अपनी आँखों से देखते और वाटिका वेणु में खूब वर्णन किया है इसका उन्होंने। वृन्दावन में महाराजजी के आश्रम का नाम वेणु विनोद कुंज है इसीलिये श्रीबंकाजी ने अपनी पुस्तक का नाम वाटिका वेणु रखा है।

एक दिन प्रात:काल का समय था। बाबा समाधि के सामने टीन शेड के नीचे बैठे थे। पूज्य महाराजजी बाबा से मिलने वहीं आ गये। दोनों सन्तों ने प्रसन्न मन से परस्पर अभिवादन किया। संयोग की बात है कि उस वक्त वहाँ अन्य कोई भी नहीं था। ऐसा अवसर कम ही होता था कि सन्तों के पास उनके कोई परिकर न हों। आज ऐसे अवसर को देखकर पूज्य महाराजजी ने बाबा से उनके जीवन की अति गुप्त बात पूछने की सोची। उन्होंने बाबा से कहा—मेरे मन में एक जिज्ञासा है। यदि आप उचित समझें तो आज मुझे अपने आध्यात्मिक उन्नति के क्रम को बताने की कृपा करें।

पूज्य महाराजजी के प्रश्न को सुनकर बाबा कुछ आश्चर्य करने लगे। आज से पहले उन्होंने यह बात किसी को बतायी नहीं थी और महाराजजी अचानक ऐसा पूछ लेंगे इस बात की उन्होंने कल्पना भी नहीं की थी। इससे पहले कि बाबा कुछ उत्तर देते कई लोग वहाँ आ गये और सबके सामने तो यह बात हो ही नहीं सकती थी अत: बाबा मौन ही रहे पर संकेत से महाराजजी को बस इतना कह दिया कि रात्रि में चर्चा करेंगे।

जब भी महाराजजी गीतावाटिका आते थे तब रात्रि में एकान्तिक सत्संग के लिये या तो महाराजजी बाबा की कुटिया पर आ जाते थे या कभी बाबा ही महाराजजी के निवास स्थान (सन्त कुटीर) पर पहुँच जाते थे। आज बाबा स्वयं, अकेले ही सन्त कुटीर पर पधारे। पूज्य महाराजजी ने बाबा का स्वागत किया और बैठने के लिये आसन दिया। प्रात:काल की बात को याद करके

उन्हें अत्यधिक प्रसन्नता हो रही थी कि आज बाबा अपने बारे में बात करने के लिये पधारे हैं। महाराजजी के समीप ठाकुर घनश्याम थे। उन्होंने ठाकुरजी से कहकर श्रीबंकाजी को बुलवा लिया। एकान्तिक सत्संग का नाम सुनते ही श्रीबंकाजी तत्काल वहाँ चले आये और बाबा और महाराजजी को प्रणाम करके एक ओर चुपचाप बैठ गये।

महाराजजी ने बाबा से कहा—अगर आपको उचित लगे तो आप जो चर्चा करना चाहते हैं उसको ठाकुर घनश्याम और बंकाजी के सामने ही करें। पूज्य महाराजजी की जो रुचि थी उसको बाबा टालना नहीं चाहते थे। पूज्य महाराजजी की कृपा से श्रीबंकाजी को परम दुर्लभ अवसर पर दो महान सन्तों के समीप बैठने का सौभाग्य प्राप्त हो गया।

महाराजजी के सामने अपनी साधना में उन्नति के क्रम को बताते हुए उस दिन पूज्य बाबा ने कहा—रस-सिन्धु में संतरण की दृष्टि से मेरे जीवन की चार घटनाएँ अति महत्त्वपूर्ण हैं। प्रथम है श्रीमंजुलीला भाव की दीक्षा, जो गुरु स्वरूपा श्रीरूपमंजरीजी ने सन् 1939 में प्रदान की। द्वितीय है श्रीमंजुश्यामा भाव की दीक्षा, जो श्रीप्रिया-प्रियतम श्रीराधाकृष्ण ने सन् 1943 में प्रदान की। तृतीय है गुप्त देवी मंत्र की दीक्षा, जो भगवती श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी ने सन् 1951 में प्रदान की और चतुर्थ है श्रीराधाभाव की दीक्षा, जो स्वयं प्रियतम श्रीकृष्ण ने सन 1957 में प्रदान की। मेरे रसावगाहन का शुभारम्भ स्वाधीनभर्तृका-भाव से हुआ। प्रियतम कान्त जिस नायिका के अधीन होकर सर्वदा निकट वास करते हैं, उसे स्वाधीनभर्तृका नायिका कहते हैं। श्रीविशाखाजी स्वाधीनभर्तृका भाव की मूर्तिमान स्वरूपा हैं और श्रीविशाखा भाव से ही मेरा रस राज्य में प्रवेश हुआ। श्रीराधाजी ही श्रीविशाखा हैं। श्रीराधाजी को अपने 'राधा-स्वरुप' की सर्वथा विस्मृति हो जाती है और वे स्वयं को पूर्ण रूप से विशाखा मानने लगती हैं। भाव की प्रबलता के कारण भी ऐसा सोचने-समझने लगती हैं कि मैं वृषभानुनन्दिनी राधा नहीं, अपितु विशाखा हूँ।

बाबा आगे बताते चले गये—मेरे जीवन में ब्रज भाव की सरस धारा, पूर्वजन्म की साधना का फल नहीं है। मैं तो शांकर मतानुयायी कट्टर वेदान्ती

था। मेरे जीवन में जो अद्वैत-निष्ठा थी, उसके बारे में मैं यह स्वीकार कर सकता हूँ कि मेरे पूर्वजन्म में निराकार स्वरूप की जो साधना रही होगी, वही साधना इस जीवन के आरम्भिक काल में चली और वह निराकार साधना पूर्णता की स्थिति को पहुँच गयी, पर जहाँ तक मेरे जीवन में व्रजभाव के वपन और पल्लवन का प्रश्न है, यह सर्वथा श्रीपोद्दार महाराज के सम्पर्क का परिणाम है। यह उनका ही कृपा प्रसाद है कि मुझ निराकारवादी अद्वैत-तत्व-निष्ठ के जीवन में मधुर भावापन्न रसोपासना की रसमयी धारा प्रवाहित हो उठी। प्रथम मिलन के समय श्रीपोद्दार महाराज ने मुझ सन्यासी को प्रणाम करने की भावना से मेरे चरणों का स्पर्श किया और स्पर्श के उसी क्षण में व्रजभाव की महाविचित्र गूढ़तम वस्तु उन्होंने मुझे प्रदान कर दी। श्रीपोद्दार महाराज से मिलने के उपरान्त ही गोपी भाव की रसमयी साधना सही रूप में आरम्भ हुई। साधना करते-करते भाव-देह की भावना इतनी प्रगाढ़ हो गयी कि मुझे अपना पुरुष-शरीर-भाव ही विस्मृत हो गया। यह भाव-वपु मात्र कृपा से प्राप्त होता है। किसी सिद्ध सन्त के अनुग्रह से ही भावराज्य की भावसाधना में प्रवेश सम्भव हो पाता है। श्रीपोद्दार महाराज के अनुग्रह ने मेरे जीवन में महान परिवर्तन ला दिया। मेरा सारा जीवन रसमय हो गया। ऐसा समझो कि किसी व्यक्ति को हवाई जहाज से रस समुद्र के बीच में डाल दिया गया हो। यह सम्भव हो सका एकमात्र श्रीपोद्दार महाराज की अतिशय कृपा के फलस्वरूप ही।

बाबा ने आगे बताया—प्रिया-प्रियतम श्रीराधामाधव के रस राज्य की रसमयी लीला में प्रवेश मिलने के बाद मैं सर्वप्रथम गौरवर्णीया श्रीमंजुलीला भाव में प्रतिष्ठित हुआ। इसके बाद श्यामवर्णीया श्रीमंजुश्यामा भाव में प्रतिष्ठित हुआ और यह मेरी द्वितीय भाव दीक्षा थी। श्रीमंजुश्यामाजी श्रीराधाकिशोरी की छोटी सहोदरा बहन हैं। यह छोटी बहन स्वभाव से कुछ चंचल और कुछ मुखर है और श्रीराधाकिशोरी एवं श्रीश्यामसुन्दर दोनों की ही अत्यन्त प्रीतिपात्री है। दोनों ही श्रीमंजुश्यामा के माध्यम से एक-दूसरे को सुख प्रदान करने का विधान रचते हैं। दोनों को ही श्रीमंजुश्यामा में अपनी-अपनी विवशता का एक

सुन्दर समाधान दिखलायी देता है। इसके बाद देवी मंत्र की दीक्षा भगवती श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी से प्राप्त हुई और फिर श्रीराधाभाव की दीक्षा स्वयं प्रियतम श्रीकृष्ण ने प्रदान की।

बाबा ने महाराजजी को यह सारा विवरण बहुत ही विस्तार पूर्वक दो-तीन घण्टों की चर्चा में सुनाया। श्रीबंकाजी ने उस दिन की विशेष चर्चा में, ठाकुरजी को भेजकर उनको बुलवा लेने के लिये आजीवन पूज्य महाराजजी का आभार माना। उन्होंने बाबा के आध्यात्मिक उन्नति के क्रम को बहुत विस्तार से बाबा की जीवनी प्रीतिरसावतार श्रीराधाबाबा में लिखा है।

जब श्रीबंकाजी मुझे यह सारा प्रसंग सुना रहे थे तब उनके नेत्र भर-भर आ रहे थे। सन्तों की कृपा को याद कर-करके वे भाव-विह्वल हो रहे थे। बार-बार अपनी श्वेत धोती के छोर से अपने नेत्र-नासिका को पोंछ रहे थे। बड़ी मुश्किल से स्वयं को सम्भाल कर उन्होंने मुझसे कहा—लाली! अगर बाबा की टीन शेड में, प्रात:काल यह चर्चा हो जाती तो मैं वहाँ नहीं होता और बाबा की साधना सम्बन्धी क्रमोन्नति को मैं कभी भी जान नहीं पाता। यह चर्चा कोई ऐसी तो थी नहीं कि बार-बार की जाये। यह तो परम गुप्त, महादुर्लभ थी जो भगवती महात्रिपुरसुन्दरी की कृपा से मुझे प्राप्त हुई थी। उनको भविष्य में मुझसे बाबा की जीवनी लिखवानी थी और इसी कारण उन्होंने पूज्य महाराजजी को प्रेरणा करके मुझे सन्त कुटीर में बुलवा लिया था। एक बात और है। भगवती की कृपा से ही बाबा की कुटिया में, बाबा और महाराजजी के वार्तालाप के बीच अन्य लोग आ गये थे जिससे उनकी बातें वहीं रुक जाय। वह दिन मेरे जीवन के सर्वश्रेष्ठ दिनों में से एक है। **मंगलमय अति पावन पावन॥** अगर उस दिन महाराजजी मुझे नहीं बुलाते तो बाबा की जीवनी में, बाबा की साधना सम्बन्धी क्रमोन्नति के बारे में और मंजरीभाव-महाभाव के बारे में मैं कुछ नहीं लिख पाता। इस दिन के बाद से तो बाबा से यह सब चर्चा करने का मार्ग खुल गया। बहुत बार, अवसर देखकर मैंने उनसे श्रीमंजुश्यामाजी के बारे में पूछा और बाबा ने कृपा करके दिव्य निकुंज लीलाओं के माध्यम से उनके स्वरूप को समझाया है। तब जाकर अपनी पुस्तकों में यत्किंचित लिख पाया हूँ।

श्रीबंकाजी के मुख से यह सारी बातें सुनकर मैं उनके सौभाग्य की सराहना करने लगी। **एहि सम पुन्य पुंज कोउ नाहीं॥**

****

श्रीशालिग्राम भगवान का दिव्यानुभव

सन 1968 में श्रीबंकाजी को पूज्य बाबूजी (श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) ने स्वयं पूजित श्रीशालिग्रामजी प्रदान किये थे। यह सारा विवरण पहले इस पुस्तक में आ चुका है। श्रीबंकाजी को उन शालिग्रामजी की पूजा-अर्चना करते बारह वर्ष व्यतीत हो गये थे। वे प्रतिदिन अपने शालिग्रामजी की बहुत भक्तिपूर्वक पूजा करते थे और यात्रा के वक्त भी उन्हें अपने साथ ही ले जाया करते थे।

बारह वर्षों तक सभक्ति अराधना करने के बाद एक दिन श्रीबंकाजी के मन में विचार आया कि—मैं इतने वर्षों से अपने शालिग्रामजी की पूजा कर रहा हूँ। एक बार मुझे पूज्य बाबा के द्वारा भी इनकी अर्चना करवा लेनी चाहिये। इन्हीं भावनाओं से भावित होकर श्रीबंकाजी बाबा के पास गये और उनसे अपने शालिग्रामजी का पूजन करने की बात कही।

बाबा ने श्रीबंकाजी की सब बातों को सुनकर कहा—तुम्हारे मन में श्रीशालिग्रामजी की पूजा का विचार आया है यह अति उत्तम बात है परन्तु श्रीपोद्दार महाराज के जाने के बाद मैंने सब पूजा-अर्चना का विसर्जन कर दिया था। अब मैं किसी भी पूजा में भाग नहीं लेता हूँ। तुम किसी अन्य व्यक्ति से इनकी पूजा करवा लो।

बाबा की वाणी सुनकर श्रीबंकाजी माँ (श्रीपोद्दारजी की पत्नी) के पास गये और उन्हें बाबा से हुई सब बातें बताकर पूजा करने का निवेदन किया। माँ ने सहज भाव से उत्तर दिया—भैया! अब उनके (अर्थात पूज्य बाबूजी के) नहीं रहने से मन में सदा उदासी छाई रहती है। कुछ करने का मन नहीं करता और मैं तो साधारण औरत हूँ। पढ़ी-लिखी हूँ नहीं, कोई मंत्र जानती नहीं। मैं भला क्या पूजा करूँगी। तुम किसी और साधु-सन्त से पूजा करवा लो।

श्रीबंकाजी माँ के पास से भी निराश लौट आये। फिर उनके मन में विचार आया कि वृन्दावन श्रीवेणुविनोद कुंज के पूज्य श्रीबालकृष्णदासजी महाराज से पूजा करवा लेनी चाहिये। कुछ महीनों बाद वे अपने शालिग्रामजी को लेकर वृन्दावन में श्रीवेणुविनोद कुंज पहुँच गये। वहाँ उन्होंने परम पूज्य श्रीबालकृष्णदासजी महाराज के सामने श्रीशालिग्रामजी प्राप्ति की सारी कथा सुनायी। गीतावाटिका में बाबा से और माँ से जो-जो बातें हुई थी वह सब भी बता दिया और महाराजजी से पूजन करने की प्रार्थना की। पूज्य महाराजजी ने शालिग्राम पूजन के लिये अविलम्ब अपनी सहर्ष सहमति प्रदान कर दी।

अगले दिन प्रात:काल श्रीवेणुविनोद कुंज में पूज्य महाराजजी के पावन कर कमलों से श्रीशालिग्रामजी का मंत्रोच्चारपूर्वक सुन्दर विधिवत् पूजन और अभिषेक सम्पन्न हुआ। श्रीबंकाजी को इस पूजन-अर्चन से बहुत संतोष हुआ और हार्दिक प्रसन्नता भी हुई। उन्होंने श्रीमहाराजजी के श्रीचरणों में दण्डवत प्रणाम किया और अपने शालिग्रामजी सहित अपने निवास स्थान पर वापस लौट आये।

इसके अगले दिन प्रात: चार बजे की बात है। ठाकुर घनश्यामजी प्रात:काल जब श्रीमहाराजजी के पास उनके कक्ष में गये तो देखते है कि महाराजजी सुबकियाँ ले रहे हैं। उन्होंने पूछा—क्या बात है महाराजजी ?

महाराजजी बोले—नहीं, कुछ नहीं है।

ठाकुरजी ने फिर पूछा—क्या रात को आप सोये नहीं ?

इतना-सा कहकर ठाकुरजी ने देखा कि श्रीमहाराजजी का तकिया भीगा हुआ है। रात भर उनकी आँखें बहती रहीं और यह तकिया भीगता रहा। तब ठाकुरजी महाराजजी से आग्रह करने लगे—बताइये, आप रातभर कहाँ थे? क्या-क्या आपके अनुभव में आया ?

महाराजजी ने विषय को टालना अवश्य चाहा, पर ठाकुरजी भी कुछ बाल-हठ पर उतर आये थे। तब महाराजजी ने बताना आरम्भ किया—श्रीबंकाजी के पास जो श्रीभाईजी, श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार द्वारा स्पर्शित-

पूजित-अर्चित श्रीशालिग्रामजी हैं, इनका प्रभाव कुछ विलक्षण ही है। रात को बारह बजे मेरी नींद खुल गयी। तभी मैंने अनुभव किया कि मैं नवद्वीप में हूँ। हूँ एक छात्र के रूप में। छात्र-मण्डली का एक सदस्य हूँ। छात्र-मण्डली प्रतीक्षा कर रही थी श्रीनिमाई पण्डित की हरिनाम-संकीर्तन के लिये। उनके आने पर गंगा तट पर हरिनाम-संकीर्तन की तुमुल ध्वनि गूँज उठी। तभी न जाने कब और न जाने कैसे मैं नीलांचल श्रीजगन्नाथपुरी पहुँच गया। गंगाजी का तट नहीं अब था नील सागर का तट और मैं था सन्यासी श्रीचैतन्य महाप्रभु के अति सन्निकट। श्रीचैतन्य महाप्रभु नख-शिख भावाविष्ट हो रहे थे और मैं विमुग्ध होकर उनकी भाव-दशा का भली-भाँती दर्शन कर रहा था। श्रीमहाप्रभु ने श्रीनीलांचल भगवान के दर्शनार्थ मन्दिर में प्रवेश किया और मैं भी उनके साथ-साथ था। मन्दिर में पहुँचने के बाद न जाने कैसे मेरा उनसे साथ छूट गया और फिर मैं अकेला पहुँच गया श्रीराधाकान्त मठ के प्रांगण में, जहाँ श्रीचैतन्य महाप्रभु की गम्भीरा लीला हुई थी। वहाँ एक पूर्व-परिचित बाबाजी से भेंट हुई। उन्होंने मुझे ह्रदय से लगा लिया और मुझे ले गये गम्भीरा मन्दिर के तल घर में। वहाँ का दृश्य देखकर मैं तो अवाक् रह गया। भावोन्मत्त होकर श्रीमन्महाप्रभु मनमोहक नृत्य कर रहे थे। उनकी विभिन्न नृत्य-मुद्राएँ पल-पल अभिवृद्धि कर रही थीं उस भाव-दशा की मधुरिमा को। मुझे देखते ही मेरा हाथ पकड़कर लगे वे नृत्य करने। हम सभी नृत्य में बे-भान हो रहे थे। पुन: मैं उनसे विलग हो गया और मैं मठ के मन्दिर में अचानक आ गया। वहाँ नवकिशोर नित्यसुन्दर श्रीराधाकान्त युगल ने अपने दर्शन दिये। वे युगल फिर श्रीशालग्रामजी के रूप में परिणत हो गये और कहने लगे कि—मैं ही तो राधाकान्त हूँ। श्रीप्रिया-प्रियतम ने स्वयं अपने श्रीमुख से श्रीबंकाजी के श्रीशालग्रामजी का नाम प्रकट किया और कहा कि मुझे खीर-पूड़ी-कढ़ी—भात-साग-हलुआ आदि का भोग लगाओ।

श्रीमहाराजजी ठाकुरजी को बताते ही चले गये—जब से यह सब दिव्य दर्शन हुए हैं मैं स्वयं को रोक ही नहीं पा रहा हूँ। अजस्त्र अश्रुप्रवाह हो रहा है और बार-बार रात्रि के दिव्य-दर्शन मेरे नैनों के सामने आ रहे हैं। श्रीबंकाजी ने

बहुत सुख दिया, बहुत सुख दिया। भाईजी के श्रीचरणों में कोटि-कोटि प्रणाम। अब तुम जाओ और श्रीबंकाजी से कहो कि अपने नवकिशोर, नित्यसुन्दर, श्रीराधाकान्त युगल स्वरूप शालिग्रामजी को लेकर पुनः यहाँ वेणुविनोद कुंज में पधारें। यहाँ की बहनों से कहो कि दिव्य भोग की व्यवस्था करें जिसमें सुस्वादु खीर-पूड़ी-कढ़ी-भात—साग-हलुआ आदि हो। (यह सारा प्रसंग वृन्दावन की श्रीसंतोष बहनजी नामक पुस्तक में भी लिखा हुआ है।)

पूज्य महाराजजी की भाव विभोर अवस्था को देखकर और गद्-गद् वाणी से उनके रात्रि के दिव्य अनुभव को सुनकर श्रीठाकुरजी को भी रोमांच हो आया। वे मन-ही-मन श्रीबंकाजी के शालिग्रामजी को प्रणाम करने लगे। उन्होंने महाराजजी की आज्ञानुसार वेणु विनोद कुंज की बहनों को सारी बातें बताई और दिव्य प्रसाद निर्माण करने को कहा। प्रिया-प्रियतम श्रीराधाकान्त युगल ने स्वयं प्रसाद पाने की माँग की है, यह बात सुनते ही सभी माताओं-बहनों में खुशी की लहर दौड़ गई। सब अतिशय प्रसन्नता पूर्वक रसोई में जाकर भोग की तैयारी में लग गयीं।

श्रीठाकुरजी अब श्रीबंकाजी के निवास स्थान पर पहुँचे जहाँ वे बाबा के अन्य परिकरों के साथ ठहरे हुए थे। प्रातः कोई सात बजे होंगे। श्रीबंकाजी अपना नित्य नियम पूर्ण करके, माला झोली लिये नाम जप कर रहे थे। श्रीठाकुरजी ने जाते ही कहा—बंकाजी, एक बार अपने शालिग्रामजी के दर्शन करा दीजिये।

श्रीबंकाजी को श्रीठाकुरजी को इतनी सुबह-सुबह अपने पास आया देखकर बड़ा आश्चर्य हो रहा था कि ऐसी क्या बात हो गई जो ठाकुरजी स्वयं इतने प्रातः आये हैं। श्रीबंकाजी ने प्रसन्न मन से श्रीठाकुरजी का स्वागत किया और अपने शालिग्रामजी का उनको दर्शन करवाया। शालिग्रामजी को देखते ही ठाकुरजी ने दण्डवत् प्रणाम किया और गद्-गद् वाणी में कहा—जय हो! जय हो! नवकिशोर नित्यसुन्दर श्रीराधाकान्त युगल की जय हो! जय हो! निताई गौर हरि बोल!!

श्रीठाकुरजी की भाव विह्वल दशा देखकर श्रीबंकाजी को और अधिक

आश्चर्य हुआ और उन्होंने ठाकुरजी से पूछा—आज आपने श्रीराधाकान्त नाम से जय जयकार किस वजह से की? क्या कोई विशेष कारण है? सब बात विस्तार से बताने की कृपा करें।

श्रीठाकुरजी के नेत्र छलक आये थे। उन्होंने स्वयं को सम्भालते हुए कहना प्रारम्भ किया—बंकाजी आप धन्य हैं। बाबूजी और माँ की आप पर असीम कृपा है। आपके शालिग्रामजी परम दिव्य हैं। अद्भुत हैं।

इतना कहकर श्रीठाकुरजी ने आदि से अन्त तक श्रीमहाराजजी को जो-जो अनुभव हुआ था, वह सब श्रीबंकाजी को बता दिया और यह भी कहा कि—आपके शालिग्रामजी ने ही स्वयं अपना नाम श्रीराधाकान्त बताया है। महाराजजी की दशा देखकर हमलोगों के आह्लाद की सीमा नहीं थी। महाराजजी बार-बार कह रहे थे कि यह सारा अनुभव में इसलिये आया कि वे श्रीशालीग्रामजी परम भागवत श्रीभाईजी द्वारा स्पर्शित-पूजित हैं और उनके द्वारा प्रदत्त हैं। वे बार-बार आपके भाग्य की सराहना कर रहे थे। अब आप बाबूजी के सभी परिकरों सहित अपने श्रीशालीग्रामजी को लेकर वेणु विनोद कुंज पधारिये।

ठाकुरजी के मुख से अपने शालिग्रामजी के दिव्य विवरण को सुनकर श्रीबंकाजी की क्या हालत हुई होगी, उन्हें कितनी प्रसन्नता हुई होगी, उन्हें कितना आश्चर्य हुआ होगा, इन सबका वर्णन शब्दों से नहीं हो सकता है।

महाराजजी के आज्ञानुसार श्रीबंकाजी अपने श्रीशालिग्रामजी को लेकर, बाबूजी-बाबा के परिकरो के संग श्रीवेणुविनोद कुंज पहुँचे। वहाँ पूज्य महाराजजी ने शालिग्रामजी को अपने पूजा घर में अपने ठाकुरजी के सामने पधराकर पुनः उनका विविध भाँति से अभिषेक और पूजन किया। शालिग्रामजी का लाड लडाते हुए उन्हें विशेष रूप से नैवेद्य अर्पित किया गया और सुन्दर कीर्तन हुआ। **सोभा बहुत थोरि मति मोरी॥** सभी भक्तों को खूब आनन्द आया। बाद में सभी लोगों के आग्रह करने पर महाराजजी ने अपने अनुभव को लिपिबद्ध भी किया।

****

वृन्दावन यात्रा के मधुर क्षण

जब भी श्रीबंकाजी वृन्दावन जाते तो वेणु विनोद कुंज में पूज्य श्रीबालकृष्णदासजी महाराज को प्रणाम करने जाते ही थे। पूज्य महाराजजी के साथ श्रीबंकाजी का पत्राचार भी होता था और उन पत्रों में अक्सर वाटिका की युगल विभूतियों कि रसमयी चर्चा होती थी। श्रीबंकाजी जो पत्र पूज्य पण्डितजी श्रीगयाप्रसादजी महाराज को लिखते थे उसकी भी एक कॉपी वे पूज्य महाराजजी को भेज दिया करते थे। भेजने का हेतु यही था कि महाराजजी जैसे परम रसिक सन्त को बाबूजी-बाबा के बारे में पढ़कर सुख प्राप्त हो। केवल पूज्य महाराजजी ही नहीं अपितु वेणु विनोद कुंज के सभी भाई-बहिन उन पत्रों की प्रतीक्षा किया करते थे और बड़े चाव से परस्पर पढ़ा करते थे। इस नाते श्रीबंकाजी से वेणु विनोद कुंज के सारे भाई-बहिन परिचित थे।

एक बार पूज्य महाराजजी अपने परिकरों से घिरे वेणु विनोद कुंज में बैठे थे। तभी महाराजजी की परम कृपा पात्री श्रीदेवीजी ने उलाहना देते हुये श्रीबंकाजी से कहा—बंका भैया! इस बार बहुत दिनों से आपका पत्र नहीं आया। हमलोग सब आपके पत्र की बेसब्री से प्रतीक्षा करते हैं।

श्रीबंकाजी ने मुस्कुराते हुए उत्तर दिया—इस बार पत्र के बदले मैं स्वयं आ गया हूँ।

श्रीदेवीजी ने कहा—आपके आने में और आपके पत्र के आने में बहुत अन्तर है। जब आप आते हैं तो केवल आप आते हैं पर जब आपका पत्र आता है तब पत्र के साथ-साथ बाबूजी-बाबा आते हैं, उनके परिकर आते हैं, उत्सव-महोत्सव का विस्तृत विवरण आता है, परिक्रमा के पद गायन की मधुरता आती है.....। हमलोग आपके पत्र के माध्यम से वाटिका पहुँच जाते हैं। आपके द्वारा लिखा विवरण ऐसा होता है कि हम लोगों को लगता है कि हम वहीं बाबा के समीप ही बैठे यह सब देख रहे हैं। आपका पत्र असीम आनन्द लेकर आता है।

श्रीदेवीजी के मुख से यह सब सुनकर श्रीबंकाजी मन्द-मन्द मुस्कुराने लगे और उन्होंने कहा—आगे से पत्र भेजने में विलम्ब नहीं होगा।

****

इसी वृन्दावन यात्रा का एक अन्य प्रसंग भी है। जब भी श्रीबंकाजी वेणु विनोद कुंज जाते थे तो सभी स्वजन, रस चर्चा के लोभ से पूज्य महाराजजी और श्रीबंकाजी को घेरकर बैठ जाया करते थे। ऐसे ही एक बार सब लोग बैठे थे और कथावार्ता के मध्य में पूज्य महाराजजी ने किसी व्यक्ति से कहा—तुम किस खेत की मूली हो?

इससे पहले कि वह व्यक्ति कुछ उत्तर दे पाता, श्रीबंकाजी ने तपाक से कुछ उच्च स्वर में कहा—महाराजजी! मेरा कथन सुनिये। मैं पोद्दारजी के खेत की मूली हूँ।

इस बात को सुनते ही उपस्थित सभी लोग खिल-खिलाकर हँस पड़े और पूज्य महाराजजी तो मानो रीझ ही गये एवं उनके मुख मण्डल पर प्रसन्नता छा गयी। वे अत्यन्त स्नेहभरी दृष्टि से श्रीबंकाजी को देखने लगे और उन्होंने कहा—बंकाजी! आप धन्य हैं। वाह! कितनी सुन्दर बात है। पोद्दारजी के खेत की मूली होना बड़ा दुर्लभ है। मानसिक लगाव हो तो ऐसा हो। साधक के जीवन की यह एक आदर्श स्थिति है। आपकी श्रद्धा वन्दनीय है।

पूज्य महाराजजी श्रीबंकाजी की बात से इतने प्रभावित हुए कि जब श्रीबंकाजी वेणु विनोद कुंज से जाने लगे तब महाराजजी उन्हें द्वार तक छोड़ने आये।

****

1983 चैत मास में, वृन्दावन में, श्रीसीताबाई पोद्दार द्वारा लक्ष चण्डी पाठ, कात्यायनी पीठ में करवाया गया था। इस पाठ को करवाने की प्रेरणा श्रीबंकाजी ने ही श्रीसीताबाई को दी थी। इस पाठ का उद्देश्य था श्रीराधा-कृष्ण प्रीत्यर्थ, अर्थात श्रीराधा-कृष्ण की परा भक्ति की प्राप्ति हो। श्रीबंकाजी पूज्या श्रीसीताबाई पोद्दार, श्रीजयराम भैया, भागलपुरवाली पूज्या श्रीमीरा बाई आदि अनेक भाई-बहिनों के साथ गोवर्धन गये हुए थे।

सभी लोग पण्डाजी के घर पर ठहरे थे। दोपहर को वहाँ सभी एक पंक्ति में बैठकर भोजन कर रहे थे और भागलपुर वाली मीरा बाई परोस रही थीं।

श्रीबंकाजी की थाली में दही से भरी कटोरी थी। श्रीबंकाजी ने मीरा बाई से कहा—मीरा! थोड़ी चीनी देना।

मीरा बाई ने चीनी सहज रीति से उनकी कटोरी में परोस दी। जब वे चीनी दे रही थीं तब श्रीबंकाजी ने उनके मुख की ओर देखते हुए मन्द स्मित के साथ कहा—मीरा! जीवन भर 'चीनी' परोसती रहना।

इस बात को सुनकर वहाँ उपस्थित सभी जन हँसने लगे और मीरा बाई के अधरों पर मधुर मुस्कान फैल गयी।

****

वृन्दावन के विख्यात सन्त पूज्य स्वामी श्रीसत्यानन्दजी हैं जिनका निवास रमणरेती की ओर 'कृपा विलास' भवन में है। पूज्य स्वामीजी से श्रीबंकाजी का परिचय सन् 1948 से है। इन्होंने एक साथ गुप्त काशी से केदारनाथ तथा बदरीनाथ की पैदल यात्रा की थी। यात्रा में बड़ी सुन्दर सत्संग-वार्ता होती ही थी। श्रीबंकाजी का स्वामीजी के प्रति पूज्य भाव कुछ इस प्रकार का था कि उसमें सख्य भाव का सम्मिश्रण भी था। एक बार श्रीबंकाजी ने बद्रीनाथ में पूज्य स्वामीजी के लिए कुटिया का प्रबन्ध भी किया था।

सन् 1978 में श्रीबंकाजी पूज्या सीताबाई, श्रीजयराम भईया आदि कई भाई-बहिनों के साथ पूज्य स्वामीजी से मिलने के लिये रमणरेती गये। स्वामीजी अत्यन्त प्रसन्न हुए और सबका यथोचित आदर सत्कार किया। बहुत देर तक सत्संग और रसचर्चा होती रही। जब उनसे विदा लेने का अवसर आया तो उन्होंने सबको प्रसाद रूप में मिष्ठान्न प्रदान किया। उन दिनों, श्रीबंकाजी का स्वास्थ्य शिथिल चल रहा था। पूज्य स्वामीजी को इस बात की जानकारी थी। जब श्रीबंकाजी को प्रसाद देने का अवसर आया तो पूज्य स्वामीजी ने कहा—मैं आपको मिठाई नहीं, फल दूँगा।

श्रीबंकाजी ने चट उत्तर दिया—स्वामीजी! वृन्दावन का फल मिले, यही तो मैं चाहता हूँ। वृन्दावन का फल ही तो परम प्राप्तव्य है।

यह सुनना था कि स्वामीजी मुस्कुराने लगे और स्नेह सिक्त दृष्टि से

श्रीबंकाजी की ओर देखते हुए कहा—तुम बहुत गहरे बोलते हो।

इधर स्वामीजी ने यह मधुर टिप्पणी की और उधर साथ वाले सभी लोग मन्द-मन्द हँसने लगे। वस्तुतः सन्तों का पारस्परिक मधुर विनोद बहुत रहस्यमई और गूढ़ होता है।

****

6-12-89 मार्गशीर्ष शुक्ल अष्टमी को, गहबर वन बरसाना में श्रीबंकाजी और बाबूजी-बाबा के परिजनों ने मिलकर अष्ट सखी का पूजन किया था। बरसाने की आठ किशोरी कन्याओं का नख-शिख श्रृंगार किया गया और उनका विशेष रूप से गहबर वन में पूजन हुआ। खूब पूरी-साग-मिठाई की रसोई बनवाकर विशाल भण्डारा किया गया। जितना प्रसाद बचा उससे बन्दरों का भण्डारा किया गया। सब लोगों ने देखा कि जो सखी श्रीललिताजी बनी थी उनमें दिव्य भाव का आवेश आ गया था और उन्होंने हाथ उठाकर सबको आशीर्वाद दिया।

****

केलि कुंज

जब किसी दिव्य ग्रन्थ को प्रकट करना होता है तो उसकी पृष्ठभूमि स्वयं भगवान बनाते हैं। कुछ ऐसा ही श्रीराधा बाबा की पुस्तक 'केलि कुंज' के लिए भी समझना चाहिये। बहुत पहले की बात है। संभवतः सन 1941 का प्रसंग होना चाहिये। परम पूज्य बाबूजी (श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) की सुपुत्री श्रीसावित्रीबाई फोगला के श्वसुरजी श्रीशिवभगवानजी फोगला, अपने समधी (पूज्य बाबूजी) के प्रति अत्यधिक श्रद्धा रखते थे और समय-समय पर उनके पास आकर अपने साधना सम्बन्धी प्रश्न उनसे पूछा करते थे।

बाबूजी अत्यन्त आत्मसंगोपन स्वभाव के थे और कोई आदरणीय व्यक्ति उन्हें सन्त माने और वह प्रेमराज्य की सरस चर्चा करना चाहे, यह उन्हें प्रिय नहीं था। एक ओर बाबूजी अपने समधी श्रीफोगलाजी का बहुत आदर करते थे और वे उन्हें निराश भी नहीं करना चाहते थे पर निकुंज की सरस लीलाओं

की चर्चा करना उन्हें अभीष्ट भी नहीं था। ऐसी परिस्थिति में बाबूजी ने एक मध्यम मार्ग निकाला। बाबूजी श्रीफोगलाजी को पूज्य श्रीराधाबाबा के पास ले गये और बाबा को उनका परिचय बताते हुए कहा—ये अपने समधी श्रीशिवभगवानजी फोगला हैं। श्रीपरमेश्वर प्रसादजी फोगला के पिताजी हैं। बड़े सरस हृदय, सज्जन व्यक्ति हैं और भजन में लगना चाहते हैं। ये जो भी पूछें आप उनका पूर्ण समाधान कर दें।

बाबा को बाबूजी का इतना संकेत पर्याप्त था। बाबूजी श्रीशिवभगवानजी फोगला को बाबा के पास छोड़कर वापस अपने कक्ष में लौट आये। श्रीफोगलाजी अब प्रतिदिन बाबा से एकान्तिक सत्संग करने लगे और अपने साधन सम्बन्धी जिज्ञासा का समाधान पाने लगे। इन दिनों बाबा का मौन व्रत चल रहा था अत: श्रीफोगलाजी जो भी पूछते बाबा उसका उत्तर कागज पर लिख कर देते थे और श्रीफोगलाजी उन कागजों को सम्भाल कर रख लेते थे।

एक दिन श्रीफोगलाजी ने, निकुंज राज्य में श्रीप्रिया-प्रियतम की दिव्य लीलाओं के बारे में जिज्ञासा व्यक्त की और उन मधुर लीलाओं को सुनाने का अनुरोध बाबा से किया। ऐसे तो बाबा अपनी स्वयं दृष्ट लीलाएँ किसी को सुनाते नहीं थे पर क्योंकि बाबूजी ने श्रीफोगलाजी का पूर्णरूपेण समाधान करने का आदेश दिया था इसीलिए बाबा अब श्रीफोगलाजी को निकुंज राज्य की स्वानुभूत लीला लिख-लिख कर देने लगे।

लीलाओं को लिखने के लिए कागज़ की आवश्यकता होती है और बाबा का मौन होने के कारण उन्होंने श्रीफोगलाजी से कहा ही नहीं कि उनके पास कागज़ नहीं हैं। उन दिनों एक नेत्र चिकित्सा शिविर लगा था जिसके पर्चे अत्यिक मात्रा में छपे थे और बाँटे गये थे। नेत्र चिकित्सा शिविर तो कब का पूरा हो चुका था पर उन बचे हुए पर्चों पर बाबा की दृष्टि पड़ गयी और बाबा ने उन्हें मँगवा लिया। अब बाबा प्रतिदिन इन्हीं पर्चों की पीठ पर स्वानुभूत लीलाओं को लिपिबद्ध करके श्रीफोगलाजी को देने लगे। ये कागज़ बहुत ही पतले थे। अगर श्रीफोगलाजी को जरा भी अंदाज़ा हो जाता कि पूज्य बाबा के पास कागज़ नहीं है तो वे कागज का अम्बार लगा देते पर बाबा ने उन्हें

कभी बताया ही नहीं और इन अत्यधिक पतले कागजों पर ही दिव्यातिदिव्य लीलाओं का लेखन कार्य चलता रहा।

महाभावमयी श्रीराधा एवं परम रसस्वरूप श्रीकृष्ण की जो-जो, जैसी-जैसी लीलायें बाबा की मानस-लीला-भूमि पर आविर्भूत होती थीं, इन परम गहन, परम पवित्र एवं परम सरस लीलाओं की ओर वाणी से भी संकेत कर पाना सम्भव नहीं था। वास्तविकता भी यही है कि स्वानुभूति गहन लीलाओं की वह रहस्यमयता वाणी का विषय है भी नहीं। यह रहस्यमयता वाणी से सदा ही परे रही है और भविष्य में सदा रहेगी भी। परन्तु लीलाओं के ऐसे अंश, जो वाणी द्वारा व्यक्त किये जा सकते थे, वे भी पूर्ण रूप से लिपिबद्ध नहीं हो पाये। श्रीफोगलाजी के मानस के स्तर को देखकर ही बाबा को वर्णन पर अंकुश लगाते हुए, शब्दाभिव्यक्ति को सीमा के भीतर रखना पड़ा। अष्टयाम लीला के क्रम से कुल 29 लीला ही लिखी जा सकी। श्रीफोगलाजी इन रसमय लीलाओं को पढ़कर अति प्रसन्न होते थे और इन कागजों को बहुत सम्भाल कर सुरक्षित रखते थे।

समय बीतता रहा। सत्तर के दशक में श्रीशिवभगवानजी फोगला का निधन हो गया। परिवार में शोक छा गया। जब सारे अन्तिम दैहिक कार्य पूर्ण हो गये तब उनके कक्ष की सफाई की गई। वहाँ बाबा द्वारा लिखित बहुत सारे कागज उनकी आलमारी में पाये गये। घरवालों ने उसको पढ़ा मगर वे साधारण गृहस्थ उन सभी लीलाओं की गम्भीरता को समझ नहीं पाये। उन्होंने यही समझा कि यह पन्ने व्यर्थ हैं। इन कागजों में किसी की रुचि नहीं थी अत: इन्हें हटा देने की बात सोची जाने लगी। संयोग की बात है कि यह सारी बातें पण्डित श्रीइन्द्रचन्द्रजी महर्षि के कान में भी आई। श्रीइन्द्रचन्द्रजी महर्षि ने ही श्रीशिवभगवानजी फोगला का अन्तिम दैहिक कार्य सम्पन्न करवाया था। श्रीमहर्षिजी ने उन लोगों से कहा—आप जिन कागजों को निरर्थक समझ रहे हैं और हटाना चाहते हैं, वह एक बार मुझे दिखलाइये।

श्रीशिवभगवानजी फोगला के घरवालों ने कुछ पुराने पन्ने दिखलाये, जो

गलने की स्थिति में थे। श्रीमहर्षिजी ने इन पत्रों को देखा। वे इन पुराने पत्रों के महत्व को जानते थे। उनको इस बात की जानकारी थी कि पूज्य श्रीराधाबाबा, वृन्दावन रस की मधुर बातें लिख करके श्रीफोगलाजी को दिया करते थे। श्रीमहर्षिजी ने रहस्य को खोला नहीं और घरवालों से कहा—आप यह सारे पन्ने मुझे दे दीजिये।

घरवालों ने सारे पन्ने श्रीमहर्षिजी को दे दिये। उन्होंने बड़े धैर्यपूर्वक उसकी नकल उतारी और पूज्य बाबूजी को दे दी। पूज्य बाबूजी ने लिखित सामग्री का सम्पादन किया और सम्भवत: 1961 के आसपास कल्याण पत्रिका में 'प्रेम सुधा माला' के शीर्षक से छापने लगे। कल्याण के सभी साधकों को यह लेख अत्यधिक प्रिय तथा प्रेरक लगे। सभी की ओर से अनुरोध आने लगा कि इस संकलन को अलग से पुस्तकाकार प्रकाशित कर दिया जाये। फिर यह संकलन 'प्रेम सत्संग सुधा माला' के नाम से गीताप्रेस से प्रकाशित हुई। इस पुस्तक से अनेकों के जीवन में महान परिवर्तन आया। कई साधकों के लिए यह पुस्तक नित्य पाठ की वस्तु बन गई थी।

बाबा द्वारा लिखित जो सिद्धान्त वाक्य थे, वे 'प्रेम सत्संग सुधा माला' के रूप में पुस्तकाकार प्रकाशित हो गये। अब जो वृन्दावनी मधुर लीलाओं का वर्णन था, उसकी नकल उतारी गयी, परन्तु अत्यन्त गोपनीय समझ करके उसे समाज के सामने नहीं लाया गया। गीतावाटिका में कई साधकों के पास यह नकल पहुँच गयी और इन परम दुर्लभ लीलाओं को अत्यन्त गुप्त ही रखा गया।

इन दिव्य लीलाओं की नकल श्रीबंकाजी के कई आत्मीय जनों के पास थी। इसमें से कुछ लीलाओं को पढ़ने का पावन अवसर सन 1975 में उनको मिला। इन मधुर लीलाओं को पढ़कर वे आनन्द में डूब गये। श्रीप्रिया-प्रियतम की दिव्य निकुंज लीला, प्रात: उठने से रात्रि रास और शयन तक का अष्टयाम क्रम, भावों की मधुरता, माधुर्य की छलकन, प्रसंग की गहराई आदि आदि, सभी बातों ने श्रीबंकाजी को भाव-विभोर कर दिया। आज से पहले उन्होंने किसी भी सम्प्रदाय में, किसी भी सन्त के द्वारा लिखित ऐसी मधुर लीलाओं को नहीं पढ़ा था। रस मार्ग के साधकों के लीला-चिन्तन के लिये यह लीलायें अमृत के समान थीं। वे सोचने लगीं कि जैसे मुझे इनको पढ़कर अतिशय आनन्द की अनुभूति हो रही है वैसे ही विश्व के सभी रसिक साधकों को यह लीला सुलभ होनी चाहिये। उन्हें भी इन लीलाओं से प्रेरणा और प्रोत्साहन मिलना चाहिये। इस परम पवित्र लीलाओं का प्रकाशन होना चाहिये।

पहले तो कोई भी श्रीबंकाजी को अपनी हस्त लिखित प्रति देने को तैयार नहीं था। फिर उन्होंने सबको समझाया कि यह बाबा द्वारा लिखित अति दिव्य वस्तु है जिसे समाज के सामने लाने के लिए प्रकाशित करने की अत्यन्त आवश्यकता है। असंख्य रसिक हृदय साधक-साधिकाओं को इससे लीला चिन्तन में लाभ मिलेगा।

भगवान ने श्रीबंकाजी को सफलता प्रदान की। उनके सामने लीलाओं की चार-पाँच प्रतियाँ आ गयीं किन्तु सबमें बड़ा अन्तर था। नकल करते समय कभी एक पंक्ति छूट गई, कभी एक के स्थान पर दो पन्ने पलटे गये। इस प्रकार हर प्रति में सीमातीत भूलें थी। श्रीबंकाजी धैर्यपूर्वक सभी प्रतियों का मिलान करने लगे। इसमें पूर्ण सहयोग मिला परम सम्मानीय भाई श्रीदूलीचन्दजी दुजारी का। मिलान करते-करते और सुधार करते-करते, महीनों के अथक परिश्रम के बाद एक प्रति तैयार हो गई।

कालान्तर में श्रीबंकाजी को ज्ञात हुआ कि इन दिव्य लीलाओं की बाबा द्वारा लिखित मूल प्रति, श्रीइन्द्रचन्द्रजी महर्षि के पास है। श्रीमहर्षिजी से उनका परिचय था। श्रीबंकाजी ने उनसे मूल प्रति गोरखपुर लेकर आने की प्रार्थना की। उनके आग्रह को स्वीकार करके श्रीमहर्षिजी मूल प्रति को रतनगढ़ से गोरखपुर ले आये। गीतावाटिका आने पर उन्होंने यह सारे कागज श्रीबंकाजी को दिखाये। यह कागज एक तो इतने पतले थे और फिर इतने पुराने होने के कारण ऐसे थे मानो छूते ही बिखर कर टूट जायेंगे। बहुत अधिक सम्भाल कर इनको देखने और पढ़ने की आवश्यकता की।

श्रीबंकाजी ने एक दफ्तरी को बुलाया और उसके साथ सात-आठ दिन तक लगातार काम करते रहे। इन पत्रों को प्लास्टिक की थैली में अलग-

अलग रखा गया। भाई श्रीभीमसेनजी चोपड़ा के सहयोग से दुबारा मिलान किया गया। यह काम अत्यधिक कठिन और कड़ी परिश्रम वाला था। अनेक स्थानों पर सुधार करना पड़ा। अब सही रूप में एक शुद्ध प्रति तैयार हो गई। इसी को साहस करके श्रीबंकाजी ने 'केलि कुंज' पुस्तक के नाम से छपाया। यह पुस्तक 1983 में छपी। सभी को अत्यधिक प्रिय लगी। श्रीमहर्षिजी का जो सहयोग मिला उसके फलस्वरुप यह अत्यन्त दुर्लभ कार्य हो पाया। इस संग्रह में संकलित लीलायें परम रसिक सन्त श्रीराधाबाबा का कृपा प्रसाद हैं।

केलि कुंज के प्रकाशन में श्रीबंकाजी के सामने बाधायें कम नहीं आयीं। अर्थ की व्यवस्था अपने आप में एक बहुत बड़ी समस्या थी पर श्रीबंकाजी ने हार नहीं मानी। बाबा की कृपा से उनको पूर्ण सफलता मिली और सभी रसिक हृदय साधकों ने श्रीबंकाजी को उनके परिश्रम के लिये और इन परम दुर्लभ गुप्त लीलाओं को विश्व के सामने लाने के लिये बहुत-बहुत साधुवाद दिया।

****

बड़े भाई भाभी से क्षमा याचना

श्रीबंकाजी के मन में यह बात अक्सर उभरती रहती थी कि उनके घर छोड़ देने से उनके पिताजी और भाइयों को बहुत तकलीफ उठानी पड़ी। अगर वे घर पर रहकर व्यवसाय करते तो कारोबार में इतना नुकसान नहीं होता और घरवालों को पाई-पाई का मोहताज नहीं होना पड़ता। अपने पिताजी के पास तो वे जाकर क्षमा माँग आये थे और पिताजी ने उन्हें हृदय से लगाकर क्षमा भी कर दिया था परन्तु अपने बड़े भाई-भाभी से क्षमा माँगने का अवसर उन्हें अब तक नहीं मिला था और वे भगवती महात्रिपुरसुन्दरी से मन-ही-मन कातर प्रार्थना करते थे कि—माँ! बड़े भाई-भाभी का मन मेरी ओर से निर्मल कर दो। उनके मन में क्षोभ होना स्वाभाविक है। मेरे कारण उन्होंने बड़ा कष्ट उठाया है। वे मुझे क्षमा कर दें।

श्रीबंकाजी की भगवती महात्रिपुरसुन्दरी से यह प्रार्थना वर्षों चलती रही। उनकी सच्ची प्रार्थना का परिणाम यह हुआ कि एक दिन उनके बड़े भाई

श्रीहनुमानप्रसादजी बंका और भाभी उनसे मिलने गीतावाटिका पधारे। उनको देखकर श्रीबंकाजी के तो आनन्द का ठिकाना न रहा। उनके शरीर में रोमांच हो आया, नेत्रों से अश्रु बहने लगे और उन्होंने दोनों के श्रीचरणों में दण्डवत प्रणाम किया। श्रीबंकाजी तो उनके श्रीचरणों को छोड़कर उठना ही नहीं चाहते थे। **कहि न सकइ कछु अति अकुलाना** ॥ उन्हें तो लगा मानो साक्षात श्रीराम-सीता ही उनसे मिलने आयें हों। उनकी भाभी ने उनके सिर पर अपना हाथ रखा। **जननि जानि सिसु दीन्हि असीस** ॥ श्रीबंकाजी को ऐसा लगा मानो भरतजी के सभी अपराधों को क्षमा करके श्रीसीताजी ने उन्हें आशीर्वाद दिया है। **सब बिधि सानुकूल लखि सीता** माँ समान भाभी के आशीर्वाद को पाकर उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। बहुत देर तक वे अपने भाई-भाभी के चरणों में लोटते रहे और अपने नेत्रों के जल से उनके चरणों का प्रक्षालन कर दिया।

बहुत देर के बाद उनके भैया ने उन्हें उठाकर अपने हृदय से लगा लिया। श्रीबंकाजी ने हाथ जोड़कर उनसे कहा—भैया-भाभी, मेरे कारण आप लोगों को जीवन में बहुत कष्ट उठाना पड़ा। मैं आर.एस.एस. में जाता था, इस कारण सर्वप्रथम आपको अपना घर-व्यवसाय छोड़कर अलसीसर भागना पड़ा। एक के बाद एक मुसीबतों का पहाड़ घर पर टूट पड़ा पर मैं मुड़कर कभी सहायता करने नहीं आया। मैं स्वार्थी था, मेरा मार्ग अलग था। आज आप दोनों ने कृपापूर्वक यहाँ पधारकर मेरे मन में आशा की ज्योत जगा दी है। मैं बहुत दिनों से भगवति से प्रार्थना कर रहा था कि आपलोग मुझे क्षमा कर दें और आशीर्वाद दें जिससे मेरा कोई स्वर्णिम सपना साकार हो सके।

श्रीबंकाजी की प्रेमभरी विह्वल वाणी सुनकर उनके भैया-भाभी के नेत्र भी बरस पड़े और पुराने सारे मन-मुटाव मिट गये। उनके बड़े भाई ने कहा—युवावस्था में जब तू हमारी बात नहीं सुनता था तो मन में बहुत रोष था पर अब समझ में आ गया है कि भगवद्प्राप्ति का तेरा मार्ग सर्वश्रेष्ठ है। तेरे विरक्त जीवन पर, तेरी भक्ति पर, तेरी सन्त-सेवा पर मुझे गर्व है। तेरा अशेष मंगल हो।

श्रीबंकाजी के भैया-भाभी ने मंगल आशिर्वादों की झड़ी लगा दी। इस

प्रकार से भगवती महात्रिपुरसुन्दरी की कृपा से श्रीबंकाजी के हृदय की बहुत बड़ी ग्लानि दूर हुई।

****

मन्दिर के लिये प्राप्त धन की सुरक्षा

पूज्य बाबूजी के निजी परिकर श्रीकृष्णचन्द्रजी अग्रवाल के जीवन का सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण कार्य है गीतावाटिका में श्रीराधाकृष्ण साधना मन्दिर का निर्माण करवाना। आदि शंकराचार्यजी की मान्यता को स्वीकार करते हुए पूज्य बाबूजी भी पंचदेवों के उपासक थे। बाबूजी के नित्य-लीला-लीन होने के बाद पूज्य बाबा एवं अन्य आत्मीय जनों की ऐसी अभिलाषा थी कि पूज्य बाबूजी की इस मान्यता के अनुसार गीतावाटिका में एक ऐसे मन्दिर का निर्माण हो जिसमें उन सभी विग्रहों की प्रतिष्ठा रहे जिनका पूजन-अर्चन पूज्य बाबूजी और उनके परिवार द्वारा सदैव होता रहा है। इस मन्दिर निर्माण कार्य का दायित्व श्रीकृष्णचन्द्रजी अग्रवाल ने अपने ऊपर लिया।

ऐसे विशाल मन्दिर के निर्माण के लिए विपुल धनराशि की आवश्यकता थी। अब प्रश्न यह था कि इसकी व्यवस्था कैसे हो। श्रीकृष्णचन्द्रजी अग्रवाल ने बाबूजी के परिचित जितने भी आदमी एवं परिजन थे, सभी को पत्र लिखकर के सहयोग के लिए अनुरोध किया। उन्हें समाज का सराहनीय सहयोग प्राप्त हुआ और शीघ्र ही विपुल धन राशि इकट्ठी हो गई। मन्दिर निर्माण कार्य आरम्भ हो गया।

जब दृष्टि लक्ष्य पर रहती है तब कार्य करनेवाला दायें-बायें नहीं देखता। श्रीकृष्णचन्द्रजी की दृष्टि लक्ष्य बिन्दु पर इतनी अधिक केंद्रित थी कि उठना-बैठना, सोना-जगना, इस प्रकार उनका सारा कार्य व्यापार मन्दिर-निर्माण के उद्देश्य को लेकर ही होता था। श्रीकृष्णचन्द्रजी ने स्थानीय लोगों से भी सम्पर्क किया। अधिकांश गोरखपुर के मारवाड़ी भाइयों ने तथा अन्य श्रद्धालु भक्तों ने उन्हें पर्याप्त आर्थिक सहयोग दिया। धनराशि बाहर से भी नगद-मनीआर्डर-चेक द्वारा आने लगी। लाखों रुपये जमा हो गये। इतनी बड़ी धनराशि को

गीतावाटिका में रखना उचित नहीं था। श्रीकृष्णचन्द्रजी ने कुछ रुपये रखकर बाकी की सारी धनराशि अपने बैंक में जमा कर दी।

1980 के दशक में आयकर विभाग अत्यधिक सक्रिय था। वे लोग जगह-जगह आयकर का छापा डाल रहे थे। कई लोग पकड़े गये। वे दण्ड के भागी हुए। अखबारों में प्रतिदिन यही सब खबरें रहा करती थी। श्रीकृष्णचन्द्रजी की जानकारी में भी यह सब बातें आयी। उन्होंने तुरन्त सोचा—मेरे बैंक के खाते में मन्दिर का इतना रुपया, आयकर विभाग से कैसे सुरक्षित रहेगा? इसको सुरक्षित रखना बड़ा आवश्यक था। यदि यह रुपया हाथ से निकल गया तो श्रीराधाकृष्ण साधना मन्दिर कैसे बन पायेगा? अगर मेरा बैंक का खाता आयकर विभाग की दृष्टि में आ गया, फिर तो मन्दिर निर्माण की योजना पूर्ण ही नहीं हो पायेगी! क्या किया जाय। यह तो बड़ी समस्या हो गयी है।

श्रीकृष्णचन्द्रजी इन सब बातों को सोच-सोचकर अत्यधिक चिन्तित हो उठे। वे अपनी समस्या लेकर श्रीबंकाजी के पास गये। उनकी सारी बातों को सुनकर कुछ देर श्रीबंकाजी मौन रहे। आयकर विभाग से बचने के तरीके पर गम्भीरतापूर्वक विचार करके उन्होंने कहा—कृष्ण! श्रीराधाकृष्ण साधना मन्दिर के लिये आयी धनराशि की सुरक्षा मैं कल-परसों तक करवा दूँगा। तुम चिन्ता मत करो। सब ठीक हो जायेगा।

श्रीकृष्णचन्द्रजी को अत्यधिक आश्चर्य हुआ कि ऐसा कौन सा उपाय बंकाजी के दिमाग में है जो उन्होंने झट से सुरक्षा की बात सोच ली। अब जो प्रक्रिया श्रीबंकाजी ने अपनायी उसको पूर्णत: खोलना उचित नहीं है। श्रीकृष्णचन्द्रजी की समस्या को सुनकर श्रीबंकाजी ने अपने व्यक्तिगत परिचय का लाभ उठाया। तुरन्त गीतावाटिका से चलकर और अपने आत्मीय जनों को सब बात बतलाकर गोरखपुर के एक बैंक में एक खाता खोला और एक बड़ा लॉकर लिया। दूसरे या तीसरे दिन ही वह सारी धनराशि श्रीकृष्णचन्द्रजी के बैंक से निकाल करके बैंक के लॉकर में बन्द कर दी गयी।

आयकर विभाग की नजर बैंक के खाते पर अधिक होती थी, बैंक लॉकर

के जाँच की बहुत कम सम्भावना थी। श्रीकृष्णचन्द्रजी का मन आशंका रहित हो गया। अब वह विपुल धनराशि श्रीबंकाजी के लॉकर में पूर्णतः सुरक्षित थी। लॉकर की चाबी श्रीबंकाजी अपने पास रखते और जब जितने धन की श्रीकृष्णचन्द्रजी को आवश्यकता होती उन्हें निकाल कर दे देते थे। मन्दिर निर्माण कार्य पूर्ण होने तक यह क्रम चलता रहा।

इस सारी प्रक्रिया को देखकर श्रीकृष्णजी बहुत खुश हुए और उन्होंने श्रीबंकाजी से कहा—बंकाजी! आपने अपनी बुद्धिमानी से मुझे बहुत बड़ी चिन्ता से मुक्त कर दिया। इस सहायता के लिए मैं सदैव आपका ऋणी रहूँगा। कौन कहता है कि सिर्फ धनवान लोग ही मन्दिर के निर्माण में सहयोग दे सकते हैं? आपने जो अपनी बुद्धि का सहयोग दिया है वह क्या कम महत्व रखता है? मन्दिर के लिए आपने लाखों का दान नहीं किया पर लाखों रुपयों को सुरक्षित तो रखा है न! मैं अत्यधिक चिन्ता में था। मन्दिर की धनराशि को आयकर वालों से बचाकर आपने मुझे निश्चिन्त कर दिया है।

श्रीराधाकृष्ण साधना मन्दिर का निर्माण पूरा हुआ। नव-निर्मित मन्दिर में सभी भगवद विग्रहों के प्रतिष्ठा की प्रक्रिया 21 जून 1985 को सम्पन्न हुई। भगवत्कृपा से सारा कार्य सविधि पूर्ण हो गया और यह मन्दिर गोरखपुर का दर्शनीय स्थल हो गया। सारा कार्य समाप्त हो जाने के बाद श्रीबंकाजी ने वह बैंक लॉकर और बैंक का खाता बन्द कर दिया।

जब यह सारा प्रसंग श्रीबंकाजी मुझे सुना रहे थे तब मैंने मुसकुराते हुए उनसे पूछा—दादाजी! आप तो इतने सीधे-सरल व्यक्ति हैं। यह व्यापारिक दाव-पेंच आपने कब सीखा?

मेरी बात सुनकर श्रीबंकाजी मुस्कुराने लगे और हँसते हुए कहा—लाली! माना कि मैंने कभी कारोबार नहीं किया है पर बनिया का बेटा तो हूँ न। कारोबारी दाव-पेंच मेरे खून में है।

उनके इस उत्तर को सुनकर हम दोनों उन्मुक्त हँसी हँसने लगे।

****

श्रीरामजानकी मन्दिर का जीर्णोद्धार

पूज्य बाबूजी के नित्य-लीला-लीन होने के बाद, अस्सी के दशक में गीतावाटिका में एक विशाल मन्दिर के निर्माण का कार्य चालू हो गया। नागर शैली में बनने वाला यह एक बहुत ही सुन्दर मन्दिर था जिसमें सभी सनातन हिन्दू देवी-देवताओं की मूर्तियों के स्थापित होने की तैयारियाँ होने लगी।

सन् 1984 का प्रसंग है। श्रीबंकाजी के छोटे भाई श्रीगोविन्द बंका और श्रीविनोद बंका पडरौना से आये और उन्होंने श्रीबंकाजी को बताया कि उनका पैतृक श्रीरामजानकी मन्दिर भी आजकल अत्यन्त क्षतिग्रस्त हो गया है। पुरानी छत झुक गयी है और जगह-जगह से पानी टपकता रहता है। मन्दिर का जीर्णोद्धार करवाना बहुत आवश्यक हो गया है। अपने भाईयों के मुख से पैतृक मन्दिर की दीन दशा का विवरण सुनकर, श्रीबंकाजी को बहुत दुःख हुआ और उन्होंने अपने भाईयों से कहा—तुम लोगों का विचार उचित है। यह अपने पड़दादाजी श्रीरामदयालजी बंका का बनवाया हुआ सिद्ध मन्दिर है। हमलोगों को जीर्णोद्धार तो करवाना ही चाहिये पर मैं तो फकीर आदमी हूँ। मेरे पास पैसे हैं नहीं। परन्तु निराश मत होओ, न ही चिन्ता करो। मैं झोली फैलाकर लोगों से मन्दिर के लिये पैसे माँगूँगा। श्रीहनुमानजी महाराज के अनुग्रह से जीर्णोद्धार का कार्य अवश्य होगा।

श्रीबंकाजी के दोनों छोटे भाई इस आश्वासन को पाकर बहुत प्रसन्न हुए। अब श्रीबंकाजी जिस भी व्यक्ति से मिलते उससे मन्दिर के जीर्णोद्धार के लिये रुपये माँगते। बीस-पचास-सौ रुपये, जो व्यक्ति जो देता, वे बड़ी प्रसन्नता से उसे स्वीकार करते। इस तरह से उनके पास करीब दो हजार रुपये जमा हो गये।

एक दिन श्रीबंकाजी से मिलने श्रीसीताबाई पोद्दार के पुत्र श्रीमुरारी भैया कलकत्ता से आये। उनके साथ में उनकी धर्मपत्नी श्रीउमा पोद्दार भी थी। श्रीबंकाजी का श्रीसीताबाई के परिवार से अति निकट का सम्पर्क रहा है। सीताबाई उन्हें भाई मानकर राखी बाँधती थी। श्रीबंकाजी ने श्रीमुरारी भैया

के सामने भी अपनी झोली फैलाई और मन्दिर निर्माण के लिये रुपयो की याचना की।

श्रीमुरारी भैया ने पूछा—क्या आप आजकल इसी तरह हर व्यक्ति से, मन्दिर निर्माण के लिए रुपये माँग रहे हैं?

श्रीबंकाजी ने कहा—हाँ, जो भी मेरे सम्पर्क के लोग हैं, मैं उन सबसे इस नेक काम में सहयोग देने के लिये कह रहा हूँ।

श्रीमुरारी भैया ने पूछा —अबतक आपके पास कितने रुपये जमा हो गये हैं?

श्रीबंकाजी ने मन्द मुस्कुराते हुए उत्तर दिया—प्रभुकृपा से करीब दो हजार रुपये जमा हो गये हैं। आगे भी प्रयास जारी है।

श्रीमुरारी भैया—कई महीनों के प्रयास के बाद आपके पास मात्र दो हजार रुपये जमा हुए हैं और आपको तो बहुत रुपयों की आवश्यकता होगी। जबतक आपके पास पर्याप्त धनराशि जमा होगी सामान की कीमतें और मिस्त्री का खर्च और अधिक बढ़ जायेगा। इस मन्द गति से आप भला कबतक रुपयों की व्यवस्था कर पायेंगे? ऐसा करिये मैं आपको एक लाख रुपये देता हूँ। आप उससे मन्दिर का जीर्णोद्धार करवा लीजिये।

श्रीमुरारी भैया की वाणी को सुनकर श्रीबंकाजी के तो आनन्द का ठिकाना न रहा। उनके नेत्रों से अश्रु बहने लगे। अस्सी के दशक में एक लाख रुपये बहुत होते थे। उन्होंने हृदय से श्रीमुरारी भैया को आशीर्वाद दिया और इस नेक काम में अपना सहयोग देने के लिये शत-शत बार साधुवाद दिया।

एक लाख रुपय की धनराशि शीघ्र ही श्रीबंकाजी के पास आ गई और पडरौना में श्रीरामजानकी मन्दिर का जीर्णोद्धार आरम्भ हो गया। मन्दिर के अन्दर तीन अलग-अलग कक्ष बनाये गये। बीच वाले कक्ष में श्रीसीतारामजी को विराजमान किया गया, एक ओर श्रीहनुमानजी महाराज को और तीसरे कक्ष में शिव परिवार की स्थापना हुई। सामने बहुत बड़ा हॉल बनाया गया जहाँ भक्त समुदाय बैठकर भजन-कीर्तन कर सके।

प्रभु के विधान बड़े न्यारे होते हैं। संयोग की बात है कि इन्हीं दिनों गीतावाटिका में श्रीराधाकृष्ण साधना मन्दिर का, वर्षों से चल रहा निर्माण कार्य भी पूर्ण हो गया और मूर्तियों की प्राण प्रतिष्ठा करवाने के लिए दक्षिण से सुयोग्य वेदज्ञ ब्राह्मणों को बुलवाया गया। श्रीबंकाजी को इन दक्षिण से आये ब्राह्मणों की सुख-सुविधा का ख्याल रखने की जिम्मेदारी सौंपी गई। श्रीबंकाजी प्राण प्रतिष्ठा कार्य की सम्भाल भी कर रहे थे अतः दक्षिण के पण्डितों से इनकी भली प्रकार से जान पहचान हो गयी। श्रीबंकाजी इन वेदज्ञ ब्राह्मणों के कर्मकाण्ड के ज्ञान पर विमुग्ध थे। इन पण्डितों के कर्मकाण्ड के ज्ञान और पूजा की विधि को देखकर उन्हें लगा कि ऐसे जानकार ब्राह्मण उत्तर भारत में तो नहीं मिल सकेंगे।

श्रीबंकाजी ने ब्राह्मणों से बात की और उन्हें अपने पैतृक श्रीरामजानकी मन्दिर के इतिहास के बारे में बताया और यह भी बताया कि श्रीहनुमानजी महाराज की आज्ञा से ही उनके परदादाजी ने मन्दिर निर्माण करवाया था। अब उसके जीर्णोद्धार का कार्य पूर्ण हो चुका है। सारा विवरण सुनकर सभी पण्डितों को बड़ी प्रसन्नता हुई। श्रीबंकाजी ने हाथ जोड़कर प्रार्थना भरे शब्दों में पुनः सभी ब्राह्मणों से कहा—आप सब परम ज्ञानी हैं, पण्डित हैं, शास्त्रों के ज्ञाता हैं। मैं गरीब आदमी आप से प्रार्थना करता हूँ कि यहाँ गीतावाटिका के प्राण प्रतिष्ठा समारोह के बाद, आपलोग अगले दिन मेरे साथ पडरौना चले और वहाँ श्रीरामजानकी मन्दिर में भी सभी विग्रहों की पुनः स्थापना करवा दें। यहाँ तो बहुत बड़ा आयोजन है, वहाँ न तो इतना बड़ा आयोजन होगा और न ही मैं इतनी बड़ी दक्षिणा दे सकूँगा पर वह श्रीहनुमानजी महाराज का सिद्ध मन्दिर है। मेरी आप सबसे विनम्र प्रार्थना है कि वहाँ की भी श्रीविग्रह प्रतिष्ठा आपके पावन कर कमलों से ही विधिवत पूर्ण हो।

श्रीबंकाजी की स्पष्टवादिता पर, उनकी विनम्रता पर और उनकी सेवा-भावना पर सारे ब्राह्मण रीझ गये। उन सबने एक स्वर से पडरौना में प्रतिष्ठा कार्य सम्पन्न करवाने की सहमति प्रदान कर दी। श्रीराधाकृष्ण साधना मन्दिर

में सभी भगवद् विग्रहों के प्रतिष्ठा की प्रक्रिया 21 जून 1985 को सम्पन्न हुई। गीतावाटिका के भव्य मन्दिर प्राण-प्रतिष्ठा-समारोह के उपरान्त, अगले दिन सारे दक्षिणात्य ब्राह्मणों के साथ श्रीबंकाजी कार द्वारा पडरौना पहुँचे। गीतावाटिका के अन्य भाई-बहन भी उनके साथ थे।

पडरौना में पूजा की सारी व्यवस्था पहले से ही कर ली गई थी। विधिवत मंत्रोच्चारण पूर्वक सभी प्रतिमाओं को स्थापित किया गया। नवनिर्मित श्रीरामजानकी मन्दिर की अत्यधिक शोभा हो रही थी। नवीन वस्त्राभूषणों से सुसज्जित श्रीसीतारामजी और श्रीहनुमानजी की सुन्दरता देखते ही बनती थी। शिव परिवार का विविध उपचारों से रुद्राभिषेक हुआ और खूब भोग धराकर आरती की गई। **सोभा बहुत थोरि मति मोरी ॥** पडरौना के लोगों ने ऐसे वेदज्ञ ब्राह्मण और ऐसी शास्त्रीय विधि-विधान से की गयी पूजा का कभी दर्शन नहीं किया था। सब लोग जय-जयकार करने लगे। सभी ब्राह्मणों को सप्रेम भोजन करवाया गया और अत्यन्त सुन्दर रीति से सारा कार्य पूर्ण हुआ। सारे विप्र प्रसाद और दक्षिणा पाकर परम संतुष्ट हुए।

श्रीबंकाजी अक्सर कहा करते थे—पडरौना के श्रीहनुमानजी महाराज परम सिद्ध हैं। असंख्य लोगों की मनोकामनायें वहाँ पूर्ण हुई है। मैं गरीब आदमी भला कहाँ से रुपयों की व्यवस्था करता और कहाँ से श्रेष्ठ ब्राह्मण लाता ? उन्होंने ही प्रेरणा करके ही श्रीमुरारी भैया को अर्थ व्यवस्था के लिए भेजा और उनकी कृपा से ही दक्षिणात्य वेदज्ञ ब्राह्मणों के द्वारा प्राण प्रतिष्ठा सम्पन्न हुई। सब उनकी कृपा से ही सम्भव हो सका।

****

श्रीराधाबाबा का लीला प्रवेश

श्रीराधाबाबा ने जब अपनी निकुंज उपासना प्रारम्भ की थी तब वे सदा के लिये श्रीवृन्दावन धाम चले जाना चाहते थे। बहुत बार उन्होंने गीतावाटिका से भाग जाने का प्रयास भी किया पर हर बार श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार उन्हें रोक लिया करते थे। एक रात्रि को स्वयं श्रीकृष्ण ने राधाबाबा से कहा था

कि—श्रीपोद्दारजी का श्रीविग्रह सचल वृन्दावन है और तुमको वृन्दावन जाने की आवश्यकता नहीं है।

उसी दिन से बाबा ने प्रण किया था कि वे सदा बाबूजी के साथ रहेंगे। दिन में एक बार बाबूजी का दर्शन कर लिया करेंगे और उनके जाने के बाद जहाँ उनकी चिता चलेगी, अपना सारा जीवन उसी स्थान पर बितायेंगे। 1971 में बाबूजी के जाने के बाद गीतावाटिका में ही उनका शव-दाह हुआ और बाबा गीतावाटिका में समाधि के सामने टीन शेड में वास करने लगे। बाबूजी के जाने के बाद भी वे प्रतिदिन माँ का दर्शन किया करते थे। 1992 में माँ के जाने के बाद जैसे ही माँ के सारे दैहिक कृत्य पूरे हुए, बाबा ने भी अपनी जीवन लीला का संवरण कर लिया। बाबा ने जो नियम लिया था उसको पूरा निभाया। बाबूजी की अर्धांगिनी अर्थात माँ, जब तक धरा पर रहीं, बाबा ने नित्य उनका संग-दर्शन किया और उनके जाने के तुरन्त बाद ही स्वयं को सबकी नजरों से छुपा लिया। **सुनि न जाइ पुर आरत नादू ॥**

पूज्य बाबा 'चले' गये। चले नहीं गये, अपितु उन्होंने स्वयं को छिपा लिया। उनके प्रत्यक्ष दर्शन का अभाव हो गया। उनके अन्तर्हित हो जाने से विचित्र करुणाप्लावित परिस्थिति का श्रीबंकाजी के भीतर-बाहर उद्भव हो गया। श्रीबंकाजी का मन बार-बार उनसे यही कहता था कि कमरे में चुप-चाप पड़े रहो। अब कहाँ जाना और कहाँ आना। उनकी न किसी से मिलने की इच्छा थी और न कहीं जाने की चाह। बाबा का दर्शन, बाबा की सन्निधि, बाबा से संलाप अब भला कहाँ प्राप्य था ? **महा बिपति किमि जाइ बखानी ॥ करहि बिलाप अनेक प्रकारा ॥**

सजलता से आर्द्र श्रीबंकाजी की एक ऐसी विचलित मनस्थिति थी, जिसमें कमरे का एकान्त उन्हें काटने दौड़ता था, पर बाहर का कोलाहल चुभता रहता था। विवशता में घुटती हुई एक ऐसी विह्वलता थी, जिसमें उनकी आँखों के आँसू न बाहर आ पाते थे और न ही भीतर छिप पाते थे। क्या सुबह, क्या शाम, बाबा के अविरल-निर्मल प्यार की याद न उन्हें हँसने देती थी और

न रोने देती थी। इन दिनों उनकी भावनाओं के प्रवाह में विरोधाभास कम नहीं था। कभी लगता मानो वे बाबा से सतत संयुक्त हैं और कभी लगता कि अब वे बाबा से नित्य वियुक्त हैं।

श्रीबंकाजी कहा करते थे—कोई माने या न माने, पर यह सत्य है कि मैं व्रज-भाव की बातों को सुनने के लिये पूर्णतः अनधिकारी था। सचमुच में अपात्र था, इसके बाद भी बाबा ने श्रीप्रिया-प्रियतम के परम प्रेम की पावन चर्चा कभी-कभी छेड़ी ही है। उन पावन क्षणों की स्मृति, क्या उठते क्या बैठते, भावनाओं को मथती रहती थीं। वे व्यथित भावनाएँ रह-रह करके बाबा का वन्दन करती थीं, बाबा का अर्चन करती थीं, बाबा की जय-जय कहती थीं। वह एक ऐसा संवेदनाशील क्षण था जिसमें उर्मिल मन की भावुकता, भावुकता में व्याप्त कोमलता उनका स्तवन करने के लिये अकुला रही थीं।

ऐसी आकुलता के क्षणों में पूज्य श्रीमहाराजजी का भाव-भरा पत्र श्रीबंकाजी को मिला। इस पत्र ने श्रीबंकाजी के अन्तर को और अधिक आन्दोलित कर दिया। वृन्दावन उत्तर भेजने के लिये अब उनके पास कुछ भी नहीं था। उनके सामने प्रश्न था कि पूज्य श्रीमहाराजजी को अब क्या लिखकर भेजें? उन संवेदनशील क्षणों में उनके विगलित अन्तर के भाव, लेखनी के सहारे जिस रूप में अवतरित हो उठे, उसी साक्षर सलिलांजलि को यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

तेरे आँचल की जय हो

तेरे आँचल की जय हो,
जो स्नेह के कोमल तारों से निर्मित है,
जो स्नेह के भव्य भावों से भावित है,
जो स्नेह की ललित लीलाओं से लसित है।

तेरे आँचल की बार-बार जय हो,
जिसकी किनारी का किनारा नहीं,
जिसकी सुन्दरता की सीमा नहीं,
जिसकी मधुरता का पार नहीं।

तेरे आँचल की सतत जय-जयकार हो,
जो प्रेम का निधान है,
जो नग्न का परिधान है,
जो स्वयं में महान है।

तेरे आँचल की करुणा अपार है,
जो ग्लानि से जलते हुए जन की व्यथा हर लेती है,
जो कलुष से कलपते हुए जन की कालिमा पोंछ लेती है,
जो हृदय से समर्पित हुए जन को सुषमित बना देती है।

तेरे आँचल की महिमा शब्दातीत है,
जिसका दर्शन श्रान्त पथिक के लिए एक आन्तरिक आश्वासन है,
जिसका आश्रय क्लान्त पथिक के लिए एक लोकोत्तर अवलम्बन है,
जिसका वन्दन भ्रान्त पथिक के लिए एक आध्यात्मिक नवजीवन है।

तेरे आँचल की निरपेक्षता अकल्पनीय है,
जो आश्रितों से कृतज्ञता की अभिलाषा नहीं करती,
जो गुणज्ञों से आदर की आशा नहीं करती,
जो स्वजनों से सराहना की अपेक्षा नहीं करती।

तेरे आँचल की सदाशयता सदा प्रणम्य है,
जिसकी छाया में आलोचक-प्रशंसक समान रूप से स्थान पाते हैं,
जिसकी छाया में परिचित-अपरिचित समान रूप से सम्मानित होते हैं,
जिसकी छाया में साधु-असाधु समान रूप से समादृत होते हैं।

तेरे आँचल के तन्त-तन्तु की बलिहारी है,
जिसके तार-तार में प्रेम के प्रदर्शन की भावना नहीं,
जिसके तार-तार में प्रीति के प्रतिदान की कामना नहीं,
जिसके तार-तार में प्यार के प्रचार की कल्पना नहीं।

तेरे आँचल की निकुंज भावना नित्य वन्दनीय है,
जिसका अवतार प्रियतम के प्यार की जयकार है,
जिसका अभिसार प्रियतम के हृदय की मनुहार है,
जिसका विस्तार प्रियतम के विहार की झंकार है।

तेरे आँचल को—जी करता है—चूम लूँ ,
जिसकी अरुणिमा स्नेह में मूक बलिदान का पाठ है,
जिसकी फहरान स्नेह में मूक उपासना का गीत है,
जिसकी गाथा स्नेह में मूक सेवा की सीख है।

तेरे आँचल की जय-जयकार क्यों न मनाऊँ,
जो अकल्पनीय महान है, पर जिसे अपनी महानता का अभिमान नहीं,
जो अतुलनीय सुन्दर है, पर जिसे अपनी सुन्दरता का अभिज्ञान नहीं,
जो अद्वितीय मधुर है, पर जिसे अपनी मधुरता का अनुमान नहीं।

वही आँचल मेरे लिए एक मात्र उपास्य है,
वही आँचल मेरे लिए एक मात्र वरेण्य है,
वही आँचल मेरे लिए एक मात्र आश्रय है।
वही आश्रय दे,
वही छाया दे,
वही स्नेह दे।

विनीत
राधेश्याम बंका

****

नेह निकुंज में मूर्ति स्थापना

श्रीराधाबाबा के नित्य लीलालीन होने के बाद, सन् 1993 में टीन शेड के नीचे, जिस स्थान पर उनको समाधि दी गई थी, वहाँ 'नेह निकुंज' का निर्माण होने की योजना बनने लगी। बाबा की भव्य प्रतिमा जयपुर के कारीगर

के द्वारा बनवाई गई और उनके पीछे अष्ट सखियों सहित श्रीराधारानी की प्रतिमा स्थापित की जानी थी। श्रीबंकाजी की जानकारी में यह सब योजना बन रही थी। 'नेह निकुंज' की रूपरेखा-निर्माण में भी श्रीबंकाजी का सराहनीय योगदान रहा।

बाबा के चले जाने से अति व्यथित हृदय श्रीबंकाजी ने वृन्दावन के सन्त पूज्य श्रीबालकृष्णदासजी महाराज से एकान्त में कहा—महाराजजी! मेरी एक प्रार्थना है। उसे आप ही पूर्ण कर सकते हैं। बाबा ने मुझे जो सखी स्वरूप प्रदान किया है, मेरी यह चाह है कि वह विग्रह श्रीराधारानी के एकदम समीप विराजित किया जाए। माना कि हर मन्दिर में श्रीराधारानी के एक ओर श्रीललिताजी और दूसरी ओर श्रीविशाखाजी ही विराजित होती हैं पर मेरी यह आन्तरिक इच्छा है कि श्रीकिशोरीजी के एक ओर श्रीचम्पकलताजी को स्थान दिया जाए। आप मेरी इस इच्छा को पूर्ण कीजियेगा।

श्रीबंकाजी की बात को श्रीमहाराजजी बहुत ध्यान से सुन रहे थे। उन्होंने श्रीबंकाजी को धैर्य बँधाते हुए कहा—नेह निकुंज के निर्माण कार्य में बाबा स्वयं सब कुछ देख रहे हैं और सम्भाल रहे हैं। सारा कार्य वे ही करवा रहे हैं। आप चिन्ता न करें। देव जगत पूर्ण सक्रिया है। आप बस बाबा से ही प्रार्थना करते रहें।

श्रीबंकाजी भगवती माँ त्रिपुरसुन्दरीजी से कातर प्रार्थना कर रहे थे कि किसी भी प्रकार से श्रीराधारानी के समीप उन्हें ही स्थान प्राप्त हो। जब सारी सखियों के विग्रह जयपुर से बनकर आये और उनको खोला गया तो पाया गया कि किसी सखी का मुख बाई ओर है और किसी सखी का मुख दाहिने ओर है। सब लोग सोचने लगे कि सखियों को ऐसे प्रतिष्ठित करना चाहिये जिससे हर सखी श्रीराधा की ओर ही देखें। इस प्रयास में जब सखियों के विग्रह को सजाया गया तो श्रीचम्पकलताजी को श्रीराधारानी के दाहिनी ओर स्थान प्राप्त हो गया। श्रीबंकाजी की प्रार्थना को भगवती ने स्वीकार कर लिया था। श्रीचम्पकलताजी के श्रीविग्रह को बाबा की मूर्ति के ठीक पीछे श्रीराधारानी के दाहिनी ओर देखकर श्रीबंकाजी को बेहद प्रसन्नता हुई।

****

साधनामय जीवन

पूज्य बाबा के नित्य-लीला-लीन होने के बाद श्रीबंकाजी ने अपने जीवन को और अधिक कस लिया और नाम जप की संख्या बढ़ा दी। श्रीबंकाजी पहले महामंत्र के द्वारा सवा लाख नाम जप प्रतिदिन किया करते थे। 24-11-93, देवोत्थानी एकादशी से उन्होंने पौने दो लाख नाम जप आरम्भ किया। 4-2-94, शक्रवार माघ कृष्ण नवमी से, एक आसन पर बैठना आरम्भ किया और 4-2-94 से दो लाख नाम जप आरम्भ किया। इस नियम का निर्वाह उन्होंने आजीवन किया।

बाबा की कमी एक ऐसा रिक्त स्थान छोड़ गई थी जिसकी भरपाई किसी भी उपाय से नहीं हो सकती थी पर जीवन तो जीना ही था। पहले तो श्रीबंकाजी गीतावाटिका छोड़कर हमेशा के लिये श्रीवृन्दावन जाने की बात सोचने लगे थे पर उसी समय परम पूज्य पण्डित श्रीगयाप्रसादजी का पत्र गोवर्धन से आया जिसमें उन्होंने स्पष्ट शब्दों में लिखा था कि अब श्रीबंकाजी को आजीवन गीतावाटिका में ही रहना है। उन्हें बाबूजी-बाबा की कृपा से सारी उपलब्धि यहीं प्राप्त हो जायेगी। उन्हें कहीं भी अन्यत्र नहीं जाना है और प्रयास ऐसा करना है कि जीवन की एक रात्रि भी वाटिका के बाहर व्यतीत न हो। बाबूजी-बाबा की लीला भूमि में ही उनका पूर्ण समर्पण हो।

पूज्य पण्डित श्रीगयाप्रसादजी के ऐसे आदेशात्मक पत्र की श्रीबंकाजी को तनिक भी अपेक्षा नहीं थी। परन्तु गुरुजनों के आदेश का पालन ही मंगलकारी होता है, यही सोचकर श्रीबंकाजी ने निश्चय कर लिया कि अब जहाँ तक हो सके एक रात्रि भी गीतावाटिका से बाहर व्यतीत नहीं करनी है। अब तो बाबूजी-बाबा के समाधि-स्थल गीतावाटिका में ही रहना है। यह दृढ़ निश्चय श्रीबंकाजी ने आजीवन निभाया। आगामी तीस सालों में, 1992-2022 तक, जब-जब वे अस्पताल में भर्ती हुए उन रात्रियों को छोड़कर वे सदा गीतावाटिका में ही रहे।

गीतावाटिका में बाबा के जाने के बाद उनके अन्य परिकरों को भी

बाबा की कमी बहुत खला करती थी। श्रीनारायण दादा, श्रीगणपत बाबा, श्रीगुरुचरणजी, श्रीजयरामजी आदि परिकर श्रीबंकाजी के कक्ष में आकर घण्टों बाबा की बात किया करते थे। श्रीबंकाजी भी सबकी सम्भाल रखने लगे और आवश्यकता होने पर औषधि-रुपए आदि से सबकी सहायता करते रहते थे।

बाबा के जाने के बाद बाबा के प्रति अपनी कृतज्ञता और अपने हृदय के स्नेह को व्यक्त करने के लिए बाबा के सभी परिकर बाबा का जन्मोत्सव बहुत उत्साह पूर्वक मनाने लगे। इस श्रृंखला का श्रीगणेश करते हुए श्रीबंकाजी ने बक्सर वाले मामाजी को भक्तमाल की कथा करने के लिये बुलवाया। साथ ही वृन्दावन की श्रीश्रीरामजी शर्मा की रास मण्डली को भी एक सप्ताह के लिए बुलवा लिया करते थे। दिन में श्रीभागवतजी की या श्रीभक्तमाल की कथा होती थी और रात्रि में रास का आयोजन होता था। जन्मदिन पर भव्य भण्डारा होता था। एक सप्ताह तक उत्सव की धूम मची रहती थी।

बाबा के प्रत्येक जन्मोत्सव पर श्रीबंकाजी एक नवीन पुस्तक प्रकाशित करते। इस श्रृंखला में **वाटिका वेणु, वाटिका वातायन, वाटिका वीथी** और **वाटिका वैभव** समाज को मिली। इन पुस्तकों में बाबा की छोटी-से-छोटी बातों की मनोहारी झलक थी जो सन्त-समाज और भक्तों में अति लोकप्रिय हुई।

****

पूज्य मामाजी को पत्र

गोरखपुर निवासी श्रीमनमोहन जाजोदिया और उनकी धर्मपत्नी श्रीअनीता जाजोदिया श्रीबंकाजी के परम कृपा पात्र रहे हैं। नब्बे के दशक में एक बार श्रीमनमोहनजी ने श्रीबंकाजी से प्रार्थना भरे शब्दों में कहा—बंका भईया! आप मुझे दीक्षा दे दीजिये।

श्रीबंकाजी ने अस्वीकार करते हुए श्रीमनमोहनजी से कहा—बाबूजी-बाबा किसी को दीक्षा नहीं देते थे। अगर दीक्षा लेनी ही है तो किसी सन्त से

लेनी चाहिये। मैंने आज तक किसी को दीक्षा नहीं दी है। अगर दीक्षा लेने की अत्यधिक चाह आपके मन में है तो आप परम पूज्य श्रीनारायणदास भक्तमालीजी, जिन्हें लोग प्रेम से बक्सर वाले मामाजी के नाम से पुकारते हैं, उनसे दीक्षा ले लीजिये। वे बड़े अच्छे सन्त हैं।

पूज्य मामाजी भी अपने भक्तों को दीक्षा नहीं दिया करते थे पर श्रीबंकाजी से अत्यधिक प्रेम होने के कारण उन्होंने श्रीमनमोहनजी को दीक्षित-शिक्षित किया। दीक्षा के बाद श्रीमनमोहनजी पूज्य मामाजी के पास अक्सर आते-जाते रहते थे। श्रीबंकाजी के आमंत्रित करने पर श्रीमामाजी भक्तमाल की कथा कहने के लिये, पूज्य श्रीराधाबाबा के जन्मोत्सव पर कई बार गीतावाटिका भी पधारे और अपनी रसमय वाणी से, प्रेमभरी कथा सुनाकर जन-जन को भाव-विभोर कर दिया।

एक बार की बात है, कई साल से श्रीभक्तमालीजी का गीतावाटिका आगमन नहीं हुआ था। श्रीमनमोहनजी श्रीबंकाजी के पास आये और उन्हे बताया कि वे श्रीमामाजी से मिलने के लिये बक्सर जा रहे हैं। इतना सुनते ही श्रीबंकाजी प्रसन्न हो गये और उन्होंने झट से कहा—बहुत अच्छा! बड़े दिनों से उनका यहाँ आगमन नहीं हुआ है। मेरा एक पत्र उनको दे देना।

श्रीबंकाजी ने तुरन्त कागज-कलम लेकर पत्र में श्रीमामाजी को एक पंक्ति लिखी—**दरस बिन दूखन लागे नैन।**

लिफाफे को बन्द करके यह पत्र श्रीमनमोहनजी को दे दिया। श्रीमनमोहनजी पूज्य मामाजी के पास पहुँचे और प्रणाम करके श्रीबंकाजी का पत्र दिखाया। पत्र पढ़ते ही मामाजी के नेत्र सजल हो गये। उन्होंने उसी पत्र के नीचे एक पंक्ति में उत्तर लिखा—**पंख होते तो उड़ आती रे......!**

मात्र दो पंक्तियों में दो प्रेमीजनों की सारी वार्तालाप पूर्ण हो गई। ऐसा मधुर और घनिष्ट प्रेम था श्रीमामाजी और श्रीबंकाजी में।

****

विनोद के क्षण

एक बार श्रीबंकाजी की कमर में दर्द था अत: वे एकदम सीधे चलने में असमर्थ थे तथा कुछ टेढ़े-टेढ़े चल रहे थे। गीतावाटिका में अखण्ड हरिनाम मण्डप के समक्ष श्रीमल्ल साहब से उनकी भेंट हो गयी। श्रीमल्ल साहब पूज्य बाबा के परम आत्मीय थे। उन्होंने श्रीबंकाजी को इस भाँति कष्ट पाकर चलते देखा तो प्रश्न किया—बंकाजी! आज क्या बात है, आप टेढ़े-टेढ़े कैसे चल रहे हैं?

श्रीबंकाजी ने तनिक मुस्कुराते हुए उत्तर दिया—क्या करूँ, उपासना ही 'टेढ़े' की है।

अब ऐसा रसीला उत्तर श्रीबंकाजी देंगे इस बात की तो श्रीमल्ल साहब ने कल्पना भी नहीं की थी। यहाँ 'टेढ़े' ये अर्थ है श्रीकृष्ण। इस बात को श्रीमल्ल साहब समझते थे। उन्होंने विहँसते हुए कहा—वाह! वाह बंकाजी! आपकी हाजिरजवाबी लाजवाब है।

****

एक बार श्रीबंकाजी कमर और पीठ के दर्द से परेशान थे। वे दर्द के मारे रुक-रुक करके झुके हुए चल रहे थे। पूज्य राधाबाबा के एक परम भक्त थे, श्रीराम इकबाल सिंह। वे रेलवे में बागवानी के अधिकारी थे। पूज्य राधाबाबा के जाने के बाद भी प्रति रात्रि गीतावाटिका में बाबा को श्रीरामचरितमानस सुनाया करते थे। वे गीतावाटिका आये। जब श्रीबंकाजी श्रीराधा-कृष्ण साधना मन्दिर में परिक्रमा लगा रहे थे तब श्रीराम इकबाल सिंह ने प्रेमपूर्वक कहा—बंकाजी! क्या मैं आपको अपने कंधे पर उठाकर ले चलूँ?

यह सुनकर श्रीबंकाजी ने विनोद भरे स्वर में कहा—यह सेवा अन्तिम यात्रा के लिये रहने दीजिये।

श्रीबंकाजी की विनोदयुक्त वाणी सुनकर श्रीराधा-कृष्ण साधना मन्दिर में उपस्थित सभी लोग हँसने लगे।

****

एक बार मैं श्रीबंकाजी के पास बैठी थी। साथ में मेरे दोनों पुत्र, देवर्षि और ऋषि भी थे जो उस समय दस-बारह वर्ष के छोटे बालक थे। परिवार के और भी कुछ लोग आस-पास बैठे हुए थे। साधारण चर्चा चल रही थी। श्रीबंकाजी अपनी लकड़ी की अलमारी में बच्चों के खिलौने, खट्टी-मीठी चूरन की गोली रखा करते थे और बड़े प्रेम से उनके पास आने वाले बच्चों को दिया करते थे। उन्होंने मुझसे कहा—श्वेता! लाली उठ! वहाँ खिलौने और चूरन की गोली रखी हुई है। सब बच्चों को दे। देवर्षि और ऋषि को दे।

मैंने उठकर इंगित स्थान से खिलौने और चूरन की गोली का डब्बा उठा लिया और सभी बच्चों को देने लगी। फिर श्रीबंकाजी ने वहाँ बैठे बड़ों की ओर संकेत करते हुए कहा—इन लोगों को भी चूरन दे।

मैंने उपस्थित सभी जनों को चूरन की गोलियाँ दे दी। सब लोग स्वाद ले-लेकर चूरन की गोलियाँ खाने लगे। श्रीबंकाजी सब ध्यानपूर्वक देख रहे थे। उन्होंने फिर कहा—श्वेता! अब तू भी चूरन ले ले।

मैंने विनोदयुक्त वाणी में कहा—दादाजी! आप इन चूरन की खट्टी-मीठी गोलियों से मुझे टरकाना चाहते हैं, परन्तु मेरी माँग तो कुछ और ही है। इन चूरन की गोलियों से मेरी माँग पूरी नहीं होगी। मुझे तो वह चटपटा चूरन चाहिये जिसका स्वाद आप नित चखते हैं। (यहाँ 'चटपटा चूरन' का अर्थ हुआ श्रीराधा-कृष्ण की मधुर लीला जिसका स्वाद श्रीबंकाजी नित चखते हैं)

मेरी बात सुनते ही दादाजी उन्मुक्त रूप से हँसने लगे। हँसते-हँसते वे ऐसी प्रेमभरी दृष्टि से मुझे देख रहे थे कि मेरी लेखनी चाह कर भी उसका वर्णन नहीं कर पायेगी।

मेरी बात की गहराई को समझते हुए, हँसते हुए श्रीबंकाजी ने कहा—री श्वेता! लाली! बड़ी चंट हो गई है तू तो!

उनके मुख से यह वाक्य सुनकर वहाँ उपस्थित सभी लोग हँस पड़े।

****

गोरखपुर निवासी श्रीमनमोहन जाजोदिया एवं उनकी धर्मपत्नी ने नब्बे के दशक में गीतावाटिका आना और श्रीबंकाजी से मिलना प्रारम्भ किया। एक बार अनीता भाभी ने श्रीबंकाजी के लिए भोजन बनाकर भेजा। यह सर्वप्रथम अवसर था जब उन्होंने श्रीबंकाजी के लिए अत्यन्त स्नेहपूर्वक ढोकला और इडली-सांभर बनाकर भेजा था। श्रीबंकाजी ने भोजन करने के बाद प्रशंसा में जो पत्र श्रीमनमोहन भैया को लिखा वह यहाँ दिया जा रहा है। किसी की तारीफ करना तो कोई श्रीबंकाजी से सीखे।

'श्रीगुरुचरणानुरागी श्रीमनमोहन जाजोदियाजी को मुझ गरीब का सादर वन्दन। अब आप बतायें कि ढ़ोलका की प्रशंसा करूँ या इडली-साम्बर की? **को बड़ छोट कहत अपराधू॥** दोनों अतीव सुन्दर, अति सुन्दर, दोनों ही अति सराहना के पात्र। श्रीलक्ष्मीजी माताजी (अर्थात् आपकी गृहणी) को सादर प्रणाम। उनके द्वारा बनाई गयी खाद्य वस्तु बहुत ही स्वादिष्ट।'

****

माँ का देहान्त

श्रीबंकाजी की जन्मदात्री माँ का देहान्त तो उनके बाल्यकाल में ही हो गया था। उनकी दूसरी माता, श्रीकिसनी मैया का शरीर भी अब एकदम दुर्बल हो चला था। पहले बताया जा चुका है कि ढलती आयु में श्रीबंकाजी के पिताजी की अन्तिम अभिलाषा यही थी कि उनकी मृत्यु के बाद उनके द्वितीय पुत्र श्रीराधेश्याम ही उनका अन्तिम संस्कार करे। ठीक इसी प्रकार की सोच उनकी माताजी की भी थी। उनके हृदय के भाव भी यही थे कि—माना कि मेरे अपने दो पुत्र, गोविन्द और विनोद हैं पर अगर मेरा अन्तिम संस्कार राधेश्याम के द्वारा हो जाये तो मेरी मुक्ति हो जायेगी। वह बरसों से भजन में लगा है, पूर्णत: विरक्त है, बाबूजी-बाबा जैसे सिद्ध सन्तों का आशीर्वाद उसे प्राप्त है, यदि वह मेरा अन्तिम संस्कार करें तो अति उत्तम होगा। मेरा चैरासी का चक्कर सदा के लिये मिट जायेगा।

इन्हीं भावनाओं से भावित होकर श्रीबंकाजी की माँ ने अपने पुत्र श्रीविनोद के द्वारा श्रीबंकाजी को पत्र लिखवाया और अपनी मृत्यु के बाद

अन्तिम संस्कार करने का आग्रह किया। श्रीबंकाजी ने अपनी माँ का पत्र पढ़ा तो उनकी आँखें भर आयीं। उन्होंने वह पत्र भगवती महात्रिपुरसुन्दरी के सामने रख दिया और उनसे कातर प्रार्थना करने लगे—माँ! तुम सर्वसमर्था हो! बालकों पर कृपा करने वाली हो! जीवन में पहली बार मेरी माँ ने मुझसे कुछ माँगा है। तुम ऐसा विधान करना कि मैं अपनी माँ की आज्ञा का पालन कर सकूँ। मेरा गीतावाटिका में नित्य निवास का नियम है। ऐसी स्थिति में तुम्हारी कृपा से ही सब सम्भव हो सकेगा। अपनी कृपा मुझपर बनाये रखना।

बहुत देर तक, अतिशय भावुक हृदय श्रीबंकाजी भगवती के सामने प्रार्थना करते रहे। फिर उन्होंने अपनी माँ को पत्र लिखा—माँ! तू विश्वास रखना, जिन सन्तों की कृपा मुझ पर है वे बाबूजी-बाबा परम समर्थ हैं। उनका हर विधान मंगलमय होता है। तेरे लिये जो मंगल विधान उन्होंने सोच रखा है वह होकर रहेगा, तू निश्चिन्त हो जा। माँ! भगवान का नामजप और चिन्तन करती रह, उनके मंगल विधान पर पूर्ण विश्वास रखना।

कुछ काल बीत गया। माँ के जीवन के अन्तिम दिन आ गये थे। 1999 में माँ का शरीर अस्वस्थ चल रहा था। उनकी स्थिति गम्भीर हो गयी। घर के लोगों को ऐसा लगा कि शरीर से हंस अब उड़ जाने वाला ही है और ऐसा ही हुआ। 6-1-99 माघ कृष्ण पंचमी, बुद्धवार को माँ का निधन हो गया। घर में शोक छा गया। बंकाजी के छोटे भाई श्रीगोविन्द और श्रीविनोद ने अतिशय भारी मन से उन्हें गीतावाटिका फोन द्वारा सूचित किया। श्रीबंकाजी ने कहा—घबराने की आवश्यकता नहीं है। भगवान का हर विधान मंगलमय होता है। मैं पहुँच रहा हूँ। माँ की आज्ञानुसार उनका अन्तिम संस्कार मैं ही करूँगा। तुमलोग सब तैयारी करो।

श्रीबंकाजी अपने गीतावाटिका के साथियों के साथ, कार द्वारा पडरौना पहुँचे। उनके हाथ में तुलसी का गमला और सूखी तुलसी की लकड़ी थी। जैसे ही उनकी गाड़ी घर के द्वार के सामने रुकी, उनके दोनों छोटे भाई आकर उनकी छाती से लग गये। श्रीबंकाजी ने सबको धैर्य धारण करवाया और स्वयं केश देकर स्नान किया।

माँ के पार्थिव देह को घर की बहुओं ने स्नान कराया और श्रृंगार किया। श्रीबंकाजी ने घर के आँगन में कुशा बिछा दी और माँ के शरीर को उस पवित्र कुशा पर रखा गया। श्रीबंकाजी ने अपने हाथ में गंगाजल से भरा लोटा ले लिया और अपने भाई विनोद के हाथ में तुलसी की माला पकड़ाते हुए कहा—मैं माँ की एक सौ आठ बार फेरी दूँगा और एक सौ आठ बार अभिमंत्रित गंगाजल उनके ऊँपर छोडूँगा। पूज्य बाबूजी ऐसा किया करते थे। तुम माला द्वारा संख्या की गिनती करते जाना। एक सौ आठ की संख्या पूरी होने पर बताना।

श्रीबंकाजी ने माँ की एक सौ आठ फेरी दी और प्रत्येक फेरी पर अभिमंत्रित जल माँ के पार्थिव देह पर डालते गये। उसके बाद विमान सजाया गया। जब पण्डितजी संकल्प कराने के लिये आगे आये तो श्रीबंकाजी ने अपनी माँ के लिए गोलोक धाम प्राप्ति का संकल्प करवाया।

श्रीबंकाजी पडरौना में बारह दिन तक नहीं रह सकते थे क्योंकि उनका नियम था कि वे गीतावाटिका नहीं छोड़ेंगे इसलिए मुखाग्नि देते वक्त उन्होंने अपने दोनों भाइयों का हाथ भी लगवा दिया था जिससे आगे के सारे काम वे दोनों कर सकें। अग्नि संस्कार पूर्ण होने पर श्रीबंकाजी रात को गीतावाटिका लौट आये। बारहवीं के दिन श्रीबंकाजी पुन: पडरौना गये और माँ का अन्तिम कार्य विधि विधानपूर्वक सम्पन्न करवाया।

गीतावाटिका के सत्संगी भाई-बहनों ने श्रीबंकाजी की माँ के लिये, गीतावाटिका के समाधि परिसर में एक कीर्तन का आयोजन किया जिसमें बाबूजी-बाबा के परिकर और निजजन सम्मिलित हुए थे। मधुर नाम ध्वनि गुंजायमान हो रही थी। **कृष्ण गोविन्द गोविन्द गोपाल नन्दलाल** का कीर्तन हो रहा था। उसी समय श्रीबंकाजी को बाबूजी-बाबा के बीच में खड़ी अपनी माँ के दर्शन हुये। उसके शरीर की कान्ति बड़ी उज्ज्वल थी। श्रीबंकाजी ने अपनी माँ को तुरन्त पहचान लिया। उनको बड़ा आश्चर्य हुआ कि माँ यहाँ कैसे आ गयी? बाबूजी-बाबा के बीच में माँ खड़ी-खड़ी श्रीबंकाजी को देखकर मुसकुरा रही थी। उनके चरण भूमि से ऊपर से। श्रीबंकाजी समझ गये कि माँ

अपने सूक्ष्म शरीर से उनको दर्शन देने आयी हैं। माँ ने प्रसन्न मन से श्रीबंकाजी को अपने दोनों हाथ ऊपर उठाकर, वरद मुद्रा में आशीर्वाद दिया। श्रीबंकाजी ने माँ को भूमि पर माथा टेककर प्रणाम किया और मन ही मन कहा—माँ! बाबूजी-बाबा के साथ सुख से रहो। धन्य हो! माँ तुम धन्य हो! अपनी कृपा अपने बालक पर बनाये रखना। जाओ, तुम सुख से रहो।

इसके बाद माँ अदृश्य हो गयी। इस दिव्य दर्शन के बाद श्रीबंकाजी का हृदय आनन्द से झूम उठा। वे बार-बार भगवती महात्रिपुरसुन्दरी को प्रणाम करने लगे। बाबूजी-बाबा को प्रणाम करने लगे। फिर कभी श्रीबंकाजी को अपनी माँ दिखाई नहीं दी। सुयोग्य पुत्र को प्राप्त करके माता-पिता की कैसी सुन्दर सद्गति हो सकती है यह इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है।

****

परम पूज्य पण्डित श्रीगयाप्रसादजी की जीवनी

सन् 2001 या 2002 की बात है। बक्सर वाले पूज्य मामाजी (सन्त श्रीनारायणदास भक्तमालीजी) गोवर्धन गये हुए थे। परमपूज्य पण्डित श्रीगयाप्रसादजी महाराज के शिष्य श्रीरामदासजी, रासमण्डली के आचार्य श्रीरामस्वरूपजी शर्मा और आगरा के प्रसिद्ध होमियोपैथी के डॉक्टर सम्मान्य श्रीराधेश्यामजी पारीख, उपर्युक्त तीनों महत्जनों ने पूज्य मामाजी से अनुरोध किया—मामाजी! परम पूज्य पण्डित श्रीगयाप्रसादजी महाराज की कोई प्रमाणिक जीवन गाथा अभी तक समाज के सामने नहीं आयी है। यह कार्य आप ही किसी के द्वारा करवा सकते हैं।

महत्जनों की बात सुनकर पूज्य मामाजी ने मन-ही-मन एक निर्णय ले लिया। गोवर्धन में भक्तों की सभा के मध्य जब मामाजी प्रवचन दे रहे थे, प्रवचन के प्रवाह में उपर्युक्त प्रसंग का उल्लेख करते हुए मामाजी ने मुक्त स्वर से भरी सभा के मध्य यह घोषणा कर दी—गीतावाटिका में रहने वाले भाई श्रीराधेश्याम बंका को परम पूज्य पण्डित श्रीगयाप्रसादजी महाराज का पूर्ण सान्निध्य एवं वात्सल्य मिला है। पण्डितजी के महान व्यक्तित्व का उन्हें भली

प्रकार परिचय है। मेरा विश्वास है उनके द्वारा लिखी गयी जीवनी प्रमाणिक होगी और मेरे अनुरोध को वे टालेंगे नहीं। आप लोग विश्वास करें कि कुशल लेखक भाई श्रीबंकाजी के द्वारा लिखित पूज्य पण्डितजी की जीवनी निकट भविष्य में आप लोगों को मिल जायेगी।

इस घोषणा ने सबके मन में हर्ष का ज्वार ला दिया। सबको विश्वास हो गया कि जिन श्रीबंकाजी ने परम पूज्य श्रीपोद्दारजी और परम पूज्य श्रीराधाबाबा के बारे में इतना सुन्दर लिखा है, वैसा सुन्दर जीवनवृत्त अब पण्डित श्रीगयाप्रसादजी महाराज का भी पढ़ने के लिये मिल जायेगा।

इस घोषणा ने बिजली के करन्ट का सा काम किया। गोवर्धन और वृन्दावन में तथा निकटवर्ती कतिपय श्रद्धालु जनों के मध्य यह बात फैल गयी कि पूज्य पण्डितजी की जीवनी गीतावाटिका वाले श्रीबंकाजी लिख रहे हैं। अब मज़ेदार बात यह है कि ब्रजमण्डल में तो यह बात कानों-कान प्रसारित होने लगी और गीतावाटिका में रहने वाले श्रीबंकाजी को इस तथ्य की कोई जानकारी ही नहीं थी। श्रीबंकाजी तो सामान्य रूप से वाटिका में रह रहे थे। तभी एक दिन पूज्य मामाजी के हाथ का लिखा पत्र श्रीबंकाजी को प्राप्त हुआ। पत्र में उन्होंने यही लिखा था कि उनके द्वारा वृन्दावन में इस प्रकार की घोषणा कर दी गयी है और अब यह कार्य श्रीबंकाजी को ही करना है।

पत्र को पढ़कर श्रीबंकाजी के मन की स्थिति बड़ी विचित्र हो गयी। उनका हृदय गद्-गद् हो गया। वे सोचने लगे—वाह रे सन्तों की कृपा! उन्होंने मुझे पूर्णरूपेण अपनाया है। मेरे नाम पर वे स्वयं निर्णय लेते हैं यह कितने अपनत्व की बात है। श्रीबंकाजी के नेत्र छलछला उठे। मन में अपार प्रसन्नता हुई।

एक ओर पूज्य मामाजी की परम आत्मीयता के प्रति श्रीबंकाजी का मन रह-रह करके बलिहार हो रहा था परन्तु इन दिनों श्रीबंकाजी का शरीर, तन और मन दानों ही दृष्टियों से स्वस्थ नहीं था। मन में एक ओर अपार प्रसन्नता का ज्वार था और दूसरी ओर शारीरिक तथा मानसिक दृष्टि से विवशता का हिमालय था।

श्रीबंकाजी ने पूज्य मामाजी को पत्र लिखा—आपने मुझसे बिना पूछे मेरी ओर से पूज्य पण्डितजी महाराज के जीवनवृत्त को लिखने की भरी सभा में घोषणा कर दी यह आपकी परम आत्मीयता का द्योतक है। उस आत्मीयता के प्रति मैं बलिहार हूँ और आपके पावन चरणों को शत्-शत् वन्दन। आपने घोषणा की तो मेरे मन में वृत्त को लिखने की स्फूर्णा लहराने लगी परन्तु जब मेरी दृष्टि मेरे शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य की ओर जाती है तो अत्यधिक चिन्तित हो उठता हूँ कि क्या यह कार्य मेरे द्वारा पूर्ण हो पायेगा ? इस महत्कार्य को करने के पीछे आप जैसे महान सन्त की प्रेरणा है और पूज्य पण्डिती महाराज के परम भक्त जनों की सद्भावना मेरे प्रति है, अत: विश्वास है समय पाकर यह कार्य अवश्य-अवश्य पूर्ण होगा।

अब एक विशेष परिस्थिति पर विचार करें। पूज्य पण्डितजी का जीवनवृत्त लिखने के लिये उनके समपर्क में आने वाले जन-जन से समपर्क करना, एक प्रश्नावली बनाकर विविध जानकारियों को प्राप्त करना और उसके आधार पर वृत्त को लिखना मेरे द्वारा कैसे सम्भव हो पायेगा ? ज्यों ही परम पूज्य श्रीराधाबाबा ने अपनी इहलीला का संवरण किया, तभी पूज्य पण्डितजी का एक पत्र मेरे पास आया और उन्होंने मुझसे पूछा कि अब तुम क्या सोच रहे हो ? मैंने अपने मन की स्थिति लम्बे-लम्बे चार पृष्ठों में लिखकर पूज्य पण्डितजी के पास भेज दी। इसके उत्तर में पण्डितजी का पत्र आया कि—अब आपको गीतावाटिका में ही निवास करना है। पूज्य पण्डितजी की इस आज्ञानुसार मैं तो गीतावाटिका में 'कैद' हूँ। इस परिस्थिति में अब आप ही विचार करें कि पूज्य पण्डितजी के जीवन से सम्बन्धित तथ्यों का संग्रह कैसे हो पायेगा ? एक उदाहरण लें। किसी फुलवारी के असंख्य पौधों से पुष्पों का चयन करना अलग काम है और डलिया में रखे हुए संचित पुष्पों से माला को बनाना अलग काम है। अब इस उदाहरण के अनुसार पूज्य पण्डितजी के जीवन से सम्बन्धित तथ्यों का संग्रह भाई श्रीरामदासजी और उनके सहयोगीजन, मिलकर एकत्रित करें। फिर उसको साधारण भाषा में लिखकर मेरे पास भेज दें। जो सामग्री मेरे पास आयेगी, उसका संशोधन, सम्पादन, शृंगार और सुव्यवस्था मेरे द्वारा हो जायेगी। यदि तथ्यों के संग्रह का दायित्व गोवर्धनवासी आत्मीय जन ले लेवें तो जीवनवृत्त को लिखने की बात पूर्ण हो सकती है।

श्रीबंकाजी का यह पत्र पूज्य मामाजी को मिला और वे पूर्णरूप से सक्रिय हो गये। उन्होंने तथ्यों को संग्रह करने का कार्य मुख्यत: भाई श्रीरामदासजी को सौंपा। सामग्री गोवर्धन से गीतावाटिका, गोरखपुर आती रही और श्रीबंकाजी सुधार करके वापस श्रीरामदासजी के पास भेज दिया करते थे। पूज्य पण्डितजी के परम भक्त श्रीठाकुरसीदासजी उस समय जीवित थे। उनका नितान्त आग्रह था कि जीवनी में कोई तथ्य अथवा शब्द अप्रमाणिक न लिखा जाय। प्रकाशित होने वाली जीवनी सत्यता से पूर्णत: अनुप्राणित रहे अत: गोरखपुर से आई हुई सारी सामग्री श्रीठाकुरसीदासजी को सुनाई जाती थी। उनकी स्वीकृति का अर्थ था कि विवरण सत्य है।

यह क्रम लगभग तीन वर्षों तक चलता रहा और पूज्य पण्डितजी के जीवन का पूर्वार्ध भाग तैयार हो गया। यह भाग इतना श्रेष्ठ था कि पण्डितजी के भक्तजन कहने लगे कि सम्पूर्ण वृत्त तो न जाने कब तक तैयार होगा परन्तु कम-से-कम इतना विवरण तो छपवा देना चाहिये। यह बात श्रीबंकाजी के सामने आई। मालूम होते ही उन्होंने श्रीरामलालजी से कहा कि—यह निर्णय उचित नहीं है।

श्रीबंकाजी ने कह तो दिया पर उनकी बात कौन मानने वाला था। उत्कण्ठाधिक्य में पूर्वार्ध के प्रकाशन की बात सुनिश्चित हो गयी। अब प्रश्न उठा कि लेखक का नाम किसका रहे ? श्रीबंकाजी अपना नाम किसी शर्त पर देने को तैयार नहीं थे। वे ख्याति से बचना चाहते थे और यही बात श्रीरामदासजी भी कह रहे थे कि जब मैंने पुस्तक लिखी ही नहीं तब लेखक रूप में मेरा नाम जाय, क्या यह सत्योक्ति होगी ? एक धर्मसंकट उत्पन्न हो गया।

पूज्य मामाजी कभी श्रीबंकाजी को मनाने का प्रयत्न करते और कभी

श्रीरामदासजी से अनुरोध करते पर कोई भी अपने निश्चय से टल नहीं रहा था अत: पूज्य मामाजी के सुझाव अनुसार पुस्तक में लेखक का नाम लिखा गया 'कश्चिद्दास:' जिसका सान्केतिक अर्थ था भाई रामदासजी। यह पूर्वार्ध पुस्तक 28 अक्टूबर 2006 को छपकर समाज के सामने आई। इस पुस्तक का नाम है, 'हमारे बाबा पूज्य श्रीपण्डितजी'। इस पुस्तक में भूमिका स्वरूप कुछ निवेदन श्रीबंकाजी ने किया है जो 'हे वन्दनीय! शत शत प्रणाम' ने नाम से पुस्तक के आरम्भ में छपा है।

पूर्वार्ध भाग छप गया परन्तु उत्तरार्ध भाग के कार्य के समय श्रीबंकाजी का स्वास्थ्य अत्यधिक खराब हो गया अत: वे इस कार्य को अपने हाथ में न ले पाये।

****

प्रियतम सौरभ

1992 के अगस्त महीने में मैं सर्वप्रथम गीतावाटिका गयी थी और पूज्य श्रीराधाबाबा का प्रथम बार दर्शन किया था। उस वक्त श्रीबंकाजी ने मुझे उनकी लिखी हुई पुस्तकें—वाटिका के पत्र पुष्प, परम भागवत श्रीपोद्दारजी, सन्त हदय श्रीपोद्दारजी, महाभावोदधि श्रीपोद्दारजी प्रदान की थी और बाबा की पुस्तक जय जय प्रियतम भी दी थी। जब मैं अगले साल श्रीबंकाजी से मिलने गीतावाटिका गई तो उन्होंने बड़ें प्रेम से मुझसे पूछा—लाली! पिछले साल जो पुस्तकें तुम्हें दी थी वह पढ़ी थी क्या तुमने? कैसी लगी?

मैंने सहजता से उत्तर दिया—दादाजी, आपकी लिखी पुस्तक वाटिका के पत्र पुष्प, चारों भाग पढ़ी। बहुत अच्छी लगी। भाईजी, श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार वाली तीनों पुस्तकें भी बहुत ही अच्छी लगीं।

श्रीबंकाजी ने पूछा—और बाबा की पुस्तक जय जय प्रियतम? वह प्रियतम काव्य कैसा लगा तुम्हें?

मैंने कहा—दादाजी, उस प्रियतम काव्य को मैंने पढ़ने का प्रयास किया था पर वह कुछ समझ में नहीं आया। बड़ी कठिन पुस्तक है। उसका मैं कुछ भी अर्थ न लगा सकी।

मेरी बात सुनकर श्रीबंकाजी मुसकुराने लगे। मैंने पूछा—दादाजी! आप हँस क्यों रहे हैं? क्या मेरे पुस्तक नहीं पढ़ सकने की असफलता पर आपको हँसी आ रही है?

श्रीबंकाजी ने बड़े प्यार से कहा—लाली! ऐसा नहीं है। मैंने यह पुस्तक बहुत से लोगों को पढ़ने के लिये दी और सब आकर मुझसे कहते थे कि बहुत अच्छी पुस्तक है, बड़ी सुन्दर है आदि। मैं उनकी वाणी सुन-सुनकर आश्चर्य करता था कि इनको यह पुस्तक समझ में कैसे आई? मैंने बाबा के साथ अनगिनत बार एकान्त में सत्संग किया है और बाबा ने स्वयं इस पुस्तक के रहस्य मुझे बतायें हैं। मेरे अलमारी में रजिस्टर भरे पड़े हैं उन गुप्त वार्तालाप के। फिर भी, मैं भी यह नहीं कह सकता हूँ कि मैं इस पुस्तक को पूरा समझ ही गया हूँ। आज तेरी सच्चाई से मैं प्रसन्न हूँ। इसीलिये हँस रहा हूँ। तूने सच कहा कि तुझे वह एकदम समझ नहीं आयी। यह स्वाभाविक ही है कि यह काव्य उनको समझ में नहीं आयेगा जिसने बाबा का संग नहीं किया है, जो बाबा के निकट नहीं रहा है।

मैंने कहा—दादाजी, आप जय जय प्रियतम काव्य की व्याख्या लिख दीजिये। जब हमलोग स्कूल में थे तो श्रीकबीरदासजी के, श्रीरहीमजी के दोहे समझ नहीं आते थे। फिर उन्हीं की व्याख्या जब अध्यापिका पढ़ाती थी तो बहुत सुन्दर लगते थे। आप इस पुस्तक की व्याख्या लिख दीजिये जिससे मेरे जैसे हजारों लोग इसे समझ सकें।

श्रीबंकाजी ने कुछ झुंझलाते हुए कहा—तू पागल है क्या? जय जय प्रियतम काव्य बाबा की सबसे उत्कृष्ट कृति है। काष्ठ मौन के समय बाबा को वृन्दावन में इस ग्रन्थ की स्फूर्णा हुई थी। उसकी व्याख्या लिखना क्या आसान कार्य है? मेरे जैसे तुच्छ व्यक्ति के लिए असम्भव! सर्वथा असम्भव है।

मैंने कहा—दादाजी, 1971 से 1992 तक आपको बाबा का अति निकट का सम्पर्क प्राप्त हुआ है। बाबा ने असंख्य बार आपके सामने जय जय प्रियतम की चर्चा की है और उसके गूढ़ अर्थ को समझाया भी है। अब

ऐसी स्थिति में अगर आप इस काव्य की व्याख्या नहीं लिखेंगे तो भविष्य में मुझे ऐसा अन्य कोई भी व्यक्ति नहीं दीखता जो यह कार्य कर सके। व्याख्या के अभाव में बाबा का यह दिव्य काव्य लुप्तप्राय: हो जायेगा। लोग समझ ही नहीं सकेंगे इसे।

यह जितनी बातें ऊपर लिखीं है, इसी तरह की चर्चा अनेक बार हम दोनों के बीच में हुई। अपने दैन्यवश श्रीबंकाजी व्याख्या लिखने के लिये मना करते रहते और मैं बारम्बार मनुहार किये जाती। यह क्रम लगभग पन्द्रह सालों तक चलता रहा। अन्य भी बहुत लोग श्रीबंकाजी से यही आग्रह कर रहे थे। आखिर 2004 में एक दिन उनका फोन मेरे पास आया। उन्होंने कहा—लाली! तू जीत गयी। मैं हार गया।

मैंने पूछा—दादाजी! आपकी इस बात का क्या अर्थ हुआ भला?

श्रीबंकाजी ने प्रसन्नतापूर्वक कहा—लाली! तेरी यही माँग थी न कि मैं जय-जय प्रियतम की व्याख्या लिख दूँ? तू जीत गयी। तेरे जैसे अन्य भी बहुत से लोग बारम्बार यही आग्रह कर रहे हैं। अब मैं इसकी व्याख्या लिखूँगा।

श्रीबंकाजी के मुख से इन शब्दों को सुनकर मेरा हृदय तो नृत्य करने लगा। मैंने कई बार जय-जय प्रियतम का मूल पाठ किया था पर मुझे कभी भी कुछ समझ नहीं आता था। मैं अति प्रसन्न थी कि अब इस दिव्यातिदिव्य काव्य को समझ सकूँगी। श्रीबंकाजी ने शुभ मुहूर्त में जय-जय प्रियतम की व्याख्या, प्रियतम सौरभ का लेखन कार्य आरम्भ किया। प्रियतम सौरभ के लेखन काल में उनके सामने बाधाएँ कम नहीं आयी पर उन्होंने हार नहीं मानी।

मैं जब उनसे मिलने गयी तो श्रीबंकाजी ने स्वयं बताया—कहीं-कहीं कथा प्रसंग इतने गहन हैं कि बहुत सोचने पर भी कोई अर्थ समझ नहीं आता था। ऐसे अवसर पर कलम रख देता था और भगवती महात्रिपुरसुन्दरी से ही प्रार्थना करता था। **पुनि पुनि बिनय करिअ कर जोरी॥** एक-दो दिन कातर प्रार्थना चलती फिर स्वत: कोई-न-कोई प्रेरणा हो जाती और लेखन कार्य पुन: आरम्भ हो जाता। कई बार स्वयं बाबा ने सपने में अर्थ बतायें हैं तब जाकर

कुछ अंश में व्याख्या लिख पाया हूँ। यह काम आसान नहीं है।

कुछ दिन गीतावाटिका में रहकर मैं कलकत्ता लौट आयी। कई महीने बीत गये। श्रीबंकाजी ने अपने पास कभी भी मोबाईल फोन नहीं रखा। शाम के वक्त उनके पास शहर से कोई व्यक्ति मिलने आते थे तब उन्हीं के फोन से वे मुझे फोन कर लिया करते थे। एक दिन श्रीबंकाजी का फोन आया। उन्होंने कहा—लाली! लेखन कार्य कभी चल रहा है, कभी रुक जाता है। तृतीय-चतुर्थ शतक के लीला प्रसंग इतने अधिक सुन्दर हैं कि हर वक्त वे ही दृश्य मन-मस्तिष्क में घूमते रहते हैं। कोई भी सांसारिक कार्य करना एक समस्या हो गयी है। न कपड़े धो सकता हूँ, न बर्तन मल सकता हूँ। लीला ही आँखों के सामने से नहीं हटती। बड़ी विचित्र स्थिति हो गयी है। सोच रहा हूँ लिखना छोड़ दूँ।

श्रीबंकाजी की यह वाणी सुनकर जहाँ मुझे एक ओर अत्यधिक प्रसन्नता हुई कि दादाजी को प्रतिक्षण लीला दर्शन हो रहे हैं वहीं दूसरी ओर दु:ख भी हुआ कि कहीं यह लेखन-कार्य बन्द न हो जाये। मैंने उनसे कहा—दादाजी, सांसारिक कार्य करने के लिये आप एक नौकर रख लीजिये। वह कपडे धो देगा, बर्तन मल देगा। आप सिर्फ लेखन-कार्य और लीला-चिन्तन करें।

श्रीबंकाजी ने कहा—लाली! मैं गरीब आदमी हूँ। नौकर कैसे रख सकता हूँ?

मैंने अपने माता-पिता श्रीप्रभातकुमारजी बंका और श्रीप्रेमलता बंका से बात की। उन्होंने सहर्ष मासिक वेतन पर नौकर की व्यवस्था तुरन्त कर दी और श्रीशिवराज भैया श्रीबंकाजी की सेवा में नियुक्त हो गये। शिवराज भैया ने उस दिन से लेकर अन्तिम श्वास तक श्रीबंकाजी की खूब सेवा की। नौकर के आ जाने से श्रीबंकाजी को बहुत सुविधा हो गयी। लेखन-कार्य सुचारु रुप से चलने लगा।

कुछ दिनों बाद फिर श्रीबंकाजी का फोन आया। उन्होंने कहा—लाली! षष्ठम शतक की कथा लिख रहा हूँ। श्रीकृष्ण के पूर्वराग का प्रसंग चल रहा

है। पर यह लेखन कार्य शरीर पर बहुत भारी पड़ रहा है। यह पांचभौतिक शरीर अप्राकृत लीला प्रवाह को सहन करने के योग्य नहीं है। मेरा सिर घूमने लगता है। चक्कर आते हैं। नेत्र खुलते नहीं। लगता है अचेत हो जाऊँगा। तूने मुझे कहाँ फँसा दिया।

श्रीबंकाजी की बातें सुनकर मुझे विनोद सूझा। मैं उनकी अत्यन्त लाडली हूँ अत: परिहास करते हुए मैंने उनसे कहा—जय हो! जय हो! आप तो अतिशय आनन्द में हैं। दादाजी! जब श्रीप्रियाजी को प्रियतम अचानक स्पर्श करते हैं तो उन्हें भी स्वेद-कम्प-रोमांच-अचेतनता आदि व्याप्त हो जाते हैं। आप में भी वही सब लक्षण आप बता रहे हैं तो क्या मैं यह मान लूँ कि श्रीप्रिया-प्रियतम आपके साथ नित्य नये खेल कर रहे हैं।

इतना कहकर मैं हँसने लगी। श्रीबंकाजी भी खूब जोर से हँसे और हँसते हुए ही उन्होंने कहा—लाली! तेरी बुद्धि की बलिहारी है। मैं तुझे अपनी पीड़ा सुना रहा हूँ और तुझे खेल सूझ रहा है। हद है। तेरी बुद्धि के उड़ान की सीमा नहीं!

कुछ महीने और बीत गये। फिर उनका फोन आया। उन्होंने कहा—आजकल लिखने का कोई समय ठीक नहीं रह गया है। दशम शतक चल रहा है। अत्यन्त गूढ़ लीला है। बाबा ही लिखवा रहे हैं। मेरे बस की बात नहीं। कभी तो रात्रि के दो बजे नींद से उठ कर लिखने बैठ जाता हूँ। कभी-कभी पूरी रात नींद ही नहीं आती है। सोचता ही रह जाता हूँ। विचित्र स्थिति है।

श्रीबंकाजी की बातों को सुनकर मैं उनकी दिव्य स्थिति के बारे में सोचने लग जाती। अहो! कितने आश्चर्य की बात है कि स्वयं बाबा उनको लीला के रहस्य बताते हैं, सारे-सारे दिन उनको लीला दर्शन होते हैं। कब उनकी लेखनी उनके हाथों से छूट जाती है उन्हें पता ही नहीं चलता है। यही स्थिति तो बाबूजी की थी जब श्रीबंकाजी उनकी सेवा में आये थे और इसी स्थिति की तो श्रीबंकाजी ने सदा भगवती महात्रिपुरसुन्दरीजी से माँग की थी। आज यही माँग उनके जीवन का सच था। जय जय प्रियतम में लिखी प्रत्येक लीला

के उन्हें साक्षात दर्शन हो रहे थे।

लगभग दो वर्ष के अथक परिश्रम के बाद प्रियतम सौरभ का लेखन कार्य पूर्ण हुआ। बीच में श्रीबंकाजी कई बार बीमार पड़े। गम्भीर रूप से बीमार पड़े। अत्यधिक शारीरिक कष्ट उन्हें भोगना पड़ा पर बाबूजी-बाबा की कृपा से जय-जय प्रियतम जैसे दिव्य ग्रंथ की व्याख्या का लेखन-कार्य पूर्ण हो सका।

ऐसे तो श्रीबंकाजी की हर पुस्तक ही मुझे अत्यधिक प्रिय लगती है पर प्रियतम सौरभ की बात कुछ और ही है। इस पुस्तक में तो उनकी लेखनी नृत्य करती हुई प्रतीत होती है। शब्दों का चयन, भावों की छलकन, तत्व का विवेचन, रहस्यों का उदघाटन, सब अद्भुत से अद्भुत है।

एक दिन की एक विशेष बात का उल्लेख भी कर देती हूँ। जब मैं प्रियतम सौरभ को पढ़ने के बाद श्रीबंकाजी से मिलने गीतावाटिका गई तो मैंने उनसे पूछा—दादाजी! आपने जय जय प्रियतम की बहुत ही सुन्दर व्याख्या लिखी है। मुझे पढ़कर बहुत आनन्द आया। अब श्रीराधाबाबा का दिव्य ग्रन्थ कुछ-कुछ समझ में आने लगा है। मेरे मन में एक प्रश्न है। आप उसका समाधान करें। सभी छन्द की व्याख्या आपने कहीं विस्तार से तो कहीं संक्षेप में लिखी है पर एक पंक्ति ऐसी है जिसकी व्याख्या आपने अत्यधिक विस्तार से लिखी है, कोई बारह-तेरह पृष्ठों में लिखी है। इसका क्या कोई विशेष कारण है?

श्रीबंकाजी ने जिज्ञासापूर्वक पूछा—लाली! जय जय प्रियतम की कौन सी पंक्ति की बात कर रही है तू?

मैंने पास में रखी प्रियतम सौरभ पुस्तक में उस पृष्ठ को निकाला और कुछ मुसकुराते हुए कहा—दादाजी! जय-जय प्रियतम के तृतीय शतक में एक छन्द है।

ज्यों तथा उतरने लगता है यह तरणि अस्तगिरिमें प्रियतम!
'गूँ-गूँ' करता दक्षिण पथ से है एक मधुप आता, प्रियतम!
कुछ पल उन नलिनोंकी फेरी देकर, ढल पड़ता है, प्रियतम!

पीले जलरुह के उरपर, फिर रहता प्रभात तक है प्रियतम!

इस छन्द की व्याख्या अपने बारह-तेरह पन्नों में लिखी है। इसको पढ़कर ऐसा लगता है मानो आप अपने ही बारे में लिख रहे हैं और यह गूँ-गूँ करके दक्षिण पथ से आने वाले मधुप आप स्वयं ही हैं, जो रात्रि पर्यन्त कमल पुष्प का रसपान कर रहे हैं।

मेरी बात को सुनकर श्रीबंकाजी एकदम चौंक गये और स्वयं को संगोपन रखने की भावना से प्रेरित होकर उन्होंने कहा—लाली! धन्य है तेरी सोच! तेरी जय हो! क्या-क्या सोचती रहती है तू? मेरी तो कल्पना से परे की बात है!

मैं भी अपनी जिद पर अड़ी रही। मैंने अपनी बात पर जोर देते हुए हठपूर्वक कहा—दादाजी! आप स्वयं को कितना भी छुपा लें, मैं आपको जानती हूँ। मैं आपकी बातों में आने वाली नहीं। मेरे सामने तो आप सच्चाई को स्वीकार कर ही सकते हैं। मैं सच कहती हूँ अन्य किसी को भी नहीं बताऊँगी।

मेरी बात सुनकर वे मन्द-मन्द मुसकुराने लगे और उनकी गर्दन कुछ इस प्रकार हिली मानो उन्होंने स्वीकार किया कि बारह-तेरह पृष्ठ में उन्होंने मधुप के माध्यम से अपना ही वर्णन किया है।

काष्ठ मौन व्रत के समय बाबा के हृदय में स्फुरित दिव्य ग्रन्थ जय-जय प्रियतम की विस्तृत व्याख्या प्रियतम सौरभ, तीन खण्ड में 2006 में प्रकाशित हुई जिसे साधक-समाज ने खूब सराहा और श्रीबंकाजी के अथाह ज्ञान, अद्भुत वर्णन शैली और अथक परिश्रम के प्रति सब नतमस्तक हो गये। श्रीप्रिया-प्रियतम के मधुर रहस्यमयी प्रसंगों को श्रीबंकाजी ने अति सरल वाणी में ऐसे समझाया है कि अब सब लोग बड़ी सुविधा से जय-जय प्रियतम के अर्थ को समझ सकेंगे।

****

कुछ अन्य पुस्तकें

भगवान ने श्रीबंकाजी को लिखने की क्षमता प्रदान की और अपनी वर्णन-कुशल लेखनी का भरपूर उपयोग उन्होंने सन्त चरित्र लेखन में किया। उन्होंने आजीवन बाबूजी-बाबा का यश गान तो किया ही, साथ ही उन्होंने अन्य सन्तों के चरित्र भी लिखे, पर उन पुस्तकों में अपना नाम कहीं भी नहीं दिया। श्रीबंकाजी को ख्याति, लोक-प्रतिष्ठा और मान-सम्मान की तनिक भी चाह नहीं थी। उन्होंने यह सारा कार्य भगवत्सेवा भाव से सम्पादित किया।

यहाँ उन पुस्तकों का उल्लेख किया जा रहा है जिसका सम्पादन कार्य श्रीबंकाजी ने किया पर लेखक के रूप में अपना नाम नहीं दिया।

मीरा चरित्र

मीरा चरित की लेखिका हैं राजस्थान की परम पूज्या श्रीसौभाग्य कुंवर दीदी जिनका जन्म मीराबाई के मेड़ता राजवंश में हुआ है। मीराबाई के जीवन की गाथा को श्रीसौभाग्य दीदी ने अपनी डायरी में लिखा था और उनकी कई डायरियाँ भर गई थीं। एक बार उन्होंने अपने द्वारा लिखित मीरा चरित को पूज्य श्रीबक्सर वाले मामाजी को सुनाया। श्रीनारायणदास भक्तमालीजी इसे सुनकर अति प्रसन्न हुए और उन्होंने कहा—यह डायरी अलमारी में रखी-रखी भला दूध देगी क्या? इनको आप पुस्तक के रूप में छपाती क्यों नहीं हैं?

श्रीसौभाग्य दीदी ने अपनी असमर्थता व्यक्त करते हुए उत्तर दिया—यह चरित आधी हिन्दी, आधी मारवाड़ी भाषा में लिखा हुआ है। मुझे शुद्ध हिन्दी लिखनी आती नहीं। पुस्तक में ऐसी अशुद्ध भाषा भला कैसे छापी जा सकती है?

पूज्य श्रीबक्सर वाले मामाजी ने कुछ सोचते हुए कहा—आप ऐसा करें, यह सारी डायरी पूज्य भाईजी और श्रीराधाबाबा के निजी परिकर श्रीराधेश्याम बंकाजी को गीतावाटिका, गोरखपुर भेज दें। वे इसका संशोधन करके पुस्तक के लायक उपयुक्त वाणी में अनुवाद कर देंगे। श्रीबंकाजी का जन्म मारवाड़ी परिवार में हुआ है। उन्हें मारवाड़ी आती है। उनसे बेहतर यह कार्य और कोई नहीं कर सकेगा।

श्रीबक्सर वाले मामाजी की बातें सुनकर श्रीसौभाग्य दीदी को अत्यधिक प्रसन्नता हुई। वे अपनी सभी डायरी लेकर श्रीबंकाजी के पास गीतावाटिका गयी और श्रीमामाजी से हुई सारी बातें उन्होंने श्रीबंकाजी को बता दी। संत आज्ञा को शिरोधार्य करते हुए श्रीबंकाजी ने श्रीसौभाग्य दीदी की डायरियों को पढ़ा। आधी हिंदी, आधी मारवाड़ी भाषा में सारा मीरा चरित लिखा गया था। चरित लेखन में कहीं पैराग्राफ तक नहीं था। राजवंशों के मध्य हुए युद्ध का भी बहुत अधिक वर्णन था। श्रीबंकाजी काम में जी-जान से जुट गए। पहले तो उन्होंने सारी पुस्तक का हिंदी में अनुवाद किया। अनावश्यक युद्ध वर्णन को हटाया, इतिहास को संक्षिप्त किया और सरस कथा पक्ष को सजा कर उभारा। सारी कहानियों को अलग-अलग किया और हर कहानी को एक सुन्दर शीर्षक प्रदान किया। महीनों के कठिन परिश्रम के बाद **'मीरा चरित'** पुस्तक तैयार हुई।

जब सौभाग्य दीदी ने इस पुस्तक को पढ़ा तो वे स्वयं दंग रह गयीं। उन्होंने कहा—यह तो बहुत सुन्दर हो गई है। मैं तो ऐसा कभी भी नहीं लिख पाती। आप इस पुस्तक में लेखक के रूप में अपना नाम दे दीजिये और छपवा दीजिये। मेरे पास तो इसे छपवाने के लिये धन भी नहीं है। श्रीबंकाजी ने अपना रुपया लगाकर मीरा चरित को छपवाया। इतना सब करने के बाद भी उन्होंने पुस्तक में कहीं अपना नाम नहीं दिया।

जब श्रीबंकाजी मुझे यह सारा प्रसंग सुना रहे थे तब मैंने उनसे पूछा—दादाजी! आपने मीरा चरित पुस्तक में लेखक या संयोजक में अपना नाम क्यों नहीं दिया? सारा हिन्दी अनुवाद, अलग-अलग कहानियों की रूपरेखा, सारे प्रकरण के नाम, शब्दों की सजावट आदि सारा कार्य तो आपने ही किया था। फिर आपने अपना नाम क्यों नहीं दिया?

मेरी बात को सुनकर श्रीबंकाजी ने कहा—लाली! इसके दो कारण हैं। प्रथम—सौभाग्य कुंवर बाई ने इसे लिखा है, चाहे मारवाड़ी में ही लिखा, इसलिए लेखिका वे ही हैं। और दूसरा कारण थोड़ा रहस्य भरा है। तू तो

जानती ही है कि बाबा ने मुझे श्रीचम्पकलता सखी का भाव प्रदान किया है। इस पुस्तक में तूने पढ़ा ही है कि श्रीचम्पकलता सखी 'चम्पा दासी' के रूप में सदा श्रीमीराबाई की सहायता-सम्भाल करती हैं पर कहीं भी उन्होंने स्वयं को प्रकट नहीं किया है। सारी सेवा बहुत ही गुप्त रूप से की है। जब उन्होंने अपना नाम प्रकट नहीं किया है तो मैं भला कैसे कर सकता हूँ?

श्रीबंकाजी की वाणी सुनकर मैं आश्चर्यचकित थी और बार-बार उनके दिव्य सखी स्वरूप को प्रणाम कर रही थी। मीरा चरित्र पुस्तक को अत्यधिक लोकप्रियता प्राप्त हुई। जिसने भी पढ़ा उसी ने इस पुस्तक की खूब प्रशंसा की।

मीरा चरित लिखने के बाद श्रीबंकाजी ने उसे गीतावाटिका की पूज्या श्रीकमल दीदी को दिखलाया। कमल दीदी ने पुस्तक पढ़ी तो वे प्रसंशा करते थकती नहीं थीं। उन्होंने श्रीबंकाजी से कहा—आपने इतनी सुन्दर पुस्तक लिखी है। इस पुस्तक में बहुत से ऐसी मीराबाई के जीवन की गुप्त बातें हैं जो संसार के सामने अब तक नहीं आई हैं। जब यह पुस्तक प्रकाशित होगी तो सौभाग्य कुंवर बाई पर प्रश्नों की बौछार होगी। अनेक प्रकार के प्रश्न किये जाएँगे, आप उन्हें होने वाले भावी प्रश्नों से बचा लें।

पूज्य कमल दीदी की बात को सुनकर श्रीबंकाजी ने कहा—आपका कहना बिल्कुल ठीक है। मैं ऐसी भूमिका इस पुस्तक की लिखूँगा कि समाज को सारे प्रश्नों का हल मिल जायेगा और सब आलोचक शान्त हो जायेंगे।

इसके बाद श्रीबंकाजी ने भूमिका लिखी परन्तु उस भूमिका में भी उन्होंने अपना नाम नहीं दिया। मीरा चरित में भूमिका श्रीनारायणदास भक्तमालीजी के नाम से लिखी गई है जिसमें स्पष्ट रूप से श्रीबंकाजी ने लिख दिया कि मीराबाई के जीवन में बहुत सारी ऐसी बातें हैं जो केवल उनका परिवार ही जानता है और उन्हीं बातों को श्रीसौभाग्य कुंवर बाई ने लिखा है। भूमिका को पढ़ने से सारे प्रश्नों का समाधान अपने आप हो जाता है।

श्रीचक्र चरितम

परम पूज्या सौभाग्य कुंवर बाई की दूसरी पुस्तक पूज्य श्रीसुदर्शन

सिंह चक्रजी की जीवनी है। श्रीचक्रजी पहले बाबूजी के साथ कल्याण के सम्पादकीय विभाग में ही कार्य करते थे। उस वक्त श्रीबंकाजी का और श्रीचक्रजी का अति निकट का सम्पर्क था। श्रीबंकाजी सदैव उन्हें प्रणाम करते थे और उनका अत्यधिक आदर करते थे। श्रीचक्रजी भी श्रीबंकाजी पर अतिशय स्नेह रखते थे और घण्टों अपने कन्हाई की चर्चा किया करते थे।

पूज्य मामाजी की प्रेरणा से पूज्या डॉक्टर बालचन्द्रिकाजी पाठक ने श्रीचक्रजी की जीवनी का संकलन किया और सौभाग्य कुंवर बाई ने संयोजन किया परन्तु सत्य यह है कि श्रीबंकाजी की सहायता के बिना यह संकलन पुस्तक का स्वरूप नहीं ले पाता। संकलन की हुई सारी सामग्री श्रीबंकाजी के पास गीतावाटिका भेजी गई और महीनों के अथक प्रयास के बाद **श्रीचक्र चरितम** पुस्तक तैयार हो सकी। इसमें कहीं भी श्रीबंकाजी ने अपना नाम नहीं दिया है। वे कहा करते थे—प्रतिष्ठा तो कूकरी-विष्ठा है। एक साधक को प्रतिष्ठा-मान-बड़ाई से दूर रहना चाहिए और यह पुस्तकें इस बात का प्रमाण है कि श्रीबंकाजी जो कहते थे वहीं उन्होंने जीवन में करके भी दिखलाया।

दिव्या भाव स्वरूपा श्रीरुक्मिणी बाई

भागलपुर महिला संघ की परम पूज्यनीया सन्त दिव्य भावस्वरूपा श्रीरुक्मिणी बाई निकुंज राज्य की सखी थी जो बाबूजी-बाबा की लीला देखने के लिए इस धराधाम पर अवतरित हुई थीं। जब उनकी जीवनी लिखने की बात चली तब महिला संघ की पूज्या मीराबाई ने श्रीबंकाजी से सहायता माँगी और श्रीबंकाजी ने दो पुस्तकें श्रीरुक्मिणी बाई पर लिखीं। **दिव्या भाव स्वरूपा श्रीरुक्मिणी बाई जीवन लीला** और **दिव्या भाव स्वरूपा श्रीरुक्मिणी बाई दिव्य संस्मरण**। इन दोनों पुस्तकों में भी श्रीबंकाजी ने कहीं भी अपना नाम नहीं दिया है।

महर्षि श्रीखाकी बाबा

परम पूज्य भक्तमाली बक्सर वाले मामाजी के गुरु महाराज श्रीखाकी बाबा की जीवनी लिखने के लिए श्रीमामाजी ने श्रीबंकाजी को प्रेरित किया।

यह कार्य भी श्रीबंकाजी ने किया और **महर्षि श्रीखाकी बाबा** के नाम से पुस्तक प्रकाशित हुई पर इसमें भी श्रीबंकाजी ने अपना नाम नहीं दिया है।

गुरुजी जीवन प्रसंग

जेल यात्रा के बाद श्रीबंकाजी ने आर.एस.एस. का कार्य छोड़ दिया था पर आर.एस.एस. के वरिष्ठ नेताओं और कार्यकर्ताओं के साथ उनका पत्राचार होता रहता था। उन लोगों ने श्रीबंकाजी से गुरुजी की जीवनी लिखने के लिए प्रार्थना की। श्रीमाधव सदाशिव गोलवलकर राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सर्वोच्च नेता थे। श्रीबंकाजी की उनके प्रति बहुत श्रद्धा भी थी परन्तु अब श्रीबंकाजी का झुकाव भजन की ओर हो गया था अतः उन्होंने उनकी बात पर ध्यान नहीं दिया। एक दिन पूज्य श्रीराधाबाबा ने श्रीबंकाजी से कहा कि—मैं श्रीगुरुजी की जीवनी पढ़ना चाहता हूँ।

जब बाबा की आज्ञा हो गई तब तो श्रीबंकाजी को श्रीगुरुजी की जीवनी लिखनी ही था। तब उन्होंने वर्षों के पुराने अखबार मँगवाये और उन सबमें श्रीगुरुजी के बारे में जो-जो छपा था उन सब तथ्यों को जमा किया और **श्रीगुरुजी जीवन प्रसंग** नाम से दो पुस्तकें लिखीं। इन दोनों पुस्तकों में श्रीबंकाजी ने अपना नाम लेखक के रूप में दिया है। आज भी आर.एस.एस. वालों में इन दोनों पुस्तकों की बहुत माँग है और वे लोग इन दोनों पुस्तकों का प्रकाशन करवाते रहते हैं।

प्रीतिरसावतार श्रीराधाबाबा

श्रीबंकाजी ने श्रीराधाबाबा की जीवनी **प्रीति रसावतार श्रीराधाबाबा** के नाम से दो भाग में लिखी। इस पुस्तक को अत्यधिक साधुवाद प्राप्त हुआ।

परिकर मालिका

बाबूजी-बाबा पर तो बहुत पुस्तकें लिखी गईं पर साधकों और सन्तों की माँग थी कि बाबूजी-बाबा के परिकरों पर भी पुस्तक लिखी जाए। श्रीबंकाजी ने **परिकर मालिका** नाम से विस्तृत चार भाग में बाबूजी-बाबा के परिकरों की कथाएँ लिखी और 2013 में प्रकाशित करवाईं।

माँ और बाबूजी

माँ और बाबूजी श्रीबंकाजी की पहली पुस्तक थी। इसके बारे में पहले बताया जा चुका है। पहली पुस्तक में कुछ कमियाँ रह गई थीं। अपनी उस भूल को सुधारने के लिए श्रीबंकाजी ने दोबारा से माँ और बाबूजी पुस्तक चार खण्ड में 2014 में प्रकाशित की। इस पुस्तक में **माँ और बाबूजी** के बारे में अति विस्तार से लिखा गया है।

बाबा की जीवनी पर नाटक

श्रीबंकाजी ने बाबा की जीवनी पर आधारित एक नाटक भी लिखा था और उसका मंचन श्रीश्रीरामजी शर्मा की रास मंडली के द्वारा बाबा के शताब्दी महोत्सव पर करवाया था। यह नाटक बहुत ही सराहनीय है।

****

कुल्हे की हड्डी का टूटना

श्रीराधाबाबा के जाने के बाद अगले तीस वर्षों में श्रीबंकाजी ने जो उत्कृष्ट लेखन कार्य किया और अपने चिन्तन नवनीत को पुस्तकों के रूप में प्रकाशित किया उसके लिए वृन्दावन के बड़े-बड़े संतों ने उन्हें हृदय से साधुवाद दिया। जगत को उन्होंने ही बाबूजी-बाबा और उनके परिकरों की सही पहचान अपनी पुस्तकों के माध्यम से करवाई। उनके नाम से पन्द्रह से अधिक पुस्तकें प्रकाशन में हैं। पुस्तकों के लेखन में समय सार्थक करने के अलावा शेष समय में वे नाम-जप और लीला-चिन्तन करते थे। प्रतिदिन दो लाख नाम-जप का नियम उनका अन्तिम श्वास तक चला।

उनके परिवार से कोई भी उनसे मिलने आता तो बहुत प्रसन्नता से मिलते और अपनी स्नेह भरी दृष्टि से निहार कर विपुल आशीर्वाद देते थे। अतिथि सत्कार का विशेष चाव उनके मन में रहता था और किसी भी पारिवारिक व्यक्ति के लिये पूज्या श्रीउमा बंका से कहकर दाल-बाटी-चोखा, पोहा, ढोकला, गोल-गप्पा, दही बड़ा, टिकिया, चिड़वा, सुहाली आदि आदि अति स्वादिष्ट पदार्थ बहुत प्रेमपूर्वक बनवाया करते थे और अपने सामने बैठाकर

खिलाते थे। घर के बच्चे जब उनके सामने भोजन करते तो उन्हें देखकर खूब प्रसन्न होते और विपुल आशीर्वाद देते थे। कभी-कभी तो अत्यधिक कृपा करके अपनी झूठन प्रसादी भी हमलोगों को प्रसाद में दे दिया करते थे। एक रहनी से, एक कमरे में उन्होंने बाबा के जाने के बाद के तीस साल काटे।

10 सितम्बर 2015 को अपने नहान घर में गिर जाने के कारण श्रीबंकाजी के कुल्हे की हड्डी टूट गयी थी। तब से वे बीमार रहने लगे और अपनी चौकी से उठ नहीं पाते थे। उसके शरीर के सभी धर्म चौकी पर ही पूरे होते थे। उनके सेवक श्रीशिवराज भैया बहुत मन से हर वक्त उनकी सेवा-सम्भाल करते। अपनी चौकी पर लेटे-लेटे श्रीबंकाजी निरन्तर नाम-जप करते रहते थे। उनके गले को देखने से ऐसा लगता था कि वह, मयूर के कण्ठ की भाँति, निरन्तर हिलता रहता है अर्थात उनका अजपा-जप हमेशा चलता रहता था।

जब श्रीबंकाजी के कूल्हे की हड्डी टूटी तो डॉक्टरों ने कहा कि ऑपरेशन करना पड़ेगा। उन्हें गोरखपुर के अस्पताल में भर्ती किया गया। ऑपरेशन के पहले जब खून की टेस्टिंग की गई तो पाया गया कि उनका हेमोग्लोबिन मात्र छः है अर्थात शरीर में खून बेहद कम है। डॉक्टरों ने साफ कह दिया कि इनको खून देना होगा। हिमोग्लोबिन बढ़ेगा तभी ऑपरेशन हो सकता है। इतने कम खून में अगर ऑपरेशन किया गया तो बहुत अनिष्ट की आशंका है। उनकी उम्र भी बहुत अधिक है और शरीर में बल नहीं है। वे जोखिम मोल नहीं ले सकते हैं। खून तो चढ़ाना ही पड़ेगा नहीं तो बाद में सब दोष देंगे।

श्रीबंकाजी को उनकी गम्भीर स्थिति से अवगत करवाया गया। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में, कुछ ऊँची आवाज में सबके सामने कहा—मैंने आजीवन अपने शरीर को परम पवित्र रखा है। भोजन और भजन दोनों दृष्टि से मेरा रक्त एकदम शुद्ध है। मैं किसी का भी रक्त अपने शरीर में चढ़ाने की आज्ञा नहीं देता हूँ। मैं परम विरक्त हूँ और अस्पताल में विषयी लोगों का रक्त होता है। मुझे किसी भी कीमत पर किसी भी व्यक्ति का रक्त मत चढ़ा देना। मैं बाल ब्रह्मचारी हूँ , मुझे मृत्यु स्वीकार है पर रक्त दोष सर्वथा स्वीकार नहीं है। मैं

सबसे हाथ जोड़ कर प्रार्थना करता हूँ , किसी भी स्थिति में मुझे किसी का भी रक्त न दिया जाये।

श्रीबंकाजी को हड्डी टूटने का अत्यधिक शारीरिक कष्ट था पर उनकी ओज भरी वाणी ने सब लोगों को विस्मित कर दिया। उस वक्त उनके पास श्रीयोगेंद्रजी बंका और श्रीउमा बंका थे। श्रीउमा चाचीजी ने अपना खून देने की बात उनसे कहीं पर श्रीबंकाजी ने कहा—डॉक्टर से बोलो कि मैं लिख कर देता हूँ कि अभी की परिस्थिति में जितना मेरा हेमोग्लोबिन है उसी में ऑपरेशन किया जाये। अगर मृत्यु हुई तो उसका जिम्मेदार मैं स्वयं होऊँगा।

डॉक्टरों को सब बातें बताई गईं। बहुत मुश्किल से उनको ऑपरेशन करने के लिये राजी किया गया। श्रीबंकाजी ने बाबूजी-बाबा का नाम लेकर सारे कागजों पर हस्ताक्षर कर दिये और ऑपरेशन सफल हुआ। कष्ट तो बहुत हुआ पर कुछ दिन अस्पताल में रहने के बाद वे गीतावाटिका लौट आये। शिवराज भैया श्रीबंकाजी की जी-जान से सेवा करते थे। उन्होंने उन्हें उठाने और चलाने की बहुत कोशिश की पर दुर्भाग्य से वे खड़े हो ही नहीं सके और 2015 से 2022 तक वे अपनी चौकी पर ही रहे।

जब मैं श्रीबंकाजी से मिलने गई तो मैंने उनसे पूछा—दादाजी ! इतने कम हिमोग्लोबिन में आपने ऑपरेशन के लिए 'हाँ' कर दी, आपको डर नहीं लगा क्या ? कुछ हो जाता तो ? ऑपरेशन में बहुत बड़ा जोखिम था।

श्रीबंकाजी ने मुस्कुराते हुए पूर्ण आत्मविश्वास के साथ उत्तर दिया—लाली ! बाबूजी-बाबा कहीं दूर थोड़े ही थे ? वे तो मेरे पास बैठे थे, उनके बल पर ही तो मैं बोल रहा था। कष्ट रूप में भगवान ही आये थे। प्रभु के मंगल विधान पर मुझे पूर्ण भरोसा था पर किसी सांसारिक व्यक्ति का खून मैं कैसे ले सकता था भला ! मैं बाल ब्रह्मचारी हूँ, स्त्री स्पर्श की दृष्टि से मेरा रक्त परम पवित्र है।

श्रीबंकाजी के दृढ़ विश्वास को देखकर मैं उन पर बलिहारी जा रही थी और मन उनको बार-बार प्रणाम कर रहा था कि जिस प्रकार बाबूजी को कष्ट के रूप में भगवान दीखते थे उसी प्रकार श्रीबंकाजी ने भी कष्ट रूप में आये भगवान का स्वागत किया पर अपने उसूल नहीं तोड़े।

****

मेरी सासूजी की सद्गति

सन् 1992 में, मेरे विवाह के बाद मेरा किसी कार्यवश गोरखपुर जाने का कार्यक्रम बना। मेरी सासूजी पूज्या श्रीउमादेवी भुवालका ने मुझसे कहा—तुम अपने पति के साथ पहली बार गोरखपुर जा रही हो। गीतावाटिका जरूर जाना। वहाँ एक सिद्ध सन्त रहते हैं, उनका नाम है श्रीराधाबाबा। मैंने एक बार उनके दर्शन किये हैं। उनको श्रीराधाकृष्ण के साक्षात दर्शन होते हैं। वे बड़े अच्छे महात्मा हैं। तुम दोनों उनके दर्शन अवश्य करना। एक बात और है। अपने घर में श्रीरामचरितमानस की बड़ी पुस्तक नहीं है और अर्थ सहित गीताजी की बड़ी पुस्तक भी नहीं है। यह दोनों पुस्तकें वहाँ गोरखपुर में गीताप्रेस से खरीद लेना और हो सके तो पूज्य श्रीराधाबाबा के कर से स्पर्श करवा करके दोनों पुस्तकों को ले आना। उनका आशीर्वाद मिल जायेगा। सन्तों का आशीर्वाद परम मंगलदायक होता है।

मैं ध्यान देकर अपनी सासूजी की सारी बातें सुन रही थी। मैंने उनसे कहा—मेरे अपने दादाजी श्रीहनुमानप्रसादजी बंका के छोटे भाई श्रीराधेश्याम बंका भी गीतावाटिका में रहते हैं। वे बाल ब्रह्मचारी हैं। अधिक तो मैं उनके बारे में नहीं जानती पर उन्होंने युवावस्था में ही हमारा घर छोड़ दिया था और भजन में लग गये थे। बरसों से वे गीतावाटिका में ही रहते हैं।

मेरी बात सुनकर मेरी सासूजी बहुत प्रसन्न हुईं और उन्होंने कहा—यह तो बहुत अच्छी बात है। तुम अपने दादाजी से भी मिल लेना, उनका आशीर्वाद भी अवश्य लेकर आना।

1992 अगस्त में, मैं और मेरे पति श्रीरघुबीर भुवालका, हमलोग गीतावाटिका पहुँचे। हमारे हाथ में श्रीरामचरितमानस और श्रीसाधक संजीवनी पुस्तक (गीताजी की विस्तृत व्याख्या) थी। गीतावाटिका में सबसे पहले हम

बड़े मन्दिर में गये और मैंने पुजारीजी से पूछा—यहाँ श्रीराधेश्याम बंकाजी कहाँ रहते हैं?

प्रातः 9:00 बजे का समय होगा। उस वक्त श्रीजयराम भैया नाम जप करते हुए मन्दिर की परिक्रमा लगा रहे थे। पुजारीजी ने उनसे कहा—ये लोग बंकाजी से मिलना चाहते हैं। आप इन्हें उनके कक्ष में ले जाइये।

श्रीजयराम भैया ने अपनी परिक्रमा पूरी की तब तक हमने मन्दिर में ठाकुरजी का दर्शन किया। फिर उनके साथ हम श्रीबंकाजी के कक्ष में गये। श्रीजयराम भैया ने द्वार खोला ही था कि दादाजी की वाणी सुनाई दी—कौन है?

श्रीजयराम भैया ने कहा—आपसे मिलने कोई आया है।

हमने कक्ष में प्रवेश किया और मैंने अपने पति के साथ सर्वप्रथम दादाजी का दर्शन किया। भूमि पर मस्तक रखकर हमने दादाजी को प्रणाम किया। दादाजी ने परिचय पूछा तो मैंने सहजता से उत्तर दिया—मैं आपके भतीजे श्रीप्रभातकुमारजी बंका की पुत्री हूँ। कोलकाता से आपसे मिलने आयी हूँ। आप मेरे दादाजी हैं।

मेरे उत्तर को सुनकर श्रीबंकाजी को प्रसन्नता तो हुई परन्तु साथ में आश्चर्य भी बहुत हुआ। वे मुझे एकटक देखते रहे, फिर कुछ देर बाद उन्होंने कहा—तू प्रभात की छोरी है? आज तक प्रभात मेरे से मिलने नहीं आया, प्रभात का भाई नहीं आया, तू कैसे आ गई?

मैंने कहा—दादाजी! आपके बारे में अकसर घर में चर्चा होती रहती है। मेरे दादाजी-दादीजी के मुख से मैंने आपकी चर्चा सुनी है। मुझे गोरखपुर आना था तो सोचा आपका दर्शन भी कर लूँ। इसलिये यहाँ चली आई। विवाह के बाद अपने पति के साथ पहली बार आई हूँ।

श्रीबंकाजी का मुख प्रसन्नता से चमक उठा। उन्होंने मुस्कुराते हुए कहा—बहुत अच्छा! बहुत अच्छा किया! क्या तू सच में प्रभात की छोरी है? विश्वास नहीं हो रहा कि घर पर कोई मुझे याद भी करता होगा। अच्छा बता, तेरे दादाजी का क्या नाम है? तेरे दादी का क्या नाम है, कहाँ रहते हैं?

मैंने हँसते हुए उत्तर दिया—मेरे दादाजी श्रीहनुमानप्रसादजी बंका हैं। मेरी दादीजी श्रीगंगादेवी बंका है। मेरे पिताजी गाजियाबाद रहते हैं। मेरे चाचाजी श्रीसुशीलकुमार बंका, धनबाद में रहते हैं। दादाजी-दादीजी दोनों पुत्रों के पास आत-जाते रहते हैं।

मेरे विवरण को सुनकर किसी प्रकार के संदेह का कोई स्थान नहीं रह गया था। उनको पूर्ण संतोष हो गया कि मैं उनकी पोती हूँ। उनके श्रीमुख पर प्रसन्नता—झलकने लगी। वे मन्द-मन्द मुस्कुराने लगे। मैंने उनसे कहा-दादाजी! मेरी सासुजी ने कहा है कि यहाँ श्रीराधाबाबा रहते हैं। वे सिद्ध सन्त है। हम उनके दर्शन करना चाहते हैं।

दादाजी ने कहा—श्रीराधाबाबा आजकल बड़े अस्वस्थ्य हैं। प्रायः भाव-समाधि की अतिउच्च स्थिति में रहते हैं। आज तो सुबह से किसी को भी उनका दर्शन नहीं हुआ है। मैं प्रयास करूँगा कि तुमलोगों को उनका दर्शन हो जाय। कुछ कहा नहीं जा सकता।

इसी समय श्रीजयराम भैया पुनः श्रीबंकाजी के कक्ष में आये और उन्होंने कहा—बाबा परिक्रमा के लिये आने वाले हैं।

इतना सुनते ही श्रीबंकाजी अपनी चौकी पर से तुरन्त खड़े हो गये और हम लोगों से कहा—बहुत अच्छा हुआ। आज तो आशा ही नहीं थी कि बाबा अभी परिक्रमा के लिये आयेंगे। बाबा की परिक्रमा का दर्शन तुमलोगों को भी हो जायेगा। हो सका तो परिक्रमा के बाद एकान्त दर्शन भी हो जायेगा। चलो, जल्दी चलो।

मैंने दोनों पुस्तकें हाथ में उठा ली और द्वार की ओर बढ़ने लगी। श्रीबंकाजी ने मेरी ओर देखते हुए स्नेह भरी वाणी में कहा—लाली! इन पुस्तकों को यहीं कक्ष में रहने दें। कोई नहीं लेगा यहाँ से।

मैंने सहजता से उत्तर दिया—दादाजी! कोई इन पुस्तकों को ले लेगा यह भय नहीं है मुझे। यह श्रीरामचरितमानस और गीताजी मुझे श्रीराधाबाबा के कर कमलों से स्पर्श करवानी है। उनकी प्रसादी पुस्तकें ही मुझे चाहिये। इसीलिये इन्हें लेकर चल रही हूँ।

मैं ऐसी बात कहूँगी इसकी तो श्रीबंकाजी ने कल्पना भी नहीं की थी। वे मेरी ओर अवाक् देखते रह गये और कहा-लाली! तू स्वयं नहीं जानती है कि तू क्या माँग रही है। तू तो बाबा को जानती तक नहीं है। बाबा तो आजकल हर वक्त भाव-समाधि में रहते हैं। मैं प्रयास करूँगा। आगे जैसे हरि इच्छा।

इतना कहकर श्रीबंकाजी ने दोनों पुस्तकों को अपने हाथ में ले लिया और हम सब परिक्रमा स्थली, श्रीगिरिराज परिसर में जाकर बैठ गये। बाबा को कुर्सी पर बैठा करके परिक्रमा के लिये लाया गया। **कृष्ण गोविन्द गोविन्द गोपाल नन्दलाल** का कीर्तन उच्च स्वर से होने लगा और हम लोगों ने पूरी परिक्रमा के दर्शन किये। परिक्रमा के उपरान्त पूज्य बाबा समाधि परिसर में श्रीगिरिराजजी से कुछ दूर पर विराजमान हो गये।

श्रीबंकाजी ने हमलोगों को संकेत से वहाँ बुला लिया। उन्होंने बाबा के समीप जाकर बाबा के हाथों में श्रीरामचरितमानस की पोथी रखी। बाबा ने अपने हाथों से पुस्तक को खोला और कुछ पन्ने पलटने लगे। दादाजी ने कहा—बाबा! यह मेरी पोती श्वेता है। कलकत्ते से आयी है। यह श्रीरामचरितमानस आप इसे प्रदान करें।

बाबा उस वक्त अर्ध-चेतन-अवस्था में थे। श्रीबंकाजी ने बाबा का हाथ पकड़ रखा था। उन्होंने पुस्तक को मेरी ओर बढ़ाया। श्रीभगतजी ने कहा—बिटिया, दूर से आँचल पसारो। बाबा का स्पर्श मत करना।

मैंने अपना आँचल पसार दिया। बाबा ने श्रीरामचरितमानस को मेरे आँचल में प्रदान किया। फिर गीताजी दी। मैंने भूमि पर मस्तक रखकर बाबा को प्रणाम किया। यह क्षण मेरे जीवन का सबसे अनमोल क्षण था। हम लोग दादाजी के साथ पुन: उनके कक्ष में आ गये। श्रीबंकाजी ने कहा—न जाने कौन से जन्म के, कौन से पुण्य के फलस्वरूप यह पुस्तकें तुम्हें बाबा के हाथों से प्राप्त हुई है। इसे बहुत सम्भाल कर कपड़े की बैठन में बाँध कर रखना। अन्य किसी को स्पर्श मत करने देना। प्रतिदिन पाठ करना।

दादाजी ने स्वलिखित पुस्तकें भी मुझे भेंट कीं और अपने स्नेह से सराबोर करके हमें विदा किया। मैं कलकत्ता लौट आई। मेरी सासूजी को

सारा विवरण सुनाया। वे बहुत प्रसन्न हुईं। कुछ महीने बीत गये। जिस प्रकार से दादाजी ने कहा था कि कपड़े की बैठन बनाकर पुस्तकों को सुरक्षित रखना उसी प्रकार से दोनों पुस्तकों के लिये कपड़े की बैठन बनाई गई और उसमें उसको सुरक्षित अलमारी में रख दिया गया।

एक दिन मेरी सासुजी ने मुझसे कहा—तुम्हारे दादाजी ने तो तुम्हें श्रीरामचरितमानस का नित्य पाठ करने के लिये कहा था। तुम तो करती नहीं हो, चलो मेरे साथ, मानस की पुस्तक निकाल लेते हैं।

मैं अपनी सासूजी के साथ गयी और पुस्तकों की अलमारी खोली। श्रीराधाबाबा द्वारा प्रदत्त श्रीरामचरितमानस की पोथी जैसे ही खोली गई उसमें से दिव्य सुगन्ध आ रही थी। अलमारी में अन्य पुस्तकें भी रखी थीं पर उनमें कोई सुगन्ध नहीं थी। मैंने और मेरी सासुजी ने बाबा को प्रणाम किया। बाबा की कृपा से ही हमें ऐसा अनुभव प्राप्त हुआ। उस दिन के बाद से मेरी और मेरी सासूजी की श्रीराधाबाबा और श्रीबंकाजी के प्रति श्रद्धा बहुत बढ़ गई थी। जब मैं यह सारा प्रसंग दादाजी को पत्र में लिखने लगी तो मेरी सासुजी ने कहा—अपने दादाजी को मेरी ओर से भी सादर प्रणाम लिख देना।

मैंने दादाजी को पत्र में श्रीरामचरितमानस में दिव्य सुगन्ध का प्रसंग लिखकर भेज दिया और सासुजी का प्रणाम भी निवेदन कर दिया। कुछ ही दिनों के बाद श्रीबंकाजी का प्रेमभरा पत्र आया जिसमें उन्होंने लिखा था—किसी पूर्वजन्म के पुण्य से तुम्हें यह पुस्तक बाबा द्वारा प्राप्त हुई है। श्रीरामचरितमानस में दिव्य सुगन्ध का अनुभव होना किसी भावी मंगल का संकेत है। श्रीरामचरितमानस का पाठ करती रहना। अपनी सासूजी से कहना—वे लड़के वाले हैं, हम लड़की वाले हैं। वे सदा ही हमसे बड़े हैं। मैं ही उन्हें प्रणाम करूँगा। वे प्रणाम न करें। वे मेरा प्रणाम स्वीकार करें।

मैंने दादाजी का पत्र अपनी सासूजी को दिखाया। उन्होंने कहा—मेरी ओर से अपने दादाजी को उत्तर लिख दो कि हम लड़के वाले हैं तो क्या हुआ, आप उम्र में, ज्ञान में, भक्ति में, हर प्रकार से आप हमसे बड़े हैं। आप मेरा सादर प्रणाम स्वीकार करें।

जब-जब मैं दादाजी को पत्र लिखती मेरी सासूजी प्रणाम लिखवातीं और जब-जब दादाजी का उत्तर आता, वे भी मेरे सास-ससुर को प्रणाम लिखते। यह एक क्रम सा बन गया था। करीब 20-22 साल तक ऐसे ही पत्राचार होता रहा। दोनों एक दूसरे को हर पत्र में प्रणाम निवेदन करते रहे। आज भी दादाजी के लिखे सारे पत्र मेरे पास सुरक्षित रखे हैं। वे मेरे जीवन की अनमोल निधि हैं।

2015 का प्रसंग है। मार्च में मेरी सासूजी अत्यधिक रुग्ण हो गयीं। उन्हें अस्पताल में भर्ती करना पड़ा। डॉक्टरों ने बताया कि उन्हें कैंसर है जो पूरे शरीर में फैल चुका है। मेरी सासूजी को यह नहीं बताया गया था कि उन्हें कैंसर है पर उन्हें यह आभास हो गया था कि उनका शरीर अब अधिक दिन का नहीं है। मृत्यु के दो-तीन दिन पहले उन्होंने मुझसे कहा—श्वेता! तेरे दादाजी को मेरा एक संदेश पहुँचा दे। वे हरदम कहा करते थे कि—हम लड़के वाले हैं और वे लड़की वाले हैं। आज मैं लड़का वाला होने के नाते उनसे कुछ माँगती हूँ। उन्हें कहना मुझे मृत्यु के बाद गोलोक धाम की प्राप्ति हो जाये। मेरी यह माँग उनको पूरी करनी होगी। उन्हें यह संदेश तुरन्त पहुँचा दे।

अस्पताल से आकर मैंने पूज्या श्रीउमा बंका को गोरखपुर फोन किया और सारी बात बता दी। उनसे दादाजी को सारी सूचना पहुँचाने और उनका उत्तर देने का मैंने अनुरोध किया। अगले दिन उनका फोन आया कि उन्होंने सारा समाचार श्रीबंकाजी को दे दिया है। श्रीबंकाजी ने सब कुछ सुन तो लिया है पर कुछ उत्तर नहीं दिया है।

पन्द्रह दिन अस्पताल में रहने के बाद होली पूर्णिमा के दिन प्रातः 6:00 बजे मेरी सासूजी की मृत्यु हो गई। हमलोग सब अत्याधिक शोकग्रस्त हो गये। दादाजी को सूचना दी गई। उन्होंने कहा—जब अर्थी सज जाये और ब्राह्मण संकल्प करवाये तब 'गोलोक धाम प्राप्त्यर्थे' का संकल्प करना। मेरी सासूजी का सारा अन्तिम दैहिक कार्य उसी प्रकार करवाया गया जैसा दादाजी ने कहा था।

कुछ महीने बीत गये। मैं फिर गोरखपुर गयी। जैसे ही मैंने दादाजी के कमरे का द्वार खोला और प्रवेश किया, अभी मैंने उन्हें प्रणाम भी नहीं किया था, इससे पहले ही दादाजी ने अति प्रसन्न होते हुए कहा—लाली! तेरी सासूजी को गोलोक धाम की प्राप्ति हो गयी है। चिन्ता मत करना। वे बड़ी प्रसन्न हैं।

मैं तो दादाजी की वाणी सुनकर अवाक् रह गई। एक तो इस बात की प्रसन्नता थी कि मेरी सासूजी अब श्रीप्रिया-प्रियतम के दिव्य गोलोक धाम में हैं और इससे भी अधिक प्रसन्नता इस बात की हो रही थी कि दादाजी ने कितनी कृपा की है। कितना सामर्थ्य है उनमें और सबसे अपने आपको कितना छिपा कर रखते हैं। मैं उनके श्रीचरणों में बारम्बार प्रणाम कर रही थी और उन पर बलि-बलि जा रही थी।

****

परिवार वालों पर कृपा

2015 में कूल्हे की हड्डी टूटने के बाद श्रीबंकाजी अपनी चौकी पर ही रहे। वे खड़े नही हो सकते थे। दिन-प्रतिदिन उनका शरीर कमजोर होता गया और वजन कम होने लगा। प्रातः वे गाय का दूध लेते थे और दोपहर में दो छोटी-छोटी रोटी श्रीउमा बंका के द्वारा मँगवाते जिसमें से गाय के लिये डेढ़ रोटी निकाल देते और मात्र आधी रोटी स्वयं खाते थे। उनका शरीर सूखकर बिल्कुल कंकाल मात्र हो गया था पर मुख पर भजन का तेज पहले के जैसा ही था। धीरे-धीरे उनको सुनना भी बन्द हो गया और सदा नाम-जप करने के कारण उनकी बोलने की भी रुचि नहीं होती थी अतः जो भी उनके पास आता वह उनसे लिख कर बात किया करते थे। अपने जीवन के अन्तिम दिन तक वे बैठकर, कलम लेकर, लिख कर बातें किया करते थे।

2019 में मेरा बड़ा पुत्र देवर्षि भुवालका गीताप्रेस का ऑडिट करने के लिये गोरखपुर गया और पन्द्रह दिनों तक वहीं रहा था। श्रीबंकाजी को यह जानकर बहुत अधिक प्रसन्नता हुई कि वह चार्टर्ड अकाउंटेंट बन गया है और गीताप्रेस का ऑडिटर भी है। देवर्षि ने श्रीबंकाजी से कहा—बड़े नानाजी! मैं

श्रीशालिग्रामजी की सेवा करना चाहता हूँ। आप मुझे अपने शालिग्रामजी प्रदान कीजिये जो आपको बाबूजी ने दिये थे।

देवर्षि की बात सुनकर श्रीबंकाजी कुछ विचार में पड़ गये, फिर उससे कहा—बाबूजी द्वारा प्राप्त तीन वस्तुएँ हैं मेरे पास। बाबूजी द्वारा प्रदत्त शालिग्रामजी, महामंत्र और दिव्य पुष्प। इन तीनों को श्रीराधाकृष्ण साधना मन्दिर में स्थापित करने का निर्णय मैंने ले लिया है पर मैं तुमको भी निराश नहीं कर सकता हूँ इसलिये तुमको एक दूसरा शालिग्रामजी देता हूँ।

इतना कहकर श्रीबंकाजी ने एक नवीन शालिग्रामजी मँगवाया और उन्हें बाबूजी वाले शालिग्रामजी के एकदम समीप विराजमान किया और बहुत देर तक दोनों शालिग्रामजी की पूजा करते रहे। फिर नवीन शालिग्रामजी को अपने हाथ में लेकर बाबूजी वाले शालिग्राम से स्पर्श करवाया और देवर्षि के हाथों में देते हुए कहा—तुम सच मानो इनमें और उनमें तनिक भी भेद नहीं है। यह नवीन शालिग्रामजी आज से तुम्हारे हुए। इनकी पूजा कैसे करनी है वह सब विधि मैं तुमको अभी बताऊँगा और लिख कर भी दूँगा जिससे भविष्य में तुम्हें याद रहे। नित्य इनकी पूजा करना और उसी भाव से करना कि यह बाबूजी द्वारा ही प्रदान किये हुए हैं।

देवर्षि ने अपने दोनों हाथों में श्रीबंकाजी के द्वारा प्रदत्त शालिग्रामजी को, अपना परम सौभाग्य मानकर, सम्भाला और उनके श्रीचरणों में प्रणाम किया। **रंकन्ह राय रासि जनु लूटी॥** श्रीबंकाजी के नेत्रों में आनन्दाश्रु थे और हृदय आशीर्वाद से भरा हुआ था। उन्होंने वरद मुद्रा में मंगल आशीर्वाद की झड़ी लगा दी—परम मंगल हो, परम मंगल हो, परम मंगल हो!

श्रीबंकाजी और देवर्षि दोनों भाव-विभोर हो रहे थे। श्रीबंकाजी ने अपने हाथों से देवर्षि के गले में तुलसी कण्ठी पहनाई और शालिग्राम पूजा की सम्पूर्ण विधि को उसे समझाया और लिख कर भी दिया। **राउर जा पर अस अनुरागू॥**

अगले वर्ष जब मैं सपरिवार श्रीबंकाजी से मिलने गई तब, दिवाली के

बाद अन्नकूट के दिन, उन्होंने मेरे पति को, मुझे और मेरे छोटे पुत्र ऋषि को भी तुलसी कण्ठी पहनाई और देवर्षि को अपनी चरण-पादुका प्रदान करके निहाल कर दिया। **प्रभु करि कृपा पाँवरीं दीन्हीं। सादर भरत सीस धरि लीन्हीं॥** वह दिन हमारे जीवन का सर्वश्रेष्ठ दिन था। उस दिन की स्मृति और दादाजी का हँसता हुआ मुख, आज भी नेत्रों के सामने है। **प्रभुता तजि प्रभु कीन्ह सनेहू ॥**

श्रीबंकाजी की उम्र 93 के आस-पास थी। उनको यह आभास हो गया था कि अब उनका शरीर अधिक दिन का नहीं है। उन्होंने अपनी अलमारियों से पुस्तकें यथायोग्य व्यक्तियों को देना प्रारम्भ कर दिया था। जो भी व्यक्ति उनसे मिलने आता वह उनके कक्ष से पुस्तक लिये बिना नहीं जाता। बहुत सारी पुस्तकें तो उन्होंने सन्तों के आश्रम में वृन्दावन-अयोध्या भेज दीं।

पडरौना से श्रीबंकाजी के छोटे भाई श्रीविनोद कुमार बंका उनसे मिलने आये थे। पूज्य बाबा द्वारा प्राप्त जप-माला उन्होंने दीक्षा देकर श्रीविनोद को प्रदान की और अपने मन्दिर के श्रीविग्रह श्रीराधामाधव, माँ त्रिपुरसुन्दरीजी, श्रीगणेशजी प्रदान किये। यह सारे विग्रह आज उसी कक्ष में विराजमान है जहाँ पडरौना में श्रीबंकाजी का जन्म हुआ था। वहीं बंका परिवार के द्वारा सभक्ति पूजित हैं। श्रीबंकाजी की सेवा में सतत् संलग्न, शिवराज भैया को उन्होंने अपने श्रीहनुमानजी प्रदान किये।

जब 94 वर्ष की उम्र में श्रीबंकाजी अतिशय रुग्ण हो गये तब, अपने जीवन की अमूल्य निधि, बाबूजी द्वारा प्राप्त शालीग्रामजी, महामन्त्र और दिव्य पुष्प को उन्होंने श्रीराधाकृष्णसाधना मन्दिर, गीतावाटिका में विराजमान कर दिया।

****

श्रीबंकाजी की आध्यात्मिक स्थिति

एक दिन श्रीबंकाजी के कक्ष में एकान्त अवसर पाकर मैंने उनसे कहा—दादाजी! मुझे आप अपनी आध्यात्मिक स्थिति के बारे में कुछ बतायें।

सदा की भाँति आत्मसंगोपन स्वभाव से प्रेरित होकर श्रीबंकाजी ने मेरी बात को टालते हुए उत्तर दिया—लाली! इसमें बताना क्या है ? बाबूजी-बाबा के सहारे यहाँ गीतावाटिका में पड़ा हूँ। मैं गरीब आदमी भला कर भी क्या सकता हूँ , जो करना है वे ही करेंगे, वे परम समर्थ हैं।

उनके उत्तर को सुनकर मैं मुस्कुराने लगी। मैंने कहा—दादाजी! यह उत्तर आप दूसरों को दीजियेगा, मुझे निराश मत कीजिये। अपने बारे में कुछ बतायें।

श्रीबंकाजी भी मुस्कुराने लगे। उन्होंने मन्द-मन्द हँसते हुए कहा—लाली! बाबूजी-बाबा अपने आश्रित निजजनों को मधुर-भाव की निकुंज उपासना बताया करते थे। इस गोपी-भाव की उपासना का विस्तृत वर्णन बाबूजी ने अपने अद्भुत ग्रन्थ श्रीराधामाधव चिन्तन में किया है। मैं भी उसी के अनुसार भावना करने का प्रयास करता हूँ। यह गोपी-भाव की साधना, साधन-सापेक्ष नहीं है। यह तो गुरूजनों के कृपा-सापेक्ष है।

श्रीबंकाजी की बातों को सुनकर मुझे पूरा अनुमान हो गया कि वे अपने बारे में कुछ भी बताना नहीं चाहते हैं। उनकी बात को बीच में ही काटते हुए, बाल सुलभ हठ करते हुए मैंने कहा—दादाजी! सिद्धान्त पक्ष की बातें आप मुझे बता रहे हैं जबकि आप भली प्रकार से जानते हैं कि मैं आपसे आपकी निजि अनुभूतियों के बारे में प्रश्न कर रही हूँ। प्रशान्त महासागर ऊपर से अत्यन्त गम्भीर दीखता है पर उसमें अनन्त मोती होते हैं। ठीक ऐसे ही आप भी हैं, आप मधुर-मधुर लीला रस की बातों को छिपाकर मुझे केवल सिद्धान्त-पक्ष की ही बातें बता रही हैं। आज तो कृपा करके अपनी अनुभूतियों के बारे में, अपनी आध्यात्मिक स्थिति के बारे में कुछ बताइये। मुझसे मत छिपाइये।

मेरी मनुहारों को सुनकर कुछ देर तो श्रीबंकाजी एकदम मौन रहे फिर कृपा पूर्वक उन्होंने अपनी एक बहुत पुरानी डायरी निकाली और उसमें कुछ पत्रों को उलट-पलट करते रहे। मेरे प्रश्न के उत्तर में उन्होंने अपने मुख से तो कुछ नहीं कहा पर डायरी में से, कुछ देर के बाद एक पृष्ठ निकाल कर मुझे पढ़ने को दिया। उस पृष्ठ पर जो लिखा हुआ था वह नीचे दिया जा रहा है।

॥ श्री हरिः ॥

निकुंज महल के चारों ओर फुलवारी है। फुलवारी के चारों ओर उद्यान है। उद्यान के चारों ओर उपवन है। उपवन के चारों ओर विशाल वन है। विशाल वन का विस्तृत फैलाव ही निकुंज-राज्य की सीमा है। सीमा के चारों ओर की लम्बाई कितनी है, इसका अनुमान लगा सकना कठिन है।

एक बार किसी कार्य से चलती हुई मैं निकुंज-राज्य की सीमा के प्रवेश द्वार तक आ जाती हूँ। प्रवेश द्वार पर आते ही एक विचित्र दृष्य देखने को मिलता है। श्रीगणपतिजी अपने गणों के साथ निकुंज-राज्य की परिक्रमा लगा रहे हैं कि कोई विघ्न इस राज्य के भीतर प्रवेश न करने पाये। नव-ग्रह प्रवेश द्वार के सामने भूमि पर लोट करके प्रणाम कर रहे हैं। विप्र रूप धारण करके चारों वेद परस्पर में कह रहे हैं कि इस निकुंज-राज्य की गाथा की कहीं कोई इति नहीं है।

श्रीवाल्मीकि, व्यास, याज्ञवल्कय आदि महर्षि हाथ जोड़कर निकुंज-राज्य की स्तुति कर रहे हैं। चारों सनकादिक द्वार की रज को बार-बार अपने भाल पर लगा रहे हैं। अपने हजार फणों से श्रीशेषजी श्रीप्रिया-प्रियतम के पावन नाम का संकीर्तन कर रहे हैं। ब्रह्मा-विष्णु-महेश, ये त्रिदेव, विभोर वाणी में निकुंज-राज्य की जय-जयकार बोल रहे हैं।

सभी मेरे लिए नित्य वन्द्य हैं। मैंने कहा—आप सभी भीतर आयें और विश्राम करें।

सभी ने एक स्वर से कहा—प्रवेश करने का हमें अधिकार नहीं है। यही हमारा सौभाग्य है कि इस प्रवेश द्वार की रज मिल गयी है।

मैं मन-ही-मन सोचने लगती हूँ कि ऐसे महान निकुंज-राज्य में मेरा नित्य प्रवेश और नित्य निवास है। यह कितने बड़े सौभाग्य की बात है! युग-युगान्तर तक यह सौभाग्य नित्य-निरवधि बना रहे, ऐसा कब होगा?

उपर्युक्त डायरी के पृष्ठ को पढ़कर मेरे नयनों से अश्रु-धारा बहने लगी। श्रीबंकाजी ने अत्यन्त त्वरापूर्वक वह डायरी मुझसे वापस ले ली और जबतक उनका शरीर इस धरा पर रहे, तबतक यह बात किसी को भी नहीं बताने के लिए कहा। मैं उनके श्रीचरणों में बार-बार प्रणाम कर रही थी, उनके दिव्य सखी स्वरूप को भी बारम्बार प्रणाम कर रही थी, और उनके सौभाग्य पर बलि-बलि जा रही थी।

बाद में यह प्रसंग और उनकी डायरी के अन्य सभी पृष्ठ उनकी पुस्तक अभिलाषामृत में प्रकाशित हुए हैं।

****

श्रीहनुमानजी के दर्शन

प्रसंग सन् 2021 का है। एक दिन श्रीबंकाजी ने अपने सेवक शिवराज को पुकारते हुए कुछ उच्च स्वर से कहा—ए शिवराज! जल्दी से आओ। मुझे तुरन्त खड़ा करो। जल्दी आओ।

शिवराज तुरन्त उनके पास आया। उसे श्रीबंकाजी की बात सुनकर बहुत आश्चर्य हुआ। उसने कहा—बाबू! आप यह क्या बोल रहे हैं? पिछले 5-6 साल से तो आप कभी एक क्षण के लिये भी खड़े हुए नहीं हैं। हम आपको कैसे खड़ा कर सकते हैं। आप गिर जायेंगे।

श्रीबंकाजी ने अपने कक्ष के दरवाजे की ओर इशारा करते हुए कहा—वहाँ देखो, श्रीहनुमानजी महाराज साक्षात खड़े हुए हैं। तुम मुझे खड़ा करो। मैं उनको प्रणाम करूँगा। जल्दी से मुझे खड़ा करो।

शिवराज ने द्वार की ओर देखा जहाँ श्रीबंकाजी ने इशारा किया था। उसे वहाँ कोई दिखाई नहीं दिया। उसने फिर श्रीबंकाजी से कहा—बाबू, वहाँ कोई नहीं है। आप किसकी ओर इशारा कर रहे हैं?

श्रीबंकाजी ने कहा—तुमको भले ही श्रीहनुमानजी महाराज का दर्शन न हो रहा हो पर वे तुमको देख रहे हैं। वे वहीं खड़े हैं। हम दोनों को देख रहे हैं। मुझे तुरन्त खड़ा करो। मैं उनको प्रणाम करूँगा।

श्रीबंकाजी के शब्दों की दृढ़ता को देखकर शिवराज ने बहुत डरते-डरते उन्हें खड़ा करने का प्रयास किया। क्या ही आश्चर्य की बात कि जो व्यक्ति विगत पाँच-छ: वर्षों से अपनी चौकी से उठा न हो, आज थोड़ा सा सहारा लगाते ही वे सीधे खड़े हो गये। श्रीबंकाजी ने अपने दोनों हाथ जोड़कर श्रीहनुमानजी महाराज को सादर प्रणाम किया। शिवराज उनके पीछे की ओर से उन्हें कस कर पकड़े खड़ा रहा।

श्रीबंकाजी की और श्रीहनुमानजी महाराज की आपस में कुछ बातचीत भी हुई जिसे शिवराज समझ न सका। फिर कुछ देर के बाद श्रीबंकाजी अपनी

चौकी पर बैठ गये और शिवराज को उस भूमि को प्रणाम करने के लिये कहा जहाँ श्रीहनुमानजी महाराज खड़े थे।

शिवराज ने यह सारा प्रसंग फोन द्वारा हम लोगों को बताया। श्रीबंकाजी को साक्षात श्रीहनुमानजी महाराज के दर्शन हुए हैं, यह जानकर हम लोगों को बहुत प्रसन्नता हुई। मेरे बड़े पुत्र देवर्षि भुवालका ने उनके कक्ष में जाकर उस स्थान को प्रणाम किया जहाँ श्रीहनुमानजी खड़े हुए थे और उसने श्रीबंकाजी के सामने वहाँ पर अखण्ड श्रीरामचरितमानस का पाठ भी किया।

****

परलोक गमन

श्रीहनुमानजी महाराज का साक्षात दर्शन जिनको हो जाता है, उस व्यक्ति को पूरी-पूरी उम्मीद हो जाती है कि अब श्रीप्रिया-प्रियतम के मिलने में विलम्ब नहीं है। श्रीबंकाजी के साथ भी कुछ ऐसा ही हुआ। उन्हें पूरी उम्मीद हो गयी कि अब श्रीप्रिया-प्रियतम के साक्षात दर्शन उन्हें होने वाले हैं। ध्यान में तो उन्हें सदा लीला दर्शन होते ही थे पर उनके नयन श्रीप्रिया-प्रियतम के साक्षात दर्शन के लिये तड़प रहे थे।

श्रीहनुमानजी महाराज के दर्शन के बाद से श्रीबंकाजी का भोजन और कम हो गया और बोलना तो उन्होंने बिल्कुल ही बन्द कर दिया था। हर वक्त में नाम-जप करते रहते और लीला-चिन्तन में डूबे रहते। उनके मुख पर मन्द मुस्कान थी और भक्ति का तेज उनकी आँखों में था। जो-जो कार्य भगवान को उनसे करवाने थे वह सब भली-भाँति पूर्ण हो चुके थे। श्रीबंकाजी ने साहित्यिक रचनाओं का प्रणयन किया है। पूज्य बाबूजी-बाबा का अनन्त यश-गायन उनके द्वारा हो चुका था। अब समय आ गया था कि उनको उनकी साधना का पूर्ण फल प्राप्त हो।

श्रीबंकाजी ने श्रीराधा-माधव के धाम में जाने के लिये मानसिक रूप से स्वयं को तैयार कर लिया था। 'तैयार कर लिया था', कहना भी हमारी दृष्टि से ही है, वे तो पल-पल श्रीप्रिया-प्रियतम के समीप जाने के लिये तरस रहे

थे। अनेक बार वे कह चुके थे कि चौकी पर मल-मूत्र का त्याग करना नरक के समान है। मैं तो मृत्यु की प्रतीक्षा कर रहा हूँ।

पूज्य बाबा कहा करते थे—'वस्तु की प्राप्ति के लिये चातक व्रत आवश्यक है। चातक सागर-सरिता-सरोवर का जल नहीं पीता। वह जल लेगा तो केवल मेघ से ही लेगा अन्यथा प्यासा ही रहेगा।' श्रीबंकाजी का एक ही चातक व्रत था कि मैं बाबूजी-बाबा का हूँ और मैं उनकी गोद में, गीतावाटिका में हूँ। बस इतना ही मैं निभा सका, बाकी वे स्वयं निभायेंगे। उनके नेत्रों से कभी तो प्रेमाश्रुओं का अविरल निर्झरण था तो कभी प्रेमाश्रुओं का नितान्त संगोपन। कभी भाव तरंगों का उन्मुक्त उच्छलन था तो कभी भाव-तरंगों का नितान्त गाम्भीर्य था।

बाबूजी-बाबा तो सदा श्रीबंकाजी के हृदय में थे ही, उन्होंने अनन्त बार श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार स्मारक समिति को प्रणाम किया जिसने इतने वर्षों से उनको आश्रय दे रखा था और समय-समय पर उनकी सम्भाल की थी। गीतावाटिका के एक-एक व्यक्ति के प्रति उनके मन में अत्यधिक श्रद्धा और आशीर्वाद के भाव थे। जिस-जिस व्यक्ति ने उनकी जितनी-जितनी सेवा की थी उन सबके प्रति वे हृदय से विनत थे। श्रीबंकाजी 60 साल गीतावाटिका में रहे और अखण्ड रूप से 60 वर्षों तक श्रीराधष्टमी महोत्सव गीतावाटिका में ही मनाया।

श्रीबंकाजी अकसर कहा करते थे—मैं जब इस शरीर को छोड़कर जाऊँ तब एकमात्र मेरे कक्ष की मूक दीवारें हों और मेरे श्रीप्रिया-प्रियतम हों, अन्य कोई भी समीप न हो। ठीक ऐसा ही हुआ। जीवन भर उन्होंने श्रीरामचरितमानस का पाठ किया था और श्रीसीताजी से प्रार्थना की थी, माँ भगवती श्रीमहात्रिपुरसुन्दरी से प्रार्थना की थी। आज उस विनती के सफल होने का दिन आ गया था। सीता नवमी के अगले दिन जब श्रीसीताजी के प्राकट्य का दधि-काँदो उत्सव मनाया जा रहा था, ठीक उसी समय 11 मई 2022 को प्रात:काल उन्होंने परलोक गमन किया।

प्रातः उन्होंने नाम-जप करने के बाद थोड़ा-सा फल प्रसाद खाया था और अपने सेवक शिवराज को गौशाला से दूध लाने के लिए भेज दिया। उनके कक्ष में उनके सिवा कोई नहीं था। गीतावाटिका की पावन भूमि में 1962 से अखण्ड वास करते हुये, वाटिका निधि श्रीबंकाजी बिना किसी कष्ट के, प्रसन्नतापूर्वक 11 मई 2022 को अपने बाबूजी-बाबा श्रीराधा-माधव के धाम में चले गये।

****

अन्तिम निवेदन

पूज्य बाबूजी एवं पूज्य बाबा के प्रति श्रीबंकाजी का मूक अन्तिम निवेदन उन्हीं के शब्दों में—

सब चिराग बुझा दिये, इक चिराग जला दिया।
दो आखों से देख, तुझे दिल में बसा लिया॥
तुम अमीर हो मैं गरीब हूँ, किन्तु रिश्ता अजीब है।
जब भी मैंने खता की, तुमने छाती से लगा लिया॥

(यहाँ 'इक चिराग' से अर्थ है श्रीबंकाजी का और पूज्य बाबूजी एवं पूज्य बाबा का सम्बन्ध।)

अन्तिम निवेदन—

नाम तेरा है काम तेरा है आदि अन्त तक सत्य यही है।
भले लेखनी चलती रहती उर प्रेरक तुम तथ्य यही है॥

ज्ञात नहीं है लिखा गया क्या जो-जो भाव उभरते मन में।
क्रमशः लगे उतरने सब वे श्वेत पत्र पर श्यामाक्षर में॥

लिखा गया है जो कुछ भी वह चुप-चुप तुमने ही बतलायी।
तुतली बोली मातु-पिता को लगे सदा ही अति मन भायी॥

खारा-खोटा, कुटिल-कसैला, जैसा भी हूँ तेरे सम्मुख।
नत मस्तक हूँ , सदा रहूँगा और कहूँ क्या अपने निज मुख॥

देवर्षि नारद, अंगिरा के ऋषि-मुनियों के युगल चरणों को।
गोशालाकी गोमाताको गोमाताकी शुचि पद-रज को॥

माँ-बाबूजी, बाबा, गोस्वामी, चतुर्जनोंके शिव पद-रज को।
जो भी त्रुटि हो क्षमा करें अब शीश नवाकर कहता सबको॥

वस्तुतः सचल गोवर्द्धन जो, उन प्रणम्य श्रीपण्डितजी को।
वेणु विनोद कुंज गरिमाको, रसमय श्रीबालकृष्णजी को॥

मानस के मर्मज्ञ कहलाते, नित सरस श्रीकृपाशंकर को।
भक्त चरितके रसमय वक्ता वन्दनीय श्रीमामाजी को॥

साधु-संत-महर्षि-भक्तादिक हुआ आगमन यहाँ सभी को।
उर-प्रेरक, भाव-सुपोषक, पावन-ललित, नेह-निकुंज को॥

निरुपमेय नेह निकुंज के अति पावन मनभावन परिसर को।
शुचितम परिसर की फुलवारी वहाँ चहकते पक्षीगण को॥

बाबा द्वारा स्वयं प्रतिष्ठित समर्थ श्रीगोवर्द्धन गिरि को।
श्रीगिरिराज तथा परिक्रमा समय उपस्थित सभी जनों को॥

राधाकृष्ण साधना परिसर अखण्ड भगवन्नाम कीर्तन को।
कथा श्रवणार्थ मन्दिर दर्शन करने आते सब सुजनों को॥

श्रीगीतावाटिका भूमिको इसके हर पथ गलियारे को।
व्याप्त वाटिका में सब थलपर, परम समर्था श्रीरजरानी को॥

वाटिका निवासी नर-नारी को, वृक्ष-लताको पत्र-पुष्प को।
दिशा-दिशा में व्याप्त सदा ही सुन्दर मनहर हरियाली को॥

भारत भू पर यत्र-तत्र जो अपने निज-जन सभी जनों को।
जो भी स्मृति में उभर न पाये, क्षमा करें, उन सभी जनों को॥

मन्दमति हूँ, अल्पगति हूँ बतलाऊँ क्या जीवन सबको।
लक्ष्य सिद्धि न हुई अभी तक, परम खेद है इसका मुझको॥

ऐसा कोई तनिक न समझें बना-बनाकर कहूँ बात को।
अपने अन्तरकी कहता हूँ सतत कोसता मन्द भाग्य को॥

करें अनुग्रह वर्षा मुझ पर हाथ जोड़कर कहता सबको।
जीवनाराध्य परम प्रियतम की पराभक्ति मिल जाये मुझको॥

एक-एक करके गीतावाटिका की ये अद्भुताद्भुत एवं सीमातीत लोकोत्तर विभूतियाँ आँखों से ओझल हो गयीं। समय का प्रवाह अतिशय प्रबल है। कोई माने या न माने, उसकी गहरी स्मृति मेरे भावुक अन्तरको सदा मथित-व्यथित करती रहती है। भीगते कपोलों को कमरे की दीवारें चुपचाप देखती रही हैं।

जमीन का कागज हो अरु समन्दर हो रोशनाई का।
फिर भी बयाँ न कर पाऊँ, किस्सा दिल से जुदाई का॥

युगलचरणाश्रित
राधेश्याम बंका

(श्रद्धेय बाबूजीकी सहधर्मिणी परम पूज्या श्रीरामदेईजी पोद्दार)

पूज्या माँ को शत-शत वन्दन।
जिनके पावन चरण-कमल में नन्दन वन का सुन्दर उपवन॥
तेरे चरण-कमल पर प्रतिदिन सदा करूँ सुमनों को अर्पित।
युग पद की कोमलता ऐसी पुष्पों का लालित्य समर्पित॥
तेरा वरद हस्त नित रहता आगत जन के नत मस्तक पर।
वरद हस्त की अतुल अमोघता सबकी पीड़ा को लेती हर॥
नयनों में ममता के जलकण दयालुता से प्रतिपल छल-छल।
पुलकित वपु पर-हित से अतिशय तेरे सम्मुख नत हूँ प्रतिपल॥

अब परम पूज्या माँ से मुझ अकिंचनात्मा की कातर प्रार्थना है—

वत्सलता की प्रतिमा अनुपम।
दिव्य गुणों की लोकोत्तर निधि अत: रही तू नित ही निरुपम॥
अविवाहित कन्या हो विधवा सदा सोचती उनके हितकी।
सबको गुप्त रूप से देना कहीं न कोई तुलना इसकी॥
जो भी आता तथा माँगता मुँह-माँगा उसको था मिलता।
शरणागत के मनकी रखना यही सदा मन में था रहता॥
मैं भी शीश झुकाकर कहता पूज्ये! मेरी बात बना दो।
टाल न पायें तेरी बातें बाबूजी से भक्ति दिला दो॥

****

श्रीराजेन्द्रदासजी महाराज के भावोद्गार

श्रीबंकाजी के महाप्रयाण के बाद अनेक तीर्थ स्थानों पर उनके नाम से भण्डारे हुए। उनके जन्म स्थान पडरौना में, सम्पूर्ण बंका परिवार के बीच उनकी बारहवीं का कार्य और गौ-दान सम्पन्न हुआ। गीतावाटिका में श्रीराधाबाबा द्वारा स्थापित श्रीगिरिराजजी का भव्य भोग और गौदान, काशी में मारवाणी सेवा संग में सन्त भण्डारा, अयोध्या में श्रीबाटी बाबा के आश्रम पर सन्त भण्डारा और श्रीसियाजू बाबा के आश्रम पर सन्तों का भण्डारा सम्पन्न हुआ। वृन्दावन में श्रीमलूकपीठ पर विशाल सन्त भण्डारा और दानघाटी, श्रीगोवर्धन गीतावाटिका में भोग भण्डारा हुआ।

श्रीमलूकपीठ भण्डारे में परम पूज्य श्रीमलूकपीठाधीश्वर श्रीराजेंद्रदासजी महाराज स्वयं उपस्थित थे। श्रीमलूकपीठ के बड़े हाल में करीब 250 सन्त एक पंगत में बैठे थे और **सिया हरि नारायण गोविंद** का उद्दाम कीर्तन हो रहा था। कीर्तन के बाद श्रीमहाराजजी ने स्वयं जय जयकार कुछ इस प्रकार से करवाया।

परम पूज्य भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार की जय!
परम पूज्य श्रीराधाबाबा की जय!

उनके अति प्रिय परिकर श्रीराधेश्याम बंकाजी की जय!
उनके गुरु गोविन्द की जय!
उनके बंका कुल की जय!
उनके माता-पिता की जय!
उनके अपूर्व साहित्य की जय!
उनके प्रेमी भक्तों की जय!

उन दिनों वृन्दावन के श्रीवेणुविनोद कुंज में पूज्य श्रीराजेन्द्रदासजी महाराज की कथा हो रही थी। इसी कथा के बीच में उन्होंने श्रीबंकाजी का भावपूर्ण स्मरण, वन्दन किया। उन्हीं की वाणी से निकले शब्द यहाँ दिये जा रहे हैं।

श्रीमलूकपीठाधीश्वर पूज्य श्रीराजेन्द्रदासजी महाराज ने मंच पर से कहा—

आज एक बहुत दिव्य विभूति का पावन स्मरण है। गोरखपुर, गीतावाटिका में श्रीराधेश्याम बंकाजी, जिन्हें बहुत लम्बे समय तक परम श्रद्धेय प्रातः स्मरणीय पूज्य श्रीभाईजी (रस-घन-मूर्ति श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार) का सान्निध्य प्राप्त हुआ। परम पूज्य श्रीराधाबाबा का सान्निध्य प्राप्त हुआ। पूज्य श्रीमहाराजजी (श्रीबालकृष्णदासजी महाराज) का सान्निध्य प्राप्त हुआ। श्रीब्रजवास के अवसर पर पूज्य पण्डितजी (श्रीगयाप्रसादजी महाराज) का सान्निध्य प्राप्त हुआ। ऐस-ऐसे दिव्य महत्तपुरुषों की छत्र-छाया में, स्नेह-दुलार में जिन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन व्यतीत किया और ऐसे ही नहीं किया! हमको तो लगता है कि इन महापुरुषों के भाव के प्रकाश के लिए ही ठाकुर जी ने श्रीराधेश्याम बंकाजी को धरती पर भेजा था।

जो अपूर्व साहित्य उन्होंने प्रस्तुत किया है—वाटिका के पत्र पुष्प, महाभाव निमग्न श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार, प्रीतिरसावतार श्रीराधाबाबा, प्रणाम वल्लरी आदि आदि जो ग्रन्थ उन्होंने लिखे हैं, उनके माध्यम से आज न जाने कितने जीवों को लाभ प्राप्त हो रहा है।

ऋषिकेश में पूज्य श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार को ठाकुरजी का दर्शन हुआ

और उन्होंने कुछ पुष्प श्रीभाईजी को दिये। उन पुष्पों में से कुछ पुष्प प्रसन्न होकर भाईजी ने बंकाजी को दिये। वो उनके पास हमने कई बार दर्शन किये हैं। भाईजी ने अपने सेवित चक्रांकित शालीग्रामजी श्रीबंकाजी को प्रदान किये।

ऐसे महत्तपुरुषों का अतिशय स्नेह दुलार जिन्हें प्राप्त हुआ वे पूज्य श्रीबंकाजी श्रीगीतावाटिका की एक अनुपम सुगन्ध थे। वे अब श्रीनित्य निकुंज में श्रीप्रिया-प्रियतम की नित्य सेवा में प्रविष्ट हो गये हैं। जहाँ सभी पूर्वाचार्य विराजमान है वहीं पहुँच गये हैं। हमलोगों के लिए तो एक क्षति हुई क्योंकि उनके मंगलमय दर्शन से हमलोग वंचित हो गये हैं।

श्रीराधेश्याम बंकाजी को भगवद्धाम गये आज 15 दिन हो गये हैं। आज उनकी पावन स्मृति में मलूकपीठ में ठाकुरजी को भोग लगेगा और सन्तजन प्रसाद भी पायेंगे। आज हम उनका पावन स्मरण करते हैं और उनको वन्दन करते हैं।

****

श्रीबंकाजी के द्वारा लिखित पुस्तकें

श्रीबंकाजी के द्वारा लिखित पुस्तकें जो उनके नाम से प्रकाशित हैं—

- **प्रणाम वल्लरी**
- **वाटिका के पत्र पुष्प (4 भाग)**
- **महाभाव निमग्न श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार (3 भाग)**
- **प्रीतिरसावतार श्रीराधाबाबा (2 भाग)**
- **वाटिका वातायन**
- **वाटिका वेणु**
- **वाटिका वीथि**
- **वाटिका वैभव**
- **माँ और बाबूजी (4 भाग)**
- **परिकर मालिका (4 भाग)**
- **लीलावलि (2 भाग)**

वाटिका निधि

- अभिलाषामृत
- प्रियतम सौरभ (3 भाग)
- श्रीपोद्दारजी एक आध्यात्मिक विभूति
- प्रसंगावलोक
- प्रसंग सरोवर
- गुरुजी जीवन प्रसंग (2 भाग)
- गिरिराज गुंजन
- बाबा की जीवनी पर नाटक
- स्मारिका

श्वेता भुवालका जी मैया

प्रकाशक :

योगेन्द्रनाथ बंका

गोलघर, गोरखपुर—273006

वितरक :

अनुराग बंका

गोरखपुर मशीनरी स्टोर्स, जलकल-भवन, गोलघर

गोरखपुर—273001

फोन : (0551) 2333020, 3299038

पुस्तक-प्राप्ति स्थान :

साहित्य-मन्दिर
गीतावाटिका,
गोरखपुर-273006
मो0—9793835808

खण्डेलवाल एण्ड सन्स
अठखम्भा बाजार,
वृन्दावन—281121
फो0-(0565) 24431001, 2442100

प्रकाशन-तिथि :

२३ सितम्बर २०२३, वि० सं० 2080 भाद्र शुक्ल अष्टमी

(श्रीराधाष्टमी-महोत्सव दिवस)

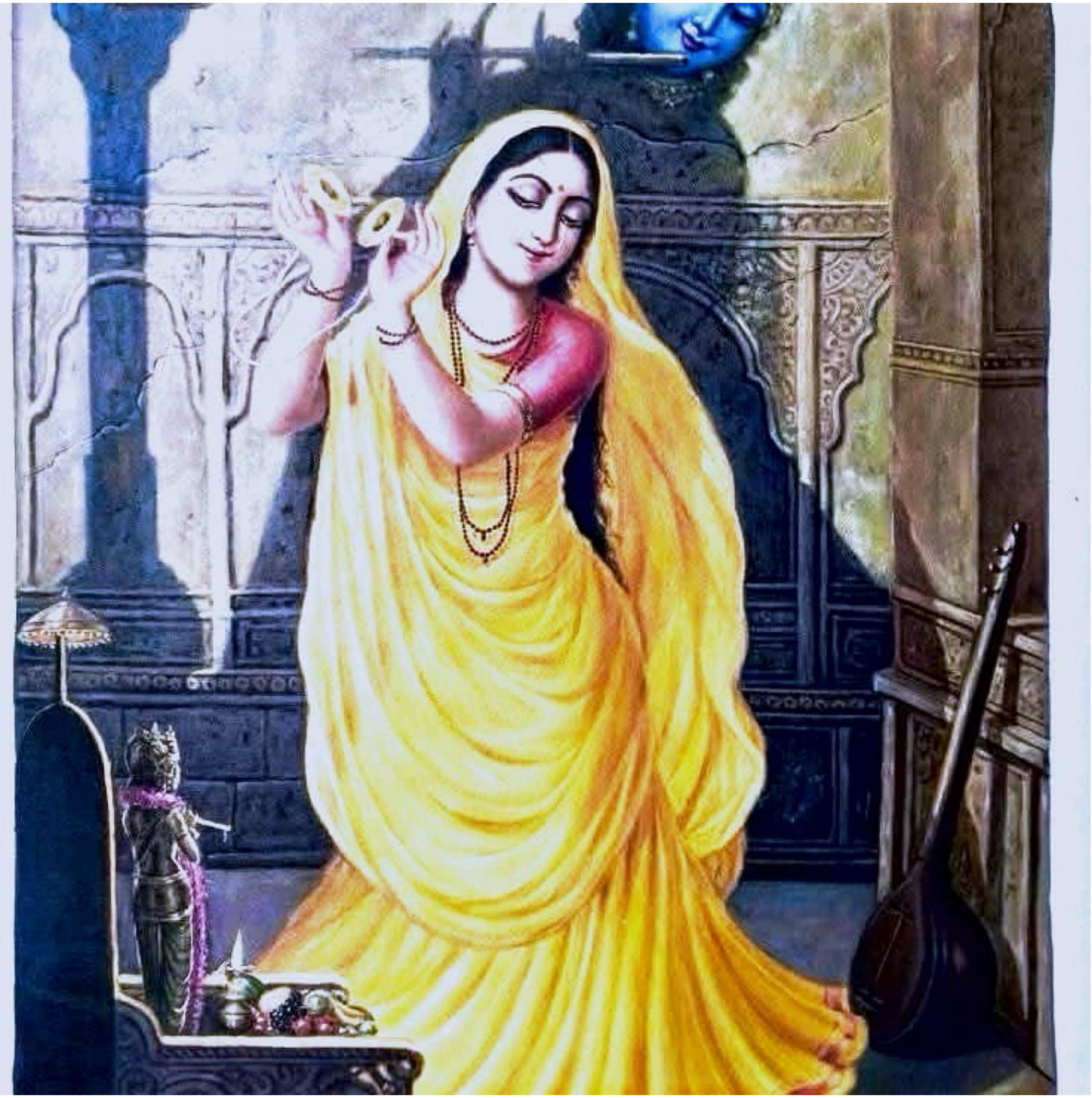

श्रीललिताजी

श्रीविशाखाजी

श्रीचित्राजी

श्रीइन्दुलेखाजी

श्रीचम्पकलताजी

श्रीरंगदेवीजी

श्रीतुंगविद्याजी

श्रीसुदेवीजी

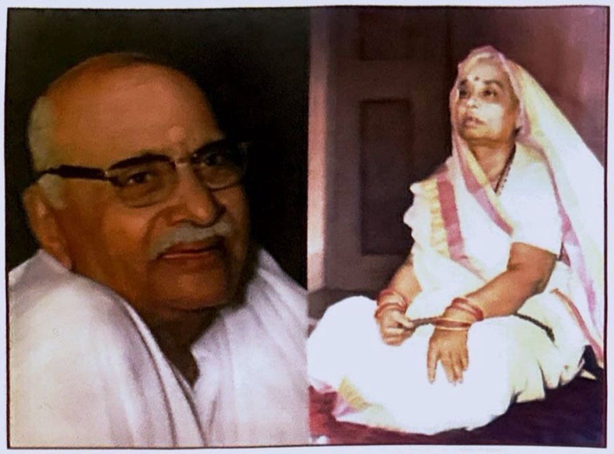

श्रीबंकाजी के गुरुदेव परम पूज्य श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार एवं
मईया श्रीमती रामदेइ पोद्दार

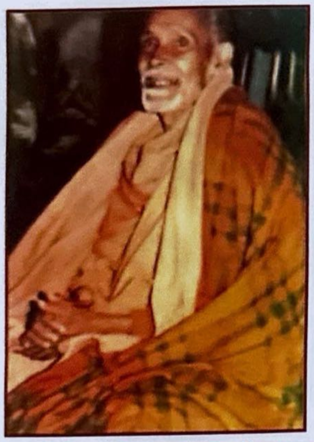

श्रीबंकाजी के गुरुदेव परम पूज्य श्रीराधा बाबा

पडरौना के श्रीराम जानकी जी

पडरौना के श्रीहनुमानजी महाराज

श्रीपोद्दारजी के निजी सचिव श्रीराधेश्याम बंका

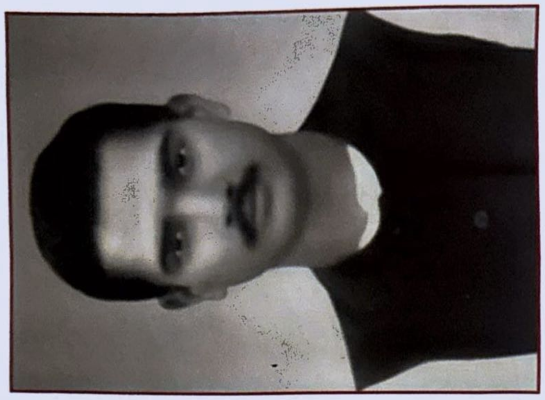
श्रीबंकाजी के युवावस्था की एक झलक

श्रीबंकाजी, पूज्य माँ, श्रीपोद्दारजी और राधा बाबा

पूज्य भाईजी के परिवार के अभिन्न अंग श्रीबंकाजी

ऋषिकेश, स्वर्गाश्रम में पूज्य भाईजी एवं अन्य परिकरों के साथ
सत्संग के लिये वटवृक्ष की ओर जाते हुए श्रीबंकाजी

श्रीराधाष्टमी महोत्सव मंच पर श्रीपोद्दारजी एवं श्रीराधा बाबा
के समक्ष उपस्थित श्रीबंकाजी

श्रीभाईजी के द्वारा श्रीबंकाजी को प्रदान किये
श्रीकृष्ण के हाथों के दिव्य पुष्प

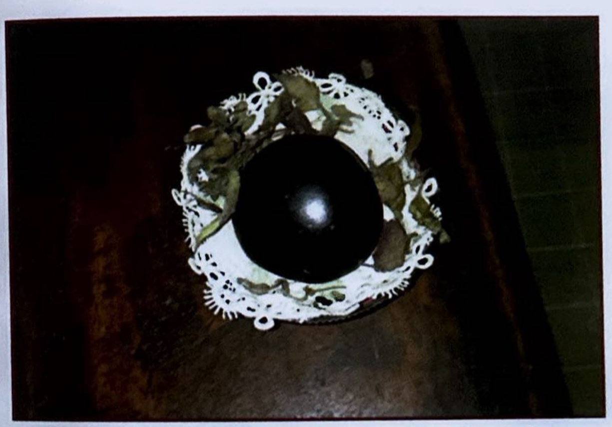

श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दारजी द्वारा प्रदत्त श्रीशालीग्रामजी

पूज्य भाईजी की समाधि के समीप, गिरिराज परिसर में
नाम जप करते हुए श्रीबंकाजी

गौशाला में सेवा करते हुए श्रीबंकाजी

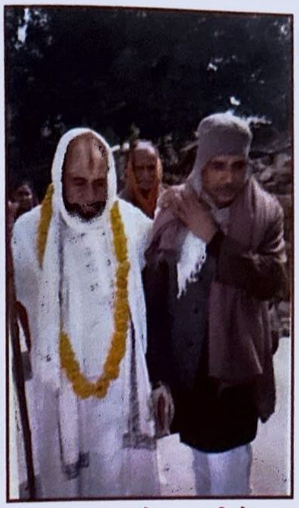

परम पूज्य संत श्रीबक्सर वाले मामाजी के साथ श्रीबंकाजी

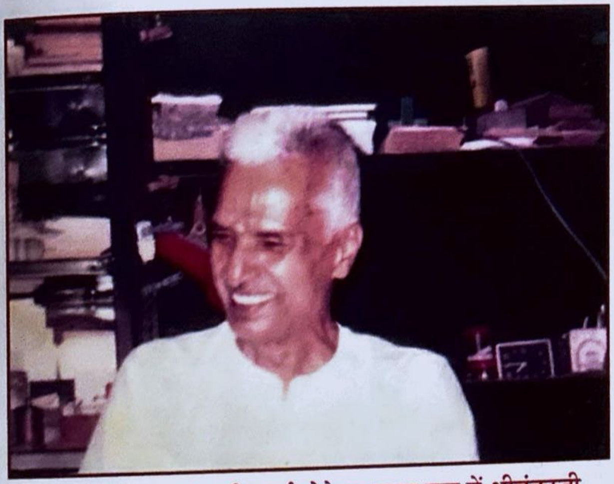

भक्त-भक्ति-भगवंत की चर्चा होने पर प्रसन्न मुद्रा में श्रीबंकाजी

गीतावाटिका के श्रीनारायण दादा के साथ मधुर चर्चा करते हुए श्रीबंकाजी

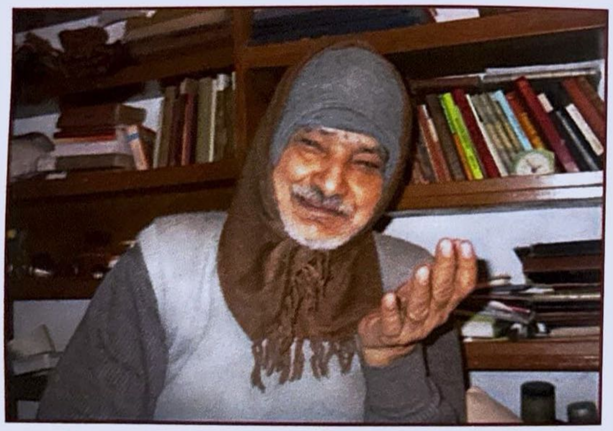

बाबूजी बाबा की कृपा याद करके अत्यंत भावुक होते हुए श्रीबंकाजी

गीतावाटिका के भागवत कथा पंडाल में रसिक श्रोता श्रीबंकाजी

अपने कक्ष के एकान्त में श्रीप्रिया-प्रियतम के ध्यान में तल्लीन श्रीबंकाजी

पडरौना मंदिर में विराजमान श्रीबंकाजी
का पावन श्रीविग्रह

श्रीजयराम भैया द्वारा श्रीबंकाजी की
अति रुग्णावस्था में संभाल

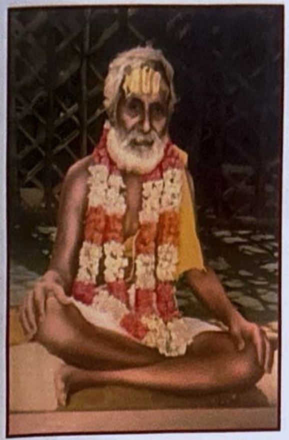

सचल वृन्दावन स्वरूप परमपूज्य पण्डित
श्रीगयाप्रसादजी महाराज

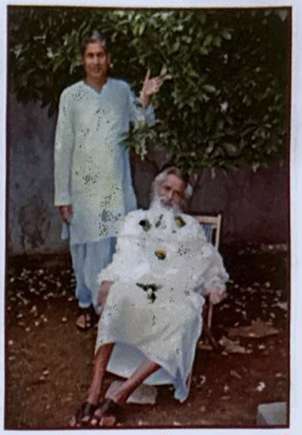

रसिक संत परमपूज्य श्रीबालकृष्णदासजी
महाराज एवं परम आरदणीय
श्रीघनश्यामदास 'ठाकुर' जी

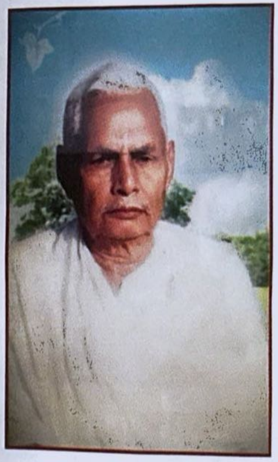

परमपूज्य संत श्रीसुदर्शन सिंह
'चक्र' जी

परमपूज्य श्रीचिम्मनलाल
गोस्वामीजी महाराज

परमपूज्य संत श्रीरुक्मिणी बाईजी